प्रकाशक—

विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ।

प्रथम संस्करण; सं० २०२५ वि०

मूल्य २०) रुपये

परिवर्द्धित मूल्य 25)

लखनऊ विश्व विद्यालय हिन्दी प्रकाशन

मुद्रक—

स्टेन्डर्ड प्रिन्टर्स, ८६, न्यू माडल हाउस,
लखनऊ

पूज्य पिता

स्वर्गीय बाबू जयप्रसाद जी अग्रवाल

की पुण्य स्मृति को

सादर, सविनय समर्पित ।

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्वविद्यालय की रजत-जयंती के अवसर पर बिसवाँ सुगर फैक्टरी की ओर से बीस सहस्त्र रुपये का दान देकर हिन्दी-विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिन्दी अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिन्दी में उच्चकोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए किया जा रहा है जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर सेठ भोलाराम सेकसरिया ग्रन्थ माला से संग्रन्थित हो रहे हैं। हमें आशा है कि यह ग्रन्थ माला हिन्दी साहित्य के भंडार को समृद्ध करके ज्ञान वृद्धि में सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त
भूतपूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय



महाकवि चन्द वरदायी



महाराज पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

अध्ययन क्रम

आमुख

आदि कालीन हिंन्दी साहित्य में पृथ्वीराज रासो का स्थान निर्विवाद रूप से अन्यतम है। इस महत्व पूर्ण कृति के एक अंश को पढ़ने का सर्वप्रथम अवसर मुझे एम० ए० (प्रथम वर्ष) में प्राप्त हुआ। कृति की महत्ता से प्रभावित होकर मैंने एम० ए० (द्वितीय वर्ष) में भी 'चन्द वरदायी' का अध्ययन विशेष कवि के रूप में किया। मेरी रुचि देखकर श्रद्धेय गुरुवर डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी जी ने मुझे पृथ्वीराज रासो के पात्रों की ऐतिहासिकता पर शोध-कार्य करने का आदेश दिया। अतः उनकी आज्ञा तथा तत्कालीन विभागाध्यक्ष डॉ दीनदयालु जी गुप्त की सहमति से मैं 'पृथ्वीराज रासो के पात्रों की ऐतिहासिकता' के अध्ययन से प्रवृत्त हुआ। सन् १९६१ में इसी प्रवन्ध पर लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई।

इतिहास के अनेक स्थल इतने अंधकार पूर्ण हैं कि निरन्तर खोज होते रहने पर भी अभी तक उन पर सम्यक् प्रकाश नहीं डाला जा सका है। भारत की केन्द्रीय राजसत्ता का अन्त होने के उपरान्त लगभग १३वीं शताब्दी के पूर्व तक उत्तरी भारत का इतिहास ऐसा ही अंधकारमय है।

राजा हर्ष के उपरान्त प्रायः सभी राज्यों ने अपनी-अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। १० वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में उत्तरी भारत में पाल, गाहड़वाल, चालुक्य, चन्देल तथा चौहान राज्यों के अतिरिक्त गुजरात तथा मालवा के दो और स्वतंत्र राज्य स्थापित हो चुके थे। ११ वीं-१२वीं शताब्दी में उत्तर भारत की शक्तियों का प्रायः ह्रास हो चुका था। वहाँ सात प्रमुख स्वतंत्र राज्य थे जिनमें कोई भी किसी एक बड़े राज्य के आधीन रह कर कार्य करने को प्रस्तुत न था।

इस युग की राजनीतिक पृष्ठभूमि देखने से स्पष्ट हो जाता है कि सातवीं-आठवीं शताब्दी में बाह्य शक्तियाँ प्रबल न थीं। ९वीं शताब्दी तक राजनीतिक सगठन इतना अशक्त हो गया था कि उसका सामना कर, कोई भी सफलता की आशा नहीं कर सकता था। परस्पर विरोध एवं शक्ति के छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण विदेशी आक्रमणकारियों को मानों खुला निमंत्रण प्राप्त हो गया था।

तत्कालीन साहित्य में भारत के राज्यों के पारस्परिक झगड़ों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पृथ्वीराज रासो सामयिक राजनीतिक अवस्था का जीता-जागता प्रमाण है। दिल्ली-अजमेर के अन्तिम हिन्दू शासक पृथ्वीराज चौहान (तृतीय), कन्नौजपति जयचन्द गाहड़वाल, गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य, चन्देलराज परमर्दिदेव के पारस्परिक संघर्ष एवं गजनीपति शाह महाबुद्दीन गोरी के आक्रमणों का 'रासो' में रोचक चित्रण हुआ है।

अपनी विकसनशील प्रवृति के कारण रासो का अस्तित्व भी शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा, इसका मूल कारण था ऐतिहासिक व्यक्तियों का चित्रण। इतिहास वेत्ताओं ने चरित्रों के विवरणों को ताम्रपत्रों एवं शिला लेखों से मिलना प्रारम्भ किया और फिर हुई जमकर ग्रन्थ की कटु आलोचना। इतिहासकारों ने रासो को अप्रामाणिक एवं अनैतिहासिक घोषित कर दिया किन्तु साहित्यिक विद्वानों ने रासो का साथ न छोड़ा तथा कतिपय तथ्यों से, जो इतिहास की कसौटी पर भी पूरे उतरते थे, प्रेरणा ग्रहण कर अन्वेषण कार्य प्रारम्भ रखा तथा रासो की प्रामाणिकता एव संभावित प्रक्षेपों को विज्ञजनों ने एक मत से स्वीकार किया। पृथ्वीराज रासो की विविध वाचनाओं के विवरणों को देखने से स्पष्ट होता है कि मुख्यतः पृथ्वीराज रासो के चार-संस्करण प्राप्त होते हैं—

(१) लघुतम,
(२) लघु,
(३) मध्यम तथा
(४) वृहद्

उक्त सभी रूपान्तरों पर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में मूल रासों का परिमाण निश्चित रूप से पर्याप्त कम रहा होगा, किन्तु जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया तथा यह ग्रन्थ जनता के मध्य प्रसिद्ध होता रहा, वैसे-वैसे इसमें विकासात्मक परिवर्धन होता गया होगा।

मूल रासो के परिमाण का ठीक-ठीक पता लगाना अत्यन्त कठिन कार्य है। किन्तु रासो के चारों संस्करणों को देखने से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि इसमें कम से कम प्रारम्भ में तीन कथानक अवश्य रहे होंगे। इस काव्य ग्रन्थ का 'सयोगिता स्वयंवर' मुख्य भाग होगा। वास्तव में संयोगिता के कारण ही रासो ग्रन्थ प्राणवान है। 'कईमास वध' प्रकरण भी मूल रासो का एक अंश अवश्य रहा होगा, क्योंकि कैमास वध विषयक अपभ्रंश के तीन पद्यों ने इसकी प्रामाणिकता में अब किसी को सन्देह नहीं रह गया है तथा तृतीय और अन्तिम प्रकरण जिनके विषय में निश्चित रूप से कहा जा सकता है वह शाहशहाबुद्दीन गोरी से युद्ध तथा पृथ्वीराज द्वारा शब्द वेधी वाण चलाकर उसका वध है।

रासो के लघुतम रूपान्तर की धारणोज की प्रति संवत् १६६७ की है। गेयकाव्य होने के कारण इसमें स्वतः ही परिवर्तन एवं परिवर्धन होता रहा होगा। यह संस्करण सर्गों अथवा समयों में विभाजित नहीं है। इस ग्रन्थ की दो प्रतियां उपलब्ध है जिनमें से एक

तो बीकानेर के श्री अगरचन्द नाहटा तथा दूसरी दिल्ली के डॉ० दशरथ शर्मा के पास है। लेखक को डॉ० शर्मा वाली प्रति की फोटो कापी देखने का सौभाग्य प्राप्त है। उक्त प्रति की एक फोटो कापी लखनऊ विश्वविद्यालय मे सुरक्षित है। सम्भव है मूल रासो की कथा इसी प्रति की कथा के आस-पास रही होगी। कालान्तर में इसमें विकास हुआ होगा और परिणाम स्वरूप रासो का लघु रूपान्तर सम्मुख आया होगा।

इस रूपान्तर में पर्याप्त परिवर्धन हुआ। अनेक नए-नए प्रकरणों को जोड़कर कथा को बढ़ाया गया। परिणाम स्वरूप अनैतिहासिक तत्वों का समावेश भी होने लगा। इस रूपान्तर में लगभग उन्नीस सर्ग अथवा समय हो गए जिनमें दो हजार पद तथा ३५ सौ श्लोक हैं। इस रूपान्तर की अभी तक केवल ५ प्रतियों की सूचना प्राप्त हो सकी है जो बीकानेर तथा लहौर के पुस्तक सग्रहालयों में सुरक्षित है।

मध्यम रूपान्तर की कथा में और भी अधिक विकास हो गया है लघु रूपान्तर से इसका परिमाण लगभग दूने से भी कुछ अधिक हो गया है इसमे कुछ ऐसे प्रकरण जोड़ दिए गए हैं जिनका अस्तित्व लघुतम एव लघु रूपान्तरों में नहीं है, यह रूपान्तर भी लघु के समान सर्गों अथवा समयों से विभाजित है तथा इनकी सख्या ४० से ४७ तक कही जाती है, सम्पूर्ण संस्करण में लगभग ९ से १२ हजार तक श्लोक संख्या है तथा इसकी कुल ११ प्रतियाँ बीकानेर, अबोहर, लाहौर, पूना तथा कलकत्ता के पुस्तकालयों में विद्यमान है।

रासो के वृहद् रूपान्तर में अत्यधिक पाठ वृद्धि हुई है। इस संस्करण में कुछ ऐसी कथाओं को भी स्थान दे दिया गया है जिनका पृथ्वीराज के चरित्र से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। यदि इन प्रकरणों को ग्रन्थ से निकाल भी दिया जावे तक भी मूल कथा में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं होता। रासो के पाठवृद्धि पर विचार करते हुए डॉ० नामवर सिंह से अपना विचार व्यक्त किया है कि–'बाद के परिवर्धन काल में लोहाना आजानबाहु, पद्मावती विवाह पातिसाह ग्रहण, होली कथा, दीपमाला कथा तथा पृथ्वीराज विवाह जोड़े गए। असम्भव नहीं है कि इनमें से कुछ स्वतंत्र काव्य रूप में प्रसिद्ध रहे हों तथा १७ वीं-१८वीं शताब्दी में ही किसी ने इन्हें रासो के अन्तर्गत मानकर लिपि बद्ध कर लिया हो।' वास्तविकता कुछ भी हो, पर इतना निर्विवाद रूप से सत्य है कि वृहद् सस्करण में प्रक्षिप्त अंश बहुत अधिक बढ़ गया जिससे सम्पूर्ण रासो ग्रन्थ शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा। रासो के वृहद रूपान्तर में ६४ से ६९ तक समय अथवा सर्ग तथा १३ से १७ हजार तक पद अथवा अनुष्टुप की ३१ मात्रा के हिसाब से ३० स ३६ हजार तक श्लोक संख्या विद्यमान है। इस रूपान्तर की अभी तक ३३ प्रतियों की सूचना प्राप्त हुई है जो यूरोप, बम्बई, कलकत्ता, आगरा, काशी, बीकानेर आदि स्थानों में सुरक्षित है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि समय-समय पर मूल रासो में अवश्य ही परिवर्धन होता रहा है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासो वृहद् रूपान्तर

के अन्तर्गत आता है। इसी रासो का अध्ययन करने के उपरान्त, उसकी प्रमाणिकता के सम्बन्ध में विवाद उठ खड़ा हुआ। अधिकतर विद्वानों का यह मत है कि वर्तमान प्रकाशित पृथ्वीराज रासो, अनैतिहासिक, अप्रामाणिक एवं काल्पनिक है। अन्य तीन रूपान्तरों पर दृष्टि-पात करने से स्पष्ट हो जाता है कि कुछ स्थल ऐसे अवश्य है जिसके सम्बन्ध में तीनों संस्करणों में कोई उल्लेख तक प्राप्त नहीं होता। अतः निश्चित है कि बृहद् रूपान्तर में कुछ क्षेपक होने के कारण ही वह आज-कल इतने विकृत रूप में मिलता है तथा उसकी ऐतिहासिकता भी शंका का विषय बन गई है। आज समस्त रूपान्तरों के आधार पर रासो का वैज्ञानिक एवं संशोधित पाठ प्रस्तुत करने की नितान्त आवश्यकता है, जिससे साधारण पाठक भी रासो की वास्तविकता का आनन्द ले सके। डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी जी ने लखनऊ विश्व-विद्यालय के तत्वावधान में रासो के सम्पादन का कार्य प्रारम्भ किया था किन्तु उनके असा-मयिक निधन से यह कार्य अधूरा पड़ा है।

प्रस्तुत अध्ययन क्रम में पृथ्वीराज रासो के सभी संस्करण तथा वाचनाएं उपलब्ध नहीं हो सकीं किन्तु फिर भी पृथ्वीराज रासो का अप्रकाशित रॉयल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन का मध्यम, और लघु रूपान्तर तथा धारणोज का लघुतम रूपान्तर, डॉ त्रिवेदी जी की कृपा से मिल गया। लेखक ने प्रबंध का मूल आधार नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित बृहद् पृथ्वीराज रासो को ही बनाया है, किन्तु साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो से भी प्रबन्ध को पूर्ण बनाने के लिए पर्याप्त सहायता ली गई है।

प्रस्तुत अध्ययन की रूप रेखा निर्धारित करने में कोई एक ग्रन्थ निश्चित पथ प्रदर्शन नहीं कर सका है। फलतः कुछ स्थलों को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण प्रबन्ध का विषय विभाजन निजी मान्यताओं के आधार पर किया गया है। यहाँ प्रस्तुत अध्ययन क्रम के विभाजन की संक्षिप्त रूप रेखा देना अनुपयुक्त न होगा।

प्रस्तुत प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है जिनमें पृथ्वीराज रासो में आए हुए प्रमुख पात्रों को ऐतिहासिक कसौटी पर परखने का प्रयास किया गया है। प्रथम अध्याय में राजपूत शब्द की व्युत्पत्ति-विवेचना के साथ-साथ राजपूत जाति के प्रमुख वंशों का संक्षिप्त परिचया-त्मक इतिहास वर्णित है।

दूसरे अध्याय में शासक वर्ग के अन्तर्गत आने वाले हिन्दू पात्रों की ऐतिहासिकता पर विचार किया गया है। ऐतिहासिकता को अधिकाधिक प्रामाणिक बनाने के उद्देश्य से इतिहास ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य और डिंगल साहित्य की ख्यात तथा वातों एवं शिला लेखादि का भी उपयोग लेखक ने किया है।

तीसरे अध्याय में शासित वर्ग के अन्तर्गत आने वाले मुख्य हिन्दू पात्रों की चर्चा है। जिन पात्रों के सम्बन्ध में इतिहास सर्वथा मौन है, उनके विषय में अध्ययन की आधारभूत सामग्री रूप में साहित्यिक कृतियों से सहायता ली गई है।

चौथा अध्याय प्रमुख मुसलमान पात्रों से संबन्धित है। इस अध्याय में मुसलमान शासक एवं शासित दोनों वर्गों के पात्रों को एक ही साथ अध्ययन का आधार बना लिया गया है।

पाँचवाँ अध्याय काल्पनिक पात्रों से संबन्धित है। इस अध्याय में कवि कल्पना प्रसूत पात्रों के विवेचन के साथ साथ कथा विकास में उनके योगदान की चर्चा भी कर दी गई है।

छठें अध्याय में स्त्री पात्रों की विवेचना है। पृथ्वीराज रासो जैसे वीर काव्य में स्त्री पात्रों का चित्रण प्रायः कम ही हुआ है किन्तु जो भी प्रसंग वश आ गई है, उनकी प्रामाणिकता भी देखने का प्रयास किया गया है।

सातवां अध्याय विभिन्न राज्यों के राज कवि एवं पुरोहित वर्ग से सम्बन्धित है। इस कोटि के पात्रों की संख्या भी बहुत कम है। इसी अध्याय में उन पात्रों की भी चर्चा हुई है जो सामान्य स्तर के है किन्तु कथा-विकास की दृष्टि से महत्व पूर्ण है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में पृथ्वीराज रासो के लगभग सभी प्रमुख पात्रों का ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। किसी भी युग के पात्रों की ऐतिहासिकता खोजना अत्यन्त दुरूह कार्य है। यह जान सकना सरल नहीं है कि आज से लगभग २०-२१ वर्ष पूर्व भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में किन-किन पुण्मात्माओं ने अपने अमूल्य प्राणों की आहुति दी थी, न जाने कितने नाम ऐसे होंगे जिनके विषय में आज हम जानते तक नहीं, किन्तु फिर भी उनके साथ एक इतिहास सम्बद्ध है। रासो तो हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य है। इसके समस्त पात्रों को ऐतिहासिक ग्रन्थों में खोजना भारी भूल होगी। तत्कालीन मुसलमानों में ही इतिहास लिखने की प्रथा थी, वह पक्षपात के कारण हिन्दुओं की उपेक्षा तथा अपने आश्रयदाता मुसलमान शासकों की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा किया करते थे। यह भी अत्युक्ति न होगी कि प्रायः वह अपने इस प्रकार के ग्रन्थों द्वारा विपक्षियों के विषय मे भ्रान्ति पूर्ण प्रचार ही अधिक करते थे। ऐसी पक्षपात पूर्ण स्थिति में उनके ग्रन्थों में कुछ प्रामाणिक सामग्री खोजना मृग-तृषणां के अतिरिक्त कुछ नहीं। फिर भी पात्रों के विषय में अधिक से अधिक प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक सामग्री जुटाने का प्रयत्न किया गया है। वास्तविकता यह है कि विना मूल रासो का पता लगाए हुए, उसके पात्रों के विषय में भी अधिकार पूर्ण एवं प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। रासो में अत्यधिक क्षेपक होने के कारण बहुत से काल्पनिक नामों का भी समावेश हो गया है, जिसके कारण ऐतिहासिक पात्रों का विवरण भी विकृत होकर रह गया है। ऐसी विषम स्थिति से पात्रों का वास्तविक मूल्यांकन करना अत्यन्त कठिन है, फिर भी लेखक का यही प्रयत्न रहा है कि रासो के पात्रों का वास्तविक स्वरूप पाठकों के समक्ष रक्खा जा सके।

इस प्रवन्ध लेखन-काल में अन्य अनेक महानुभावों से समय-समय पर बहुमूल्य सुझाव

प्राप्त होते रहे, उन सभी के प्रति लेखक हृदय से आभार मानता है। सर्व प्रथम लेखक हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के रीडर तथा हिन्दी विभाग, बडोदा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष स्वर्गीय डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है, जिनके स्नेह पूर्ण पथ प्रदर्शन एवं सतत् प्रोत्साहन से ही यह कार्य पूर्ण हो सका। प्रस्तुत कृति मे प्रकाशित पृथ्वीराज चौहान तथा चन्दवरदायी के चित्र लेखक को उन्हीं से प्राप्त हुए थे। इसके अतिरिक्त वह सर्वश्री मुनिराज जिनविजय डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० दशरथ शर्मा, डॉ० माताप्रसादगुप्त, डॉ० केसरीनारायण शुक्ल अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, डॉ० भगीरथ मिश्र तथा डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल का भी कृतज्ञ है, जिन्होंने अपने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सुझावों से प्रस्तुत प्रवन्ध को अधिकाधिक सारगर्भित वनाने में हाथ वटाया है। लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं प्रोफेसर डॉ० दीनदयालु जी गुप्त का लेखक हृदय से ऋणी है, जिनकी सद्भावना उसे सदैव उपलब्ध रही है। मैं अपने अग्रज एवं सहयोगी डॉ० प्रेमनारायण टण्डन तथा डॉ प्रभाकर शुक्ल का भी अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने प्रबन्ध के प्रकाशन में पग-पग पर प्रेरणा तथा सभी प्रकार की सहायता एवं सुविधा प्रदान की है।

—कृष्णचन्द्र अग्रवाल

संक्षिप्त रूप

उ० स०	—	उदयपुर संस्करण ।
उ०	—	उदाहरणार्थ ।
ए० बी० ओ० आर० आई०	—	एनल्स आव दि भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट ।
गौ० ही० ओ०	—	गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ।
छं०	—	छन्द ।
ज० आर० ए० एस० बी० बी०	—	जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी बाम्बे ब्रांच ।
जे० आर० ए० एस० एल०	—	जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी लंदन ।
जे० आर० ए० एस० बी०	—	जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ।
डॉ०	—	डॉक्टर ।
धा०	—	धारणोज ।
ना० प्र० प०	—	नागरी प्रचारिणी पत्रिका ।
ना० प्र० स०	—	नागरी प्रचारिणी सभा ।
ना० प्र० सं०	—	नागरी प्रचारिणी संस्करण ।
पृ०	—	पृष्ठ ।
पृ० रा०	—	पृथ्वीराज रासो ।
म० म०	—	महामहोपाध्याय ।
रा० ए० सो० ल०	—	रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन ।
स०	—	समय ।
स० सं० उ०	—	साहित्य संस्थान उदयपुर ।

१

राजपूत : शब्द तथा इतिहास

राजपूताने में यों तो अनेक छोटी-बड़ी जातियां हैं किन्तु जो स्थान वहाँ राजपूतों को प्राप्त है वह अन्य को नहीं। राजपूत 'शासक' जाति है। प्रमादवश चाहे कोई इन्हें हूण, तुर्क, यूनानी, शक आदि अनार्यों की-जिन्होंने भारतवर्ष में आकर हिन्दू धर्म तथा सभ्यता को ग्रहण कर लिया था-सन्तान लिख दें, किन्तु यह शुद्ध आर्य नस्ल के प्राचीन क्षत्रियों के ही वंशज हैं। प्राचीन काल में इस जाति का प्रभुत्व न केवल उत्तर भारत में, अपितु दक्षिण भारत में भी था, किन्तु अब इनकी प्रधानता केवल राजपूताने में ही रह गई है।

'राजपूत' शब्द एक जाति या वर्ण-विशेष के लिए मुसलमानों के इस देश में आने के उपरान्त प्रचलित हुआ है। यह शब्द संस्कृत के 'राजपुत्र' का अपभ्रंश रूप है। आदि काल में 'राजपुत्र' शब्द किसी जाति विशेष के लिए प्रयुक्त नहीं होता था, अपितु यह शब्द क्षत्रिय राजकुमारों अथवा राजवंशियों का सूचक था। इसका एक मात्र कारण यह था कि आदि काल से ही भारतवर्ष क्षत्रियों के आधीन था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र'[1] कालिदास के काव्य और नाटकों[2], अश्वघोष के ग्रन्थों[3], महाकवि बाणभट्ट के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी'[4]

---

१. जन्मप्रभृति राजपुत्रान्रक्षेत् कर्कटकसधर्माणोहिजनकभक्षाः राजपुत्राः।
—'अर्थशास्त्र' पृ० ३२।

२. राजसूयदीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य।
—मालविकाग्निमित्र अंक ५, पृ० १०४।

३. अथ तेजस्विसदनं तपः क्षेत्रं तमाश्रयम्।
केचिदिक्ष्वाकवो जग्मू राजपुत्रा विवत्सवः ॥८॥ —सौन्दरानन्द काव्य, सर्ग १।

४. केसरिकिशोरकैरिव विक्रमैकरसैरपि विनयव्यवहारिभिरात्मनः प्रति-
विम्बैरिव राजपुत्रोः सह रममाणः प्रथमे वयसि सुखमतिचिरमुवारू।
—कादम्बरी, पृ० १४–१५।

आदि पुस्तकों एवं प्राचीन शिलालेखों[1] तथा दानपत्रों[2] में राजकुमारों और राजघराने के अन्य व्यक्तियों के लिए 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग हुआ है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने वि० सं० ६८६ से ७०२ (६२९-६४५ ई०) तक भारतवर्ष का भ्रमण किया तथा अपनी यात्रा का विस्तृत वर्णन लिखा। उस वर्णन में तत्कालीन युग के भूगोल, इतिहास, धर्म, रहन-सहन आदि का बड़ा ही महत्वपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया गया है। अपने ग्रन्थ में उसने कई स्थानों पर राजाओं का नामोल्लेख कर उनको क्षत्रिय[3] ही लिखा है और राजपूत[4] शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं किया। अतः स्पष्ट है कि ह्वेनसांग के समय तक क्षत्रियों को राजपूत कहने का प्रचार न हुआ था। मुसलमानों के शासनकाल में क्षत्रियों के राज्य क्रमशः तिरोहित होते गए तथा बचे खुचों को उनकी आधीनता स्वीकार करनी पड़ी अर्थात् वह स्वतन्त्र राजा न रह कर मुसलमानों के सामन्त बन गए। ऐसे अवसर पर राजवंशी होने के कारण उनके लिए 'राजपूत' शब्द का प्रयोग होने लगा। कालान्तर में शनैः शनैः यही शब्द जातिसूचक बन कर जन साधारण में प्रचार पा गया।

क्षत्रिय वर्ण भारतवर्ष पर वैदिक काल से शासन कर रहा था और आर्यों की वर्ण-व्यवस्था के अनुसार प्रजा का रक्षण करना, दान देना, यज्ञ करना, वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करना तथा विषयासक्ति में न पड़ना आदि क्षत्रियों के मुख्य धर्म माने जाते थे।[5] मुसलमानों के भारत में आने के उपरान्त से यही क्षत्रिय जाति 'राजपूत' कहलाने लगी।

राजपूत सुडौल, कद्दावर तथा पौरुषवान होते हैं। इनमें दाढ़ी रखने का आम रिवाज़ है। प्रायः यह सीधे-सादे तथा मिलनसार प्रवृत्ति के हुआ करते हैं। राजपूत अपनी स्त्री का बड़ा सम्मान करते हैं। वह अपनी मर्यादा के लिए हर समय अपनी जान हथेली पर रक्खे रहते हैं। राजपूतों के अपने देश, जाति तथा मान-मर्यादा की रक्षा करने के लिए केसरिया

---

१. मालिमाऽप्रभृतिग्रामेषु संतिष्ठमानश्री प्रतीहारवंशीय सर्व्वराजपुत्रैश्च।
—आबू पर तेजपाल के मंदिर का वि० सं० १२८७ का शिलालेख, ए० इ० जि० ८, पृ० २२२।

२. सर्व्वानेव राजराजनकराजपुत्रराजामात्यसेनापति।
—लाखिमपुर से मिला हुआ राजा धर्मपाल का दानपत्र, ए० इ० जि० ४, पृ० २४९।

३. ह्वेनत्सांग ने महाराष्ट्र के राजा पुलकेशी वलभी के राजा ध्रुवपट (ध्रुवभट) आदि कई राजाओं को क्षत्रिय ही लिखा है। वि० बु० रे० वे० व० जि० २, पृ० २५६-६७।

४. 'पृथ्वीराज रासो' में रजपूत (राजपूत) शब्द मिलता है—
लग्गो सुजाय रजपूत्त सीस। धायो सुतेग करि करियरीस।
पृ० रा०, पृ० २५०८, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

५. प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ मनुस्मृति १।८९॥

बाना धारण कर शत्रु के साथ मर मिटने के अनेक उदाहरण प्रसिद्ध हैं। इस वीरोचित भाव को देखकर ही वीर कवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने वीर सतसई में लिखा है—

हूं बलिहारी रानियां जाया वंश छतीस।
सेर सलूनो चुन ले, मोल समप्पै सीस॥ १००॥

अर्थात् हे राजपूत क्षत्राणियो! तुम धन्य हो जिनकी कोख से यह ३६ वंश उत्पन्न हुए हैं। जो वीर सुपुत्र सेर भर आटा लेकर अर्थात् उदर पालनार्थ अत्यन्त अल्प वेतन लेकर भी अपना सब कुछ समर्पण करने को सदा तत्पर रहते हैं तथा रणक्षेत्र में सदा अपना सिर हथेली पर रक्खे रहते हैं।

प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड ने राजपूत जाति का चित्रण करते हुए लिखा है— 'महान शूरता, देशभक्ति, स्वामिधर्म, प्रतिष्ठा, अतिथि सत्कार तथा सरलता, यह गुण सर्वांश में राजपूतों में प्राप्त होते हैं'[1]।

यही नहीं, प्रसिद्ध मुगल सम्राट अकबर के प्रधान मंत्री मौलवी अबुलफज़ल ने भी राजपूतों को प्रशसा इस प्रकार की है–विपत्तिकाल में राजपूतों का असली चरित्र जाज्वल्यमान प्रकाशित होता है। राजपूत सैनिक रणक्षेत्र से भागना जानते ही नहीं हैं, बल्कि जब भी युद्ध की दशा सन्देहजनक हो जाती है तब वे लोग अपने घोड़ों से उतर जाते हैं और शूरवीरता के साथ अपने प्राण न्योछावर कर देते हैं।

अंग्रेजी यात्री बरनियर भी अपनी 'भारत यात्रा' पुस्तक में लिखता है कि 'राजपूत लोग जब युद्ध क्षेत्र में जाते हैं तब आपस में गले मिलते है गोया उन्होंने मरने का पूरा निश्चय कर लिया है। स्पार्टा देश (योरप) के वीर लोग भी ऐसे अवसरों पर अपने बाल सुलझाते थे। इसी प्रकार राजपूत लोग केसरिया कसूमल बाना पहिनते थे। ऐसी वीरता के उदाहरण संसार की अन्य जातियों में कहां पाये जाते हैं! किस देश और जाति ने इस प्रकार की सभ्यता, साहस और अपने पूर्वजों के रिवाजों को इतनी शताब्दियों तक अनेक संकट सहते हुए कायम रखा है।'

राजपूतों की वीरता से प्रभावित होकर विदेशियों ने भी उनकी प्रशसा की और भारतीय काव्यों में भी इनकी वीरता का मुक्तकंठ से गान किया गया है–रासो ऐसा ही काव्य है–मुख्यतः रासो युद्ध-प्रधान काव्य होने के कारण इसमें उस समय की आदर्श वीरता का चित्रण मिलता है। डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी ने भी इनकी वीरता से प्रभावित होकर लिखा है–'क्षात्र धर्म और स्वामि-धर्म निरूपण करने वाले इस काव्य में तेजस्वी क्षत्रिय वीरों के युद्धोत्साह तथा तुमुल नाद और बेजोड़ युद्ध दर्शनीय है। असार-संसार यश की श्रेष्ठता और

1. 'High courage, patriotism, loyalty, honour, hospitality and simplicity are qualities which must atonce be conceded to them'.
—Rajasthan p. 78.

प्रधानता को दृष्टिगत करके उसकी प्राप्ति स्वामि-धर्म पालन में निहित की गई है। स्वामि-धर्म की अनुवर्तिता का अर्थ है प्रतिपक्षी से युद्ध में तिल-तिल करके कट जाना, परन्तु मुह न मोड़ना। इस प्रकार स्वामि-धर्म में शरीर नष्ट होने की बात को गौण रूप देकर यश सिरमौर कर दिया गया है; और भी एक महान प्रलोभन तथा इस संसार और सांसारिक वस्तुओं से भी अधिक आकर्षक मित्र-लोक वास तथा अनन्य सुन्दरी अप्सराओं की प्राप्ति है। धर्मभीरु और त्यागी योद्धा के लिए शिव की मुण्डमाला में उसका सिर पोहे जाने तथा तुरन्त मुक्ति प्राप्ति आदि की व्यवस्था है।"[1] पृथ्वीराज रासो इसी प्रकार की भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। एक स्थान पर डॉ० त्रिवेदी वीरों के अनुशासन तथा स्वामि-धर्म के विषय में लिखते है कि 'उस युग की वीरता का यह आदर्श कि स्वामि-धर्म ही प्रधान है, कोरा आदर्श मात्र न था। उसका संस्थापन सेना की सामूहिक दृढ़ता और स्थायित्व तथा विशेपरूप से उसकी युद्धोचित प्रवृत्ति की जागरूकता को ध्यान में रखते हुए अति आवश्यक अनुशासन (discipline) को लेकर हुआ था। अनुशासन ही सेना और युद्ध की प्रथम आवश्यकता है। आदि काल से लेकर आज तक सेना में अनुशासन की दृढ़ता रखने के लिए नाना प्रकार के नियमों का विधान पाया जाता है। यहाँ आज्ञाकारिता को दासता से जोड़ना ठीक नहीं है क्योंकि उस युग में किराए के टट्टुओं (Mercenaries) से भारतीय सम्राटों की सेनाए नहीं सजाई जाती थीं। युद्ध क्षत्रियों का व्यवसाय था और स्वामि-धर्म हेतु प्राणोत्सर्ग करना उनका कर्तव्य था। यहाँ दासता और धन के लोभ का प्रश्न उठाना तत्कालीन वीरयुग की भावना को समझने में भूल करना है। सम्राट या सेनापति की आज्ञापालन के अनुशासन को चिरस्थायी और व्रतस्वरूप बनाने के लिए स्वामि-धर्म का इतना उत्कट प्रचार किया गया था कि वह सामान्य सैनिकों की नसों में कूट-कूट कर भर गया था और इसी आदर्श की रक्षा में उनके कट मरने का कार्य दुहाई दे रहा है। दार्शनिक जामा पहने हुए स्वामि-धर्म योद्धा का परम आभूपण था'।[2]

इस प्रकार के वातावरण में पले हुए वीर क्षत्रियों की वृत्ति असार-संसार में यश की अमरता तथा स्वामि-धर्म के प्रति सजग हो जाती होगी तभी तो इन योद्धाओं के लिए युद्ध अनिर्वचनीय आनंद के क्षण उपस्थित करता है। युद्ध-क्षेत्र में तिल-तिल कर मर मिटने वाले क्षत्रियों के उद्‌गार कितने प्रभावशाली हैं, साथ ही इनके वीरोचित उत्साह को देखकर हैरान होना पड़ता है—

(१) मरना जाना हक्क हैं। जुग्ग रहेगी गल्हां।
सा पुरुसां का जीवन थोड़ाई है भल्लां।

---

१. रेवातट, भूमिका भाग, पृ० २०।

२. वही, पृ० २०-२१।

(२) जाणणी जणै न वार वार थिर रहे न काया।
सापुरसां का जीवणा थोड़ा ही फुरमाया ॥

(३) जीविते लभ्यते लक्ष्मी मृते चापि सुरांगणा।
क्षणे विध्वंसिनी काया का चिन्ता मरणे रणे ॥

(४) जीवंतह की रति सुलभ। मरन अपच्छर हूर।
दो हथान लड्डू मिले। न्याय करै वर सूर ॥

करीब ७०० वर्षों से उत्तरीय भारत की जनता का कण्ठहार जगनिक विरचित 'आल्हा खण्ड' भी ऐसी ही भावनाओं से ओतप्रोत है।

उस समय के राजपूत योद्धा जैसे वीर थे वैसी ही वीरता से परिपूर्ण उनकी पत्नियाँ, माताएं, बहनें तथा बेटियाँ भी थीं। अपभ्रंश-साहित्य ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। यदि शत्रु की सेना परास्त हो गई है तो निश्चय ही उसके पति के द्वारा और यदि पति की सेना भग्न हुई है तो निश्चय ही मेरा पति युद्ध भूमि में मारा गया है।' कितना दृढ़ विश्वास है उसे अपने पति की वीरता पर—

जइ भग्गा पारक्कड़ा तो सहि मज्झु पिएण।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण ॥[१]

और भी, वीरांगना को अपने पति की मृत्यु पर शोक के स्थान पर हर्ष अधिक होता है। वह अपनी प्रिय सखी से कहती है कि—हे बहिन! अच्छा हुआ, यदि मेरा पति युद्ध भूमि में मारा गया। यदि वह भागा हुआ घर पर आता तो मैं समवयस्काओं (सखियों) में लजाती—

भल्ला हुआ जु मारिआ वहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एतु ।[२]

रमणियाँ कायर पति को युद्ध-भूमि से भागने पर मरा हुआ ही समझती हैं। उनके जीवित रहने पर भी शृंगार नहीं करतीं, विधवाओं का वेष धारण किए रहती हैं। एक वीरांगना, मनिहारी से जो उसे चूड़ियाँ पहनाने आई है, कहती है—हे सखि मनिहारिन! चली जा, फिर इस मकान पर न आना। पति मरे हुए घर आ गए हैं (युद्ध से भाग कर आना मरण तुल्य है) फिर मुझ जैसी विधवाओं के लिए शृंगार कैसा—

मणिहारी जा री सखी, अब न हवेली आव।
पीव मुवा घर आविया, विधवा किसा बणाव ॥[३]

---

१. हेमचन्द्र, सिद्ध हेमशब्दानुशासनम्, ५१८।
२. वही, ९२।
३. वियोगी हरि, वीर सतसई, ८४।

और भी-उस पुत्र की उत्पत्ति से क्या लाभ तथा मृत्यु से क्या हानि जिसके पिता की भूमि दूसरे से आक्रान्त हो अर्थात् दूसरे द्वारा अपहरण कर ली गई हो-यह है उस समय की वीर माता की उक्तियां—

पुत्ते जाएं कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण ।
जा बप्पी की भुहंडी चम्पिज्जइ अवरेण ॥[१]

इसी प्रकार की उक्ति राजस्थानी कवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने भी प्रस्तुत की है। वीर माता अपने कायर पुत्र को रणभूमि से भागा हुआ देखकर उसे सम्बोधित करते हुए कहती है—हा पुत्र ! आयु क्षीण कराने वाला स्तन पान कराके जब महाकष्ट से तेरा पालन-पोषण किया था तब मैंने यह नहीं जाना था कि तू अपनी जननी का दूध लजा कर आ खड़ा होगा।

पूत महा दुख पालियो वय खोवण थन पाय ।
एम न जाएयो आवही, जायण दूध लजाय ॥[२]

इसी प्रकार के विचार महाकवि भर्तृहरि ने अपने 'वैराग्य शतक' तथा श्री वियोगी हरि जी ने वीर सतसई में व्यक्त किए हैं यहाँ पर उन्हें क्रमशः उद्धृत किया जाता है—

मा: तु केवलमेवयौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ।
कह्यौमाय. मुख चूमिकैं कर गहाय करवाल ।
जनि लजवयौ दूध मो पयोधरनु कौ लाल ।
जणणी जणै कपूत मत, चंगो जोंवन खोय ।
जण तू वैर विहड़णों, कै कुलमडंण होय ॥[३]

उसी युग की रमणियां ही गौरी से वर मांग सकती हैं कि इस जन्म में तथा अन्य जन्मों में भी हमें ऐसा पति देना जो अंकुशों द्वारा व्यक्त मदांध हाथियों से हँसता हुआ भिड़ जावे—

आयहिं जामहिं अन्नहिं वि गीरि सु दिज्जहि कन्तु ।
गय मत्तहं चत्तङ्कुसहं जो अब्भिडई हसन्तु ॥[४]

और भी, युद्ध-मदिरा में झूमता हुआ वीर क्षत्रिय योद्धा उस प्रिय देश को जाना चाहता है जहाँ खड्ग के खरीदार हैं, रण के दुर्भिक्ष ने उसे भग्न कर रक्खा है और विना जूझे हुए वह रह नहीं सकता—

खग्ग विसाहिउ जहिं लहहु पिय तहि देसहिं जाहुं ॥
रण दुब्भिक्खें भग्गाइं विणु जुज्झें न वलाहुं ॥[५]

---

१. हेमचन्द्र, सिद्धहेमशब्दानुशासन, १२९ ।
२. वियोगी हरि, वीर सतसई, ११५ ।
३. वही; छं० ८७ ।
४. हेमचन्द्र, सिद्धहेमशब्दानुशासन; ३८३ ।
५. वही; ३८६ ।

अंत में डा० त्रिवेदी के शब्दों में 'जाति गौरव के लिए निजी हित-अहित की अवमानना करने वाले, भारतीय मान-मर्यादा के रक्षक, हिन्दू-शासन का आदर्श रूप से पालन करने वाले, प्राचीन संस्कृति के पोषक राजपूत योद्धाओं ने शत्रुओं को पीठ नहीं दिखाई, जातीय सम्मान के लिए प्राण होम दिए, वचन का निर्वाह किया, सब कुछ उत्सर्ग करके शरणागत की रक्षा की, निश्शस्त्र, आहत, निरीह और पलायन करने वाले शत्रु पर हाथ नहीं उठाया, धोखा नहीं दिया, प्रतारणा नहीं की, झूठ नहीं बोले, विश्वासघात नहीं किया, और युद्ध में स्त्री-बच्चों पर हाथ नहीं उठाया। वे मिट गए, उनके विशाल साम्राज्य ध्वस्त हो गए परन्तु राजपूती आन, बान और शान भारतीय इतिहास में सदा के लिए स्वर्णाक्षरों में लिख गई।'[1]

राजपूतों के ३६ वंश तथा उनका इतिहास

राजपूतों के चार वंश तथा अनेक राजकुल अथवा राजवंश मिलते हैं, किन्तु मुख्य राजकुल (clan) ३६ ही हैं जो प्रायः राजपूताने में पाए जाते हैं। कवि चंद वरदाई विरचित 'पृथ्वीराज रासो' में भी हमें ३६ राजकुल होने की सूचना प्राप्त होती है—

रवि ससि जादववंश, ककुथ परमार सु तोमर।
चाहुवान चालकुक, छंद सीलार अभीयर।।
दोय मत (दोयमत) मकवान, गरुअ गोहिल गोहिलपुत।।
चापोरकट परिहार, राव राठोर रोसजुत।।
देवरा टांक सैंधव अनिग (अनग) यौतिक प्रतिहार दधिपट्।
कारट्टपाल कोटपाल हुव। हरितट गोर कला (मा) प भट।।
धन्य (धान्य) पालक निकुंभवर। राजपाल कवि नीस।।
कालच्छुरकें आदि दे। बरने वंश छत्तीस।।[2]

विक्रम सम्वत् की १२ वीं शताब्दी में काश्मीरी पं० कल्हण ने राजतरंगिणी नामक 'काश्मीर का इतिहास' लिखा था। उसके ७वें तरंग से एक श्लोक से ज्ञात होता है कि उस समय भी क्षत्रियों के ३६ कुल समझे जाते थे।[3] आज भी राजपूताने में राजवंशों के विषय में एक प्राचीन लोकोक्ति प्रचलित है कि—

दस रवियों दस चन्द को द्वादस ऋषि प्रमाण।
चार हुतासन से भये वंश छत्तीस बखान।।

---

१. रेवातट, भूमिका भाग पृ० २३।
२. पृथ्वीराज रासो, सभा संस्करण, छं० १ : ७७। रू० । १३५-३६।
३. प्रख्यापयन्तः सभूतिं षट्त्रिंशति कुलेष्वपि।
तेजस्विनो भास्वतोऽपि सहन्ते नोदयं ः स्थितयः ।।१६१७।।

किन्तु समस्या तब उत्पन्न होती है जब इतिहास में विभिन्न स्थानों पर एक ही वंश के सूर्य, चन्द्र अथवा अग्नि से उत्पन्न होने की कथा मिलती हैं। संभवत: यह सब झमेला पौराणिक-कथाओं के अनुकरण के कारण ही उत्पन्न हुआ होगा।

एक और वंशावली वि० सं० १९७० (ई० सं० १९१३) में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के उपाध्यक्ष महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री को जोधपुर में मिली थी[1], । जो प्राय: एक शताब्दी पूर्व बघेलखण्ड में मिली हुई बताई जाती है। वंशावली इस प्रकार है–

चन्द्रवंशी–(१) यादव। (२) गौड़। (३) कावा। (४) कौरव (चंदेल)। (५) भाटी। (६) केवरा। (७) तंवर। (८) सोरठा। (९) कटारिया। (१०) सोमवंशी।

ऋषिवंशी–(१) सेंगर। (२) गौतम। (३) विसेन। (४) चमर गौड़। (५) ब्रह्मनगौड़। (६) भट गौड़। (७) राजगौड़। (८) दीन दीक्षित। (९) दीक्षित। (१०) बिलकेता। (११) बिलखरिया। (१२) कनपुरिया।

यज्ञवंशी (अग्निवंशी)–(१) पड़िहार। (२) सोलंकी। (३) प्रमार। (४) चौहान।

सूर्यवंशी–(१) गोहिल (सिसोदिया)। (२) सिकरवार। (३) गड़गूजर। (४) कछवाह। (५) बनाफर। (६) गहरवार (राठोड़, बुंदेल, बुन्देल)। (७) बघेल (८) सरनैत। (९) निकुंभ। (१०) छौड़ो।

आजमगढ़ के स्वर्गीय राजा रणजोरसिंह विरचित 'क्षत्रकुल वंशावली' में ३६ राजवंशों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है–

सूर्यवंशी–(१) सूर्यवंशी। (२) रघुवशी। (३) दागी। (४) कछवाहा। (५) बड़गूजर। (६) सरस्वार। (७) दिखत। (८) सिरनेत। (९) सीसादिया। (१०) गृहवार (बदेला)। (११) करछुली। (१२) बोदा। (१३) कन्नोजिया। (१४) बिलकंत। (१५) चंवरगौर। (१६) राठौर।

चंद्रवंशी–(१) गहरवार (बुन्देलों से भिन्न)। (२) चन्देल। (३) सोमवशी। (४) तौर।

नागवंशी–(१) पायक। (२) बेस।

ऋषिवंशी–(१) गौतम। (२) सेंगर। (३) विसेन।

अग्निवंशी–(१) चौहान। (२) सुलंकी। (३) नाहर। (३) बघेल। (५) गुहोलत। (६) नदवान। (७) खागर। (८) परहार। (९) पमार। (१०) खहेत। (११) भदौरी।

राजा रणजोर सिंह ने एक छठवां वंश असुर (दैत्य) वंश माना है–

दैत्यवंशी–(१) निकुंभ। (२) निवार। (३) कटोच। (४) कटियार। (५) अमेठिया। (६) काठी। (७) जेठवा। (८) ठोठ। (९) सिकरवार। (१०) दहिमा। (११) मोहिल।

---

1. Preliminary Report on the operation in search of MSS of Bardic chronicles 1923. Page 21-22.

३६ राजवंशों की पाचवीं तालिका हेमचन्द्र कृत कुमारपाल चरित (सं० १२१७ वि०) में दी हुई है–(१) इक्ष्वाकु। (२) सोम। (३) यदु। (४) परमार। (५) चौहान। (६) चालुक्य। (७) छिन्दक। (८) सिलार (राजतिलक)। (९) चापोटकट। (१०) प्रतिहार। (११) करक। (१२) कूरपाल (कूपंट)। (१३) चन्देल। (१४) ओहिल। (१५) पौलिक। (१६) मोदी। (१७) धान्यपालक। (१८) दहिमा। (१९) तुरुन्दलीक। (२०) निकुम्प। (२१) हूण। (२२) हरियड़। (२३) मोरवर। (२४) पौरवर। (२५) सूर्य। (२६) सैंधव। (२७) चदुक। (२८) राट। (२९) शक। (३०) करट। (३१) पाल। (३२) वाउल। (३३) चदुयाणक। (३४) अभंग। (३५) नट (जट)। (३६) राज्यपालक।

छठवीं वंशावली, कर्नल टॉड कृत राजस्थान' (प्रथम भाग) में मिलती है। उसमें ३६ राजवशों' का उल्लेख इस प्रकार हुआ है–(१) सूर्य। (२) चन्द्र। (३) गहलोत। (४) यदु। (५) तवर। (६) राठौर। (७) कछवाहा। (८) पंवार। (९) चौहान। (१०) सोलंकी। (११) परिहार। (१२) चावड़ा। (१३ टांक। (१४) जाट। (१५) हूण। (१६) काठी। (१७) वल्ला। (१८) झाला। (१९) जेठण। (२०) गोहिल। (२१) सरवैया। (२२) सिलार। (२३) डाभी। (२४) गौड़। (२५) डोड़। (२६) गहरवार। (२७) बड़गूजर। (२८) सेंगर। (२९) सिकरवार। (३०) वैस। (३१) दहिमा। (३२) जोहिया। (३३) मोहिल। (३४) निकुम्भ। (३५) राजपाली। (३६) दाहिमा। इनके अतिरिक्त (३७) हुल तथा (३८) डाहरिया।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जगदीशसिंह गहलोत क्षत्रियों के ३६ राजवंशों के विषय में अपना मत इस प्रकार निर्धारित करते है—'तुलना और खोज करते हुए पूर्व व पश्चिम के ३६ राजवंशों का समावेश किया है। जिसका आधार पुरानी पुस्तकें व वयोवृद्ध जानकर लोग और दन्त कथाएं हैं। इन ३६ राजवशों के सिवाय अन्य भी कई राजवंश हुए होंगे परन्तु क्योंकि इससे अधिक संख्या लोक प्रसिद्ध नहीं है। इसलिए हम भी छत्तीस संख्या परिमित रखते हैं। हमारी सम्मति में वास्तव में नामावली इस प्रकार होनी चाहिए—

सूर्यवशी-(१) गहलोत। (२) कछवाहा। (३) राठोड़। (४) वड़गूजर। (५) निकुम्भ। (६) कठेरिया काठी। (७) मौर्यवंस। (८) जोहिया।

चन्द्रवंशी-(१) यादव। (२) गौड़। (३) तंवर। (४) नागवशी। (५) झाला। (६) कलचुरी (हैहय वंशी)। (७) मौखरी (गुप्तवंशी)। (८) कटोच। (९) पलवार। (१०) अग्निवशी। (११) परमार। (१२) चौहान। (१३) सोलकी। (१४) पडिहार।

ऋषिवशी—(१) पडिहारिया (देवल आदि)। (२) सेंगर। (३) दाहिमा।

---

1. Annals and Antiquties of Rajasthan, or the Central and western Rajput states of India-by. James Tod. Page 80. Vol I, Published by Smith, Elder & co, 65, Corhill. 1829, London.

(४) गौतम। (५) उदयनिया। (६) वाण। (७) पल्लव। (८) गर्ग। (९) दईया। (१०) मृगवंशी। (११) जेठवा। (१२) कदम्ब।"[1]

इतना ही नहीं लोकोक्तियों में भी राजपूतों के ३६ वंश ही प्रचलित हैं। वीर रसावतार महाकवि सूर्यमल मिश्रण विरचित 'वीर सतसई' के निम्न छन्द से भी राजपूतों के ३६ वंश होना ही प्रकट होना है।

हूं वलिहारी राणियां जाया वंस छतीस।
चून सलूणो सेर ले, मोल समप्पै सीस।१००।

वीर सतसई के सम्पादक त्रय ने अपनी टिप्पणी में ३६ वंश इस प्रकार गिनाए हैं।[2]

(१) झाला। (२) हाला। (३) ऊभट। (४) वाघेला। (५) सरवहिया। (६) सोलंकी। (७) मौलिह। (८) मागलिया। (९) राठौड़। (१०) चावड़ा। (११) दहया। हावी। (१३) वला। (१४) गौड़। (१५) सीसोदिया। १६) टाक। (१७) चाहिल। (१८) चाचिक। (१९) पहिहार। (२०) वालेसा। (२१) दाहिमां। (२२) सोनगरा। (२३) वारड़। (२४) खींचीं। (२५) वरड़ा। (२६) वीरूपा। (२७) कछवाहा। (२८) हाड़ा। (२९) देवड़ा। (३०) जाडेचा। (३१) परमार। (३२) सिकरवाल। (३३) भाटी। (३४) काठी। (३५) तोमर और। (३६) चन्देल।

विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर हमने राजवंशों को गिनाने का प्रयत्न किया है। उपर्युक्त समस्त ३६ वंशों का इतिहास का वर्णन करना यहाँ पर अप्रासंगिक होगा, अतः प्रमुख वंशों का ही विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है।

चौहान–'पृथ्वीराज रासो' में लिखा है कि' अर्वुदगिरी पर अनेक ऋषियों को यज्ञ करते देखकर[3] राक्षसों ने नाना प्रकार के उपद्रव करना प्रारंभ कर दिया[4], यह देखकर सब मुनिगण वशिष्ट जी के पास गए और उनसे राक्षसों का अन्त करने की प्रार्थना की[5] तब गुरु वशिष्ट ने ध्यान लगाकर हवन किया, जिससे प्रतिहार, चालुक्य तथा प्रमार क्रमशः ये तीन वीर पुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने राक्षसों से युद्ध किया :—

तव सु रिष्य वाचिष्ट। कुण्ड रोचन रचि तामह।
धरिय ध्यान जजि होम। मध्य वेदी सुर सामह॥

1. History of Marwar by Jagdish Singh Gahlot, Page 404-5, Published by Hindi Sahitya Mandir, Jodhpur, 2nd Edition 1925 A. D.

२. 'वीर सतसई' सम्पादक प्रो० कन्हैयालाल सहगल, प्रो० पतराम गौड़ तथा ठा० ईश्वरदीन आशिया, पृ० ५६, वंगाल हिन्दी मंडल, ८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता, प्रथम आवृत्ति, वि० सं० २००५।

३. पृ० रा० रा०, सभा संस्करण, सं० १, छं० २८४। ४. वही, छं० २८५-४७।

५. वही, छं० २४८।

तब प्रगट्यौ प्रतिहार। राज तिन ठौर सुधारिय।
फुनि प्रगट्यौ चालुक्क। ब्रह्मचारी व्रत धारिय॥
पांवार प्रगट्या वीर वर। कह्यौ रिष्ष परमार घन।
त्रय पुरष जुद्ध कीनौ अतुल। यह रष्षस षुंहत तन॥ २५०॥'[1]

किन्तु इतने पर भी दानवों का उपद्रव शान्त न हुआ।[2] उनका निरन्तर उपद्रव बढ़ता देखकर गुरुवर वशिष्ट ध्यान लगाकर फिर से यज्ञ-कुण्ड की विधिवत रचना कर पुनः यज्ञ हेतु बैठे तथा उसके प्रभाव से देवताओं का अंश ग्रहण करने वाले, असुरों का विनाश करने वाले महाशक्तिशाली पुरुष को उत्पन्न करने का विचार किया[3] तथा फिर ब्रह्मा की स्तुति करके मंत्रों के प्रभाव से अग्नि-कुंड से एक शक्तिशाली पुरुष उत्पन्न किया, जिसका शरीर ऊँचा, मुख रक्तवर्ण तथा जो चारों भुजाओं में खड्ग धारण किए हुए था, इसी कारण उसे चाहुवान (चतुर्बाहुमाण) कहा गया।

अनल कुंड किय अनल। सज्जि उपगार सार सुर॥
कमलासन आसनह। मंढि जग्योपवीत जुरि॥
चतुरानन स्तुत सद्ध। मंत्र उच्चारसार किया॥
सुकरि कमंडल वारि। जुजित आह्वान थान किय॥
जा जग्नि पानि श्रव आहुति जजि। मजि सु दुष्ट आह्वान करि॥
उप्पज्यौ अनल चहुवान तव। चव सु वाहु असि वाह धरि॥२५५॥[4]

अग्नि से उत्पन्न होने वाले चारों प्रतिहार, चालुक्य, परमार तथा चाहुवान वीरों ने मिलकर ऋषियों का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त कराया।

कवि जोधराज कृत 'हम्मीर रासो'[5] में भी पृथ्वीराज रासो से ही मिलती-जुलती कथा प्राप्त होती है। उसमें भी चाहुआनों की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि—'इधर सृष्टि के शासन कर्ता क्षत्रियों के समूह उन्मूलन हो जाने से जब परस्पर अन्याय आचरण के कारण प्रजा पीड़ित हो उठी तथा दैत्यों के उपद्रव से ऋषिगणों के यज्ञादि कर्मों में भी विघ्न पड़ने लगा तब ऋषिगण संसार की रक्षा और उसके उचित शासन के निमित्त फिर क्षत्रियों के उत्पन्न करने की अभिलाषा से यज्ञ करना विचार कर उर्बुदगिरि अर्थात् आबू पर्वत पर गए। वहाँ पर सब ऋषियों ने शिव की आराधना की। तब शिव ने भी वहाँ आकर मुनियों की प्रार्थना स्वीकार की और वे उक्त पर्वत पर अचल रूप से विराजमान हुए; अस्तु तब मुनिवरों ने भी सुन्दर वेदिका रचकर यज्ञकर्म आरम्भ किया। इस यज्ञ में द्वैपायन, वशिष्ट, लोम, दालिम, जैमिनी, हर्षन, धौम्य, भृगु, घटयोनि, कौशिक, वत्स, मुद्गल, उद्दालक, मातग, पुलह

---

१. पृ० रा० रा०, सभा संस्करण, स० १, छ० २५०। २. वही, छ० २५१।
३. वही; छ० २५३। ४. वही; छं० २५५।
५. कवि जोधोराज, हम्मीर रासो, छ० ५४-७०, सम्पादक श्याम सुन्दर दास, बी० ए०, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, द्वितीय संस्करण, १९२९।

अत्रि, गौतम, गर्ग, सांडिल्य, भरद्वाज, जावालि, मारकंडेय, जरतकाल, जजुल्य, पराशर, च्यवन और पिप्पलाद आदि मुनियों का समारोह हुआ था। इसके अतिरिक्त शिव और ब्रह्मा भी स्वयं वहां उपस्थित थे। इस प्रकार समुचित प्रकार से जिस समय यज्ञ हो रहा था और वेदिका से उत्पन्न हुई अग्नि शिखाएं आकाश का स्पर्श कर रही थीं, उसी समय उस वेदिका में से चालुक्य, प्रमार और पडिहार क्षत्रिय क्रम से उत्पन्न हुए। इन्होंने मुनिवरों की आज्ञा पाकर दैत्यों से युद्ध भी किया; किन्तु उन्हें परास्त करने में वे समर्थ न हो सके। तब ऋषियों ने उक्त यज्ञ स्थल को त्यागकर उसी पहाड़ पर नैऋत दिशा में दूसरा अग्नि कुंड निर्माण किया। इस बेर के यज्ञ में ब्रह्मा ने ब्रह्मा, भृगु मुनि ने होता, वशिष्ट ने आचार्य्य, वत्स ने ऋत्विक और परशुराम ने यजमान का कार्य संपादन किया। निदान इस यज्ञ से जो अग्नि के समान तेजवाला पुरुष उत्पन्न हुआ उसका नाम चहुवान जी हुआ, क्योंकि इनके चार बाहु थे और प्रत्येक बाहु खड्ग, धनुष, शूल और चक्र इन चारों आयुधों को धारण किए हुए था। इस पुरुष ने ऋषियों के आशीर्वाद और निज कुल देवी आशापूरा के प्रसाद से सम्पूर्ण दैत्यों का वध कर ऋषि और देवताओं को प्रसन्न किया।'

वर्तमान काल में निर्दिष्ट चारों वर्ण के क्षत्रिय अपने को अग्नि वंशी ही मानते है। वाल्मीक रामायण के सर्ग ५४ तथा ५५ में लिखा है कि एक बार विश्वामित्र, आबू पर्वत पर निवास करने वाले वशिष्ट जी की गाय नंदिनी को हर कर ले गए। इस पर वशिष्ट ने अग्नि कुंड से एक वीर पुरुष को प्रकट किया, जो शत्रु से युद्ध कर गाय छीन लाया। अग्नि-वंशियों की उत्पत्ति का मूल श्रोत संभवतः रामायण की यही कथा रही है। इस विषय में डॉ० दशरथ शर्मा का कथन युक्ति संगत प्रतीत होता है—'आज से हजारों वर्ष पूर्व जब शकादि की उत्पत्ति का समझना एवं समझाना आवश्यक हुआ तब वशिष्ट एवं कामधेनु की कथा की कल्पना की आवश्यकता हुई। लगभग एक हजार वर्ष बाद जब पह्लवादि भारतीय जन-समाज के अंग बन गए और परमारादि कई अन्य जातियों की उत्पत्ति को समझना आवश्यक हुआ तब इन जातियों के असली इतिहास को न जानते हुए कई कवियों ने उसी पुराने रामायण के कथानक पर परमारादि की उत्पत्ति कथा हमारे पूर्वजों के सम्मुख रखी।'[१]

म० म० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के मतानुसार चौहान अग्निवंशी नहीं, वरन् वे सूर्यवंशी थे। 'राजपूतों' को क्षत्रिय न मानने वालों की एक दलील यह भी है कि राजपूतों में चौहान, सोलंकी, प्रतिहार और परमार ये चार कुल अग्नि वंशी है और उनके मूलपुरुषों का आबू पर वशिष्ट के अग्नि कुंड से उत्पन्न होना बतलाया जाता है। अग्नि से उत्पत्ति मानने का तात्पर्य यही है कि वे क्षत्रिय नहीं थे, जिससे उनको अग्नि की साक्षी से संस्कार कर क्षत्रियों में मिला लिया। इसका उत्तर यह है कि इन चार राजवंशों को अग्निवंशी होना

---

१. अग्नि वंशियों और पह्लवादी की उत्पत्ति की कथा में समानता, राजस्थानी, भाग—३, अंक २, पृ० ५५।

केवल 'पृथ्वीराज रासो' में लिखा है, परन्तु उसके कर्त्ता को राजपूतों के प्राचीन इतिहास का कुछ भी ज्ञान न था, जिससे उसने मन माने झूठे सम्वत् और बहुधा अप्रामाणिक घटनाएं उसमें भर दी हैं। ऐसे ही वह पुस्तक वि० सं० की १६वीं शताब्दी के पूर्व की बनी हुई भी नहीं है। जो विद्वान 'पृथ्वीराज रासो' को सम्राट पृथ्वीराज के समय का बना हुआ मानते हैं उनमें से किसी ने भी उसकी पूरी जांच नहीं की। यदि वह प्राचीन शोध की कसौटी पर कसा जाता तो उसकी वास्तविकता प्रकट हो जाती। जब से प्रसिद्ध विद्वान बूलर को कश्मीर से कश्मीरी पंडित जयानक का बनाया हुआ और पृथ्वीराज के समय में ही लिखा हुआ 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' प्राप्त हुआ तब से शोधक बुद्धि के विद्वानों की श्रद्धा 'पृथ्वीराज रासो' पर से उठ गई।'[1] पृथ्वीराज रासो के निर्माण काल के पूर्व उक्त क्षत्रिय वंश अग्निवंश के नाम से विख्यात न थे जैसा कि निम्नलिखित विवरण से प्रत्यक्ष होता है–

पृथ्वीराज चौहान के दरबार में आने वाले कश्मीरी कवि पंडित जयानक ने 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' में अनेक स्थलों पर चौहानों को सूर्यवंशी लिखा है। 'यथा जिस प्राचीन रघु के श्रेष्ठ काकुत्स्य कुल में इक्ष्वाकु और रघु को धारण किया अर्थात जो काकुत्स्य कुल इक्ष्वाकु और रघुकुल के नाम से प्राचीन काल में चला वही कुल कलियुग में चाहमान को प्राप्त करके अपने चौथे प्रवर में आया अर्थात् उसी का चौथा नाम कलियुग में चाहमान से उत्पन्न हुआ। अपने वंश गुरू सूर्य के प्रताप को उन्नति का विस्तार करते हुए राजा का पुत्र जन्मा–इसका पुत्र भी दूसरे भीष्म के समान हुआ जिसके कि सूर्य पुत्र पृथ्वीराज के देखते-देखते सूर्य वंश को उन्नत किया'।[2]

'पृथ्वीराज से पूर्व अजमेर के चौहानों में पृथ्वीराज (वीसलदेव चौथा) बड़ा विद्वान और वीर राजा हुआ, जिसने अजमेर में एक सरस्वती मंदिर स्थापित किया था। उसमें उसने अपना रचा हुआ 'हरकेलि नाटक' तथा अपने राजकवि सोमेश्वर रचित 'ललित विग्रहराज नाटक' को शिलाओं पर खुदवा कर रखवाया था। वहीं से मिली हुई एक बहुत बड़ी शिला पर किसी अज्ञात कवि के बनाए हुए चौहानों के इतिहास के किसी काव्य का प्रारंभिक अंश खुदा है। इसमें भी चौहानों को सूर्य वंशी ही लिखा है।'[3]

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा–राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० ७२।

२. काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च पद्धत्पुराम व त्रिप्रवंर रघोः कुलं।
कलावपि प्राप्य सचाहमानतां प्ररूढ़ तुर्यप्रवंर बभूव तत्॥ २।७१॥
.... भानोः प्रतापोन्नति।
तन्वन्गोत्र गुरोर्निजेन नृपतेर्जसे सुतो जन्मना॥ ७।५०॥
सुतोप्यपरगाङ्गेयो निन्येस्य रवि सूनुना।
उन्नति रविवंशस्य पृथ्वीराजेन पश्यता॥८।२४॥
—पृथ्वीराजविजय महाकाव्य।

३. ....देवो : रवि : पातुवः ॥२३॥

राजा हर्ष के शिलालेख में चाहमानों को गूयक का वंशधर लिखा है। शिलालेख से विदित होता है कि दशवीं शताब्दी तक चौहान अपने को सूर्यवंशी ही मानते थे, यथा–

तन्युक्तयर्य मुपागता रघुकुले भू चक्रवर्ती स्वयं ॥[1]

अर्थात् उसकी मुक्ति हेतु रघुवंशी चक्रवर्ती राजा स्वयं आया।

वि० सं० १४५० के आस-पास ग्वालियर के तोवर राजा वीरम के दरबार में प्रतिष्ठा पाए हुए जैन विद्वान नयचंद सूरि ने 'हम्मीर महाकाव्य' नामक चौहानों के इतिहास ग्रन्थ में भी चौहानों को सूर्य वंशी कहा है।[2] बूंदी के स्वर्गीय महाराज रामसिंह जी बहादुर के दरबारी कवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने अपने ग्रन्थ 'वंशभास्कर' में आबू के साथ-साथ संक्षेप में चौहानों की उत्पत्ति का भी उल्लेख किया है।

अनल अन्ववाय हि किते वरनत सौर सानि।
तेज तत्व एकत्व करि, तहि विरोधि तह जानि ॥[3]

अर्थात् कितने ही लोग अग्नि वंश को सूर्यवंश कह कर वर्णन करते हैं उसमें भी तेज तत्व की एकता के कारण विरोध नहीं समझना चाहिए।

पंडित झावर मल्ल शर्मा ने 'राजस्थानी' पत्रिका में 'चौहानों के अग्नि वंशी कहलाने का आधार' नामक शीर्षक से एक लेख में लिखा है कि 'मुझे भी चौहानों की अन्यतम शाखा भदौरियों के इतिहास की खोज करने के प्रसंग में कुछ विचार करने का अवसर मिला है। मेरी राय में पृथ्वीराज रासो के रचयिता का अपने काव्य ग्रन्थ में चौहानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपनी कल्पना से काम लेकर अर्बुदगिरि के यज्ञ की कथा रच डालना सम्भव है और यह भी सम्भव है कि परमारों की उत्पत्ति की कथा ही इसकी कल्पना का आधार हो। मैं भी श्री ओझा जी के उपस्थित किए हुए प्रमाणों के विचार से चौहानों का महर्षि वशिष्ट से

तस्यात्समालंव (व) नंदडयोनिर भूञ्जनस्य स्खलतः स्वमार्गो।
वंशः स दैवोढरसो नृपाणा मनुद्गातैनो घुण कीट रंध्रः ॥३४॥
सुमुत्थितो कदिनरण्य योनिरूत्पन्न पुन्नाग कंदव (व) शाखः।
आश्चर्यमंतः प्रसरत्कुशोनं वंशोर्ययां श्री फलतां प्रयाति ॥३५॥
आधिव्याधिकुवृत दुर्वातिपरित्यक्यप्रजात्र ते।
सप्तदीपभुजो नृपाः सममवन्निक्ष्वाकुराम.दयः।............ ॥३६॥
तस्मिन्नयारिविजयेन विराजमानो राजोनुरंजित जनोजनि चाहमान ॥३७॥

१. हिस्ट्री आव मेडिविल हिन्दू इंडिया, भाग २, पृ० १३-१४, ९७।

२. अवातस्मंडल तोक्ष्मासां पुत्युः पुमानुसात मंडलाग्रः।
तं चानि पिच्याश्व दसीय रजाविधौ वधदिप मुक्तं सुखेन ॥
—हम्मीर महाकाव्य, १-१६।

३. सूर्यमल्ल मिश्रग–वंशभास्कर, प्रथम राशि, दशम मयूख।

कोई संबंध नहीं मानता परन्तु उनका वत्स गोत्री होना केवल टॉड साहब ने ही नहीं, बल्कि शिलालेख के आधार पर ओझा जी ने भी स्वीकार किया है और स्वयं चौहान भी अपने को अग्नि वंशी गोत्री मानते हैं। यह वत्स गोत्र ही बतलाता है कि चौहानों का अग्नि वंश से आदि और अविच्छिन्न सम्बन्ध है। अब इसके कारण पर विचार कीजिए। हिन्दुओं के यहां ८ बड़े गोत्र प्रवर्तक ऋषि हो गये हैं–विश्वामित्र, भृगु भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ट, कश्यप और अगस्त्य। इनमें से भृगु गोत्र की ७ शाखाओं (वर्कत विद्, आर्ष्टिषण, यास्क, मित्रधुव, वैन्य और शुनक गोत्र प्रवर निवन्ध कदम्बम भृगु काण्डम–पृष्ठ २३-२४) में से एक वत्स शाखा है। तब वत्स गोत्र के आदि पुरुष महर्षि भृगु बतलाए गए हैं। तब यह देखना चाहिए कि भृगु किस वंश के है। इसके लिए मनुस्मृति का वचन है–

इदमचुर्महात्मानं अनल प्रभाव भृगुम।[1]

इसमें भृगु का विशेषण अनल प्रभव स्पष्ट है। इस सम्बन्ध में केवल मनुस्मृति ही नहीं श्रुति भी साक्षी देती है–

तस्य भद्रे तसः प्रथम देदीप्यते तदसावादित्यो भवन। यद्वीतीय मासीद भृगु।

अर्थात् उसकी शक्ति (रेतस वीर्य) से जो पहला प्रकाश (अग्नि) हुआ, वह सूर्य बन गया और जो दूसरा हुआ उसी का भृगु। इसी प्रभाव से भृगु को अनल प्रभव कहा गया है। इस प्रकार भृगु अग्नि वंशी हुए और भृगु वंशी हुए वत्स। वत्स गोत्री हैं चौहान। अतएव चौहानों के अग्नि वंशी कहलाने में कोई तात्विक आपत्ति दिखलायी नहीं देती'।[2]

डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी ने भी उपर्युक्त मत का समर्थन इन शब्दों में किया है–'चन्द, ने चौहानों को अग्नि वंशी बताकर वस्तुतः सत्य का अधिक प्रकाश किया है जबकि (संस्कृत) 'पृथ्वीराज विजय' के कर्ता जयानक ने ही केवल नहीं वरन् उसके पूर्ववर्ती (संस्कृत) शिलालेखकार कवियों तथा परवर्ती (संस्कृत) 'हम्मीरमहाकाव्य' कर्ता नयचन्द्र सूरि और (संस्कृत) सुर्जनचरित्र महाकाव्य (सर्ग ७, श्लोक ५८-६१) के रचयिता चन्द्रशेखर ने इन्हें सूर्यवंशी बतलाकर एक ओर जहां अग्नि और सूर्य मे तेज रूप के कारण तत्वतः समानता का भाव होने से (सूर्य द्वारा चाहमान की उत्पत्ति आंशिक परिवर्तन सहित प्रस्तुत करके) सत्य से विरत न होने का दावा किया, वहां दूसरी ओर उनका भारत के सुप्रसिद्ध इक्ष्वाकु कुल वाले रघुवंशियों से गौरवपूर्ण और महिमामय सम्बन्ध भी अनायास ही स्थापित कर दिया। वास्तव में चौहानों को सूर्यवंशी बनाकर संस्कृत-कवियों की एक पन्थ दो काज सिद्ध कर लेने की कल्पना परम सराहनीय है। परन्तु इसके बावजूद लोक में चौहानों की ख्याति आज तक अग्निवंशी होने की ही चली जा रही है और स्वयं यह जाति भी यही बात गर्व से स्वीकार करती है। देश्य भाषा की कृति 'पृथ्वीराज रासो' में चौहानों का अग्नि कुलीन उल्लेख

---

१ मनुस्मृति, अध्याय ५, श्लोक १।

२. चौहानों के अग्निवंशी कहलाने का आधार, राजस्थानी, भाग ३, अंक २ पृ० ७८।

अधिक ऐतिहासिक है।" संस्कृत ग्रन्थों में ऐसा भी उल्लेख प्राप्त होता है कि, वह पुरुष सूर्य मण्डल से अवतरित होकर यज्ञ कुण्ड से प्रगट हुआ। संभव है विद्वानों ने भ्रमवश उसे सूर्य से उत्पन्न ही मान लिया हो जबकि वास्तव में वह प्रगट अग्नि से ही हुआ। अतः स्पष्ट है कि चौहानों को अग्नि वंशी ही मानना अधिक न्याय संगत होगा। वशिष्ट द्वारा आबू शिखर पर किए गए यज्ञ से, परमार, प्रतिहार, चालुक्य, तथा चाहुमान क्षत्रियों की उत्पत्ति के विषय में भविष्य, पुराण" भी मौन नहीं है—

एतस्मिन्नेव काले तु कान्यकुब्जो द्विजोत्तमः।
अर्बुदं शिखरं प्राप्य ब्रह्म होममयाकरोत् ॥४५॥
वेदमंत्र प्रभावाच्च जाताश्चत्वारक्षत्रियाः।
प्रमरः सामवेदी च चपहानिर्यजुर्विदः ॥४६॥
त्रिवेदी च तथा शुक्लोऽथर्वा स परिहारकः।
ऐरावत कुले जातान् गजानारुह्य ते पृथक ॥४७॥

परमार—पृथ्वीराज रासो में परमारों की उत्पत्ति के विषय में लिखा हुआ है कि 'अर्बुदगिरि पर अनेक ऋषियों को यज्ञ करते देखकर' राक्षसों ने नाना प्रकार के उपद्रव करना प्रारम्भ कर दिया।' यह देखकर सब मुनिगण वशिष्ट जी के पास गए तथा उनसे राक्षसों के विनाश करने की प्रार्थना की।' तब गुरु वशिष्ट ने ध्यान लगाकर हवन किया, जिससे प्रतिहार, चालुक्य तथा प्रमार (परमार) क्रमशः ये तीन वीर पुरुष उत्पन्न हुए, जिन्होंने राक्षसों से युद्ध किया—

तब सुरिष्प वाशिष्ट। कुण्ड रोचन रचि तामह।
धरिय ध्यान जजि होम। मध्य वेदी सुर सामह।

---

१. डॉ० द्विवेदी, रेवातट समय, भूमिका भाग, पृ० २०५-६।

2. "However, the text which has come down to us in manuscript under the title, Bhavishya purana, is certainly not the ancient work which is quoted in the Apastambiya Dharma Sutra. The Bhavishya Purana, which appeared in Bombay in 1897 in the Srivenkata Press, has been unmarked by Th. Aufrecht as a 'literary fraud.' The account of the creation which it Contains, is borrowed from the law book of Manu, which is also otherwise frequently used. The greater part of the work deals with the brahmanical ceremonies and feasts, the duties of the castes and so on.' A History of Indian Literature. M Winternitz. Vol. I, Cal. Uni. 1927. p. 567.

३. नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, छं० २४४, सं० १।

४. वही, छं० २४५-४७, सं० १।

५. वही, छं० २४८, सं० १।

तब प्रग्ट्यो प्रतिहार। राज तित ठौर सुधारिय।
फुनि प्रग्ट्यौ चालुक्य। ब्रह्मचारी व्रत धारिय।
पावार प्रगट्या वीर वर। कह्यौ रिष्य परमार धन।
त्रय पुरुष जुद्ध कीनौ अतुल। यह रष्षस पुहंत तन॥२५०॥'[1]

कवि जोधराज कृत 'हम्मीर रासो' में पृथ्वीराज रासो के समान ही कथा प्राप्त होती है—सृष्टि के शासन कर्ता क्षत्रियों के समूल उन्मूलन हो जाने से जब परस्पर अन्याय आचरण के कारण प्रजा पीड़ित हो उठी तथा दैत्यों के उपद्रव से ऋषिगणों के यज्ञादि कर्मों में भी विघ्न पड़ने लगा तब ऋषिगण संसार की रक्षा और उसके उचित शासन के निमित्त फिर क्षत्रियों को उत्पन्न करने की अभिलाषा से यज्ञ करना विचार कर अर्वुदगिरि अर्थात् आबू पर्वत पर गए।..........समुचित प्रकार से जिस समय यज्ञ हो रहा था और वेदिका से उत्पन्न हुई अग्नि शिखाएं आकाश को स्पर्श कर रही थीं, उसी समय उस वेदिका में से चालुक्य, प्रमार और परिहार क्षत्रिय क्रम से उत्पन्न हुए। इन्होंने मुनिवरों की आज्ञा पाकर दैत्यों से युद्ध किया, किन्तु उन्हें परास्त करने में समर्थ न हो सके।'

ऋषि वशिष्ट वेदिय विमल सामवेद स्वर साधि।
प्रगट कियनु छत्रिय पहुमि, वेद मंत्र आराधि॥ ५४॥
तीन पुरुष उपजे तहां, चालुक प्रथम् पवांर।
दूजै तीजै ऊपजै, क्षत्रि जाति पडिहार॥ ५५॥
कियउ युद्ध अतुलित तिनहि, नहिं खल जीते भूरि।
तब चतुरानन यज्ञ थल, कियो तुरत वह दूरि॥ ५६॥'[2]

परमारों के शिलालेखों तथा कवि पद्मगुप्त (परिमल) विरचित 'नवसाहसांक चरित' में परमारों की उत्पत्ति के विषय में स्पष्ट लिखा है—'आबू शिखर पर मुनि वशिष्ट रहते थे, उनकी गौ (नंदिनी) को एक बार ऋषि विश्वामित्र छल से हर कर ले गए। इस पर मुनि वशिष्ट ने क्रुद्ध होकर मंत्र पढ़ कर अपने अग्निकुण्ड में आहुति दी, जिसके प्रभाव से एक परम तेजस्वी एवं पराक्रमी पुरुष उस कुण्ड से प्रकट हुआ, जो शत्रु को परास्त कर गौ (नंदिनी) को लौटा लाया, इस पर प्रसन्न होकर ऋषि ने उसका नाम 'परमार' अर्थात् शत्रु को मारने वाला रक्खा। उसी वीर पुरुष के वंश का नाम 'परमार' हुआ।'[3]

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, छं० २५०, स० १।

२ कवि जोधराज, हम्मीर रासो, संपादक श्यामसुन्दर दास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, द्वितीय संस्करण १९२९।

३. ब्रह्माण्डमण्डपस्तम्भः श्रीमानस्त्यर्बुदो गिरिः। ... ॥४९॥
अतिस्वाधीननीवारफलमूलसमित्कुशम्।

परमारों के शिलालेखों में उक्त वंश के मूल पुरुष का नाम धूमराज[1] मिलता है। 'धूम' का अर्थ है, धुआं। धुंआ अग्नि से उत्पन्न होता है। अतः मूल पुरुष के नाम से भी स्पष्ट है कि परमार अग्निवंशी हैं।

महामहोपाध्याय पं० गोरीशंकर हीराचन्द ओझा परमारों को अग्निवंशी नहीं मानते हैं। वे परमारों को 'ब्रह्म क्षत्र' कहते हैं। 'मालवे के परमार राजा मुंज (वाक्पतिराज, आमोघ वर्मा) के समय अर्थात् वि० स० १०२८ से १०५४ (ई० स० ९७१ से ९९७) के आसपास होने वाले उसके दरवारी पंडित रत्नायुध ने 'मंगल सूत्र वृत्ति' में मुन्ज को 'ब्रह्म क्षत्र' कुल का कहा है। 'ब्रह्म क्षत्र' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल में उन राजवंशों के लिए होता रहा है, जिनमें ब्रह्मत्व-क्षत्रत्व दोनों गुण विद्यमान हो या जिनके वंशज क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए हों।.........राजा मुन्ज के समय तक परमार भी ब्रह्मक्षत्र कहे जाते थे न कि अग्निवंशी'।[2]

ओझा जी के कथन मात्र से ही 'परमारों' को ब्रह्मक्षत्र मान लेना उचित नहीं। उपर्युक्त

मुनिस्तपोवनं चक्रे तत्रेक्ष्वाकुपुरोहितः ॥ ६४ ॥
हृता तस्यैकदा धेनुः काम सूर्गाधिसूनुना।
कार्मवीर्यार्जुनेनेव जमदग्नेरनीयत ॥ ६५ ॥
स्थूलाश्रुधारसन्तानस्त्रपि तस्तनवल्कला।
अमर्षपावकस्याभूद्भर्तुस्समिदरून्धती ॥ ६६ ॥
अथाथर्वविदामद्यस्समन्त्रामाहुतिं ददौ।
विकसद्विकटज्वालाजटिले जातवदसि ॥ ६७ ॥
ततः क्षणात् सकोदण्डः किरीट काञ्चनाङ्गदः।
उज्जगामाग्नितः कोऽपि सहेमकवचः पुमान् ॥ ६८ ॥
दूरं सन्तमसेनेव विश्वामित्रेण सा हृता।
तेनानिन्ये मुनेर्धेनुर्दिनश्रीरिव भानुना ॥ ६९ ॥
परमार इति प्रापत् स भुनेनमि चार्थवत ॥ ७१ ॥
पद्मगुप्त (परिमल) रचित नवसाहसांक चरित, सर्ग १।

१. श्री धूमराजः प्रथमं बभूवे भूवासवस्तत्र नरेन्द्रवंशे ॥ ३३ ॥
आबू पर के तेजपाल के मंदिर के वि० सं० १२८७ का शिलालेख।
आनीतधेन्वे परनिर्जयेन मुनिः स्वगोत्रं परमार जातिम।
तस्मै ददावुद्धतभूरिनाग्यं त धौमराजं च धकार नाम्ना ॥
"आबू के नीचे के गिरवर गांव के पास वाले पाट नारायण के मंदिर की वि० स० १३४४ की प्रशस्ति की छाप से।

२. राजपुताने का इतिहास, जिल्द पहली, पृ० ७५-७६, वैदिक मंत्रालय द्वारा प्रकाशित, अजमेर १९३७।

प्रमाणों के आधार पर 'परमार' अग्निवंशी ही ठहरते हैं। अतः रासो के विवरण को अप्रामाणिक अथवा अनैतिहासिक मान बैठना एक बड़ा भारी भ्रम होगा। वि० सं० १९७० (ई० सं० १९१३) में पं० हरप्रसाद शास्त्री को जोधपुर में एक वंशावली मिली थी, उसके अनुसार भी 'परमार' अग्निवंशी ही ठहरते हैं।[1] 'क्षत्र कुल वंशावली' नामक काव्य ग्रन्थ में भी परमारों का अग्निवंशी होना ही लिखा है।[2] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'पृथ्वीराज रासो' में परमारों को अग्नि वंशी लिखना अनैतिहासिक नहीं, वरन् उसमें सत्यता के पर्याप्त अंश विद्यमान हैं।

प्रतिहार—'पृथ्वीराज रासो' में प्रतिहारों के उत्पत्ति के विषय में लिखा हुआ है कि 'अर्वुदगिरी पर अनेक ऋषियों को यज्ञ करते देखकर[3] राक्षसों ने नाना प्रकार के उपद्रव करना प्रारम्भ कर दिया[4]। यह देखकर सब मुनिगण वशिष्ट जी के पास गए तथा उनसे राक्षसों के विनाश करने की प्रार्थना की[5] तब गुरु वशिष्ट ने ध्यान लगाकर हवन किया, जिससे प्रतिहार, चालुक्य तथा प्रमार (परमार) क्रमशः ये तीन वीर पुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने राक्षसों से युद्ध किया।—

तव सु रिष्ष वचिस्ट। कुण्ड रोचन रचि तामह।
धरिय ध्यान जजि होम। मध्य वेदी सुर सामह।
तव प्रग्ट्यौ प्रतिहार। राज तिन ठौर सुधारिय।
फुनि प्रग्ट्यौ चालुक्य। ब्रह्मचारी व्रत धारिय।
पांवार प्रगट्या वीर वर। कह्यौ रिष्ष परमार घन।
त्रय पुरुष जुद्ध कीनो अतुल। यह रष्षस पुहंत तन॥ २५०॥[6]

कवि जोधराज कृत 'हम्मीर रासो' में भी इसी प्रकार की कथा प्राप्त होती है—'समुचित प्रकार से जिस समय यज्ञ हो रहा था और वेदिका से उत्पन्न हुई अग्नि शिखाएं आकाश को स्पर्श कर रही थीं, उसी समय उस वेदिका में से चालुक्य, प्रमार और परिहार क्षत्रिय क्रम से उत्पन्न हुए। इन्होंने मुनिवरों की आज्ञा पाकर दैत्यों से युद्ध किया, किन्तु उन्हें परास्त करने में वे समर्थ न हो सके'।[7]

---

1. Preliminary Report on the operation in search of MSS of Bardic Chronicles, 1923, Page 21-22.
२. आजमगढ़ के स्वर्गीय राजा रणजोर सिंह, क्षत्रकुल वंशावली।
३. नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, छं० २४४, सं० १।
४. वही, छं० २४५-४७ स० १।
५ वही, छं० २४८ स० १।
६. वही, छं० २५० स० १।
७. कवि जोधराज, हम्मीर रासो—छं० ५४-५६।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रतिहार अग्निवंशी क्षत्रिय थे किन्तु ओझा जी इन्हें अग्नि वंशी न मानकर सूर्य वंशी ही मानते हैं। अपने मत के समर्थन में वह इस प्रकार लिखते हैं–'ग्वालियर से वि० सं० ९०० (ई० स० ८४३) के आसपास की प्रतिहार राजा भोजदेव की एक बड़ी प्रशस्ति मिली है। उसमें प्रतिहार सूर्यवंशी बतलाए गए हैं। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर, जिसने वि० सं० की दसवीं शताब्दी में कई नाटक रचे, अपने नाटकों में उक्त भोजदेव के पुत्र महेंद्रपाल को जो उसका शिष्य था, 'रघुकुल तिलक' और उसके पुत्र महीपाल को रघुवंश मुक्तामणि लिखता है। शेखावाटी के प्रसिद्ध हर्ष नाथ के मंदिर की चौहान राजा विग्रह राज के समय की वि० सं० १०३० की प्रशस्ति से भी कन्नोज के प्रतिहारों का रघुवंशी होना ज्ञात होता है। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिहार पहले अपने को अग्नि वंशी नहीं किन्तु सूर्य वंशी (रघुवंशी) मानते थे।'[1]

'राजस्थान की जातियाँ' नामक ग्रन्थ में प्रतिहारों के विषय में इस प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है—'पडिहार अग्निवंशीय हैं। इनकी शक्ति का अनुभव इसी से किया जा सकता है कि किसी समय में काबुल के शासक थे। काबुल छोड़ने पर ये अयोध्या चले गये थे और वहाँ से मारवाड़ में आए। अब इनकी संख्या बहुत अल्प रह गई है।[2] श्री रसल महोदय के मतानुसार भी प्रतिहार 'अग्निवंशी' थे, वह प्रतिहारों को योद्धाओं की पंक्ति में नहीं मानते, अपितु उन्हें महल के द्वारा पर रह कर रक्षा करने वाला मानते हैं। इसी का विगड़ा रूप प्रतिहार है।[3]

प्रतिहार शब्द के विषय में एक स्थान पर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखते हैं–'गुहिल, चौलुक्य (सोलंकी), चाहमान आदि राजवंश अपने मूलपुरुषों के नाम से प्रचलित हुए हैं, परन्तु प्रतिहार नाम वंशकर्ता के नाम से चला हुआ नहीं किन्तु राज्याधिकार के पद से बना हुआ है। राज्य के भिन्न-भिन्न अधिकारियों में एक प्रतिहार भी था, जिसका काम राजा के बैठने के स्थान या रहने के महल के द्वार (ड्योढ़ी) पर रह कर उसकी रक्षा करना था। इस पद के लिए किसी खास जाति या वर्ण का विचार नहीं रहता

---

१. कोशोत्सव स्मारक संग्रह, १९८५।

२. बजरंगलाल लोहिया, राजस्थान की जातियां, पृ० १७, विशाल भारत बुक डिपो, कलकत्ता, मई १९५४।

3. This (Parihar) clan was one of the four Agnikulas or fireborn Their founder was the first to issue from the fire fountain but he had not a warrior's mine. The Brahman's placed him as guardian of the gate, and hence his name, Prithi-ha-dwara. The Tribe and caste of the central provinces of India. By. R. V. Russell Assisted by Rai Bahadur Hiralal. Pt. II, Page 457, Macmillan & Co. limited st. Martin's street, London 1916.

था किन्तु राजा के विश्वासपात्र पुरुष ही इस पद पर नियुक्त होते थे। प्राचीन शिलालेखादि में प्रतिहार या महा-प्रतिहार नाम मिलता है और भाषा में उसे पड़िहार कहते हैं'।[१]

उपर्युक्त विवेचन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिहार अग्निवंशी थे, उनकी उत्पत्ति 'रासो' में बताई हुई रीति से ही हुई थी। अतः स्पष्ट है कि 'प्रतिहार' अग्निवंशी थे। यहां पर प्रतिहारों को अग्निवंशी प्रगट करना तथा रासो ग्रन्थ की सत्यता पर ही प्रकाश डालना अभीष्ट था न कि यह देखना कि 'प्रतिहार' शब्द कहाँ से आया।

चालुक्य—रासो में उल्लिखित ३६ राजवंशों में चालुक्य भी एक प्रमुख राजवंश है। ग्रन्थकार ने इनकी उत्पत्ति भी अग्नि से मानी है। रासो में लिखा है कि अर्बुदगिरि पर अनेक ऋषियों को यज्ञ करते देखकर[२] राक्षसों ने अनेक प्रकार से विघ्न डालना प्रारम्भ कर दिया।[३] यह देखकर समस्त मुनगण मुनि वशिष्ट के पास गए तथा उनसे राक्षसों के विनाश करने की प्रार्थना की[४] तब गुरु वशिष्ट ने ध्यान लगाकर यज्ञ किया जिससे प्रतिहार, चालुक्य तथा प्रमार क्रमशः ये तीन वीर पुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने राक्षसों से घोर युद्ध किया।[५]

कवि जोधराज विरचित 'हम्मीर रासो' में भी इसी प्रकार की कथा का वर्णन प्राप्त होता है।[६] अर्थात् हम्मीर रासो के मतानुसार चालुक्य अग्नि से उत्पन्न हुए थे अर्थात् अग्निवंशी थे। जहाँ एक ओर प्राचीन ग्रन्थों में चालुक्यों को अग्निवंशी होना लिखा है, वहाँ दूसरी ओर ओझा जी उन्हें चन्द्रवंशी बताकर रासो ग्रन्थ की सत्यता में संदेह ही नहीं अपितु उसे निरी भट्ट कल्पना सिद्ध करने का प्रयत्न करते हुए लिखते हैं कि "चालुक्य (सोलंकी) राजा विमलादित्य के ८वें राज्य वर्ष अर्थात् वि० सं० १०७५ (ई० सं० १०१९) के दानपत्र में सोलंकियों को चन्द्रवंशी लिखा है। इसके सिवा उसमें ब्रह्मा से अत्रि, अत्रि से सोम, सोम से लगाकर विचित्र वीर्य तथा उसके पुत्र पांडु राज तक की पूरी नामावली, पांडु के पांचों पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि के नाम और अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से लगाकर विमलादित्य तक की वंशावली भी दी हुई है। इससे स्पष्ट है कि उक्त संवत में सोलंकी अपने को चन्द्र वंशांतर्गत पांडवों के वंशज मानते थे।

सोलंकी राजा कुलोत्तुग चोड़देव (दूसरे) के सामंत बुद्धिराज के शक संवत १०९३ (वि० सं० ११२८) के दान पत्र में कुलोतुंग चोड़देव के प्रसिद्ध पूर्वज कुज विष्णु को

---

१ राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० १६५।

२ नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, छं० २४४ स० १।

३. वही, छं० २४५-४७ स० १।

४. वही, छं० २४८ स० १।

५. वही, छं० २५०, स० १।

६. कवि जोधराज, हम्मीर रासो, छं० ५४-५६।

चन्द्रवंशी तिलक कहा है। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र ने जो गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह (सिद्धराज वि० सं० ११५०-११९९) तथा उसके उत्तराधिकारी कुमार पाल (वि० सं० ११९९-१२३०) से सम्मानित हुआ था, अपने द्वयाश्रय महाकाव्य के ९वें सर्ग में गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के दूत और चेदिदेस के राजा कर्ण के वार्तालाप का सविस्तार वर्णन किया है। उसका सारांश यह है—

'दूत ने राजा कर्ण से पूछा कि भीम आपसे यह जानना चाहते हैं कि आप अपने मित्र हैं या शत्रु। इसके उत्तर में कर्ण ने कहा कि कभी निर्मूल न होने वाला सोम (चन्द्र) वंश विजयी है। इसी वंश में जन्म लेकर पुरूरवा ने पृथ्वी का पालन किया। इन्द्र के अभाव में डरे हुए स्वर्ग का रक्षण करने वाला भूमिवाला मूर्तिमान, क्षात्र धर्म नहुप इसी कुल में उत्पन्न हुआ। इसी वंश के राजा भरत ने निरन्तर संग्राम करते और अतीत के मार्ग पर चलने वाले दैत्यों का संहार कर अतुल यश प्राप्त किया। इसी कुल में जन्म लेकर धर्मराज युधिष्ठिर ने उद्धत शत्रुओं का नाश किया। जनमेजय तथा अन्य अक्षय यश-वाले तेजस्वी राजा इसी वंश में हुए और इन सब पूर्ववर्ती राजाओं की समानता करने वाला भीम (भीमदेव) इस समय विजयी है। सत्य पुरुषों में परस्पर मैत्री होना स्वाभाविक है, अतएव हमारी मैत्री के विरुद्ध कौन क्या कह सकता है।

ऊपर उद्धृत किए हुए प्रमाणों से निश्चित है कि पृथ्वीराज के समय तथा उससे पूर्व भी सोलंकी अपने को अग्निवंशी नहीं किन्तु चन्द्रवंशी और पांडवों की संतान मानते थे।'[1]

ओझा जी को इतने से ही सन्तोष न हुआ वह एक स्थान पर और भी रासो को अनैतिहासिक सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं तथा चालुक्यों को चन्द्रवंशी होना ही प्रमाणित करते है—'इस समय सोलंकी और बघेल (सोलंकियों की एक शाखा) अपने को अग्निवंशी बतलाते हैं और वशिष्ट ऋषि के द्वारा आबू पर के अग्नि कुण्ड से अपने मूल पुरुष चालुक्य (चालुक्य, चौलुक्य) का उत्पन्न होना मानते हैं, परन्तु सोलंकियों के वि० स० ६३५ से १६०० (ई० स० ५७८ से १५४३) तक के अनेक शिलालेखों, दानपत्रों तथा पुस्तकों में कहीं उनके अग्निवंशी होने की कथा का लेश भी पाया नही जाता। उनमें उनका चंद्रवंशी होना और पाण्डवों की वंश परम्परा में होना लिखा है। वि० सं० १६०० (ई० सं० १५४३) के आसपास 'पृथ्वीराज रासो' बना, जिसके कर्ता ने इतिहास के अज्ञान से इनको भी अग्नि वंशी ठहरा दिया और ये भी अपने प्राचीन इतिहास की अज्ञानता में उसी को ऐतिहासिक ग्रन्थ मानकर अपने को अग्निवंशी कहने लगे।'[2]

सम्भव है ओझा जी के मत में कुछ सत्यता हो। किन्तु जन श्रुतिकी अवहेलना भी तो नहीं की जा सकती है। 'राजस्थान की जातियाँ' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि 'सोलंकी

---

१. कोशोत्सव स्मारक संग्रह, १९८५।

२. राजपूताने का इतिहास, पृ० २३८।

भी अग्निवंशियों में से अन्यतम है। इनका दूसरा नाम चालुक्य है। कर्नल टॉड के अनुसार राठौड़ों के कन्नौज पर अधिकार करने के पूर्व सोलंकी गंगा के तट पर बसे हुए सोरों नामक स्थान के शासक थे।"

श्री रसल महोदय के मतानुसार भी सोलंकी अथवा चालुक्य अग्निवंशी ही थे।[2] वि० सं० १९७० (ई० सं० १९१३) में एक वंशावली प० हरप्रसाद शास्त्री को जोधपुर में मिली थी।[3] इस वंशावली के अनुसार भी सोलंकी अर्थात् चालुक्य अग्निवंशी ही ठहरते हैं। आजमगढ़ के स्वर्गीय राजा रणजोर सिंह विरचित 'क्षत्रकुल वंशावली' में भी सोलंकियों को अग्निवंशी माना गया है। इतने प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि चालुक्य अग्निवंशी ही थे, चन्द्रवंशी नहीं। अतः 'पृथ्वीराज रासो' में चालुक्यों को अग्निवंशीय लिखा होना ऐतिहासिक जान पड़ता है। यहां पर ३६ राजवंशों का विस्तृत उल्लेख करना अभीष्ट नहीं है। पृथ्वीराज रासो में मुख्यतः उपरोक्त चार वंशों को ही अग्निवंशी माना है तथा इन्हीं चार कुलों के सम्बन्ध मे विद्वानों में मतभेद भी पर्याप्त है। अतः उन्हीं पर विस्तृत विवरण देकर रासो ग्रन्थ की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालना अभीष्ट था।

---

१. बजरंगलाल लोहिया, राजस्थान की जातियाँ, पृ० १६।

2. "This clan was one of the Agnikula or fire-born and are hence considered to have probably been Gurjaras or Gujars. Their original name is said to have been chaluka, because they were formed in the plam (chalu) of the hand. They were not much known in Rajputana, but were very prominent in the Deccan. Here they were generally called chalukya, though in northern India the name Solankhi is more common," The Tribes and castes of the Central Provinces of India, By. R. V. Russell Assisted by Rai Bahadur Hiralal.. Part II, Macmillan and Co. limited, st. Martin's street, London, 1916.

3. Preliminary Report on the operation in search of MSS of Bardic Chronicles, 1923, page 21-22.

२

हिन्दू पात्र : शासक वर्ग

राजा—'पृथ्वीराज रासो' के शासक वर्ग का विवेचन करने के पूर्व यदि 'राजा' की उत्पत्ति तथा उसके कर्तव्य के विषय में थोड़ा सा उल्लेख कर दिया जाय तो अप्रासंगिक न होगा। समाज को व्यवस्थित रखने के लिए पूर्व-पुरुषों ने एक राजा की व्यवस्था की है। उनके मतानुसार यह व्यक्ति इस लोक में भी प्रसन्न एवं सुखी रहेगा और दूसरे मृत्यु के उपरान्त शांति तथा स्वर्ग का अधिकारी होगा। आज के युग में स्वर्ग की बात पर विश्वास न भी किया जावे किन्तु इतना अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि सामाजिक जीवन मे राजा का महत्वपूर्ण स्थान था। हमारे प्राचीन शास्त्रवेत्ताओं ने राजा को देवत्व स्वरूप में प्रतिष्ठित किया है तथा उसका वर्णन करते हुए बताया है कि—प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद[1] में राजा को 'इन्द्र वरुण' आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद में भी राजा को विभिन्न दैवी-शक्तियां, शक्ति एवं बल प्रदान करें इस प्रकार की भी प्रार्थना की गई है—'हे राजन्! सविता तुझे आज्ञा प्रसारित करने के लिए, अग्नि तुझे गृहस्थों की रक्षा के लिए तथा सोम तुझे वनस्पतियों की रक्षा के लिए, बृहस्पति तुझे वाणी के लिए तथा वरुण धर्म की रक्षा के लिए बल प्रदान करे।'[2] इसके अतिरिक्त 'ऋग्वेद' के समान ही यजुर्वेद में भी राजा को, इन्द्र तथा वरुण को क्रमशः सम्राट् तथा राजा कह कर संबोधित

---

१. अहं राजा वरुणां········। ऋग्वेद, मंत्र २, सू० ४२, मंडल ४।
अहमिन्द्रा वरुणः ·········। ऋग्वेद, मंत्र ३, सू० ४२, मंडल ४।
राजा वरुणः ········· । ऋग्वेद, मंत्र १३, सू० २४, मंडल १।
त्वमग्ने राजा वरुणां धृवव्रतस्त्वं। ऋग्वेद, मंत्र ४, सू० १, मंडल २।
सो अस्मान् राजा वरुणोमुमोक्तु। ऋग्वेद, मंत्र १२, सू० २४, मंडल १।

२. सवितात्वा सवतां सुवतामग्निर्गृहपती नाम सोमो वनस्पतिनाम्।
बृहस्पतिपचि इन्द्रो ज्येष्ठाय रुद्रः पशुभ्यो मित्र सत्यां वरुणां धर्मपतीनाम्
यजुर्वेद, मंत्र ३९, अ० ९।

किया है अर्थात् सम्राट् इन्द्र होता है तथा राजा वरुण।[1] इतना ही नहीं अथर्ववेद में भी राजा को भिन्नाभिन्न देवी-देवता का अंश कहा गया है।[2] इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर राजा को विष्णुपद के नाम से सम्बोधित किया गया है।[3] वैदिक ग्रन्थों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसी प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन सभी विवरणों से स्पष्ट है कि राजा में दैवी अस्तित्व रहता है। 'तैत्तिरिय ब्राह्मण' से एक उदाहरण लिया जा सकता है। कथा का सारांश इस प्रकार है—'प्रजापति ने इन्द्र को देवों का राजा बनाने की इच्छा प्रकट की। इन्द्र ने राजपद पाने के योग्य बनने के लिए प्रजापति से उनके तेज के प्राप्त के निमित्त याचना की, जिसके प्राप्त करने के उपरान्त इन्द्रदेवों का राजा बन गया, यद्यपि वह देवों में सबसे छोटा था।'[4] वाल्मीकि रामायण में राजा को पूज्य कहा गया है—'राजा देव है, वह इस पृथ्वीतल पर मनुष्य शरीर धारण करके विचरण करता है। इसलिए राजा की हिंसा नहीं करनी चाहिए, उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए तथा उसके प्रतिकूल नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि राजा देव है, वह मनुष्य रूप धारण कर इस भू-मडल पर विचरण करता है'।[5] अयोध्याकांड में एक श्लोक में राजा के लिए लिखा है कि 'राजा सत्य है, धर्म है और कुलमानों का कुल है, राजा माता-पिता है, वह मनुष्य का हितैषी है'।[6] महाभारत के शांतिपर्व में राजा के स्वरूप के विषय में इस प्रकार लिखा गया है—'इसकी उत्पत्ति, यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र, अग्नि देवों से हुई है।[7] आदि-शास्त्रवेत्ता मनु ने भी राजा की उत्पत्ति इस प्रकार से बताई है—'ईश्वर ने इस समस्त जगत की रक्षा के निमित्त, इन्द्र, वायु यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र तथा कुबेर की शाश्वत

---

१. इन्द्रश्च सम्राट वरुणश्च राजा......। यजुर्वेद मंत्र ३७, अ० ८।

२. इन्द्रस्य भागस्थ, । सोमस्य भागस्थ । वरुणस्य भागस्थ । मित्र वरुणायां भागस्थ । यमस्य भागस्थ । पितृणां भागस्थ । देवस्य सवितुभागस्थ । अर्थववेद मंत्र ८–१४, सू० ५, का० ११ ।

३ वि.णां : क्रमाउसि...... । अथर्ववेद मंत्र २५, सू० ५, का० १०।

४. तैत्तिरीय ब्राह्मण व.र्ता–१-२, अनु० आ० १०, अ० २, अष्ठ २।

५ तान्नहिंस्यान्न चाक्रांशन्नक्षिपेन्नाप्रिय वदेत।
देवा मानुष रूपेण चरन्त्येते मही तले। किष्किन्ध्याकाण्ड, श्लोक ४२, स० १८।

६. राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतांकुलम् ।
राजा माता पिता चैव राजा हितकारी नृणाम ।
अयोध्याकाण्ड, श्लोक ३४, स० ६७।

७. कुरुते पंच रूपाणि काल युक्तानियः सदा।
भवत्याग्निस्तया दित्यां मृत्युवेश्रवणांयमः ।।
महाभारत, श्लोक ४१, अ० ६८, शांतिपर्व ।

मात्राओं अर्थात् सारभूत अंशों को निकाल कर राजा का निर्माण किया'।[1] 'वृहस्पतिस्मृति' में भी राजा की उत्पत्ति की कथा ऐसी ही प्राप्त होती है–'राजा की उत्पत्ति सोम, अग्नि, सूर्य, वायु, इन्द्र, कुवेर तथा यम के तेजमय अंशों को संग्रहीत करके हुई है'।[2] आचार्य कौटिल्य अपने 'अर्थशास्त्र' में राजा के विषय में लिखते है–'इन्द्र तथा यम दोनों पद एक ही में समाविष्ट हैं तथा राजा का अपमान करने वाले व्यक्ति को ईश्वर का दंड भोगना पड़ता है।[3] 'विष्णुपुराण' में राजा वेन ने कहा है–'ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, वरुण, पूषा, पृथ्वी, तथा चन्द्र और इसके अतिरिक्त जितने भी देव शाप एवं कृपा करने में समर्थ हैं, वे सभी राजा के शरीर में निवास करते हैं।'[4] परम भागवत कहलाने वाले गुप्त शासकों को भी दैवी नामों से संवोधित किया जाता था। समुद्रगुप्त के शिलालेख में 'अचित्यपुरु' शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसका प्रयोग संस्कृत साहित्य में ईश्वर के लिए होता था।[5]

उपर्युक्त विवेचन द्वारा स्पष्ट है कि राजा की उत्पत्ति कैसे हुई। अब 'पृथ्वीराज रासो' में आए हुए शासकवर्ग का वर्णन प्रस्तुत कर उनकी ऐतिहासिकता पर विचार किया जावेगा।

अजयसिंह–कवि चन्दवरदायी 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश में राजा मोहन्त के उपरान्त पाँचवी पीढ़ी में राजा अजयसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए।[6] कवि ने चौहानों की वंशावली का विवरण प्रस्तुत करते हुए इनके नाम मात्र का उल्लेख किया है। रा०ए०सो०

---

१. रक्षार्थं मस्य सर्वस्य राजानम सृजत्प्रभुः। श्लोक ३, अ० ७।
इन्द्रानिलयमा कर्णिमग्नेश्चय वरुणस्य च।
चन्द्र विते शयोश्चैव मात्रा निहृत्यशाश्वतीः। मानवधर्म शास्त्र, श्लोक ४, अ० ७।

२. सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणा वित्ताप्पत्योयमस्य च। वृहस्पति स्मृति, श्लोक ६, का० २।
तेजां मात्र समुद्धस्य राजां मूर्तिर्हि निमिता। वृहस्पतिस्मृति, श्लोक ७, का० १।

३. इन्द्रयम स्थानमेतद्राजानः। अर्थशास्त्र वार्ता १०, अ० १३, अधि० १।
तानवमन्य् माना देवी उपि दंडःस्पृशति। अर्थशास्त्र वार्ता ११, अ० १३, अधि० १।

४. ब्रह्मा जनार्दनः शम्भुरिन्द्रां वायुर्यमां रविः।
हुतभुग्वरुणांधाता पूषा भूमिनिर्नशाकरः॥
एते चान्ये च ये देवाः शापनुग्रहकारिणः।
नृपस्यैते शरीस्थाः सर्वदेव यमो नृपः॥
विष्णुपुराण, श्लोक २०२१, अ० १३, अंश १।

५. अचित्य पुरुष धनद वरुणेन्द्रान्तक समस्य लोक धाम प्रलयहेतु॥
—प्रयाग स्तम्भ अभिलेख, समुद्रगुप्त।

६. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, छं० २८५ स० १।

लंदन की रासो की अप्रकाशित प्रति में भी इनका नाम दिया हुआ है। किन्तु अजयसिंह को नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित रासो के अनुसार मोहन्त का पुत्र नहीं लिखा है। इस प्रति के अनुसार इनके पिता का नाम महादेव था।[1] धारणोज की प्रति तथा साहित्य संस्थान, उदयपुर, से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो इनके विषय में सर्वथा मौन है। शिलालेख और 'पृथ्वीराजविजय महाकाव्य' में दी हुई वंशावलियों में एक जयराज नाम के राजा का उल्लेख हुआ है। 'प्रबन्धकोष' तथा सुर्जन चरित में अजयराज नाम मिलता है।[2] सम्भव है यह एक ही व्यक्ति के नाम के तीन रुपान्तर हों। सामग्री अभाव में निश्चित मत प्रस्तुत करना कठिन है। 'हम्मीर महाकाव्य' इनके विषय में सर्वथा मौन है।

अनंगपाल—रासोकार के मतानुसार राजा अनंगपाल का जन्म पांडवों के वंश में हुआ था। पांडवों ने एक वार जमुना नदी के किनारे हस्तिनापुर नाम का एक ग्राम वसाया था। कालान्तर में राजा अनंगपाल तूवँर ने भी इसी स्थान पर दिल्ली वसाई तथा वहां नर-नारी सुख पूर्वक निवास करने लगे।[3] एक वार राजा अनंगपाल पर कमधज्ज ने आक्रमण कर दिया[4] सूचना प्राप्त होने पर अपनी विशाल सेना लेकर कालिन्दी की उत्तर दिशा में राजा अनंगपाल ने शत्रु का सामना किया। अजमेर पति सोमेश्वर को कमधज्ज के आक्रमण की सूचना मिलने पर उसने भी राजा अनंगपाल की सहायतार्थ दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। राजा अनंगपाल तथा सोमेश्वर की सम्मिलित वाहिनी ने कमधज्ज की सेना को परास्त कर दिया। विजय के नगाड़े वज उठे। दोनों राजा सुख पूर्वक दिल्ली आ गए। राजा अनंगपाल ने सोमेश्वर की वीरता से प्रसन्न होकर अपनी पुत्री का विवाह उनसे कर दिया। राजा अनंगपाल के दो पुत्रियां थीं, एक का नाम सुन्दरी था जिसका विवाह कनवज्ज के राजा विजयपाल से चिर मैत्रि के सूत्र में बंधने के लिए कर दिया था तथा दूसरी पुत्री का नाम कमला था जिसका विवाह सोमेश्वर की वीरता से प्रसन्न होकर, उनके साथ कर दिया था। कालान्तर में इन्हीं से महाराज पृथ्वीराज चौहान का जन्म हुआ था—

अनंगपाल पुत्री उभय। इक दीनी विजपाल ॥
इक दीनी सोमेस को। वीज ववन कलिकाल ॥ ६८१ स० १।
एक नाम सुर सुन्दरी। अनिवर कमला नाम ॥
दरसन सुर नर दुल्लही। मनो सु कलिका काम ॥ ६८२ स० १।
सोमेसर तोअर घरनि। अनंगपाल पुत्रीय ॥
तिन सु पिथ्थ गर्भ धरिय। दानव कुल छत्रिय ॥ ६८५ स० १।

---

१. पृथ्वीराज रासो, आदि समय, रा० ए० सो० लंदन, की अप्रकाशित प्रति।
२. देखिए, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, परिशिष्ट।
३. पृथ्वीराज रासो, छं० ५६९-५७०, स० १।
४. वही, छं० ६१७ स० १।

महाराज पृथ्वीराज का जन्म दिल्ली में ही हुआ था। अतः पुत्री के पुत्र उत्पन्न होने पर राजा अनंगपाल अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा नगर में नाना प्रकार के उत्सव मनवाए।[1]

'दिल्ली किल्ली कथा' में ग्रन्थकार ने लिखा है कि "एक बार पृथ्वीराज को स्वप्न में देवी ने दर्शन दिया जिसका फल ज्योतिषियों ने यह बतलाया कि पृथ्वीराज दिल्ली का शासक होगा। यह सुनकर पृथ्वीराज की माता कमला ने अपने पुत्र को एक प्राचीन कथा इस प्रकार सुनाई—'हमारे पूर्व पुरुष राजा कल्हन चन्द्रवन में (जहाँ आज कल दिल्ली बसी है) आखेट के लिए गए थे। उस समय उन्होंने एक शशक के पीछे अपना श्वान छोड़ दिया। श्वान उसकी गंध के द्वारा उसका पता लगाता हुआ उसके पीछे-पीछे भागा। आगे जाकर शशक श्वान का सामना कर बैठा, जिससे बेचारा श्वान डरकर भाग गया। यह अद्भुत दृश्य देखकर सब साथियों तथा राजा कल्हन को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। जगजोति व्यास ने शीघ्र ही मुहूर्त देखकर उसी स्थान पर शेषनाग को सिद्ध करके अच्छे पत्थर की एक कीली गाड़ दी।[2] राजा कल्हन ने अपने स्वजनों सहित उस स्थान पर एक नगर बसाया जिसका नाम 'कल्हणपुर' रक्खा गया। राजा कल्हन के कई पीढ़ियों के बाद अनंगपाल का जन्म हुआ। जब राजा अनंगपाल ने उपर्युक्त घटना का वृतान्त सुना तो उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ जिसका समाधान ज्योतिषियों के द्वारा कर दिया गया। एक बार राजा अनंगपाल ने एक गढ़ बनवाने की इच्छा प्रकट की। ज्योतिषियों ने शुभ मुहूर्त देखकर नींव रखने के समय एक लोहे की कील पृथ्वी में गाड़ दी और कहा कि यह कील शेषनाग के मस्तक (फन) पर स्थिर हो गई है, जिसके कारण तोमर वंश का राज्य कील की भांति अचल एवं दृढ़ रहेगा। राजा अनंगपाल को पुरोहित की बात पर विश्वास न हुआ तथा उस कील को उखड़वा कर. उनके कथन की सत्यता देखनी चाही। कील के निकलते ही उस स्थान से खून की धार निकली। यह देखकर राजा अनंगपाल अत्यन्त दुखी हुए तथा वह कील पुनः उसी स्थान पर स्थिर करनी चाही किन्तु वह ढीली रह गई इसी से दिल्ली का नाम 'ढीली' पड़ा तथा 'ढीली' से 'ढिल्ली' तथा अब 'दिल्ली' हो गया है।"[3]

उपर्युक्त आख्यान में कितना सत्य है यह कहना तो बड़ा कठिन है किन्तु इतना अवश्य सत्य है कि अनंगपाल ने दिल्ली को बसाया और दिल्ली में तोवरों का राज्य था। इस बात का साक्षी इतिहास भी है तथा रासो के अन्य संस्करण भी समर्थन करते हैं।

कुछ समयोपरान्त राजा अनंगपाल के दूत ने एक पत्र मंत्री कैमास के हाथों में दिया।[4] पत्र में राजा अनंगपाल ने अपनी बेटी के बेटे पृथ्वीराज को लिखा था कि अब मैं वृद्ध हो

---

१. पृथ्वीराज रासो, छं० ६८९, समय १।

२. वही, ना० प्र० स० काशी, छं० १५-२५, स० ३।

३. वही, छं० १७-४०, स० ३।

४. दिल्ली दान प्रस्ताव, पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी छं० १ स० १८।

गया हूँ। बद्रिकाश्रम तीर्थयात्रा करना चाहता हूँ, मेरा जो कुछ है, सब तुम्हें समर्पण करता हूँ।[१] पृथ्वीराज चौहान द्वारा पूछे जाने पर कि नाना जी को वैराग्य क्यों हुआ[२] दूत ने राजा अनंगपाल का प्रताप वर्णन करके कहा[३] कि राजा अनंगपाल ने रात्रि में एक स्वप्न देखा कि तोंवर वंश दक्षिण दिशा को जा रहा है। इसी कारण उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ है।[४] प्रातः जागने पर अनंगपाल ने हरि-हरि शब्द का उच्चारण किया।[५] स्वप्न का फल ज्योतिषियों से पूछने पर व्यास ने ध्यान करके कहा कि दिल्ली में चौहानों का राज्य होगा। अतः यदि तुम भला चाहो तो तप करके स्वर्ग का मार्ग लो।[६] व्यास की वाणी सुनकर राजा अनंगपाल ने मन में विचार किया कि यदि कोई पुत्र होता तो वह भूमि की रक्षा करता। अतः अब तो यही उचित है कि सब भूमि पृथ्वीराज को देकर वनवास करना चाहिए।[७] मंत्रियों ने राजा अनंगपाल को बहुत समझाया कि राज्य देना उचित नहीं है।[८] किन्तु राजा ने मंत्रियों के कथन पर कान न दिया और पत्र लिखकर मुझे आपके पास अजमेर भेज दिया।[९] अन्ततोगत्व राजा अनंगपाल ने दो दिन अपार उत्सव मना कर, शुभ लग्न में, बड़ी तैयारी और विधि के साथ, पृथ्वीराज का राज्याभिषेक अपने हाथों से कर दिया।[१०] अनंगपाल ने अपने हाथों से राज-तिलक करके बदरीनाथ की यात्रा की ओर-प्रस्थान किया।[११] दिल्ली राज्य पृथ्वीराज को मिलने की सूचना पाकर अजमेरपति सोमेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा पृथ्वीराज अपने समस्त श्रेष्ठ सामन्तों के साथ दिल्ली में सुख पूर्वक राज्य करने लगे।[१२] ग्रन्थकार के मतानुसार अनंगपाल ने पृथ्वीराज को दिल्ली राज्य अनन्द सम्वत् ११३८ में दिया था।[१३]

कुछ समय के उपरान्त अनंगपाल की प्रजा ने बद्रिकाश्रम में जाकर पुकार की, कि पृथ्वीराज ने हमें घर से निकाल दिया है तथा आपका भी प्रभाव नहीं मानता। यदि राजा के जीवित रहते हुए प्रजा पराधीन होती तो यह न न्याय है, और न नीति ही। ऐसे राजा की सर्वत्र निन्दा होती है तथा अंत में वह नरक का भागी होता है।[१४]

प्रजा की आर्त पुकार सुनकर अनंगपाल का तेज ज्वाज्वल्यमान हो उठा तथा दिल्ली

---

१. दिल्ली दान प्रस्ताव, पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; छं० २ स० १८।
२. वही, छं० १०, स० १८। ३. वही, छं० १३, स० १८।
४. वही, छं० १५, स० १८। ५. वही, छं० १६, स० १८।
६. वही, छं० १९, स० १८। ७. वही, छं० २१, स० १८।
८. वही, छं० ३२, स० १८। ९. वही, छं० ३३, स० १८।
१०. वही, छं० ४०-७५, स० १८। ११. वही, छं० ९६, स० १८।
१२. वही, छं० १०४, सं० १८।
१३. पृथ्वीराज रासो, माधोभट्ट कथा, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ११८-११९; सं० १९।
१४. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २४, स० २६।

दूत भेजकर कहलाया कि धन्य, धान्य, द्रव्य, सब ले आवो (पृथ्वीराज को दिल्ली पुनः लौटाने के लिए कहला भेजा)।[१] किन्तु पृथ्वीराज ने दूत को धिक्कार कर लौटा दिया।[२] अतः राजा अनंगपाल ने समाचार सुनकर दूत के समझाने पर भी दिल्ली पर आक्रमण कर दिया।[३] राजा अनंगपाल ने दिल्ली पर आक्रमण कर तो दिया किन्तु उसे प्राप्त करने में असमर्थ रहा।[४] अपनी सेना को निर्बल देखकर उसने गजनीपति गोरी की सहायता के लिए नीतिराव खत्री को भेजा—

नीतिराव खित्री सुवर, तूंअर निहिं परधान।
गोरी दिसि नृप अप्प दिसि, मर्द दियौ चहुआन ॥[५]

यद्यपि पृथ्वीराज चौहान ने राजा अनंगपाल को बहुत समझाया किन्तु वह अपनी बात पर डटा रहा। राजा अनंगपाल ने पुनः गोरी की सहायता से दो सहस्त्र सैनिक लेकर आक्रमण किया।[६] दोनों दलों ने सम्मिलित होकर पृथ्वीराज पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज ने अपने सामन्तों को आज्ञा दी, कि युद्ध में राजा अनंगपाल मारा न जाये तथा शाह को भी जीवित ही बन्दी बना लिया जाय।[७] अन्त में शाह युद्ध करता हुआ वीर चामण्डराय के हाथों बन्दी बना लिया गया तथा अनगपाल भी युद्ध में पराजित होकर बन्दी बना लिया गया।[८] पृथ्वीराज की विजय हुई। सब सामन्तों के साथ दिल्ली लौटने पर पृथ्वीराज ने दरबार किया, उसमें मत्री कैमास ने आज्ञा दी कि राजा अनंगपाल को पृथ्वीराज के सम्मुख प्रस्तुत किया जावे। अनगपाल के आने पर पृथ्वीराज ने उनके चरण स्पर्श किए तथा विशेष प्रेम पूर्वक हृदय से सम्मानित कर भक्तिभाव का प्रदर्शन किया—

मुसलमान धर गड्डि, दाग निज सुभर दिवायौ।
लिये जीति प्रथिराज, समह सामंत घर आयौ ।।
सभा वैठि भर सूभर, कह्यो कैमास राइ गुर।
अनगेसह लै आउ, चल्यौ मंत्री सुलेन घर ।।
आन्यौ सु राज अनगेस तहँ, प्रथिराज लग्गौ सु पय ।।
सनमान प्रान अति प्रीति सौं, भाव भगति राजन करय ।।[९]

---

१. अनंगपाल समय, पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान, उदयपुर छं० २५, स० २६ :
२. वही, छ० ३१, स० २६।
३ वही, छ० ३४, स० २६।
४. वही, छं० ३७, स० २६।
५. वही, छं० ४१, स० २६।
६ वही, छं० ५०, स० २६।
७. वही, छं० ६०, स० २६।
८. वही, छं० ६३, स० २६।
९. वही, छं० ६४ स०, २६।

राजा अनंगपाल ने दिल्ली में एक वर्ष एक माह पृथ्वीराज के साथ सुख पूर्वक व्यतीत कर पुनः बद्रिकाश्रम जाने की इच्छा प्रकट की। पृथ्वीराज ने दिल्ली में रहने का ही हट किया किन्तु अनंगपाल न माना तब पृथ्वीराज ने धर्म-कर्म के लिए दस लक्ष का द्रव्य दिया और सौ सेवक, एक रथ, ग्यारह विप्र साथ में देकर बद्रिकाश्रम उन्हें सकुशल भेज दिया। राजा अनंगपाल ने बद्रिकाश्रम पहुंच कर उग्र तपस्या की—

कही सुत्त सोमेस, राज अनगेस न मानी।
वपु साधन तप काज, बद्रि दिसि मनछा ठानी॥
तब पुत्री वर पुत्र, लख्ख दह द्रव्य सु अप्पी।
सत अनुचर इक जांन, विप्र दस एक समप्पी।
चल्यौ अनंग बद्रीसरन, पहुचायौ प्रथिराज नृप।
तहं जाइ राज तोवर सुवर, तपं राज उग्रह सु-तप॥[1]

ऐतिहासिकता—श्री अमृतलाल शील, पृथ्वीराज के दिल्ली गोद जाने वाली घटना को असत्य एव अनैतिहासिक सिद्ध करते हुए लिखते हैं कि—'इससे यह प्रमाणित होता है कि सन् ११६३ ई० से कुछ पहले वीसलदेव ने दिल्ली को जय किया था। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि सोमेश्वर के राज्यकाल में दिल्ली में अजमेर का कोई करदाता राज्य करता था अथवा अजमेर राज्य का कोई वेतनभोगी सामन्त वहाँ का दुर्ग रक्षक था। पृथ्वीराज अजमेर के युवराज थे। उनका अपने पिता के अधीन किसी करदाता राजा अथवा उनके नौकर दुर्ग-रक्षक के घर गोद जाना केवल असम्भव ही नहीं, अश्रद्धेय भी प्रतीत होता है'।[2]

रायबहादुर ओझा उपर्युक्त रासो की घटना को काल्पनिक एवं अनैतिहासिक मानते हुए लिखते हैं कि 'तवंरो ने पुराने इन्द्रप्रस्थ के स्थान में दिल्ली बसाई, यह प्रसिद्धि चली आती है। दिल्ली के बसाने वाले राजा का नाम अनंगपाल प्रसिद्ध है। फिरिश्ता हि० स० ३०७ (वि० सं० ९७६-७७) मे तंवर वश के राजा वादित्य (या वादपित्ता ? का नाम अशुद्ध है) का कस्वा इन्द्रप्रस्थ बसाना उसका दिल्ली (दिल्ली) नाम से प्रसिद्ध होना तथा उस राजा के पीछे आठ तंवर राजाओं का होना लिखता है। उसने अंतिम राजा का नाम शालिवान (शालीवाहन) बतलाया है। तंवरों के पीछे वहाँ चौहानों का राज्य होना तथा उस वंश के मानकदेव, देवराज, रावलदेव, जाहरदेव, संहरदेव और पिथोरा (पृथ्वीराज) का वहाँ क्रमशः राज्य करना भी फिरिश्ता ने लिखा है, परन्तु फिरिश्ता का लिखा हुआ हिन्दुओं का पुराना इतिहास जैसा कल्पित है वैसा ही यह कथन भी कल्पित ही है, क्योंकि

---

१. अनंगपाल समय, पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ८१, स० २६।

२. चन्दवरदाई का पृथ्वीराज रासो, सरस्वती, भाग २७, संख्या ५, जून, १९२६ ई० पृष्ठ ५५६।

तंवरों से दिल्ली, चौहान आना के पुत्र विग्रह राज (वीसलदेव चौथा) ने वि० सं० १२०७ (ई० सं० ११५०) के लगभग ली और तब से ही दिल्ली का राज्य अजमेर के राज्य का सूबा बना।'[1] विग्रह राज के पीछे ऊपर लिखे हुए राजा नहीं, किन्तु अमर गांगेय (अपर गांगेय, अमर गंगू), पृथ्वीराज दूसरा (पृथ्वीभट), सोमेश्वर और पृथ्वीराज (तीसरा) क्रमशः अजमेर के राज्य के स्वामी हुए।[2] 'अबुलफजल दिल्ली के बसाए जाने का सम्वत् ४२९ मानता है' यह भी विश्वास के योग्य नहीं है। यह प्रसिद्धि चली आती है कि तंवर अनंगपाल ने दिल्ली को बसाया। उसी ने वहाँ की विष्णुपद नाम की पहाड़ी पर प्रसिद्ध लोह की लाट का जिसको कीली भी कहते हैं और जो वर्तमान दिल्ली से ९ मील दूर मिहरौली गाँव के पास कुतुबमीनार के निकट खड़ी है, उठाकर वहाँ खड़ी करवाई थी। उक्त लाट पर का प्रसिद्ध लेख राजा चन्द (चन्द्रगुप्त दूसरा) का है, जिसने उस लाट को उक्त पहाड़ी पर विष्णु के ध्वज रूप में स्थापित किया था। उस पर पिछले समय के छोटे-छोटे और भी लेख खुदे हैं जिनमें से एक 'संवत दिल्ली ११०९ अनंगपाल वही' है। उसके अनुसार उक्त लेख के खुदवाए जाने के समय अनंगपाल को उक्त सम्वत् में दिल्ली बसाना माना जाता था। कुतुबुद्दीन ऐबक की मसजिद के पास एक तालाब की पाल पर अनंगपाल के बनाए हुए एक मंदिर के स्तम्भ अब तक खड़े हैं, जिनमें से एक पर अनंगपाल का नाम भी खुदा है। पृथ्वीराज रासो के कर्ता ने अनंगपाल की पुत्री कमला का विवाह अजमेर के चौहान सोमेश्वर के साथ होना और उसी से पृथ्वीराज का जन्म तथा उसका अपने नाना अनंगपाल का राज्य पाना आदि जो लिखा है, वह सारी कथा कल्पित है। पृथ्वीराज की माता दिल्ली के अनंगपाल की पुत्री कमला नहीं, किन्तु चेदि देश के राजा की पुत्री कर्पूर देवी थी।'[3], [4]

डॉ० माताप्रसाद गुप्त भी, पृथ्वीराज को दिल्ली दान स्वरुप प्राप्त होने की घटना को अप्रामाणिक एवं अनैतिहासिक मानते हुए लखते हैं कि—'दिल्ली वीसलदेव (विग्रह राज) के द्वारा ही जो कि आनल्लदेव (अर्णोराज) का पुत्र था—विजित हो चुकी थी, यह सोमेश्वर के सं० १२२६ के विजोलियाँ के शिलालेख से दिया हुआ है। सं० १२२० का वीसलदेव (विग्रहराज) का दिल्ली (सिवालिक) स्तम्भ पर का अभिलेख भी इस बात का प्रमाण है कि वह सं० १२२० के पूर्व उसके अधिकार में आ चुकी थी। हाँसी प्रदेश पर उसके पूर्वजों का शासन था, वह तोमरों के शासन में नहीं थी।'[5]

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ४०५ और टिप्पणी ४३।
२. वही, भाग १, पृ० ३९३।
३. वही, भाग १, पृ० ३६९-४००।
४. राजपूताने का इतिहास, जिल्द १, पृ० २६५-६७ वैदिक मंत्रालय, अजमेर, द्वितीय संस्करण, १९३७।
५. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और रचना तिथि; राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ; पृ० ९५३-५४; २ अक्टूबर, १९५९।

जहाँ एक ओर डॉ० गुप्त दिल्लीदान कथा को अप्रामाणिक मानते हैं वहीं उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि दिल्ली पर चौहानों के पूर्व तोमरों का राज्य था—'चाहमानों के पूर्व अवश्य दिल्ली पर तोमरों का शासन था। सं० १३३७ का गयासुद्दीन वलवन का वाहेर (जिला रोहतक) पालम वावली का एक शिला लेख है, जिसमें कहा गया है कि हरियाना देश पर पहले तोमरों का शासन था, तव चाहुवानों का और उनके वाद शक (तुर्क) राजाओं का हुआ, जो शहाबुद्दीन से प्रारम्भ होता है। सं० ११८९ में 'पार्श्व चरित्र' की रचना करते हुए उसके रचयिता श्री धर ने अनंगपाल (तृतीय) तोमर के राज्य-वैभव का वर्णन किया है इसलिए जिस अनंगपाल तोमर के सम्बन्ध में रासो में उपर्युक्त कल्पना की गई है उसका समय सं० ११८९ के लगभग पड़ता है'।[1]

डॉ० दशरथ शर्मा 'ललित विग्रह राज' नाटक के आधार पर कल्पना करते हैं कि दिल्ली के अंतिम तोमर शासक ने अपना राज्य वीसलदेव (चतुर्थ) को अपनी पुत्री के दहेज में दिया था, यही कथा सम्भव है रासोकार ने भ्रमवश उनके छोटे भाई सोमेश्वर के साथ जोड़ दी है।[2] तथा एक अन्य स्थान पर लिखते हैं कि 'सोमेश्वर की स्त्री को अनंगपाल की पुत्री अवश्य वताया गया है। परन्तु सम्भव है कि वे पृथ्वीराज की विमाता हो। दिल्ली के वीसलदेव के अधीन होने पर भी तोमर राजाओं का वहाँ रहना सभव है'।[3]

कविराव मोहन सिंह राजा अनंगपाल को पृथ्वीराज का समकालीन तथा पृथ्वीराज रासो की घटना को सत्य प्रमाणित करते हुए लिखते हैं कि 'अब यह देखना है कि वि० सं० १२१३ से लेकर १२२९ तक दिल्ली पर अनंगपाल नामक तोंवर शासक था कि नहीं? अनंगपाल के नाम दिल्ली के कई स्तम्भों पर उपलब्ध हैं, लेकिन उनमें संवत् नही है। केवल कुतुबुद्दीन ऐबक की मसजिद के अहाते में जो लोहे का स्तम्भ पड़ा हुआ है, उसी पर उसके

---

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और रचना तिथि; राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ९५४।

2. "But is it not possible that Delhi might have been actually *given* in Dowry by the last Tomar ruler of the place to Visaldeva, the half brother of Someshvar, from whom the story might have been transferred to Someshvar by some last redactor of Raso? We learn from the Lalit Vigraharaja natak that Visaldeva IV had actually determined to march towards Indraprastha, the ruler of which had a daughter who had fallen in love with Visaldeva unfortunately the drama as we have it now is not complete." (The age and the History of the Prathviraj Raso, the Indian Historical Quarterly, Vol. XVI. December 1940),

३. पृथ्वीराज रासो की एक प्राचीन प्रति और उसकी प्रामाणिकता, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, कार्तिक सं० १९९६ वि, पृ० २७५-८२।

विषय में सम्वत का उल्लेख इस प्रकार है 'संवत दिल्ली' लिखने के पश्चात अंक लिखे हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि 'दिल्ली के संवत ११०९ में इसे (दिल्ली को नए सिरे से या जीर्णोद्धार के रूप में) बसाया।' उसमें बसाने के स्थान का नाम नहीं आया, परन्तु जहां यह लेख लगा है वह स्थान ही अपने बसने की पुष्टि स्वयं कर देता है। यह दिल्ली वाला सम्वत कौन सा था इस पर विचार किए जाने से निश्चित है कि वही दिल्ली वाला रासो में लिखा अनन्द संवत ही है, जिसमें स्वर्गीय पांड्या मोहनलाल जी के मतानुसार ९१ वर्ष विक्रमी सम्वत से जो कमी है वे जोड़ देने से वि० सं० १२०० मे अनंगपाल का दिल्ली पर होना सिद्ध होता है।

जिनपाल रचित खरतरगच्छ पदावली का अनुसरण करते हुए—अगर चंद नाहटा, डॉ० दशरथ शर्मा आदि विद्वान भी वि० सं० १२२३ के लगभग मदनपाल नामक राजा का नाम दिल्ली के शासक रूप में होना लिखते हैं। मदनपाल अनंगपाल का पर्यायवाची है। अस्तु इससे भी अनंगपाल का समय चहुवान विग्रह (चतुर्थ) सोमेश्वर और पृथ्वीराज से आ मिलता है।

अतः स्मरणीय महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी अमर ने अपने मित्र रहीम को जो पत्र लिखे उनसे भी निश्चय है कि तंवर और राठौर वंश के मुख्य स्थान दिल्ली और कन्नौज का एक ही समय (२२ वर्ष के अन्तर्गत ही) में नाश हुआ।

अस्तु चाहुवानों से पूर्व दिल्ली का शासक तंवर ही था और वह था अनंगपाल तंवर ही।"[1] अतः स्पष्ट है कि राजा अनंगपाल एक ऐतिहासिक व्यक्ति था।

अरिमंत—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार राजा बीरदंड के उपरान्त चौहान वंश परम्परा की १४वीं पीढ़ी में राजा अरिमंत हुए।[2] इतनी सूचना के अतिरिक्त सम्पूर्ण 'रासो' इनके विषय में कुछ भी विवरण प्रस्तुत नही करता। रा० ए० सो० लंदन की 'रासो' की प्रति में इनका नाम तो मिलता है किन्तु अन्तर इतना है कि यह वीरसिंह के उत्तराधिकारी थे, न कि वीरदंड के।[3] राजा वीरदंड का नामोल्लेख इस प्रति में नहीं हुआ है। धारणोज की प्रति एवं साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' की प्रति इनके विषय में सर्वथा मौन है।

पंडित सदाशिव 'अरिमंत' शब्द को राजा माणिक्यराय का विशेषण मानते हुए लिखते हैं कि—'श्री ओझा जी ने 'अरिमंत' इस विशेषण पद से एक नामान्तर की कल्पना कर जिस

---

१. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर पुनर्विचार, पृष्ठ ४१-४३, राजस्थानी भारती भाग १, अंक २-३ युग्मांक जुलाई, अक्टूबर सन् १९४६।

२. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८६, स० १।

३. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।

शैली का प्रदर्शन किया है, वह प्राच्य विशारदों को आश्चर्य में डाल देने वाली है। 'रासो' में लिखा है—

अरिमंत सकल कलि करन चूर।
माणिक्यराय चहुवानसूर॥[1]

अस्थूलनंद– पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश वृक्ष में २४वीं पीढ़ी में राजा नागहस्त के उपरान्त उनका पुत्र अस्थूलनद हुआ।[2] कवि ने ग्रन्थ में इनका विशेष विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। रा० ए० सो० लदन की 'रासो' की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[3] किन्तु 'रासो' की अन्य प्रतियां यथा धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति तथा साहित्य सस्थान उदयपुर से प्रकाशित प्रति. प्राचीन शिला लेख एव संस्कृत के ग्रन्थ जिनमें चौहानों की वशावलियां दी हुई हैं इनके नाम का समर्थन नहीं करते हैं।[4]

आनन्ददेव–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा में ४०वीं पीढ़ी में राजा जयसिंह के उपरान्त उनका एक मात्र पुत्र आनन्ददेव राजगद्दी का उत्तराधिकारी हुआ। ५०० वर्षों तक सुख-शांति से राज्य करने के उपरान्त इन्होंने अपना राज्य अपने पुत्र सोमेश्वर को सौंप दिया–

तहां तप्ति तेज आनन्द मेव। बराह रूप दिप्यौ सुदेव॥
धरनी विहार आयास साद। मंड्यौ सुराज पुहकर प्रसाद॥
सो बरस राज तप अंत कीन। सिर छत्र सोम पुत्रह सुदीन॥[5]

रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति,[6] धारणोज की प्रति तथा बीकानेर की एकलक्ष अक्षर वाली प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है, किन्तु साहित्य संस्थान, उदयपुर, से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' इनका कोई संकेत प्रस्तुत नहीं करता है। शिला लेख एवं सस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ जिनमें चौहानों की वंशावली का उल्लेख है, आनन्द देव के विषय में सर्वथा मौन है।[7] पंडित सदाशिव दीक्षित, विग्रह राज, आनन्द देव तथा वीसल देव, आदि नामों में

---

१. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो-समीक्षा, पृ० ११४।
२ पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८९, स० १।
३. रासो की हस्त लिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
४. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
५. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ६१२, स० १।
६. रासो की एक हस्त लिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १३।
७. धारणोज का अप्रकाशित प्रति, आदि समय।

कोई अंतर नहीं मानते है वरन् उनका कथन है कि यह सब एक व्यक्ति आनन्ददेव के ही नाम हैं—

'इसके तीन नाम हैं—विग्रहराज, आनन्ददेव और वीसलदेव। शिलालेख और पृथ्वीराज विजय में विग्रहराज, रासो के आनन्ददेव तथा प्रबंध कोष, हम्मीर महाकाव्य और सुर्जन चरित में वीसलदेव। इस प्रकार इसके नाम त्रितय की सत्ता ऐतिहासिक विद्वानों से तिरोहित नहीं है।

अनेक प्राचीन पुस्तकों में 'आनन्ददेव' के स्थान पर 'आनन्दमेव' मिलता है जो कि सर्वथा अशुद्ध है, क्योंकि 'मेव' पद का कोई अर्थ नहीं होता। लेखक प्रमाद से देव के स्थान पर मेव हो जाना अधिक सम्भावित है। सामंतदेव, वीसलदेव, सारंगदेव आदि के समान आनन्ददेव ही समुचित प्रतीत होता है।'[1]

आनन्दराजः—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहानों के वंश वृक्ष की २५ वीं पीढ़ी में राजा अस्थूलनद चौहान का पुत्र आनन्दराज हुआ जिसने अस्थूलनंद के उपरान्त राज्यभार ग्रहण कर चौहानों की वंशावली को आगे बढ़ाया।[2] ग्रन्थकार ने इनके नाम मात्र का उल्लेख किया है। रा० ए० सो० लदन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती है,[3] किन्तु रासो के अन्य संस्करण, जैसे धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली, प्रति एवं साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित प्रति इनके विषय में सर्वथा मौन है। शिलालेख एवं प्राचीन संस्कृत के ग्रन्थ भी इनके नाम का समर्थन नहीं करते।[4] पंडित सदाशिव दीक्षित शिलालेखों के विग्रहराज एवं प्रबंधकोष के विजय-राज को ही आनन्दराज मानते हुए लिखते हैं कि 'प्रशस्ति, पृथ्वीराज विजय तथा हम्मीर-महाकाव्य में इसका नाम विग्रहराज बतलाया गया है और शिलालेख में विग्रह, परन्तु प्रबंधकोष तथा रासो में इनका स्मरण विजयराज तथा आनन्दराज इन नामों से किया गया है।'[5] संभव है पडित जी को नाम के अंत का 'राज' शब्द देखकर ही, एक ही व्यक्ति के नाम होने का भ्रम हो गया है। प्रामाणिक प्रमाणों के अभाव में पंडित जी का मत ग्राह्य नहीं है।

आनलराज अथवा आना—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा में ३८वीं पीढ़ी में राजा सारंगदेव के आनलराज अथवा आना नामक पुत्र ने जन्म लिया। इनकी माता

---

१. पं० सदाशिव दीक्षित—रासो समीक्षा; पृ० १२३।
२. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी छं० २८९, स० १।
३. रासो की हस्त लिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
४. देखिए; प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
५. पं० सदाशिव दीक्षित—रासो समीक्षा पृ० ११७।

का नाम गवरी था। राजा सारंगदेव की पत्नी गवरी रणथम्भ चली गई थीं, वहीं पर राजकुमार आनलराज ने जन्म ग्रहण किया।[1] अनलराज ने बड़े होने पर एक दिन अपनी माता से प्रश्न किया कि मेरा जन्म किस वंश में हुआ है—

घोर पुत मातुल सुमति। गवरि सपन्नौ जाइ ॥
को किहि वंसहि ऊपज्जौ। तू मुझ जंपहि माइ ॥[2]

माता गवरी, पुत्र के इस प्रश्न को सुनकर, दुःखी होकर बोली कि हे पुत्र! यदि इस प्रश्न को न पूछो तभी अच्छा है, क्योंकि उसके स्मरण मात्र से भय तथा, करुणा उत्पन्न हो जाती है।[3] आनलराज के अत्यन्त हठ करने पर गवरी ने वीसलदेव की समस्त कथा कह सुनाई तथा अपने पति सारंगदेव की मृत्यु का रहस्य भी समझा दिया। आनलदेव ने अपने पिता की मृत्यु का कारण जानकर वीसलदेव अथवा ढूंढा दानव को मारने का प्रण किया—

मात सुनौ तपसिन वचन। अरु दिय असिस पवारि।
अवदि जाय अजमेर गढ़। अरि कौ आऊँ मारि ॥[4]

आना के प्रण को सुनकर उसकी माता गवरी ने बहुत समझाया कि कुमंत्र मत ग्रहण करो। ढूंढा दानव, जो इतना भीषण है, वह तो मनुष्यों को ढूंढ-ढूंढ कर भक्षण करता है और तुम स्वयं ही उसकी सेवा करने के लिए आग्रह कर रहे हो।[5] किन्तु आना ने माता की एक न सुनी एवं पुनः वीसलदेव के पास जाने का आग्रह किया। आना ने अजमेर के भीषण जंगलों में जाकर अपनी बुद्धि की निर्भयता के कारण राक्षस ढुंढा को प्रसन्न कर लिया।[6] परिणामस्वरूप दानव राजा आना (अर्णोराज) को अजमेर का राज्य देकर आकाश मार्ग से दिल्ली की ओर उड़ गया।[7] राजा आना ने दानव से अजमेर राज्य पुनः प्राप्त कर लिया तथा लौट कर समस्त कथा अपनी माता से कह सुनाई। राजा आना ने अजमेर को पुनः बसा कर सुख पूर्वक ७१ वर्ष तक राज्य किया।

अनल आनि मातह मिल्यौ। कहि सब वत्त सुनाइ ॥
लोग महाजन संग लै। भूमि वसाई जाई ॥ छं० ६०४ ॥
आना नरिंद अजमेर वास। संभरीय कीन सौवन्न रास ॥
नियनाम कह्यौ आना नरिंद। अरि धरनि वीर मंधौ सुदंद ॥ छं० ६०५ ॥

---

१. पृथ्वीराज रासो; ना० प्र० स० काशी, छं० ३०८-३१०, स० १।
२. वही, छं० ३१९, स० १।
३. वही, छं० ३२०, स० १।
४. वही, छं० ५१८, स० १।
५ वही, छं० ५२२, स० १।
६. वही, छं० ५३२-५१, स० १।
७. वही, छं० ५५२-३, स० १।

ग्रामान ग्राम तोरन उत्त ग । बन चढ्ढि कढ्ढि निधि-निधि पुरंग ।।
पसु पंषि सद श्रुत मंडलेन । जल न्हान दान ब्रह्मन सु देन ।। छं० ६०६ ।
हारम्भ रम्य फिरि मंडि लोइ । दालिद्र दीन दीसैं न कोई ।।
चौघट्टि सत्त वरष प्रमान । आना नरिंद तपि चहुंवान ।। छं० ६०७ ।[1]

रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति उपयु क्त मत का समर्थन करती है । धारणोज की प्रति एवं बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति में भी अनलराज का नाम चौहान वंश परम्परा में प्राप्त होता है । किन्तु साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित 'रासो' इनके विषय में सर्वथा मौन है । पंडित सदाशिव दीक्षित ने लिखा है कि—'शिलालेख तथा पृथ्वीराज विजय में इसका नाम अर्णोराज और रासो, प्रबंधकोष, हम्मीर महाकाव्य तथा सुर्जनचरित में इसका नाम अनलराज बतलाया गया है । अनलराज और अनलदेव एक ही नाम के दो रूप हैं ।[2]

इतिहासवेत्ता अर्णोराज अथवा अनलराज को पृथ्वीराज (प्रथम) का पुत्र मानते हैं । डॉ० दशरथ शर्मा ने सारंगदेव को पृथ्वीराज होने का अनुमान भी लगाया है । 'रासो' के अनुसार अर्णोराज अथवा अनलराज ने अजमेर को बसाया था । इतिहासवेत्ता भी इस कथन का समर्थन करते हैं । डॉ० एच० सी० राय ने अपनी पुस्तक 'Dynestic History of Northern India' में अजमेर बसाने वाली बात का समर्थन किया है ।[3]

---

१. पृथ्वीराज रासो; ना० प्र० स काशी, छ० ६०४-६०७, स० १ ।
२. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० १२३ ।
3. Prithviraja I was succeeded by his son Ajayaraja alias Sulhana According to the Prathviraja-Vijaya, he defeated the Matangas (Meccohas) and also sulhana the king of Malva The last statement is confirmed by the Bijolia Inscription, which states that Ajayaraja captured in battle Sulhana, the commander-in-chief of the army tied him to the back of his camel and brought him to Ajmer. As there was no prince ruling in Malva during this period who bore the name Sulhana, he must be a general of one of the Pramara kings possibley Yosovarman (C 1134-43 A. D.) There were not the only victories of Ajayaraja. The Bijolia inscription states that he killed three kings viz-Caciga, Sindhula, and Yosoraja, while another stone inscription found in the Adhaidinka jhonpra, Ajmer (now in the Rajputana Museum) says that he conquered the country up to Ujjain. Beside there conquests the most importent achievement of his reign was the foundation of the city of Ajayameru now known as Ajmer."

Dynestic History of Northern India, page 1071.

अतः स्पष्ट है कि राजा अनलराज अथवा अर्णोराज अथवा आना एक ऐतिहासिक पात्र हैं तथा इन्होंने अजमेर नगर को बसाया था। 'रासो' मूल रूप से एक काव्य ग्रन्थ है, इतिहास नहीं। अतः यत्र-तत्र कल्पना का योग होना स्वाभाविक ही है।

उद्दारहार—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश की ९वी पीढ़ी में उद्दारहार नाम का राजा हुआ।[1] यह राजा विन्दसार के उपरान्त उनकी गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ था। सम्पूर्ण रासो में इनके नाम के अतिरिक्त कोई सूचना प्राप्त नहीं होती है। रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति के अनुसार भी उद्दारहार नामक राजा विन्दसार के उपरान्त ही गद्दी पर बैठा।[2] धारणोज की प्रति एवं साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो, शिलालेख एवं संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ भी इनके विषय में सर्वथा मौन हैं।[3]

उद्दारहार को पंडित सदाशिव दीक्षित विन्दुसार का विशेषण मानते हुए लिखते है कि–'उद्दारहार, अशोक और शंकाबिडार इन तीनों नामों के दर्शन पाना रासो की अर्थानभिज्ञता का पूर्ण परिचायक है। रासो अवलोकन करने पर इनकी विशेषणता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता—

सुअ विन्दसार उद्दारहार।
आसोकश्रीय संकाबिडार'।[4]

क्रिस्नराज अथवा कृष्णराज—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहानों की वंशावली की ३१ वीं पीढ़ी में राजा चंदराय चौहान के उपरान्त उनका एकमात्र पुत्र किस्नराज अथवा कृष्णराज उनका उत्तराधिकारी हुआ।[5] रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[6] किन्तु धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति तथा साहित्य संस्थान, उदयपुर से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो, एवं शिलालेख आदि इनके विषय में कुछ उल्लेखनीय विवरण प्रस्तुत नहीं करते हैं।[7]

पंडित सदाशिव दीक्षित ने इनके विषय में एक स्थान पर लिखा है कि 'इसके नाम

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स०, काशी, छं० २८५, स० १।
२. रासो की अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
३ देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध परिशिष्ट भाग।
४. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो-समीक्षा, पृ० ११३।
५ पृथ्वीराज रासो ना० प्र० स० काशी, छं० २९०, स० १।
६. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
७. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध परिशिष्ट भाग।

नित्यानेन्द तथा पृथ्वीराज विजय में 'विग्रहराय', प्रबंध कोष में 'विजयराय', हम्मीरमहाकाव्य में 'राय', गुर्जनचरित में 'रायनाथ' तथा 'रासो' में कृष्ण राज बतलाते हैं।'[1] पता नहीं पंडित जी ने यह कैसे अनुमान लगा लिया कि यह सब एक ही व्यक्ति के नाम हैं। प्रमाणों के अभाव में पंडित जी का मत ग्राह्य नहीं हो सकता।

चतुरबाहुमाण, चाहुवान, चौहान–ऋषि वशिष्ट ने आबू पर्वत पर अपने यज्ञ को निर्विघ्न समाप्त करने के लिए वीर पुरुष चाहुमान को हवनकुण्ड से मंत्रबल के आधार पर उत्पन्न किया। इस वीर पुरुष की चार भुजाएं होने के कारण चाहुवान कहा गया—

अनल कुण्ड किय अनल। सज्जि उपगार सार सुर॥
कमलासन आसनह। मंडि जग्योपवीत जुरि॥
चतुरानन स्तुति सह। मंत्र उच्चार सार किय॥
सुकरि कमडल वारि। जुजित आह्वान थान दिय॥
जा जग्नि पानि थ्रव अहुति जजि। भजि सु दुष्ट आह्वान करि॥
उप्पज्यौ अनल चहुवान तव। चव सु बाहु असि वाह धरि। छं० २५५।
भुज प्रचंड चव च्यार मुष। रत्त ब्रम्ह तन तुंग।
अनल कुंड उपज्यो अनल। चाहुवान चतुरग॥ छं० २५६॥[2]

इन्हीं महापुरुष से चौहान वंश की उत्पत्ति हुई। इन्हीं की वंश परम्परा में कालान्तर में हिन्दुओं के अन्तिम शासक दिल्ली, अजमेर के अधिपति महाराज पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) ने जन्म लिया।

तिन रक्षा किन्हो सु दुज। तिहि सुवंस प्रथिराज।
सो सिरपत पर वादनह। किय रासो जु विराज॥ छं० २८१॥[3]

चाहुवान की उपर्युक्त उत्पत्ति कथा के विषय में इतिहासवेत्ता एक मत नहीं है। प्रायः सब 'रासो' की उपर्युक्त कथा को काल्पनिक ही मानते हैं। राजा विग्रहराज चौहान के समय की वि० सं० १०३० की हर्षनाथ के मंदिर की प्रशस्ति में चौहानों की वंशावली का उल्लेख हुआ है, किन्तु उसमें भी चौहान वंश के आदि पुरुष का नाम चाहुवान नहीं मिलता है।[4] राजा सोमेश्वर चौहान के समय के वि० स० १२२६ के बिजोलियां के शिला लेख में चौहान वंश के आदि पुरुष का नाम 'सामंत' दिया है, चाहुवान नहीं।[4] वि० सं० १५ वीं

---

१. पं० सदाशिव दीक्षित रासो समीक्षा, पृ० ११८।
२. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २५५-५६, स० १।
३. वही, छं० २८१, स० १।
४. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।

शताब्दी के आसपास लिखे गए प्रबंधकोष के अन्त में दी हुई चौहानों की वंशावली के आधार पर चौहान वंश के आदि पुरुष का नाम 'वासुदेव' था।[१] वि० सं० १६३५ के आसपास बने हुए 'सुर्जनचरित' काव्य में प्रथम पुरुष का नाम भी 'वासुदेव' ही मिलता है,[१] किन्तु इतना सब होते हुए भी 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य, हम्मीरकाव्य तथा रासो के समस्त संस्करणों में आदि पुरुष का नाम 'चाहुवान' ही दिया हुआ है।[१]

उपर्युक्त शिलालेखों एवं प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर यह निर्णय करना कि चौहानों के आदि पुरुष का नाम 'चाहुवान' था, अत्यन्त कठिन है। कुछ इतिहासवेत्ता चौहानों को अग्नि-वंशी मानते हैं, किन्तु चौहान अग्निवंशी ही हैं। अधिकतर प्रमाण इसी पक्ष में है कि चौहान वंश के आदि पुरुष का नाम चाहुवान था। डॉ० टीकमसिंह तोमर चाहुवान का अस्तित्व स्वीकार करते हुए अपने ग्रन्थ 'वीर काव्य' में लिखते हैं—'चाहमान की उत्पत्ति सूर्यवंश में मानकर उन्हें चौहान वंश का प्रवर्त्तक बतलाया गया है। इसके जन्म के सम्बन्ध में जोधराज का मत निराधार है। चाहमान को एकदम काल्पनिक व्यक्ति नहीं माना जा सकता। पर्याप्त सामग्री के अभाव में इनका अधिक विवरण देना दुष्कर है'।[२] डॉ० दशरथ शर्मा एक स्थान पर रासो की प्रामाणिकता दर्शाते हुए लिखते हैं कि "प्रायः सभी ही प्रथम चौहान को ब्रह्मा के यज्ञ से ही उत्पन्न मानते है। सुर्जनचरित के सप्तम सर्ग में लिखा है कि ब्रह्मा ने पुष्कर में एक यज्ञ किया। विघ्न की आशका से उन्होंने सूर्य की तरफ देखा और उससे प्रथम चौहान की उत्पत्ति हुई। अतः ब्रह्मा का यज्ञ ही प्रथम चौहान की उत्पत्ति का कारण था। हम्मीर महाकाव्य की कथा भी इससे विशेष भिन्न नहीं है। उसमें लिखा है कि ब्रह्मा यज्ञ के लिए भूमि ढूंढते हुए जब पुष्कर पहुंचे तो उनके हाथ का कमल वहाँ गिर पड़ा। इसलिए उसी स्थान को शुभ मानकर ब्रह्मा ने वहाँ यज्ञ प्रारम्भ किया। फिर राक्षसों द्वारा विघ्न की आशंका उत्पन्न होने पर उन्होंने सूर्य का स्मरण किया। उससे एक अत्यन्त तेजस्वी पुरुष उतरा। यह प्रथम चाहमान था। इस प्रकार हम्मीर महाकाव्य भी ब्रह्मा के यज्ञ को ही प्रथम चाहमान की उत्पत्ति का कारण बताता है। पृथ्वीराज विजय महाकाव्य भी पुष्कर की रक्षा के लिए ही चाहमान की उत्पत्ति करवाता है और इस काव्य के अनुसार भी त्रिपुष्कर में केवल जल से परिपूर्ण ब्रह्मा के तीन यज्ञ कुण्ड थे। यदि हम्मीर रासो की प्रति प्रचलित अग्नि वंश की उत्पत्ति कथा देती या कम से कम यही कहती कि चौहानों की उत्पत्ति वशिष्ट ने अग्नि कुण्ड से या अर्बुद पर्वत पर हुई तो हमे उसे अनैतिहासिक बतलाने का पूर्ण अधिकार था। परन्तु ब्रह्मा के यज्ञ से चौहानों की उत्पत्ति बतलाने पर ही यदि उसे अनैतिहासिक ठहराया जाय तो यह दोष चौहान वंश के प्रमाणिक से प्रामाणिक शिलालेखों और काव्यों पर

---

१. देखिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।

२ डॉ० टीकमसिंह तोमर, वीरकाव्य, पृ० ३५२।

भी आरोपित किया जा सकता है।"[1] रासो के प्रायः समस्त संस्करण उपर्युक्त मतका समर्थन करते है। यह मानना ही पड़ता है कि चौहानों के आदि पुरुष का नाम चाहवान था तथा उसी के नाम के आधार पर उस वंश का नाम चौहान हुआ तथा यही उस वंश का आदि पुरुष था, और फिर वर्तमान काल में समस्त चौहान अपने को अग्निवंशी मानते भी हैं।

चंदराय–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहानों की वंशावली की ३०वी पीढ़ी में राजा जोगसूर अथवा योगसूर चौहान के उपरान्त उनका एक मात्र पुत्र चंदराय उनका उत्तराधिकारी हुआ, जिसने यश का अर्जन करके अपयश को दूर किया।[2] रा० ए० सो० लदन की रासो की प्रति उपर्युक्त मत का समर्थन करती है।[3] किन्तु धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति, साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' की प्रति, शिलालेख एवं संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ इनके विषय में सर्वथा मौन है।

पंडित सदाशिव दीक्षित चन्दराय शब्द को राजा विबुध सिंह का विशेषण मात्र मानते है। सम्भव है, उनक कथन किसी सीमा तक सच हो। "श्री ओझा आदि विद्वानों ने रासो के आधार पर 'योगसूर' और 'चंदराय' इन दो और नामों की कल्पना की है, परन्तु तात्विक दृष्टि से विवेचन करने के अनन्तर ये दोनों विशेषण प्रतीत होते हैं, नाम नहीं। रासोकार का कथन है कि—

सुअ विबुध सिंघ सय जोगसूर।
जस चन्दराइ वर अजस दूर॥"[4]

चन्द्रगुप्त— पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा की १८वीं पीढ़ी में राजा संग्राम सिंह के उपरान्त उसका पुत्र चन्द्रगुप्त, उनका उत्तराधिकारी हुआ। कवि के अनुसार यह चन्द्रमा के समान सुन्दर था।[5] रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[6]

धारणोज की प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो इनके विषय में मौन है। हर्षनाथ मंदिर की प्रशस्ति तथा पृथ्वीराज विजय में चन्द्रराज, बिजोलियाँ शिलालेख

---

१. डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराज रासो की कथाओं का अनैतिहासिक आधार, पृ० ३-४, राजस्थानी-भाग ३, अंक ३, जनवरी १९४०, कलकत्ता।
२. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २९०, स० १।
३. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
४. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो-समीक्षा, पृ० ११८।
५. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८७, स० १।
६. रासो की हस्त लिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।

में शशिनृप, सुर्जन चरित में चन्द आदि नाम मिलते हैं। संभव है यह एक ही व्यक्ति के नाम हों। प्रबंध कोष तथा हम्मीर महाकाव्य का मौन वास्तव में आश्चर्य का विषय है।[1]

चन्देलराज परमर्द्दिदेव–१२वीं शताब्दी के उत्तरी भारत की प्रबल शक्तियों में से एक महत्वपूर्ण सत्ता महोबा एव कालिंजर के आधिपति परमाल राज की थी। महोबे का चन्देल वंश ९वीं शताब्दी से लेकर ११ वीं शताब्दी तक अत्यंत सम्पन्न रहा। चन्देल वंश के अति प्रसिद्ध राजा धग राज के वनारस से प्राप्त लेख से ज्ञात होता है कि इस वंश के आदि पुरुष नन्नुक ने सन् २३१ में जैजाकमुक्ति (बुन्देलखड) से परिहारों को निकाल कर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था।[2]

परमर्द्दिदेव के सिंहासनारूढ़ होते ही चन्देलों तथा दिल्ली के चौहानों के घोर संग्राम छिड़ गए तथा सन् ११८२ में पृथ्वीराज चौहान ने उन्हें पूर्णतया परास्त कर दिया तथा उसके राज्यान्तर्गत सुदूरस्थ मदनपुर तक खदेड़ दिया।[3]

'पृथ्वीराज रासो' के महोबा समय में चौहान तथा परमर्द्दिदेव के संघर्ष का कारण राजा परमाल की अनीति था।' पृथ्वीराज के कुछ घायल सैनिक दिल्ली जाते समय मार्ग भूल कर महोबा आ पहुंचे, जिन्हें परमाल ने मरवा डाला। इसी का प्रतिशोध लेने के लिए पृथ्वीराज चौहान ने महोबा पर आक्रमण किया था। किन्तु यह विवरण पक्षपात पूर्ण प्रतीत होता है। वास्तव में इस युद्ध का मूल कारण पृथ्वीराज की विजयाकांक्षा ही थी। इस संग्राम के द्वारा भारतवर्ष की स्थिति राष्ट्रीय संकट में पड़ गई। जैसा कि चि० वि० वैद्य का कथन है 'परमर्द्दिदेव की शक्ति पृथ्वीराज के आक्रमण से वहुत क्षत-विक्षप्त हो गई। इसे एक ऐसी भूल समझनी चाहिए जो राष्ट्रीय विनाश का कारण बनी क्योंकि चन्देल तत्कालीन भारत के अग्रणी क्षत्रिय शासकों में से एक थे।[4]

'आल्हा' के अनुसार भी पृथ्वीराज का महोबा पर आक्रमण राज्य विस्तार ही मालूम होता है। 'आल्हा' में लिखा है कि माहिल से सूचना पाकर कि आल्हा-ऊदल कन्नौज में हैं; पृथ्वीराज चौहान ने राज्य विस्तार की कामना से महोबा की ओर कूच कर दिया। प्रथम संग्राम पहूज नदी के तट पर लगभग सन् ११८२ के अक्टूबर में सिरसागढ़ की भूमि पर वीर मलखान की अध्यक्षता में हुआ।[5] पराक्रमी वीर मलखान वीर गति को प्राप्त हुआ तथा पृथ्वीराज ने उसका किला गिरवा दिया।

---

१. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रवन्ध, परिशिष्ट भाग।
२. इन्डि० एन्टी, भाग १, पृ० १३९।
३. डॉ० ईश्वरी प्रसाद, मध्य कालीन हिन्दू भारत, पृ० २०-२१, प्रयाग, १९५२।
४. हिस्ट्री आफ मेडिवल हिन्दू इन्डिया, जि० ३, पृ० १८३।
५. आर्कोलाजिकल रिपोर्ट, जि० ९, पृ० १८८ तथा इन्डियन ऐटीक्वेरी, पृ० १४५, १९०८।

'परमाल रासो' के अनुसार युद्ध काल में मलखान ने महोबा से सहायता मंगवाई थी, किन्तु माहिल परिहार के कहने पर राजा परमाल ने इस ओर कुछ ध्यान न दिया। द्वितीय बार पृथ्वीराज ने कीर्तिसागर पर अपना डेरा डाला, तब मल्हना के परामर्श से परमाल ने आल्हा-ऊदल को बुलाने और जयचद से सहायता लेने के लिए कवि जागनिक को कन्नौज भेजा। उनके आने पर युद्ध हुआ। चन्देलों के प्रायः सभी योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए। राजा परमाल का पुत्र ब्रह्मा भी इसी संग्राम में वीरगति को प्राप्त हुआ। महोबा पर चौहानों की विजय पताका फहराने लगी। इस विजय की ऐतिहासिकता मदनपुर की बारादरी में पृथ्वीराज के आदेश से उत्कीर्ण सन् ११८२-३ के दो शिलालेखों से भी प्रमाणित होती है।[1] बुन्देली आल्हा के अनुसार यह युद्ध उरई में हुआ था।[2] ज्ञात होता है कि परमर्द्दिदेव ने पराजय होने के कुछ ही समय उपरान्त अपनी शक्ति पुनः संगठित कर महोबा पर अधिकार कर लिया होगा, क्योंकि महोबा के किले की दीवार पर उसकी आज्ञा से उत्कीर्ण ४ जून सन् ११८५ ई० का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है[3] तथा ८ अक्टूबर सन् १२०१ ई० तक उसने प्रायः अपने सभी पश्चिमी प्रान्तों पर पुनः अधिकार पा लिया था। इस बात की पुष्टि कालिंजर के नीलकंठ मंदिर में एक पाषाण पर उत्कीर्ण निम्न लेख से हो जाती है—'नृप परमर्द्दि ने अपने शत्रुओं को जीतकर अपने सहज विश्वास से मुरारि की इस स्तुति का प्रणयन किया।[4]

'पृथ्वीराज रासो' के महोबा समय में परमर्द्दिदेव की मृत्यु के विषय में कुछ भी संकेत नहीं प्राप्त होता है। आल्हा के अनुसार परमाल ने पराजय के दुख से दुखित होकर अपने प्राण त्याग दिए थे। 'परमाल रासो' के अनुसार पराजय के बाद वह गजाधर के मंदिर में गया तथा चौहानों को शाप देकर अपना शरीर त्याग दिया।[5] किन्तु यह दोनों विवरण विश्वास योग्य नहीं हैं। फरिश्ता के अनुसार सन् १२०२ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर की ओर कूच किया और वहाँ के राजा को पराजित कर किले में घेरा डाल दिया। राजा ने कुछ शर्तों पर उससे संधि कर ली, परन्तु जब वह उपहारों का प्रबंध कर रहा था, तभी उसके मंत्री ने उसका वध कर दिया।[6] वास्तव में फरिश्ता का विवरण पक्षपात पूर्ण है। तत्कालिक

---

१. श्री चाहमानवंश्ये पृथ्वीराजय भुजा। परमर्दि नरेन्द्रस्य,
देशोपमुदयास्यते। ओं अर्णराजस्य पौत्रेण श्री
सोमेश्वरसनुना। जेजाकभुक्तिदेशोपं पृथ्वीराजेन लूनितः॥
सं० १२३९। आ० स० रि०, जि० १०, पृ० ९८।

२. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया, जि० ९, भाग १, पृ० ५५३।

३. इण्डियन एन्टीक्वेरी, जि० १९, पृ० १७९।

४. इण्डियन एन्टीक्वेरी, जि० २५, पृ० २०६ तथा आ० स० रि०, जि० २१, पृ० ३८।

५. परमाल रासो, छं० ६३-५, पृ० ५३८।

६. ब्रिग, फरिश्ता, पृ० १९७।

इतिहासवेत्ता हसन-निजामी ने स्पष्ट लिखा है कि कालिंजर का राय अभिशप्त परमार, संधि की एक भी शर्त का पालन किए बिना ही स्वाभाविक रूप से मृत्यु को प्राप्त हुआ।[१] फारसी इतिहासकार के इस विवरण के विरोध में ओरछा गजेटियर में लिखा है कि यह झूठा मृत्यु का समाचार जानबूझ कर उड़ाया गया था तथा वास्तव में परमाल सं० १२७० वि० तक जीवित रहा था। किन्तु इस विरोधी मत का पुष्ट प्रमाण न मिलने के कारण हसन निजामी का विवरण ही अधिक ग्राह्य प्रतीत होता है।

जोगसूर—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंशावली की २९वीं पीढ़ी में राजा विवुध सिंह के उपरान्त उनका एक मात्र पुत्र जोगसूर उनका उत्तराधिकारी हुआ।[२] रासोकार अन्य विवरण के विषय में मौन है। रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति उपर्युक्त मत का समर्थन करती है।[३] किन्तु धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति तथा साहित्य संस्थान, उदयपुर से प्रकाशित रासो की प्रति राजा जोगसूर के विषय में कोई भी सूचना प्रस्तुत नहीं करती है। शिलालेख एवं संस्कृत के ग्रन्थ भी इनका समर्थन नहीं करते।[४]

पंडित सदाशिव दीक्षित 'जोगसूर' शब्द को विवुध सिंह का विशेषण मात्र मानते हुए लिखते हैं कि "श्री ओझा आदि विद्वानों ने रासो के आधार पर 'योगसूर' और 'चन्दराय' इन दो और नामों की कल्पना की है, परन्तु तात्विक दृष्टि से विवेचन करने के अनन्तर ये दोनों विशेषण प्रतीत होते हैं, नाम नहीं। रासोकार का कथन है कि—

सुभ विवुध सिंघ सम जोग सूर।
जस चंदराई वर अजस दूर॥[५]

संभव है पंडित जी का कथन सत्य हो। कवि राव मोहन सिंह की धारणा है कि चौहानों की वंशावली में बहुत से नाम भ्रमवश दे दिए गये हैं, वास्तव में वे राजाओं के नाम न होकर विशेषण है।[६]

जयचन्द गाहड़वाल—'पृथ्वीराज रासो' में जैसा कि नाम से स्पष्ट है पृथ्वीराज के साहसिक कार्यों का उल्लेख हुआ है। अन्य सम्बन्धित राजाओं अथवा पात्रों के विषय में कवि ने निर्देश मात्र कर दिया है। फिर भी संपूर्ण रासो ग्रन्थ के आधार पर हम यहां राजा जयचंद तथा उसके वंशजों के विषय में प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे। कन्नौजपति ने एक

---

१. इलियट एण्ड डाउसन्स, हिस्ट्री आफ इण्डिया, जि० २, पृ० २२८-९।
२. पृथ्वीराज रासो, छं० २९०, स० १।
३. रासो की हस्त लिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
४. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट।
५. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११८।
६. पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता पर पुनर्विचार-फुटनोट, पृ० ३७।
राजस्थान-भारती, भाग-१, अंक २-३ युग्मांक जुलाई, अक्टूबर, सन् १९४६।

बार राजसूय यज्ञ के अनुष्ठान का विचार किया किन्तु उनके मंत्रि सुमंत ने विरोध किया। उनने यज्ञ को अनुचित एवं असामयिक बताकर राजा को समझाने का प्रयत्न किया किन्तु राजा न माना। इसी समय उपस्थित चारणों एवं भाटों द्वारा पंगराज ने अपना वंश परिचय जानने की जिज्ञासा की तथा इसी वंश परिचय से रासोकार ने भूत कालीन यज्ञ कर्ताओं को राजा के वंशज बना दिए।

तुम वंश भयौ कमधज्ज सूर, कीनो सुराज राजस भूर।
तव वंस भयो वाहन नरिंद, अंतरिप्प रथ्थ चलि श्रग्ग कंद।
तुम वस भयो पूरूर सूर, थ च्यारि चक्रनिहि जीति सूर।
सत सिंधु सूर जिहि रथ्थ चोलह, तुम वस भयौ नृप राजनील।
तुम वस भयौ नलराइ अंद, नंपद्ध हार ही धन्या वध।
पट चक्र भयौ कमधज्ज आदि, किन्नौ नरिंद जिहि वसन वाद।
जीमूत धन्यौ विहि चक्रसीस, संसार कित्ति कीनी जगीस।
को कहै पंग सौ दुष्ट आय, मडं सुजग्य निहचंत राय।
वारुन्न भूमि हयगय अनग्ग, परयंत पुन्न राजसू जग्ग।
सोधित पुरान वलिवंस वीर, भूगोल लिपित दिप्पित सहीर।
छिति छत्र बंध राजन समान, जितौत्ति सकल हय गय प्रमान।
पुच्छै सैमंत परधान तव्व, अव करहु जग्य त्रिय चल कव्व ॥[1]

उपर्युक्त छन्द के अनुसार कमधज्ज वंश के आदि पुरुष कमधज्ज सूर थे जिन्होंने राजसूय यज्ञ कर सूर विरद को धारण किया तथा उसके बाद से यह सूरपद सभी कमधज्ज राजाओं के नाम के साथ जुड़ने लगा। इनके उपरान्त वाहन नरिंद नामक राजा हुआ जिसका रथ अन्तरिक्षगामी होकर स्वर्ग तक पहुंचा था। इनके पश्चात् हुए पुरुरसूर (सम्भवतः पौराणिक राजा पुरुरवा) जिन्होंने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। इनके बाद राजा सत सिंधुसूर हुए, नीलराज तथा राजा नल आदि जिनकी कीर्ति चतुर्दिक प्रसारित हुई। छःहो लोको में विख्यात चक्रवर्ती इसी वंश में उत्पन्न हुए जिनमें से एक जीमूत वाहन भी थे।

स्पष्ट है कि चारणों ने सभी नाम पौराणिक कथाओं से लेकर राजा जयचन्द के वंशज गिना दिए हैं। इतिहास को देखने पर इनमें से एक भी नाम मेल नहीं खाता है। अतः स्पष्ट है कि उपर्युक्त सभी नाम काल्पनिक हैं। ग्रन्थकार ने 'सूर' शब्द को लेकर ही राजा जयचन्द को सूर्यवंशी बताया है जबकि ऐतिहासिक विवरण उसे गाहड़वाल वंशी बताते हैं।

---

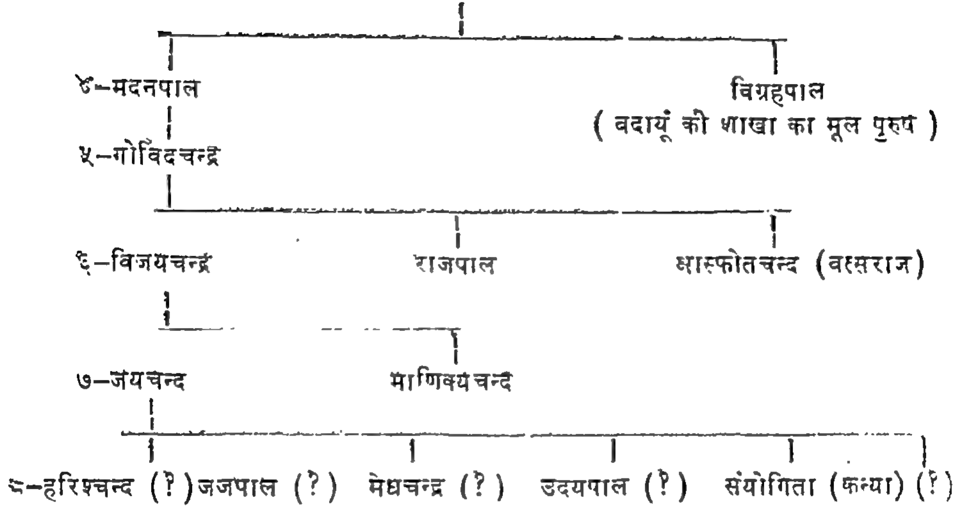
१. पृथ्वीराज रासो, छं० २५-३०, स० ४८।

ऐतिहासिक गाहड़वाल वंश

१—यशोविग्रह

२—महीचन्द्र

३—चन्द्रदेव



अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कन्नौजपति राजा जयचन्द सूर्यवंशी नहीं अपितु गाहड़वाल वंशी था।

पिता—'रासो के अनुसार राजा जयचन्द के पिता का नाम विजयपाल था (इतिहास में इसका नाम विजयचन्द्र मिलता है) जिसने कन्नौज पर सं० ११५६-११७० ई० तक शासन किया। रासो के मतानुसार राजा विजयपाल का विवाह दिल्ली नरेश अनंगपाल की पुत्री सुरसुन्दरी से हुआ था—

> अनंगपाल पुत्री उभय। इक दीनी विजयपाल।
> इक दीनी सोमेस को। बीज वपन कलि काल। ६८१।
> एक नाम सुर सुन्दरी। अनिवर कमला नाम।
> दरसन सुर नर दुल्लही। मनो सुकलिका काम। ६८२।[1]

अतः उपर्युक्त विवेचन के अनुसार स्पष्ट है कि राजा जयचन्द के पिता का नाम विजयपाल अथवा विजयचन्द्र था।

माता—'पृथ्वीराज रासो' में स्पष्ट रूप से राजा जयचन्द की माता का नाम नहीं मिलता है। ग्रन्थकार के मतानुसार दिल्ली पति अनंगपाल की बड़ी पुत्री सुरसुन्दरी का विवाह

---

१. पृथ्वीराज रासो, छं० ६८१-८२, स० १।

विजयपाल से अवश्य हुआ था किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि राजा जयचन्द उसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। पृथ्वीराज के जन्म का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने एक बड़ा महत्वपूर्ण उल्लेख किया है। सोमेश्वर के पुत्र जन्म का समाचार कन्नौज पहुंचने पर रासोकार ने लिखा है कि जयचन्द की माता ने अपनी बहन के पुत्र उत्पन्न होने के उपलक्ष में नाना उपहार भेजे थे।[1]

उपर्युक्त विवरण में प्रत्यक्ष नाम न होने पर भी परोक्ष रूप से यह सिद्ध हो जाता है कि रासो के अनुसार राजा जयचन्द की माता का नाम 'सुरसुन्दरी' था। रासो के अन्य समस्त संस्करण भी 'सुरसुन्दरी' नाम का समर्थन करते हैं।

विवाह—कवि चन्द वरदायी ने राजा जयचन्द का विवाह दक्षिण के राजा मकुन्ददेव की कन्या (जिसका नामोल्लेख नहीं किया है) के साथ होने का उल्लेख किया है। यही राजा जयचन्द की पटरानी थी। 'रासो' में परिणय कथा का वर्णन इस प्रकार मिलता है—कान्यकुब्जेश्वर महाराज विजयपाल ने अपने दो योग्यमंत्री मतिराम तथा चित्तविद्या और समस्त चतुरंगिनी सेना को एकत्र कर दक्षिण विजय हेतु प्रस्थान किया। मरुभूमि को छोड़कर क्रम से पूर्व दिशा से लेकर सम्पूर्ण दक्षिण की यात्रा की। उस समय पूर्वी सागरतट पर चन्द्रवंशी राजा मुकुन्द देव राज्य करता था जिसकी राजधानी कटक थी। यह राजा बड़ा पराक्रमी तथा योद्धा था, इसके यहाँ तीस लाख अश्वारोही, एक लाख गजरोही, दस लाख पैदल की वैतनिक सेना थी। राजा मुकुन्द देव ने सात कोस आगे बढ़कर राजा विजयपाल का स्वागत किया तथा नाना प्रकार का सत्कार कर अपार धनराशि, दास-दासियों सहित अपनी पुत्री विजयपाल को अर्पण कर दी। विजयपाल ने उस कुमारी का विवाह जयचन्द से कर दिया। कन्नौज लौटने पर पुत्र तथा वधू सुख पूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे तथा सोलह वर्ष की आयु होने पर इसी रानी से सुकुमार कुमारी संयोगिता का जन्म हुआ।"[2]

जयचन्द विरचित 'रम्भा मंजरी' में जयचन्द की सात रानियों का उल्लेख मिलता है। तथा राजा जयचन्द अपना भूपति नाम सार्थक करने के हेतु पुनः किम्मीर वंशी देवराज की पौत्री तथा लाट नरेश मदनवर्मा की पुत्री से विवाह करने के लिए लालाइत दिखाई देता है।[3] 'रम्भा मंजरी' की नायिका 'रम्भा' का सम्बन्ध हंस नामक व्यक्ति से पूर्व ही स्थिर हो चुका था किन्तु विदूषक तथा नारायण दास के सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप उसका शास्त्रों के अनुसार परिणय संबंध कन्नौजपति राजा जयचन्द से हो गया। अन्य रानियों सहित वह भी महल में

---

१. कनवज जैचन्द मात , नयौ संनरि वहनी सुत।
तिन पर्वत द्रुज पठिय , यार जर चोर थपिय सुत ॥ छं० ४५, स० १, उदयपुर संस्करण।

२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० १२५५-१२५७, स० ४५।

३. श्री आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, जयचन्द और उनका ग्रन्थ रम्भा मंजरी—प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४११।

भेज दी गई। इसी 'नाटिका' के अनुसार राजा जयचन्द की एक रानी और थी जिसका नाम राजमती था जो नाटिका की नायिका रम्भा का विशेष ध्यान रखती थी। जयचन्द की पूर्व सात रानियों में एक पटरानी थी जिसकी अनुमति से ही राजा जयचन्द रम्भा के पास आमोद-प्रमोद के लिए जा सकता था।

अज्ञात कवि विरचित एक प्राचीन प्रबंध[1] में निम्नलिखित वर्णन प्राप्त होता है—"कान्यकुब्जे देशे वाराणसी पुत्री नव योजन विस्तीर्णाद्वादसः योजनायाम। तत्र श्री विजयचंद्रागजो राष्ट्रकूटीयो जेत्रयन्यो राज्य करोति। तस्य कर्पूर देवी परमप्रीतिमात्रम अयनगर वास्तव्य (स्य) कस्यापि शालापतेः पुत्री सुहागदेवी पुरी प्रत्यासन्ने ग्राम परिणाता अस्ति।" इसी प्रबंध में आगे लिखा है—"सप्तमे दिने राज पाट्यां नृपेण व्रजता गृह द्वारे वनदेवीव दृष्टा। सानुरागो धवल गृह गत्वाशालापति माहुय पुत्रीय याच। तेनदत्त" अर्थात् विजय चन्द का पुत्र 'राष्ट्रकूट जयचन्द कान्यकुब्जदेश के वाराणसी का राजा था कर्पूरदेवी नाम की कोई रानी उसकी परम प्रति पात्र थी तथा एक शालापति की दुहिता सुहागदेवी पर मुग्ध हो उससे परिणय कर लिया था।

'प्रबंध चिन्तामणि' में लिखा है कि—'काशी का राजा जयचन्द जो एक साम्राज्य का अधीश्वर 'प्राज्य साम्राज्य लक्ष्मी पालनम्' था पंगु कहलाता था। इसने एक शालापति की पुत्री सुहवा से विवाह किया था।"[2] कविराज शेखर ने अपने 'प्रबंधकोश' में श्री हर्ष प्रबंध में गोविन्दचन्द के पौत्र जयचन्द के विषय में उल्लेख किया है कि वह बनारस का आधिपति था तथा उसने सुहवादेवी नामक किसी तरुण एवं सुन्दर विधवा से परिणय किया था जो कि पहले पहल राजा कुमारपाल के अणदिल पट्टन के निवासी शालापति की पत्नी थी'।[3]

तत्कालीन सामन्तयुग में बहुविवाह की सामान्य प्रथा प्रचलित थी। अतः यदि राजा के यहाँ भी अनेक रानियां हों, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

'रासो' के मतानुसार राजा जयचन्द के एक और रानी थी जिसका नाम जुन्हाई था। रासोसार में लिखा है—'राजा जयचंद के उस स्वर्ण रचित रत्न जटित सुविस्तीर्ण रनिवास में काम की कला सदृश अनेक नव यौवनाएं थी, जो सब चित्रिनी तथा पद्मिनी जाति की एक से एक सुन्दर एवं मनोहर थी परन्तु राजा का जुन्हाई पर विशेष प्रेम था।"[4]

ग्रन्थकार ने रानी जुन्हाई का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है–"इस संसार का अंधकार

---

१. जिन विजयमुनि—पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृ० ८८-९०, सिन्घी ग्रन्थ माला-२, कलकत्ता–१९३६।
२. मेरुतुंग—प्रबन्ध चिन्तामणि, शांति निकेतन (१९३५) पृ० ११३-११४।
३. श्री हर्ष प्रबन्ध–प्रबन्ध कोष, शांति निकेतन (१९३५) पृ० ५४-५८।
४. नागरी प्रचारिणी सभा काशी, रासोसार, पृ० १८७।

विनिष्ट करने वाले श्री सूर्य भगवान की किरण से उत्पन्न एक कन्या कैलाश शिखर पर एक ऊँचे वृक्ष की डाल पर पड़े हुए झूले में झूल रही थी, जिसे देखकर पंगराज अपना मन खो बैठा तथा उस पर मोहित हो गया। राजा ने उसकी प्राप्ति हेतु एक पैर पर खड़े होकर तपस्या करना प्रारम्भ की। इस साधना से प्रसन्न होकर ऋषि वशिष्ट ने सूर्य देव से प्रार्थना कर, वह कन्या राजा को दिला दी। वही कन्या इस समय रानी जुन्हाई के नाम से प्रसिद्ध है।[१]

ग्रन्थकार के मतानुसार रानी जुन्हाई ही राजा जयचन्द की पटरानी थी। रानी जुन्हाई के विषय में अन्यत्र विस्तार से लिखा जावेगा। यहाँ इतना विवरण ही पर्याप्त है।

राजा जयचन्द अपने युग का एक महान शासक था। उसके दरबार में बड़े-बड़े कलावंत रहा करते थे। उसकी नगरी कन्नौज भी इन्द्रपुरी के समान थी। ग्रन्थकार ने राजा जयचन्द की नगरी का वर्णन करते हुए लिखा है कि नित्य-प्रति प्रातः काल पंगराज के नगाड़े बजा करते थे जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो बादल गरज रहे हों।[१] मार्ग पर चारों ओर विस्तृत पाँच योजन तक राजा का उद्यान था, जिसमें नारंगियाँ, पुष्प तथा अनार विकसित हो रहे थे। लताएं झूम रहीं थी, जूही, जंमीरी, सेव आदि फलों से परिपूरित था।[२] नगर में प्रवेश करते ही द्यूत शालाएं मिली।[३] भिन्न-भिन्न व्यवसाय वाले नाना प्रकार के स्त्री-पुरुष मिलने लगे, स्थान-स्थान पर वीणा आदि वाद्य बज रहे थे। वैश्या नृत्य कर रहीं थी।[४] बाजार में रत्न, मोती, माणिक्य के हार, सोना, वस्त्र आदि नाना प्रकार की वस्तुएं बिक रही रही थीं।[५] बजाज सुन्दर वस्त्र बेच रहे थे, जरी का काम हो रहा था। दसों दिशाओं से हाथी-घोड़े आ-जा रहे थे। सामने ही राजा जयचन्द के महल थे, जहाँ हाथी-घोड़े तथा भाँति-भाँति के पशु दृष्टि गोचर हो रहे थे, नगाड़े तथा अन्य विविध प्रकार के वाद्य निनादित हो रहे थे। तथा मनुष्यों की अच्छी खासी भीड़-भाड़ थी।[६] जयचन्द के अस्सी लाख की विशाल वाहिनी थी जो उसकी आज्ञा पलनार्थ सदैव तत्पर रहती थी।[७]

स्पष्ट है जिस राजा का नगर इतना सुन्दर होगा उसका दरबार भी सुंदर होना ही चाहिए। उसके यहाँ अवश्य ही नाना प्रकार के योद्धाओं से दरबार भरा रहता होगा। कवि

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ४०३, स० ६१।
२. वही, छं० ४०९-२२, स० ६१।
३. वही, छं० ४२४, स० ६१।
४. वही, छं० ४२५-३४, स० ६१।
५. वही, छं० ४३५-४५, स० ६१।
६. वही, छं० ४४९, स० ६१।
७. वही, छं० ४५२, स० ६१।

चन्द ने राजा जयचन्द गाहड़वाल की बैठक का वर्णन करते हुए उसके योद्धाओं का नाम तथा ग्राम का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है।[1]

१.	रयसलराव	कमधुज्ज	जयचन्द का चचेरा भाई।
२	वीरचंद	कमधुज्ज	रयसल का सगा भाई।
३.	मानराय	यादव	—
४.	गुजरान वीर	—	—
५.	कास नरिंद	सूर्यवंशी	—
६.	नृसिंहराय	बघेला	—
७.	कंठियाराय	—	—
८	प्रताप सिंह	—	—
९.	रामरेनराय	कठेर	करनाटक का सूबेदार।
१०.	सारंगराय	भट्टी	—
११.	मुकुन्दराय	मोरी (प्रमार)	—
१२.	वीरमराय	—	दूसरा नाम नरपाल वीर।
१३.	महादेव	—	तलवार के युद्ध में दक्ष।
१४.	हरसिंहराय	—	—
१५	पूरनराय	सोलंकी	—
१६.	गोइन्दराय	प्रमार	—
१७.	प्रतापराय	हम्मीर	पहाड़ी युद्ध में निपुण।
१८.	सन्नुलाल	—	पटना का राजा।
१९.	साखुला राय	—	मल्लयुद्ध में अद्वितीय।
२०.	सरवन्तराय	—	—
२१.	वीरभद्र	बघेला	—
२२.	राजा कृष्णराय	—	—
२३.	मुकुंदराय	—	—
२४	जैसिंह सूर	—	वेड़ा (बाएं हाथ से हथियार चलाने वाला)।
२५.	रनवीर राय	राठौर	—
२६.	चन्द्रसेन	प्रमार	—
२७.	भीमदेव	—	आजानबाहु
२८.	नरसिंह सूर	सोलंकी	—

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ५२९-५४६, स० ६१।

२९.	रुद्रसिंह	कंठेर	—
३०.	धीरायसेन	—	विजित राजाओं का नेता।
३१.	साखुलादेव	—	—
३२.	राय रामचन्द्र राव	—	गनिग
३३.	हम्मीर सेन	—	—
३४.	सारंग सूर	जाट	समस्त चतुरंगनी सेना का सेनापति।
३५.	जयसिंह	राठौर	—
३६.	भीमराय	प्रमार	—
३७.	अर्जुनराय	निम्न कुलोत्पन्न	—
३८.	असोकराय	—	—
३९.	वीरभद्र	चन्देल	—
४०.	सहदेव	—	—
४१.	केहरीब्रह्म	सोलंकी	—
४२.	हरिचन्द्र	चौहान	—
४३.	हरसिंह राय	—	पासवानों का प्रधान।
४४.	निसुरतखाँ	मुसलमान	—
४५.	ममरेजखाँ	मुसलमान	—
४६.	मीर महवलखाँ	मुसलमान	—
४७.	आरास खाँ	मुसलमान	फीरोजखाँ का भाई।
४८.	कम्मोदखाँ	मुसलमान	—
४९. ५०.	अल्लीखाँ	मुसलमान	दोनो भाई।
५१.	महमूदखाँ	मुसलमान	—
५२.	अब्दुल्ला खाँ	मुसलमान	जयचन्द के चोवरदार।
५३.	सुलेमान खाँ	मुसलमान	
५४.	हरवीर राय	—	मंत्री के बाएं हाथ खड़ा होने वाला।
५५.	मुकुंद	(सिवरा)	गायक
५६.	श्री कंठ	कवि	राजा के सिंहासन के सामने खड़े रहने वाले।
५७.	कमल भट्ट	राजपुरोहित	

रासोकार ने एक स्थान पर जयचन्द की अस्सी लाख सेना का विवरण दिया है।[१] राजा जयनंद के अधिक सेना होने के कारण ही उसे पंगराजा की उपाधि दी गई है। रासो

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ४५२, स० ६१।

में अनेक स्थानों पर 'पहुपंग' शब्द राजा जयचन्द के लिए प्रयुक्त हुआ है।[1] टॉड ने अपने 'राजस्थान' में 'दुल पंगुल' नाम की उत्पत्ति इस प्रकार की है—"कन्नौज राज के किले की बाहार दीवारी तीस मील से भी अधिक थी और राज्य की असंख्य सेना के कारण राजा का विशेषण दुल पंगुल हो गया। दुल पंगुल से तात्पर्य है कि राजा लंगड़ा है या सेना की अधिकता के कारण वह नहीं चल सकता। चन्द बरदायी के अनुसार अगली सेना युद्ध क्षेत्र में पहुंच जाती थी तब भी पिछली सेना को आगे बढ़ने का स्थान न मिलता था और वह खड़ी ही रह जाती थी।[2] नयचन्द सूरि की 'रम्भामंजरी' में भी जयचन्द के लिए 'पगु' शब्द का प्रयोग हुआ है—'सैन्यातिशयात पगु विरुद्ध धारक।'[3] प्रबंध चिन्तामणी'[4] के अनुसार भी राजा जयचन्द के एक विशाल वाहिनी होने का संकेत प्राप्त होताहै। 'सूरज प्रकाश' नामक ग्रन्थ के अनुसार पंगराज की सेना में ८०,००० सुसज्जित सैनिक, ३०,००० जिरह-बख्तर वाले घोड़े, ३,००,००० पैदल सैनिक, २,००,००० धनुर्धर तथा फ़रशाधरी सैनिक और सैनिकों सहित असंख्य हाथी थे।[5]

अतः स्पष्ट है कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचन्द तत्कालीन राजाओं में अपार शक्तिशाली तथा वैभव सम्पन्न था।

राजा जयचन्द के प्रतिद्वन्दी—पृथ्वीराज रासो को आदि से अन्त तक अध्ययन करने पर राजा जयचन्द के तीन प्रमुख प्रतिद्वन्दी हमारे समक्ष आते हैं—

१—दिल्ली-अजमेर पति पृथ्वीराज चौहान।

२—रावल समरसिंह, तथा

३—गजनीपति शहाबुद्दीन गोरी।

(१) **पृथ्वीराज चौहान**—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पृथ्वीराज चौहान पंग राज की कन्या का अपहरण कर्ता, सम्राट जयचन्द का प्रधान एव प्रबल प्रतिद्वन्दी था। उत्तरी भारत के प्रायः समस्त राजाओं ने कन्नौजपति की आधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु पराक्रमी

---

१. एक ताप पहुपंग को, अरु रवनीक जु थान।
चामंडराय वचन्न सुनि, चढ़ि चढ़्यों चहुआंन ॥ छं० १२, स० २७।
तब पहुपंग नरिंद। कुसल जानी न गरिठो ॥ छं० ४, स० २६।
तब पहुपंग नरिंद प्रति। दूत सु उत्तर जप्पु ॥ छं० ६, स० २६ आदि।

2. Annals and Antiquites of Rajasthan. Vol. II. Page 7.

३. रम्भामंजरी, भूमिका, पृ० ४ तथा प्रथम अंक, पृ० ६।

४. मुनिराज जिन विजय, प्रबन्ध चिन्तामणि छं०, २१०, पृ० ११३।

5. Annals and Antiquites of Rajasthan, Vol. II, Page 136.

पृथ्वीराज ने जयचन्द जैसे चक्रवर्ती सम्राट के भी छक्के छुटा दिए थे। पृथ्वीराज, जयचन्द की मौसी का लड़का था फिर भी द्वेष एवं वैमनस्यता के कारण दोनों ही एक दूसरे के घोर शत्रु थे।

रासो का नायक पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) है, जो अपने युग के समस्त शासकों में पराक्रमी समझा जाता था। पृथ्वीराज तथा जयचन्द के सम्बन्ध आदि से ही कटुता पूर्ण हो गए थे। संभवतः कटुता का कारण नाना अनंगपाल का पक्षपातपूर्ण व्यवहार ही रहा हो। वैरभाव का यह बीज राजा अनंगपाल द्वारा बोया गया तथा पृथ्वीराज ने अपने कृत्यों द्वारा उसे सिंचित कर पल्लवित और पुष्पित किया। जिसकी विशाल छाया स्वरूपी वैमनस्यता की आग में उत्तरी भारत की ये दोनों प्रबल शक्तियाँ भस्मीभूत हो गई तथा अन्त में बाह्य आक्रमणकारियों के हाथ में भारत चला गया। समय-समय पर रासोकार राजा जयचन्द तथा पृथ्वीराज की शत्रुता का संकेत देता चलता है। 'धनकथा' समय में गड़े धन को निकालने के समय मंत्री कैमास रावल समरसिंह को बुलाने की मंत्रणा देता है। पुनः उसने पृथ्वीराज चौहान के प्रबल-शत्रुओं का आतंक प्रदर्शित किया जो संभवतः ईर्ष्यावश इस शुभकार्य के विघ्न डालने का प्रयत्न करते।

कन्नवज राव जैचन्द देव, नर असी लष्प मेच्छ तिन करत सेव।
गज्जन नरेस साहाब साह, दस लष्प मेच्छ सेवंत ताह ॥[1]

'शशिवृता' समय में यह वैमनस्य का बीज और भी दृढ़ हो जाता है। राजकुमारी शशिवृता अपने पिता यादव की इच्छा के विरुद्ध अपहरण हेतु संकेत स्थल निश्चित करती है। कवि चन्द ने इसी अवसर पर स्पष्ट रूप से लिखा है—

पुव्व वैर अहुआन वैर कमधज्ज विपन्नौ।
सवर जोर संग्राम, निवर अगम्यो न जाइय ॥[2]

पृथ्वीराज ने संकेत स्थल पर पहुँच कर राजकुमारी का अपहरण किया। इसी अवसर पर पंगराज की सेना से भी घोर युद्ध हुआ। परिस्थिति से पराजित हो पंगराज देवास से कन्नौज लौट तो अवश्य आया किन्तु उसके हृदय में वैमनस्य की ज्वाला और भी भभक उठी।

पृथ्वीराज तथा जयचन्द के बीच वैमनस्यता का भाव बढ़ता ही रहा। समय-समय पर दोनों एक दूसरे को कष्ट पहुँचाने का उपक्रम करते रहते थे। रेवातट समय में पृथ्वीराज ने मृगया हेतु प्रस्थान किया जिसमें अनेक उद्देश्यों के साथ एक उद्देश्य 'एक ताप पहुपंग सो' भी था।

---

१. पृथ्वीराज रासो, छं० १३, स० २४।
२. वही, छं० २४१, स० २५।

'पीपा युद्ध' के अन्तर्गत हम जयचन्द को पृथ्वीराज के विरुद्ध गजनीपति शाह गोरी की सहायता करते हुए पाते हैं। इधर पृथ्वीराज राजकुमारी हंसावती से विवाह हेतु उज्जैन की ओर प्रस्थान करते हैं उधर गोरी जयचन्द की सहायता लेकर बीच में ही मार्ग अवरुद्ध कर युद्ध हेतु आ खड़ा होता है।

चल्यौ राज सब सेन सजि दिसि उज्जैननिय रंग।
आइ साहि जगह जुरन लयं सहायक पंग॥[1]

'वरुण कथा' में राजा सोमेश्वर षोडश दान देते है जिसकी सूचना पाकर कान्यकुब्जेश्वर कहता है–

मंत्रिन सरिस महीन्द कमधज्ज इन्द्र कुप्पियं कालं।
जम्बूद्वीप महीपन को मो सरिसं मडव सारह॥
छिति क्षत्री जे छत्रपति ते यो हुकुम हुजूर।
मिट्टि सकै फुरमान को, मारि मिलाऊं धूर।[2]

क्रोधोन्मत्त हो राजा जयचन्द ने अपनी शक्ति का बखान किया तथा अजमेरपति सोमेश्वर के षोड़शदान की ईर्ष्या से जलकर स्वयं ने राजसूय यज्ञ करने का विचार चित्त में दृढ़ किया तथा सभा मंडप से उठ खड़ा हुआ।[3] पृथ्वीराज चौहान को भी यज्ञ हेतु आमंत्रित किया किन्तु उसे द्वारपाल का कार्य सौंपा गया, दूत द्वारा पृथ्वीराज की अस्वीकृति पाकर उसकी स्वर्ण प्रतिमा द्वारपाल के स्थान पर प्रतिष्ठित करवाई गई। स्वाभाविक था कि इस अपमान से पृथ्वीराज चौहान और भी अधिक क्रोधित हो उठता। अतः चौहान ने यज्ञ-विध्वंस करने का दृढ़ निश्चय कर कन्नौजपति राजा जयचन्द की सीमा का अतिक्रमण कर, उसके भाई बालुकाराय को सूर्य लोक भेजकर, यज्ञ विध्वंस कर दिया तथा स्वयं दिल्ली लौट आया।

अपनी अभिलाषा पर इस प्रकार कुठाराघात होते देखकर पंगराज आपे से बाहर हो गया। अपने समस्त प्रतिद्वन्दियों को समूल नष्ट करके पुनः यज्ञ करने की, उसने प्रतिज्ञा की। किन्तु पट्टरानी के समझाने पर तथा उपयुक्त समय पाकर उसने अपनी पुत्री संयोगिता के स्वयंवर का आयोजन किया। संयोगिता ने अन्य उपस्थित राजाओं की अवहेलना कर पृथ्वीराज की स्वर्ण प्रतिमा को ही वरमाला डाल कर अपना पति घोषित किया। कन्या के इस कृत्य से कुपित हो राजा जयचन्द ने उसे गंगातट स्थित महलों में एकान्तवास का दण्ड दिया।

तब झुकि पंग नरिंद ने, तट गंगा दिय गेह।
कै कुड्डवि जल मंझि परं, कै नैन निरष्षं देह। ४५।

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १२८, स० ३१।
२. वही, छं० ६९-७०, स० ३४।
३. वही छं० ७१, स० ३४।

पंटस दान समान करि दीने दुजवर पंग।
घन अनव चहुआन के रष्षि सुरीतट गंग।[1] ५५।

राजसूय यज्ञ विध्वंस का प्रतिशोध लेने की कामना से पंगराज ने दिल्ली पर आक्रमण किया किन्तु पृथ्वीराज को दिल्ली में न पाकर पुनः लौट आया। पंगराज ने पुनः यज्ञ पूर्ण करने की अभिलाषा की। अतः उसने अपने मंत्री को दिल्ली भेजकर पृथ्वीराज से नाना अनंगपाल के राज्य का आधा भाग पंचनद प्रदेश मांगा।[2] पृथ्वीराज द्वारा राज्य न देने पर पंगराज ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया, जिसमें पंगराज पूर्णरूपेण परास्त हुआ।

इस प्रकार की घटनाओं से दोनों का परस्पर वैमनस्य और भी दृढ़ होता गया। एक बार पृथ्वीराज ने अपने बालसखा कवि चंद से कन्नौजपति का वैभव देखने की अभिलाषा प्रकट की तथा दूसरे उन्हें संयोगिता द्वारा स्वर्णमूर्ति को वरमाला पहनाने की सूचना भी प्राप्त हो चुकी थी। अतः पृथ्वीराज चौहान ने अपने समस्त सामंतों को साथ लेकर छद्म भेष बनाकर कवि चंद के साथ कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। दरबार में पंगराज द्वारा पृथ्वीराज के विषय में पूछे जाने पर कवि चन्द ने छद्म वेश धारी पृथ्वीराज की ओर संकेत किया जिससे समस्त दरबारी तथा पंगराज का संदेह पुष्ट हो गया। दोनों विपक्षी एक दूसरे को निरीक्षण की दृष्टि से देखने लगे।

देषि थवाहृत थिर नयन, करि कनवज्ज नरिंद।
नयन नयन अंकुर परिय इक यह होई ममद। छं० ६५६।
दिष्पि नयनरा पंग, पंग चुआन महाभर॥
अंकुरि नयन विसाल, झाल झारंत रंच उर॥
दूव कयार कठोर, पलन आकज्ज धारत तमि।
घर वारुनी समग्ग, मत मातंग रोस जमि॥[3] छं० ६५७।

पंगराज को शंका अवश्य हुई किन्तु वह दृढ़ निश्चय नहीं कर पाया कि पृथ्वीराज खवास के छद्म वेष में आवेगा अतः अपनी शंका का मन ही मन समाधान करके कवि चन्द से पृथ्वीराज का अपने से न मिलने का कारण पूछा—

'सोमेस पुत्रं तुम हित्त करि, क्यों मुझ्झहि नाही मिलत॥'[4] छं० ६६१।

निर्भिक कवि ने उत्तर में इसके लिए जयचन्द को ही उत्तरदायी बताया। बात पर बात बढ़ती गई—

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ५४-५५, स० ५०।
२. वही, छं० ८७ स० ५५।
३. वही, छं० ६५६-५७, स० ६१।
४. वही, छं० ६६१, स० ६१।

मंत मंती लहु मंत कहि, नीते नीति वढ़त।
जिम जिम संसर सो दुरै, तिम तिम मदन चढ़त। ' छं० ६६०।

पंगराज को पृथ्वीराज की उपस्थिति पर सन्देह तो हो ही गया था, अतः उसने करनाटी वेश्या को दरबार में बुलाकर अपना संदेह निवार्ण करना चाहा। करनाटी वेश्या ने पृथ्वीराज को देखते ही घूंघट निकाल लिया, किन्तु कवि चन्द का संकेत पाकर पुनः अवगुण्ठन हटा लिया। वेश्या करनाटी के इस कृत्य से पंगराज की संदेह की जड़ और भी अधिक दृढ़ हो गई। नगर रक्षक रावन को भट्ट चन्द के सत्कार का भार सौंपा गया। मंत्री सुमन्त कवि की विदाई लेकर कवि के निवास स्थान पर गया। वहाँ से लौटने पर मंत्री ने भी कवि चन्द के पानघर पर सन्देह करते हुए पृथ्वीराज का होना, पंगराज से कहा। पंगराज का सन्देह और भी अधिक पुष्ट हो गया। इसी बीच गुप्तचरों ने आकर सूचना दी जिससे शंका ने प्रमाण का रूप धारण कर लिया।' अपने प्रबल शत्रु पृथ्वीराज को अपने नगर में तथा इतने निकट पाकर पंगराज के आनन्द का परावार न रहा—

श्रवन सुनिग कमधज्ज, पंग फुल्ल्यौ वरमांस।
प्रात फुल्लि सतपत्र, सक्ष कामोद प्रकास॥' छं० ६७८।

पंगराज कवि की विदाई के बहाने स्वयं चतुरांगिनी सेना लेकर उससे मिलने के लिए अग्रसर हुए।

सतर्क पंगराज ने नगर को चारों ओर से घेरने की आज्ञा पहले ही दे दी थी। कवि चंद के छद्म वेशधारी पानघर पृथ्वीराज ने पूर्व वैर का स्मरण कर बायें हाथ से ताम्बूल दिया, मानों कोई वस्तु दान दे रहे हों। पंगराज ने भी इस प्रकार पान लेना स्वीकार नहीं किया—

करै न कर पृथ्वीराज नर, धरै न कर जैचन्द।
उभय नयन अंकुरि परग, ज्यो जुगमत्त गयंद॥' छं० ९१८।

पंगराज पृथ्वीराज के इस प्रकार के व्यवहार को देखकर व्यग्र हो उठा। परिस्थिति को देखकर चतुर कवि चंद ने पंगराज से पान ग्रहण करने का पुनः आग्रह किया। शिष्टाचार-वश पंगराज ने ताम्बूल ग्रहण कर लिया किन्तु कलह प्रिय पृथ्वीराज ने विपक्षी को एक बार पुनः हाथ दबाकर चुनौती दी—

'पानि पान करिके दियौ, कमधज्जह पृथिराज।
चल्यौ रक्त कर पल्लवनि, प्रह्यो कुलिगंन बाज॥ छं० ९३२।

---

१. पृथ्वीराज रासो, छं० ६६०, स० ६१।
२. वही, छं० ८७५ स० ६१।
३. वही, छं० ६७८, स० ६१।
४. वही, छं० ९१८, स० ६१।

धर चंपे नृप तात फार, सारंग दिद् सुपंग।
पानि प्रथीपति दिख्यिौ, थ्रोन चल्यौ नप संग॥'[1] छं० ९३४।

पंगराज ने इस प्रकार का व्यवहार देखकर तुरन्त ही पृथ्वीराज को पकड़ने की आज्ञा दे दी। रणभेरी निनादित हो उठी। पंगराज के सैनिक पृथ्वीराज को पकड़ने का प्रयत्न करने लगे। उधर पृथ्वीराज के सामन्त भी अपने स्वामी के सम्मान की रक्षा हेतु अपने प्राणों को हथेली पर रखकर पंगराज की सेना से जा भिड़े। कहने की आवश्यकता नहीं इस युद्ध में पंगराज की बुरी तरह पराजय हुई। पृथ्वीराज पंगराज को परास्त कर तथा संयोगिता का अपहरण कर दिल्ली पहुंचने में सफल हुआ।

इतिहासकार संयोगिता अपहरण की घटना के विषय में मौन हैं। किन्तु जगनिक कवि विरचित 'आल्हा' इस युद्ध का इस प्रकार वर्णन करता है—'दोनों ओर के वीर बड़े उत्साह से युद्ध में सम्मिलित हुए। नृसिंह फूंके गये, तलवारें म्यान से निकल कर चकाचौंध करने लगीं। दोनों सेनाओं के बीच वो घमासान युद्ध हुआ कि शत्रु तथा मित्र का विवेक जाता रहा। दिन भर मारकाट होती रही। योद्धाओं ने रक्त बहाने से हाथ तब तक न खींचा जब तक सिर पर तारागण न जगमगाने लगे। जयचन्द ने आज्ञा दी कि राजकुमारी की पालकी रणभूमि में लाकर रख दी जावे तथा घोषणा की कि जिसे विजय श्री प्राप्त हो वही डोला उठा ले जाय। उसका उद्देश्य यह था कि पृथ्वीराज स्वयं मैदान में आ जाये और मैं उसे मार डालूं, और चौहानों को ललकार कर कहा पालकी यहाँ रख दो तथा ठंडे-ठंडे गृह मार्ग ग्रहण करो। उधर राठौर भी चिल्लाए जिन योद्धाओं में पालकी दिल्ली ले जाने का गर्व हो जरा सम्मुख तो आवें। प्रत्येक वीर ने दो-दो तलवारें अपने हाथों में सम्भाल ली तथा वीर मृत्यु को एक मनोरंजक खेल समझकर युद्ध में जुट गए। चौहानों का पल्ला भारी था तथा पालकी पाच कोस दिल्ली की ओर अग्रसर हो चुकी थी।

कन्नौजियों ने भी पिंड न छोड़ा। रात दिन बराबर लड़ते रहे। पालकी कभी दिल्ली की ओर अग्रसर होती तो कभी कन्नौज वाले अपनी ओर खींचते थे। किन्तु डोला दिल्ली की ओर ही क्रमशः अग्रसर होता गया। सोरों के घाट पर गंगा पार जाते समय एक बार फिर घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर के चुने हुए वीर आमने-सामने आकर अपनी-अपनी रण कुशलता का परिचय देने लगे। किन्तु बाजी चौहानों के हाथ ही रही तथा कन्नौज की सेना दिन प्रतिदिन घटती ही गई। दिल्ली के फाटक के सामने फिर अन्तिम युद्ध हुआ। उसमें राठौर सेना के बचे-खुचे सैनिक भी काम आ गये। आनन्द एवं उत्साह से चंदवरदायी तथा पृथ्वीराज ने स्वयं डोला उठा लिया तथा अत्यन्त हर्षित हो नगर प्रवेश किया। कविचंद ने जयचंद को संबोधित कर कहा 'यदि आपके सब सैनिक काम आ गए तो पृथ्वीराज की भी

---

1. पृथ्वीराज रासो, छं० ९३२-९३४, स० ६१।

यही दशा है अतः अब युद्ध व्यर्थ है। शांति से घर की ओर प्रस्थान करिये।"[1] शोक और पश्चाताप में डूबा हुआ पंगराज कन्नौज लौट आया। घायल पड़े हुए वीरों की सुश्रूषा करने के उपरान्त दिल्ली भेज दिया। साथ ही अपने पुरोहित श्रीकंठ को अपार धन राशि दहेज स्वरूप देकर दिल्ली भेजा किन्तु फिर भी हार्दिक द्वेष समाप्त न हो सका। इसके अतिरिक्त डॉ० दशरथ शर्मा संयोगिता अपहरण की घटना को पूर्णतयः ऐतिहासिक मानते हुए लिखते हैं कि "पृथ्वीराज विजय में पृथ्वीराज के तिलोत्तमा के चित्र पर मुग्ध होने और तदनंतर उसके विरह से व्यथित होने की जो कथा है, वह किसी ऐसी राजकुमारी से होने वाले विवाह की भूमिका मात्र है, जिसको उसके लेखक ने तिलोत्तमा का अवतार बताया होगा, वह राजकुमारी गंगातटवर्ती किसी स्थान की थी यह उसके अंतिम प्राप्त सर्ग के ७०वें त्रुटिल श्लोक के 'नाक नदी तट स्थितः' से प्रकट है, इसलिए उसमें रासो की संयोगी अथवा सुर्जन चरित की कान्तिमती का चरित्र और पृथ्वीराज से उसके विवाह की कथा आई हो, तो आश्चर्य न होगा। भलतः प्राप्त साक्ष्यो से रासो की पृथ्वीराज और जयचन्द के संघर्ष की कथा का कोई विरोध नहीं दिखाई पड़ता है।"[2]

चित्रांगी रावलसमरसिंह—मेवाड़ाधिपति चित्रांगी रावल समरसिंह दिल्ली-अजमेर के अंतिम शासक पृथ्वीराज चौहान के बहनोई थे। ग्रन्थकार ने रावल को पृथ्वीराज के घोर पक्षपाती के रूप में चित्रित किया है। कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचद के प्रमुख प्रतिद्वन्दियो में से रावल भी एक थे—पंगराज ने अपने राजसूय यज्ञ को सफलता पूर्वक समाप्त करने के उद्देश्य से रावल समरसिंह को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की। पंगराज यह भली-भांति जानते थे कि दिल्लीपति चौहान तथा चित्तौड़पति रावल से सम्मिलित रूप से सामना करना नितान्त असम्भव है। अतः पंगराज ने अपने मंत्री सुमत को भेजकर मैत्री का संदेश भेजा, साथ ही यह भी लालच दिया कि वह और रावल मिलकर चौहान को परास्त करेंगे तथा इस विजय के उपलक्ष में पंजाब का आधा भूभाग प्राप्त होगा। मंत्री सुमत ने चित्तौड़ पहुंच कर रावल के समक्ष पंगराज का सन्देश निवेदन कर दिया। मंत्री की बात का समर्थन तो गया एक तरफ, उल्टे रावल ने यज्ञ को अनुचित बताते हुए उसे बहुत बुरी तरह से धिक्कारा—

नाम सुमंत्री तिन धरयौ, रे अमंत परधान।
हीनत भये भयौ न जग, जग्य बेर बलिदान॥ छं० ३६।
मिलिस समर उव्वरि चौहान, जग्य करन पहुपंग निधान।
त्रेता द्वापर करयौ जुदेव, कलियुग पंग जग्य करिसेव॥ छं० ३७।[3]

---

१ आल्हा खण्ड, पृ० ३९-५६।

२. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और रचना तिथि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनदन ग्रन्थ, पृ० ९५७. २ अक्टूबर १९५९।

३. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ३६-३७, स० ५५।

रावल समरसिंह ने और भी नाना प्रकार की बातें करके पंगराज के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। कन्नौज पहुंच कर मंत्री सुमंत ने सब बातें पंगराज को विस्तार से बता दीं। रावल समरसिंह, पृथ्वीराज का समर्थक होने के कारण एक तो पगराज की आंखों मे यों ही खटकता था, दूसरे अपनी योजना को असफल होते देखकर वह क्रोधोन्मत्त हो उठा। अतः अपने दल-बल सहित पगराज ने चितौड़ की ओर प्रस्थान कर दिया—

चित्त चिति चित चित्रंग देस, चढ़ि चल्यौ स गुरि पंगुर नरेश।
दिसि संकि दिसा दस कंपि थान, कलमलिय सेस गय संकियान॥ छं० २।[1]

पंगराज के आक्रमण की सूचना पाकर रावल समरसिंह भी उसका सामना करने आ उपस्थित हुआ।[2]

युद्ध में रावल के सैनिकों ने अपार पराक्रम प्रदर्शन करके पंगराज की सेना के छक्के छुड़ा दिए। पंगराज को अपने प्रवल शत्रु का सामना करने के लिए गज को छोड़कर अश्वारोहण करना पड़ा—

दल अग्गी, अग्गो अनी, हल मलियौ दल पंग।
यो उम्भी सुम्भै सुमुअ, तिहुपुर मंडम जंग॥ छं० ६८।[3]

कहने की आवश्यकता नहीं कि कान्यकुब्जेश्वर महाराज जयचन्द की इस युद्ध में भी पराजय हुई। पराजित होकर पंगराज कन्नौज लौट गया किन्तु इस पराजय के परिणाम स्वरूप पृथ्वीराज चौहान से वैमनस्यता की नींव और भी दृढ़ हो गई।

शहाबुद्दीन गोरी—दिल्ली-अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान तथा चित्तौड़ाधिपति रावल समरसिंह के अतिरिक्त पंगराज का एक और प्रबल शत्रु गोरी भी था। इतिहासकार गजनेश्वर से मिलकर पृथ्वीराज को पराजित करने का आरोप भी लगाते हैं। 'रासो' में भी उक्त मत का समर्थन प्राप्त होता है। 'पीपा युद्ध' में राजकुमारी हंसावती के विवाह हेतु जाते हुए पृथ्वीराज का मार्ग गजनीपति गोरी ने अवरुद्ध कर लिया था, उस समय पंगराज की भी विशाल सेना का सहयोग देने का उल्लेख कवि ने किया है—

चल्यौ राज सब सेन सजि विसि उज्जेनिय रग।
आई साहि जगह जुरन लयै सहायक पंग॥ छं० १२८।[4]

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्रा० स० काशी, छं० २, स० ५६।
२. वही, छं० ५, स० ५६।
३. वही, छं० ६८, स० ६५।
४. वही, छं० १२८, स० ३१।

पंगराज का गोरी को सहायता देने का मुख्य उद्देश्य यह जान पड़ता है कि वह अपने प्रबल शत्रु का विनाश देखना चाहता था। अतः इसी भावना से प्रेरित होकर वह बार-बार गोरी की सहायता करता था। रासोकार ने पंगराज तथा शाह गोरी की मैत्री का भी संकेत किया है—"जिन गज्जने सूर साहाब साही, निते मोक्ल्यो सेव निसुरति माही॥" यदि इसे मित्रता स्वीकार कर भी लिया जावे तो वस्तुतः यह एकांगी ही रही होगी।

'रासो' में यत्र-तत्र पंगराज को पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध गोरी को उकसाते हुए प्रदर्शित किया गया है। ग्रन्थकार ने वालुकाराय सोलंकी तथा गोरी द्वारा दिल्ली पर सम्मिलित आक्रमण का उत्तरदायी जयचन्द को ही ठहराया—

'वालुक्का हिन्दू कमंध, और सुगोरी साहि।
सममेद जयचन्द किय, पति दिल्ली समवाहि॥' छं० १।

'सामंत पंग युद्ध समय, में भी कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द ने पृथ्वीराज को वंदी बनाने के उपक्रम में गजनीपति गोरी को भी प्रोत्साहित किया था—

'सुविधि कौन सज्जिय समन, गहन याइ चहुआन।
तो सुरपुर भंजै नहीं, इह आधार विरान॥' छं० १०९।

उपर्युक्त छंदों को पढ़कर विद्वानों को जयचन्द पर आक्षेप करने का अवसर मिल जाता है, किन्तु वास्तविकता कुछ और थी। वस्तुतः पंगराज अपने प्रबल शत्रु पृथ्वीराज को परास्त देखना चाहता था यही कारण था कि कभी-कभी गोरी तथा जयचंद का साथ हो जाता था। वस्तुतः एक दूसरे को मित्र मानना भ्रम ही होगा।

अंतिम युद्ध में दिल्लीपति पृथ्वीराज को परास्त कर लेने के उपरान्त गोरी ने कन्नौज की ओर दृष्टिपात किया। कन्नौजपति पंगराज को पूर्णतया परास्त कर काशी तक के विशाल भू-भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। जयचंद को अन्तिम संग्राम अपने प्रबल प्रति-द्वन्दी गोरी से करना पड़ा था। कन्नौज पर गोरी के आक्रमण का कारण प्रस्तुत करते हुए श्री सत्यकेतु ने स्पष्ट किया है—"शाहाबुद्दीन गोरी केवल गजनी के राज्य सिंहासन से ही संतुष्ट नहीं हुआ, उसने पहले उत्तरी-पश्चिमी भारत से तुर्कों के शासन का अंत कर दिया, फिर पंजाब से आगे बढ़ कर दिल्ली और कन्नौज के चौहान तथा गाहड़वाल राजाओं के साथ युद्ध किया। अनेक युद्धों में परास्त होकर भी अन्ततः वह दिल्ली तथा शाकम्भरी के चौहान राजा पृथ्वीराज (तृतीय) को परास्त करने में समर्थ हुआ (११९२ ई०) और दो ही साल

---

१. पृथ्वीराज रासो, छं० १, स० ४१।

२. वही, छं० १०९, स० ५५।

बाद गाहड़वाल राजा जयचन्द को हराकर कन्नौज के राज्य पर उसने अपना अधिकार कर लिया।"[1]

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोरी ने कन्नौज पर आक्रमण अपने साम्राज्य को विशाल बनाने के लिए ही किया था। यह गोरी का सौभाग्य ही था कि उस समय भारत में आपसी फूट के कारण उसे सम्मिलित शक्तियों का सामना न करना पड़ा तथा उसके विशाल साम्राज्य बनाने का स्वप्न पूर्ण हुआ। गोरी के आक्रमण से कन्नौज आक्रान्त हो उठा।[2] गजनीपति शाह गोरी तथा कन्नौज की विशाल सेना के मध्य हुए इस घोर प्रलयकारी संग्राम में पंगराज युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ—

इन्द्र पयःधर लिग, रयन सध्यौ असुरावन।
दिसि कनवज्ज अखंत, सुन्यौ जैंचन्द पराइन॥
सयन सनम्मुप आय, जुद्ध भारत भर मच्यौ।
जित्यो तिनय साहब परत धर सिर वर नच्यौ॥
नरम्म न पान भावी विगति, असिल लष्प जित्ते असुर।
जैंचन्द कमध सत्रह सहस, हनिय लग्गि गय धारवुर॥ छं० २१९।[3]

इस प्रकार पंगराज अपने प्रबल एवं क्रूर प्रतिद्वन्दी शाह गोरी से पराजित होकर पराभव को प्राप्त हुआ।

गोरी के कन्नौज आक्रमण के विषय में समस्त इतिहासकार एक मत हैं। श्री के० एम० मुंशी ने भी इस युद्ध का वर्णन करते हुए गोरी की जीत का समर्थन किया है।[4] स्टेनली लेनपूल

---

१. सत्यकेतु विद्यालंकार—भा० स० इतिहास, पृ० ४१६।
२. पृथ्वीराज रासो, छं० २१५-१७, स० ६८।
३. वही, छं० २१९, स० ६८।
4. Within a year of the fate-ful battle of Taraori, Ghuri with lightning speed marched against Jay Chandra who fell fighting on the field of Chandwar. Ghuri proceeded with total distructiveness Men were massacred. Towns were rooted. Smiling Madhyadesa was a charred ruin. The conquerors then proceeded to the Capital of Jay Chandra. India looked on terror-struck. Varanasi, the intellectual and spiritual centre of India, from where for centuries had flown inspiration and knowledge, fell in to the hands of the foreign invader. A thousand temples were laid low. Mosques rose in their places. Jayachandra's son Harichandra, a boy of eighteen retired to a distant place and kept up his independence. K. M. Munshi, The Glory that was Gurjaradesa (The Imperial Gurjaras) Pt. III, page 206, Bhartaya Vydya Bhawan Bombay. 1st edition, 1944.

ने गोरी के विशाल साम्राज्य स्थापना की प्रसंशा बड़े मुक्तकंठ से की है–"महान सुल्तान की मृत्यु के उपरान्त गोरवंश का साम्राज्य पहाड़ी सामन्तत्व में परिवर्तित हो गया परन्तु जो राज्य भारत में उसने जीता था उसे इस्लाम ने खोया नहीं। दूसरे राजाओं ने उसे संगठित किया और गोरी के समय से लेकर सन् १८५७ की भारतीय क्रान्ति तक सदैव मुसलमान राजा दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ रहा।"[1]

अवसान–शाह गोरी का आक्रमण सुनकर कान्यकुब्जेश्वर भी अपना अगणित सैन्यबल लेकर, जिसमें लगभग सौ हाथी तथा एक करोड़ से भी अधिक संख्या में मनुष्य रहे होंगे[2] विदेशी आक्रमण का सामना करने के लिए आगे बढ़ा।[3] पृथ्वीराज रासो के मतानुसार यह युद्ध सात दिनों तक चलता रहा। जिसमें पंगराज की पराजय हुई तथा क्षोभ के कारण उसने जल समाधि ले ली।[4] 'रासो' के उक्त कथन का 'रासमाला' ने भी समर्थन किया है।[5] मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता के मतानुसार युद्ध के अन्तर्गत 'बनारस का राय' जो कि एक हाथी पर अत्यन्त ऊँचे हौदे पर बैठा था, कुतुबुद्दीन के हाथों छूटे हुए एक बाण से संघातक आघात पाकर धराशायी हुआ। उसका मुण्ड भाले की नोक पर उठा लिया गया तथा धड़ उपेक्षा से धूल में फेंक दिया गया।[6]

उपर्युक्त मतों में 'रासो' का विवरण ही अधिक उचित प्रतीत होता है। पंगराज एक स्वाभिमानी व्यक्ति था। संभव है, अपने आत्म सम्मान की रक्षा करता हुआ, युद्ध भूमि में अपार पराक्रम प्रदर्शित करने के उपरान्त गंगा की पावन लहरों में उसने समाधि ले ली हो। वास्तव में रासो का वर्णन पंगराज का स्वाभिमान देखते हुए उचित ही है।

जयसिंह–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा में ३९वीं पीढ़ी में राजा आनल्ल राज चौहान के उपरान्त उनका एक मात्र उत्तराधिकारी जयसिंह गद्दी पर बैठा। इन्होंने १०८ वर्ष तक अजमेर पर आनन्द पूर्वक राज्य किया तथा उसके उपरान्त अपने पुत्र आनन्ददेव को राज्यभार सौंप दिया।[7] रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति, धारणोज की प्रति तथा बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति, उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है। साहित्य-संस्थान उदयपुर से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' जयसिंह के विषय में मौन है।

---

१. श्री नेत्र पाण्डे, भारत का बृहत इतिहास—भाग २, पृ० ७२।
२. इलियट, हिस्ट्री आव इंडिया, जि० २, पृ० २५।
३. वही, पृ० २५१, ब्रिज फिरिश्ता, जि० १, पृ० १७८।
४. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, जि० ६।
५. फेबिस-रासमाला, भाग १, पृ० २२३।
६. ब्रिज-फिरश्ता, पृ० १९२।
७. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ६०८-६११, स० १।

शिलालेख एवं संस्कृत ग्रन्थ जिनमें चौहानों की वंशावली दी हुई है, इनके विषय में सर्वथा मौन है।[1]

पं० सदाशिव दीक्षित प्रबन्धकोष, हम्मीर महाकाव्य, तथा सुर्जन चरित के जगदेव को ही जयसिंह मानते हैं। उन्होंने लिखा है कि 'इनका नाम रासो में 'जयसिंह' और प्रबधकोष, हम्मीर महाकाव्य तथा सुर्जन चरित में 'जगदेव' उल्लिखित है। शिलालेख तथा पृथ्वीराज विजय में इसका संकेत नहीं मिलता।'[2] पता नहीं पंडित जी ने ऐसी क्लिष्ट कल्पना कैसे कर ली। कल्पना पर आधारित होने के कारण पंडित जी का मत ग्राह्य नहीं हो सकता।

ध्रमसार अथवा धर्मसार–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंशावली की २७वीं पीढ़ी में राजा लोहधार अथवा लोहसार चौहान के उपरान्त धर्मसार राज्य गद्दी पर बैठे कवि ने इनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[4] किन्तु धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो इनके विषय में पूर्णतः मौन है। शिलालेख एव संस्कृत के ग्रन्थ जिनमें चौहानों की वंशावली का उल्लेख हुआ है, उनमें भी धर्मसार का नाम नहीं मिलता है।[5]

पंडित सदाशिव दीक्षित जी धर्मसार के विषय में लिखते है–इसका नाम शिलालेख में गुंदु, प्रबंधकोष में गुड्राज तथा सुर्जन चरित में गुंडदेव मिलता है। परन्तु इसका स्मरण पृथ्वीराजविजय में, हम्मीर महाकाव्य में तथा रासो में क्रमशः गोविंदराज, गंगदेव, तथा धर्मसार, इन भिन्न-भिन्न नामों से किया गया है।[6] पंडित जी का मत पुष्ट प्रमाणों के अभाव में सर्वथा अग्राह्य है।

धर्माधिराज–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा में ३५ वीं पीढ़ी में राजा प्रथवराइ अथवा प्रथवराय के उपरान्त धर्माधिराज उनका उत्तराधिकारी हुआ, जिसने छहों प्रकार के योगों को भली भांति भोगा।[7] रासोकार ने इनका विशेष विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[8]

---

१. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट।
२. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० १२३।
३. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८९, स० १।
४. रासो की हस्त लिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
५. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट।
६. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११७-११८।
७. पृथ्वीराज रासो ना० प्र० स० काशी, छं० २९२, स० १।
८. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।

किन्तु धारणोज की प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो इनके विषय में सर्वथा मौन हैं। बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति में इनका नाम मिलता है, किन्तु यह सूचना प्राप्त नहीं होती कि यह प्रथवराई के उत्तराधिकारी थे। मानिक्यराव चौहान के वंश में ही कवि ने धर्माधिराज का नाम दे दिया है।[1]

डॉ० दशरथ शर्मा धर्माधिराज को उपाधिमात्र मानते हैं तथा उनका कथन है कि संभवतः यह चामुण्डराय हो। उन्होंने लिखा है–'माणिक्यराय का नाम प्रायः सभी ही ख्यातों और कुछ पुराने शिलालेखों में प्राप्त है उसका वंशधर धर्माधिराज संभवतः राजा चामुण्डराज हो। उसने नरवरा में भगवान विष्णु का मंदिर बनवाया था (पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, सर्ग ५, श्लोक ६८)। अतः अत्यत धर्मिष्ट होने के कारण ही उसे धर्माधिराज पदवी मिली होगी।''[2] डॉ० शर्मा जी का मत भी संभावना पर अधिक आधारित है। अतः निश्चित रूप से मानने में संकोच ही रह जाता है।

नागहस्त–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश वृक्ष की २३वीं पीढ़ी में राजा संप्रतिराय के उपरान्त उनका पुत्र राज्यगद्दी का उत्तराधिकारी हुआ।[3] ग्रन्थकार ने वंशवृक्ष के अन्तर्गत ही इनका उल्लेख किया है, वैसे समस्त ग्रन्थ इनके विषय मे मौन है। रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[4] धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो इनके विषय में मौन हैं। शिलालेख एवं प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ भी इनके अस्तित्व में संदेह करते हैं।[5]

पंडित सदाशिव दीक्षित इनका नाम नागराज मानते हैं तथा प्रशस्ति आदि के सिंहराज नामक राजा में आरोपित करते हैं–''इसे प्रशस्ति आदि में सिंहराव कहा गया है, परन्तु रासो में नागराज। रासो के आधार पर इसका नाम 'नागहस्त' लिखना अर्थानभिज्ञता है क्योंकि रासो में लिखा है–

'सुअ नागहथ्थ सम नागराज।' सुर्जनचरित में इसका अनुल्लेख आश्चर्यजनक है।''[6] पंडित जी का नागहस्थ के स्थान पर नागराज नाम तो किसी प्रकार ग्राह्य हो भी सकता है किन्तु

---

१. पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, राजस्थानी भाग ३, अंक ३, जनवरी १९४०, पृ० २।
२ वही पृ० ४।
३ पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८९, स० १।
४. 'रासो' की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
५. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट।
६. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११६।

सिद्धराज में आरोपित करने वाली बात समझ में नहीं आती। यह कैसे कहा जा सकता है कि यह दोनों व्यक्ति एक ही है अथवा एक ही व्यक्ति के दोनों नाम हैं। वास्तव में पर्याप्त सामग्री न होने के कारण ही विद्वानों ने ऐसी अटकलें लगायी है।

प्रतापसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश की १९वीं पीढ़ी में राजा चन्द्रगुप्त चौहान के उपरान्त उनका पुत्र प्रतापसिंह उनका उत्तराधिकारी हुआ।[1] रा० ए० सो० लंदन की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[2] धारणोज तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो इनके विषय में मौन है। शिलालेख एवं संस्कृत ग्रन्थ भी इनका कुछ विवरण प्रस्तुत नहीं करते हैं।

पंडित सदाशिव दीक्षित चन्द्रगुप्त एवं प्रताप सिंह को एक ही व्यक्ति मानते हुए लिखते है कि—'इनके नाम प्रशस्ति और पृथ्वीराजविजय में चन्द्रराज, शिलालेख में शशिनृप, सुर्जन चरित में चन्द्र और रासो में प्रतापसिंह बतलाये गए हैं, परन्तु रासोकार को इसका नाम चन्द्र भी परिज्ञात है। वह कहता है कि—

सुअ चन्द्रगुप्त सम चन्द रुप।
परतापसिंह आरन्नदूप॥

यह बात समझ में नहीं आती कि श्री ओझा जी ने 'चन्द्रगुप्त' इस एक और नाम की कल्पना किस आधार पर की है। प्रबधकोष और हम्मीर महाकाव्य मे इस चन्द्रराज का अनुल्लेख कुछ कम महत्वशाली नहीं है।'[3] सामग्री अभाव के कारण पंडित जी का मत ग्राह्य नहीं है। संभावनाओं पर निर्णय देना भूल होगी।

प्रथवराई—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा में ३४ वी पीढ़ी मे राजा घानन्नराय चौहान के उपरान्त उनका एक मात्र उत्तराधिकारी प्रथवराय हुआ, जिसने अपनी राज्य की सीमा की वृद्धि की।[4] कवि ने इनका विशेष परिचय नहीं दिया है। रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है किन्तु इस प्रति में प्रथवराई के स्थान पर 'प्रमराई' लिखा है। प्रथवराई का प्रमराई होना लिपिकारों की असावधानी का ही परिचायक है।[5] किन्तु रासो की अन्य समस्त प्रतियों में इनके विषय में एक शब्द भी प्राप्त नहीं होता। शिलालेख एव संस्कृत ग्रन्थ जिनमें चौहानों की वंशावली का उल्लेख हुआ

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८७, स० १।
२. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
३. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११५।
४. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २९१, स० १।
५. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।

है, वह सब प्रथवराई के विषय में मौन है।[1] प्रथवराई के सम्बन्ध में उपर्युक्त समस्त ग्रन्थों का मौन, इनके अस्तित्व में संदेह पैदा कर देता है। अन्य प्रमाणों के अभाव में इनके विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

पृथ्वीराज चौहान–दिल्ली अजमेर का अंतिम हिन्दू शासक महाराज पृथ्वीराज चौहान वंशी थे। 'पृथ्वीराज रासो' को आद्योपान्त पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज का जन्म चौहान वंशी ढूंढा दानव की ज्योति से हुआ था। ग्रन्थकार लिखता है।

'ढुंढ रुप दानव उतंग, वौलि आना नरिंद दिय।
अस्ति सकल्ल सामंत तेज प्रथिराज वीर विय।
वल. विक्रम अति सूर जीह कवि चन्द प्रमानं।
एक ठाम उप्पजे एक थल मरन निधानं।
संजाल काल दिल्ली रही, चौसट्ठा टोडर समनि।
दैवत्त पहु देवान गति, दैव गत्ति जोगा सधनि।'[2] छ० ५५७।

उपर्युक्त छन्द से स्पष्ट है कि महाराज पृथ्वीराज का जन्म ढूंढा दानव की ज्योति से हुआ था। ग्रन्थकार कवि चन्द वरदायी तथा पृथ्वीराज को समवयस्क होने का प्रमाण निम्नलिखित छंद से स्पष्ट होता है—

दानव कुल छत्रीय नाम ढुंढा रष्पस वर।
तिहि सु जोत प्रथिराज सूर सामंत अस्ति भर।
जीह जोति कविचन्द रुप सजोगि भोगि भ्रम।
इक्क दीह ऊपन्न इक्क दीहै समाय क्रम।
जथ्थ कथ्थ होई निर्भये, जोग भोग राजन लहिय।
वज्रंग बाहु अरि दलमलन, तासु कित्ति चंदह कहिय।'[3] छ० ६९२।

दानव कुल में ढुंढा नाम का एक श्रेष्ठ राक्षस हुआ, उसकी ज्योति से महाराज पृथ्वीराज ने जन्म लिया, हड्डियों से शूर सामंत उत्पन्न हुए, जिह्वा की ज्योति से कवि चन्द का जन्म हुआ, रूप से संयोगिता हुई, यह सब एक ही दिन उत्पन्न हुए तथा एक ही दिन विनिष्ट हो गए, इसी प्रकार से उनकी कथा है। राजा को योग तथा भोग दोनों ही प्राप्त हुए, शत्रु दल का दलन करने वाले व्रजवाहु चौहान नरेश की कीर्ति कवि चन्द ने वर्णन की। अन्य कई स्थानों पर भी कवि ने अपना जन्म तथा पृथ्वीराज का जन्म एक साथ ही होना लिखा है तथा साथ ही दोनों ने शरीर भी त्याग किया।

---

१. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट।
२. पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५५७, स० ६७।
३. वही छं० ६९२, स० १।

ज्यों नयो जनम कवि चन्द को, नयो जनम सामन्त सव।
इक थान जनम मरनह सु इक, चलहि कित्त ससि लग्गि रव।[1] छं० ७६०।

अर्थात जिस प्रकार कवि चन्द तथा अन्य सामान्तों का जन्म हुआ तथा एक ही स्थान पर जन्म और एक ही स्थान पर मरण का वर्णन करूंगा। जब तक सूर्य-चन्द विद्यमान है तब तक उनकी कीर्ति बनी रहेगी। अंतिम युद्ध में कवि चन्द को वीरभद्र द्वारा पृथ्वीराज की पराजय तथा सुलतान गोरी द्वारा उनके वन्दी बनाए जाने की सूचना मिली जिससे वह अत्यन्त दुखी हुआ। अपनी अपार वेदना को प्रकट करते हुए कवि ने लिखा है—हे श्रेष्ठ वीर, माया-मोह के अपार उदधि में डूबा हुआ, एक साधारण मनुष्य, मैं तत्व क्या समझूं। मैं तथा राजा पृथ्वीराज एक ही साथ उत्पन्न हुए थे, एक स्थान पर निवास किया और सदैव साथ ही साथ रहे हैं, हम दोनों स्नेह पाश में तो बंधे ही थे, किन्तु राजा पृथ्वीराज का मुझ पर अपार प्रेम था। समस्त सामन्त भी स्नेह बंधन में बंधे थे, बालस्नेह ने हृदय में घर कर लिया है, हे वीरभद्र! संसार में स्नेह ही आनन्द का देने वाला है, फिर हृदय से इसे किस प्रकार विलग किया जावे—

कहै तास कवि चन्द अहो वीराधि धीर सुनि।
हम मनुष्ठ मय मोह उदधि बुड्डे सुतत्त तुनि।
हमहि राज इक बास सथ्थ उतपन्न संग सदि।
नेह बंध वंधियं करिय अति प्रीति राज रिदि।
सामंत सकल अति प्रेम तर, बाल नेह उर धुर कियौ।
बलिभद्र नेह संसार सुष, किम सुनेह छंडै जियौ।[2] छं० १७०२।

एक स्थान पर रासोकार ने पृथ्वीराज के जन्म सम्वत् के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

एकादस सै पंच दह, विक्रम साक आनन्द।
तिहि रिपु जय पुर, हरन को भय प्रिथिराज नरिंद।[3] छं० ६९४।

उपर्युक्त छन्द के अनुसार महाराज पृथ्वीराज का जन्म अनन्द विक्रम सम्वत् १११५ में हुआ (पं० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या के अनुसार १११५+९१=१२०६ विक्रम संवत् सिद्ध हुआ)। किन्तु महामहोपाध्याय, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने तो आनन्द सम्वत को एक 'भ्रमात्मक सम्वत्' का नाम दिया है। सम्वतों के विषय में एक स्थान पर लिखा है—'रासो में दिए हुए सभी सम्वत् अशुद्ध है। कर्नल टॉड ने रासो के आधार पर चौहानों का इतिहास

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७६०, स० १।
२. वही, १७०२, स० ६६।
३. वही, छं० ६९४, स० १।

लिखते समय सम्वतों की जांच कर उन्हें अशुद्ध बताया और लिखा कि आश्चर्यजनक भूल के कारण सब चौहान जातियां अपने इतिहासों में १०० वर्ष पहले के सम्वत् लिखती है। रासो को प्राचीन सिद्ध करने की खींचतान के प० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या ने टॉड का बताया हुआ १०० वर्ष का अन्तर देख कर एक नए 'भटायत' सम्वत् की कल्पना कर वि० सं० १९४४ में 'रासो की प्रथम संरक्षा' नामक 'पुस्तिका लिखी, परन्तु इस कल्पना से भी रासो के सम्वतों की अशुद्धि दूर न हुई। इससे पृथ्वीराज के जन्म संवत् १११५ में ४३ साल जोड़कर उसकी मृत्यु ११५८ भटायत सम्वत अर्थात् वि० स० १२५८ में माननी पड़ती थी, परन्तु वि० सं० १२४९ में अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से उसकी मृत्यु सिद्ध थी। इस वास्ते इन ९ वर्षों की कमी पूरी करने के लिए उन्होंने पृथ्वीराज के जन्म सम्वत् सम्बन्धी दोहे में *'अनन्द'* शब्द को देखकर आनन्द सवत की कल्पना की है और उक्त शब्द का अर्थ अनन्द' अर्थात सौ रहित किया। फिर इसे नौ रहित सौ अर्थात् ९१ वर्ष का अन्तर बताकर उन्होंने उक्त नवीन सवत की कल्पना की और कहा कि पृथ्वीराज रासो में दिए हुए सब सम्वतों मे ९१ जोड़ देने से वे शुद्ध विक्रम सम्वत हो जाते हैं।"[1] पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् बड़ा विवादग्रस्थ विषय है। वाह्यसाक्षों के आधार पर इस विषय में निराशा ही हाथ लगती है। वि० सं० १२२७ के बिजौलियाँ के शिलालेख, १२वीं शताब्दी का *'पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य'* १४वीं० शताब्दी का 'प्रबन्धकोप', १५ वीं शताब्दी का हम्मीर महाकाव्य तथा १६ वीं शताब्दी का मुर्जन-चरित भी इस विषय में मौन हैं। 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य में कवि जयानक ने पृथ्वीराज का जन्म ज्येष्ठ मास द्वादशी को होने का उल्लेख किया है, सम्वत् का उल्लेख वहां भी नहीं है।[2]

'बलभद्र विलास'[3] नामक ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म सम्वत ११३२ माघ शुक्ल त्रयोदशी, शुक्रवार की दोपहर को दिन के समय पुष्य नक्षत्र अभिजित मुहूर्त में, सब लोगों के

---

१. ओझा, कोशोत्सव स्मारक संग्रह–पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल।

२ ज्येष्ठत्वं चरितार्थतामथ नयद्रानान्तरापेक्षया।
ज्येष्ठस्य प्रथयन्परंतपत्तया ग्रीष्मस्य भीष्मां स्थितीम्।
द्वादश्यास्तिथि मुख्यतामुपदिशन्भानोः प्रतापोन्नतिम्।
तन्वनगोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना॥ सर्ग ७ पृ० २४३।

३. अथ स माघ मासे तु त्रयोदश्यां सिते भृगौ।
पुष्ये द्वित्रीन्दुचन्द्रेऽब्दे मध्यान्हेऽभिजितक्षगे॥ १॥
मुदिते लोक सन्ताने तदा पुत्रमजीजनत।
ये वदन्ति नराः सर्वे धार्तराष्ट्रावतारकम्॥ २॥
आजानुबाहुः शशिपूर्णभास्यः पद्मायताक्षो मदनैक रुपः।
घोरप्रहन्ता क्षितिभारहर्ता वंशावतंसो नरदेहजज्ञः॥ ३॥ बलभद्र विलास।

प्रसन्न काल में कमला के हुआ, जिनको सब मनुष्य दुर्योधन का अवतार कहते हैं। वह बालक लम्बी भुजा वाला, चन्द्रमा के समान मुख कान्ति वाला, कमल सदृश नेत्रों वाला, कामदेव के समान रूप वाला, वीरहन्ता भूमि के भार को हटाने वाला, चौहान वंश में भूषण नरदेही हुआ।

यदि वि० सं० ११३२ को पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् मान लिया जावे तो उसकी सम्पूर्ण आयु ११७ वर्ष की ठहरती है, क्योंकि उसकी मृत्यु वि० सं० १२४९-५७ (ई० सं० ११९२) सर्व विदित है। अतः 'बलभद्र विलास' के सम्वत् को भी प्रमाणिक नहीं मान सकते।

'रासो' में दिए हुए पृथ्वीराज चौहान के जन्म सम्वत् को अप्रामाणिक मानते हुए डॉ० माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं कि—"पृथ्वीराज के जीवन काल के जो अन्य अभिलेख मिले हैं, वे भी सं० १२३६ तथा सं० १२४५ के बीच के हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पृथ्वीराज के प्रौढ़ जीवन से सम्बन्धित समस्त तिथियां विक्रमीय तेरहवीं शती की है, किन्तु ऊपर हमने देखा है कि रासो में दी हुई समस्त तिथियां विक्रमीय बारहवीं शती की हैं। इसलिए यह प्रकट है कि रासो की तिथियां नितान्त कल्पित हैं। रासो की तिथियों को शुद्ध प्रमाणित करने के लिए विक्रमीय सम्वत् से ९१ वर्ष पिछड़े हुए अनन्द नामक सम्वत् की कल्पना की गई है, किन्तु कल्पना से भी अन्तर का समाधान नहीं होता।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से पृथ्वीराज के जन्म सम्वत् पर प्रकाश नहीं पड़ता वरन् विषय और भी उलझ जाता है। किन्तु विवश होकर यहाँ इतने से ही सन्तोष करना पड़ता है कि 'रासो' के अनुसार कवि चन्द तथा पृथ्वीराज का जन्म साथ ही साथ हुआ था। प्रमाणों के अभाव में जन्म सम्वत् पर निर्णय देना असम्भव है। अब भी इस विषय पर पर्याप्त अनुसंधान की आवश्यकता है।

जन्म सम्वत् विवादास्पद होने पर भी एक स्थान पर कविराव मोहनसिंह ने 'रासो' के सम्वत् को ही प्रमाणिक मानते हुए लिखा है—"पृथ्वीराज के जन्म सम्वत् पर अन्य लेखक केवल अनुमान ही लगाते रहे है। उसके जन्म सम्वत का उल्लेख केवल पृथ्वीराज रासो में ही अ० सं० १११५ (वि० सं० १२०५-६) हुआ है, जिसकी पुष्टि 'पृथ्वीराजविजय' और हम्मीर महाकाव्य के लेख से ही हो जाती है। 'पृथ्वीराज विजय' में लिखा है कि पृथ्वीराज की सुवास्था को सुनकर सब राजकन्याएं अनुराग प्रकट करने लगीं और पूर्व जन्म में वियोग रहने के कारण घबराई हुई सीता ने अपने समान गुण वाली अनेक स्त्रियों के बहाने अनेक रूप धारण करके पृथ्वीराज का अभिनन्दन कर सन्तोष पाया (पृथ्वीराज को वरण करके सन्तुष्ट हुई)। इसके बाद लिखता है कि 'तत्पश्चात गजनी के स्वामी गोरी का आधिपत्य खोजाने,

---

१. डा० माताप्रसाद गुप्त; पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और रचना तिथि, पृ० ९६०, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, २, अक्टूबर, १९५९।

से भारतीय राज मंडली ही को चन्द्रमंडल मान इसकी शोभा को विनष्ट करने के हेतु वह राहु बनना चाहा, उसने पृथ्वीराज के पास दूत भेजा...दूत की बात सुनकर पृथ्वीराज ने भृकुटि चढ़ाई...तब मंत्री (कैमास) ने कहा...अभी क्रोध करने का अवसर नहीं है'। 'तिलोत्तमा' के पीछे सुन्द-उपसन्द नष्ट हुए वैसे ही शत्रु (गोरी और गुजराती) स्वतः (एक दूसरे से लड़कर) नष्ट हो जायगे। मंत्री ऐसा कह ही रहा था, इतने में गुर्जर मंडल से एक आदमी आया उसने निवेदन किया कि गुर्जरों ने गोरियों का पराभाव (पराजय) कर दिया है।' 'इस घटना को संस्कृत लेखक वि० सं० १२३२ और मुसलमान लेखक १२३५ में हुई मानते हैं। तथा स्वर्गीय गौरीशंकर ओझा ने मूलराज के शासन का अंत और भीम (द्वितीय) के शासन का प्रारंभ (वि० सं० १२३५) के निकट माना है। अतः इस युद्ध से पूर्व ही पृथ्वीराज युवा हो चुका और कितनी ही राजकन्याओं से विवाह कर चुका था. उसका छोटा भाई हरिराज भी इन घटना से पूर्व ही 'पृथ्वीराज विजय' के लेखानुसार कवच धारण करने (युद्ध में जाने) योग्य (युवा) हो पाया था।

'हम्मीर महाकाव्य' में लिखा है 'जब पृथ्वीराज सब शस्त्र-शास्त्र विद्या में कुशल हो गया, तब सोमेश्वर उसे राज्य सौंप स्वयं योगाभ्यास में लग गया। पृथ्वीराज न्याय पूर्वक प्रजा पालन करता और शत्रु को भयभीत रखता था। उसी समय शहाबुद्दीन (गोरी) इस पृथ्वी (भारत) को अधीन करने का परिश्रम करने लगा, उसने कई क्षत्रियों का नाश करके मुलतान में अपनी राजधानी स्थापित की। तब पश्चिम प्रान्त के राजाओं ने आकर अपने अगुए गोविन्दराज के पुत्र चन्द्रराज के द्वारा पृथ्वीराज से निवेदन किया। तिस पर पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन पर चढ़ाई करके उसे बन्दी बनाया, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि सोमेश्वर की जीविनावस्था में (वि० १२३२-३६ से पूर्व) ही पृथ्वीराज सर्व शस्त्र-शास्त्र विद्या में पारंगत और राज्य कार्य में कुशल हो गया था। उसके पिता ने उसे अपनी उपस्थिति में ही राजा बना दिया और आप (शास्त्र नियमानुसार वानप्रस्थावस्था ५० वर्ष से आरम्भ होती है, उसको प्राप्त कर) योगाभ्यास मे लग गया। उसके बाद मुलतान पर शहाबुद्दीन ने राज्य स्थापित (वि० स० १२३२ में) किया, तब उधर के राजाओं ने पृथ्वीराज से पुकार की और पृथ्वीराज ने चढ़ाई कर शहाबुद्दीन को पकड़ा। अतः वि० स० १२३२ से पूर्व ही पृथ्वीराज शस्त्र-शास्त्र विद्या एवं नीति कुशल और शत्रु को दबाने योग्य (तरुण) अवस्था प्राप्त कर चुका था।

महोबा के राजा परमर्द्दी (परिमाल) पर भी पृथ्वीराज ने वि० सं० १२३९ से पूर्व ही विजय प्राप्त की थी, जिसका लेख मदनपुर नामक ग्राम के एक मंदिर के स्तम्भ पर वि० सं० १२३९ में लगाया गया।

यदि पृथ्वीराज का जन्म आक्षेपकर्ताओं के अनुसार वि० सं० १२२२ के आस-पास माना जाय तो वि० सं० १२३२ के निकट उसकी आयु लगभग १० वर्ष की ठहरती है। जबकि इस समय तक उसके कई विवाह होना, शहाबुद्दीन को कैद करना, सोमेश्वर का

मोहाम्माम के लिए प्रस्थान करना, एवं परमर्दी पर पृथ्वीराज का विजय पाना आदि घटनाएं घट चुकी थीं। ऐसी स्थिति में एक दस वर्षीय बालक के लिए उपर्युक्त कामों को कर लेना हास्यास्पद सा लगता है। अतः रासो के उल्लिखित अनन्द सम्वत ११११५ (वि० सं० १२०५-६) ही उनका जन्मकाल बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार कर लिया जाय तो अनुपयुक्त न होगा।"[1]

कवि राव मोहनसिंह के कथन में सत्यता का पर्याप्त अंश होते हुए भी निश्चित रूप से पृथ्वीराज का जन्म संवत् ११९५ मान लेना उचित नहीं है।

माता-पिता—सम्पूर्ण 'पृथ्वीराज रासो' पृथ्वीराज के चरित्र से परिपूर्ण है, जैसा कि ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट है। रासोकार के मतानुसार पृथ्वीराज की माता का नाम कमला, जो दिल्लीपति अनंगपाल की पुत्री थी, तथा पिता का नाम सोमेश्वर था।

अनंगपाल पुत्री उभय, इक दिन्नी विजपाल।
इक दिन्नो सोमेस को, बीज ववन कलिकाल ॥ छं० ६८१।
एक नाम सुर सुन्दरी अनिवर कमला नाम।
दरसन सुर नर दुल्लही, मानो सुकलिका काम ॥ छं० ६८२।
सोमेसुर तोमर धरणि, अनंगपाल पुत्रीय।
तिहि गभंह पृथिराजु धरि, दानव कुल क्षत्रिय। छं० ६८५।[2]

अर्थात् सोमेश्वर की रानी तवरानी अनंगपाल की पुत्री के अपने गर्भ से उस कुल (चाहुवान वंश में) उत्पन्न दानव (ढुंढा) को पृथ्वीराज के रूप में धारण किया। अतः स्पष्ट है कि पृथ्वीराज की माता का नाम कमला तथा पिता का नाम सोमेश्वर था। 'रासो' के प्रायः सभी संस्करण उक्त मत का समर्थन करते है।

बाल्यकाल—बालक पृथ्वीराज का जन्म हुआ। राज महल में अपार हर्ष फैल गया। राजा सोमेश्वर पुत्र रत्न प्राप्त कर आत्म विभोर हो उठे। सोमेश्वर द्वारा योग्य तथा अनुभवी ज्योतिषियों को बुलाकर पृथ्वीराज के भविष्य के विषय में पूछने पर, ज्योतिषियों ने बताया कि—'इस नवजात श्रेष्ठ राजकुमार की जन्म पत्रिका में जन्म लग्न फलों के अनुसार यह ४३ वर्ष का होने तक इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) तथा पंच सरिताओं युक्त पंजाब की पृथ्वी को भोगेगा। हे सोमेश्वर ! आपकी ज्योति को धारण किए हुए यह श्रेष्ठ संभरी दिल्ली भोक्ता, गजनेश्वर को बंधन में ले-लेकर मुक्त करेगा तथा इस तरह अपने जन्म को सार्थक करेगा।" बालक

१. कविराव मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो, प्रथम भाग, सम्पादकीय—पृ० ९-१० प्रकाशक-साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, प्रथम संस्करण, संवत २०११।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६८१-८५, स० १।
३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान, उदयपुर, आदि कथा, छं० ५८, स० १।

पृथ्वीराज का भविष्य सुन, राजा सोमेश्वर को हर्ष भी हुआ और विषाद भी। हर्ष इस कारण कि पृथ्वीराज विशाल भू-भाग का स्वामी होगा तथा विषाद इस कारण कि उसके कारण उनके (सोमेश्वर) ससुराल वालों का अनिष्ट होगा। अन्त में ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की कि मेरी बात पर विश्वास करो बालक पृथ्वीराज का उत्पन्न होना वास्तव में सब प्रकार से श्रेष्ठ है।"[1]

बालक पृथ्वीराज का लालन-पालन महलों में सुख पूर्वक होने लगा। किसी प्रकार की चिन्ता एवं अभाव न होने के कारण बालक दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा। कवि चन्द्रवरदायी ने एक छन्द में बालक का रूप वर्णन तथा उसके शारीरिक विकास को देखकर इस प्रकार लिखा है—

"अन्य बालक जितने एक वर्ष में बढ़ते हैं उतना ही पृथ्वीराज एक मास मे बढ़ने लगे। जब वह एक वर्ष, एक मास, एक पक्ष, एक दिन, एक घड़ी तथा एक पल के हुए तो शुभ मुहूर्त में बाहर लाए गए। उनके गले में मणियों की माला पड़ी हुई थी, जिसमें सिंह के नाखून शोभा पा रहे थे।"[2] बालक पृथ्वीराज अपने परिवार को आनन्द देने वाले तथा शत्रुओं को त्रास देने वाले थे। पृथ्वीराज बत्तीस लक्षणों तथा बहत्तर कलाओं से युक्त थे। पृथ्वीराज अपने हाथ में गुलेल लेकर क्रीड़ा करते तो ऐसा प्रतीत होता, मानो साक्षात कामदेव ही अवतरित हुआ हो, अन्तर केवल इतना था कि उनके हाथों में पुष्पबाण के स्थान पर गुलेल थी।

शिक्षा—बालक पृथ्वीराज अपनी बाल्यावस्था में ही गुरु राम पुरोहित के पास विद्याध्ययन के लिए भेजा गया बालक अपनी प्रखर बुद्धि के कारण शीघ्र ही चौदह विद्याओं में निपुण हो गया तथा पट्टी पर सुन्दर लिपि लिखना भी सीख लिया। अल्पकाल में ही बालक पृथ्वीराज ७२ कलाओं का ज्ञाता हो गया तथा ८४ कलाओं (विज्ञानों) में भी विशेष योग्यता प्राप्त कर ली। कवि ने इनकी बहुज्ञता पर इस प्रकार प्रकाश डाला है—बालक पृथ्वीराज शीघ्र ही समस्त विद्याओं में पारंगत हो गए। विद्या, वंशविचार, सत्य, विनय, पवित्रता, साम्यभाव, सम्मान, श्रेष्ठ स्थान, सुख का भाव, विजय, सौजन्य, सौभाग्य, पूर्णरूप, लावण्य प्रेमी, चित्रकला, सदाचार, सगीत और मिलन, इन्हीं सब श्रेष्ठ लक्षणों से उसने अपनी कलाओं का विस्तार किया।"[3] बालक पृथ्वीराज में गंभीर गुणों का अभाव न था। वीर पृथ्वीराज गौ तथा ब्राह्मण की रक्षा करने वाला और नाना प्रकार के दान देने वाला था। इतना ही नहीं सत्ताईस प्रकार के शास्त्रो के पठन में व शब्दादि के उच्चारण

---

१. पृथ्वीराज रासो, छं० ५३, स० १।

२. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, आदि कथा; छं० ५६ स० १।

३. वही, छं० ६०-६३, स० १।

में भी वह निपुण था।[1] ग्रन्थकार ने एक प्रस्थान पर सूचित किया है कि पृथ्वीराज चौहान को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पिशाचिका, मागधी और सूरसैनी आदि छः तत्कालीन भाषाओं का पूर्ण ज्ञान था—

संस्कृत, प्राकृतं चैव, अपभ्रंश पिशाचिका।
मागधी सूरसैनी च, षट भाषाश्चैव ज्ञायते। ६५।[2]

इतना ही नहीं, वह विनयी गुरुजनों का सम्मान करने वाला, सर्वज्ञ और सबका पालन करता था। उसके शरीर पर श्रेष्ठ ३२ लक्षण शोभा पाते थे। पृथ्वीराज पठन-पाठन में ही निपुण न था अपितु वह सब कलाओं का मरमज्ञ अस्त्र-शस्त्र चलाने तथा शत्रुओं का नाश करने में भी उतना ही निपुण था, जितना अन्य कलाओं में—पृथ्वीराज शत्रुरूपी वृक्षों को काटने के लिए कुठार तथा अपने कुल रूपी कमल को विकसित करने के लिए प्रखर किरणों वाला भास्कर के समान था। वह षठ दर्शनों का प्रेमी, सेवा करने वाला तथा कामनियों के लिए साक्षात काम मूर्ति तथा ब्राह्मणों का पालन करने वाला था।[3]

संक्षेप में पृथ्वीराज चौहान सर्व कला निपुण था, उसकी योग्यता देखकर तत्कालीन राजाओं ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली थी। वह पृथ्वीपतियों का स्वामी था, उसे छत्तीस कुल के क्षत्रियों ने अपना सिरमौर मान लिया था। सम्पूर्ण रूप से बत्तीस लक्षण उसमें विद्यमान थे।

प्रिथिराज पति प्रिथ्यिपति, सिर मनि कुली छत्तीस।
नष सिष पर मित लस तजे, ते गुन बरनि बत्तीस॥ ६९।[4]

उपर्युक्त विवेचन की पुष्टि इतने से ही हो जाती है कि उसके सहायक एक सौ छह सामन्त थे—

तिहि सहाइ सूर ति सुभट, सत सामन्त छ सूर।
तिहि सु कित्ति प्रगटह करण, कह्यौ चन्द कवि सूर॥ ७०।[5]

कवि की उपर्युक्त वर्णन देखकर तथा पृथ्वीराज की प्रतिभा एवं शासन व्यवस्था देखते

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ६४, स० १।
२. वही, छं० ६५ स० १।
३. वही, छं० ६६-६७ स० १।
४. वही, छं० ६९, स० १।
५. वही, छं० ७०, स० १।

हुए यह मानने के लिए विवश होना पड़ता है कि महाराज पृथ्वीराज अवश्य ही विद्या प्रेमी तथा अनेक कलाओं का ज्ञाता था।

पृथ्वीराज के विवाह—'पृथ्वीराज रासो' विवाह सम्यो ६५ में पृथ्वीराज के चौदह विवाह होने की सूचना प्राप्त होती है—

प्रथम परनि परिहारि। राइ नाहर की जाइय।
जा पाछैं इंछनीय। सलष की सुता वताइय।
जा पाछैं दाहिमी। राय डाहर की कन्या॥
राय कुंअरि अति रीत। सुता हंमीर सु मन्या।
राम साह की नंदिनी। बड़गुज्जरि वानी वरनि।
ता पाछैं पद्मावती। जादवनी जोरी परनि। १॥
रायधन की कुंअरि। दुति जमुगीरी सुकहियं।
कछवाही पज्जूनि। भ्रात वलिभद्र सुलहियं।
जा पछैं पुंडीरि। चन्द नंदनी सु गायव॥
ससि वरना सुन्दरी। अवर हंसावती पायव।
देवासी सोलंकनी। सारंग की पुत्री प्रगट॥
पंगानी संजोगता। इतें राज महिला सुपट। २॥[1]

कवि ने पृथ्वीराज रासो के अगामी छन्दों में पृथ्वीराज के विवाह, उनकी किस अवस्था में हुए थे, इस पर प्रकाश डाला है—ग्यारह वर्ष की आयु में महाराज पृथ्वीराज ने नाहर राय प्रतिहार को युद्ध में यमपुर (स्वर्ग) पहुंचा कर उसकी कन्या ले 'पुहकर' (पुष्कर) में विवाह किया, बारह वर्ष की आयु में आबू दुर्ग को धराशायी करने वाले भीमदेव चालुक्य को परास्त करके राजा सलख की दुहिता तथा आबू राज्य की राजकुमारी इंच्छिनी से विवाह किया, तेरहवें वर्ष में सामन्त चामण्डराय ने अपनी वहन का परिणय महाराज पृथ्वीराज के साथ स्वयं ही बड़े उत्साह के साथ कर दिया, चौदहवे वर्ष में हाहूलीराय हम्मीर ने अपनी कन्या का तिलक भेजकर उसके साथ व्याह दी तथा अपने को बड़भागी समझा। पन्द्रहवें वर्ष की आयु में पृथ्वीराज ने अत्यन्त गंभीर गड़गूजरी के साथ परिणय किया तथा इसी वर्ष अत्यन्त हित मानते हुए उन्होंने रामसिंह की पुत्री से भी विवाह कर लिया, सोलह वर्ष की अवस्था में पूर्व दिशा के समुद्र शिखरगढ़ के शासक राजा यादव की आत्मजा पद्मावती से परिणय किया। सत्रह वर्ष की आयु में गिरदेव पर गर्जन करके रामधन की पुत्री का अपहरण कर गन्धर्व विवाह किया, अठारहवें वर्ष में वीरभद्र कछवाह की वहन पज्जूनी का पाणिग्रहण किया, उन्नीस वर्ष की आयु में चन्दपुंडीर की आत्मजा चन्दवदनी पुंडीरनी से विवाह किया, बीस वर्ष की आयु में (देवगिरी की) शशिवृता को अपहरण कर ले आए, इक्कीसवें वर्ष

१· पृथ्वीराज रासो, ना० प्रा० स० काशी, छं० १-२, स० १।

में नंभर के राजा ने हंसावती से परिणय किया, बाइसवें वर्ष पृथ्वीराज ने वीर योद्धा सारंग की पुत्री का पाणिग्रहण किया[1] तथा छत्तीस वर्ष एवं दो मास की आयु में वे अपने चौसठ वीर सामन्तों की बलि देकर पचास हजार शत्रु सेना को मृत्यु के घाट उतार कर पंग (जयचंद) की पुत्री राठोरनी को ले आए।

छत्तीस वरस षटमास लोय। पंगानि सुता ल्याये सुसोय।
रट्ठौरि ल्याय चौसठि मराय। पंचास लाख अरि दल खपाय। १२।[2]

पृथ्वीराज रासो के समय ३२ तथा ३३ में पृथ्वीराज का उज्जैन के राजा भीमप्रमार की पुत्री इन्द्रावती से विवाह का उल्लेख बड़े विस्तृत रूप में मिलता है, किन्तु विवाह सम्यो ६५ में उपर्युक्त विवाह का उल्लेख तक नहीं किया गया है।

'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के कुल १५ विवाहो का उल्लेख मिलता है। रासोकार ने सब विवाहों का पृथक् रूप से एक-एक सर्ग में वर्णन नही किया है, अनेक विवाहों का तो केवल उल्लेखमात्र, 'विवाह सम्यो ६५' में कर दिया गया है, जिससे उन विवाहों के प्रामाणिक होने में कुछ-कुछ सन्देह सा होने लगता है, किन्तु यह कहना कि पृथ्वीराज के अनेक विवाह नहीं हुए होंगे, भी उचित प्रतीत नहीं होता है। पृथ्वीराज के युग में बहु-विवाह प्रथा थी, बड़े-बड़े सामन्तों के घरों में अनेकानेक रानियां हुआ करती थीं। ऐसी स्थिति में यदि पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) के महल में पन्द्रह रानियां रही हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी भी उपर्युक्त विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—"राज पुरुषों के बहु-विवाहों के पीछे जहां कुमारी के प्रति आकर्षण और शौर्य प्रदर्शन का एक निमित्त आदि रहे होंगे वहां येनकेन प्रकारण विवाह सम्बन्ध से अन्य शासकों की मैत्री का चिर बन्धन और उस पर आधारित सहायता प्राप्ति का अभीष्ट भी प्रेरक रहना सम्भव है। बहु-विवाह वाले उस युग में अपूर्व शूरमा पृथ्वीराज के अनेक विवाह न हुए हों यह किंचित आश्चर्यजनक है।"[3]

अभी तक ऐसा कोई भी शिलालेख प्रकाश में नहीं आया, जिसके आधार पर पृथ्वीराज के विवाहों की उचित जांच-पड़ताल की जा सके। अनेकानेक विरोधी प्रमाण मिलने के कारण इतिहासकारों को रासो वर्णित पृथ्वीराज के विवाहों में से एक भी सत्य एवं प्रमाणिक नहीं प्रतीत होता है। विवाहों की ऐतिहासिकता पर अन्यत्र विचार किया गया है।

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ३-११ स० ६५।
२. वहीं, छं० १२, स० ६५।
३. डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, पृ० २१६-१७, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ सन् १९५३।

विवाह-सारणी

क्रम	रानियों का नाम	पिताओं के नाम	स्थानों के नाम	पृथ्वीराज की आयु	आनन्द संवत स्वयं प्रस्तुए किए हुए	रासो के अन्य संस्करणों में स्थिति
१–		नाहरराय परिहार	पुष्कर	११	११२६	मध्यम तथा वृहद संस्करण।
२–	इच्छिनी	सलष	आबू	१२	११२७	,,
३–	दाहिमी	चामंडराय (भाई)	आबू	१३	११२८	वृहद संस्करण।
४–	–	हाहुलीराय	–	१४	११२९	,,
५–	बडगूजरी	–	–	१५	११३०	,,
६–	–	रामसिंह	–	१५	११३०	,,
७–	पद्मावती	यादवराज	समुद्र शिखरगढ़	१६	११३१	,,
८–	–	रामधन	गिरदेव	१७	११३२	,,
९–	पज्जूनी	बलभद्र कछवाहा (भाई)	–	१८	११३३	,,
१०–	पुंडीरनी	चंदपुंडीर	–	१९	११३४	,,
११–	शशिवृता	–	देवगिरी	२०	११३५	मध्यम तथा वृहद संस्करण।
१२–	इन्द्रावती	भीम प्रमार	उज्जैन	रासो वर्णन के अनुसार इन्द्रावती का विवाह हंसावती से पूर्व होता है। अतः पृथ्वीराज की आयु २०-२१ के बीच रही होगी	११३५-३६	वृहद संस्करण।
१३–	हंसावती	–	संभर (रणथंभोर)	२१	११३६	मध्यम एवं वृहद संस्करण।
१४–	देवासी, देवास की या देव सद्गुण	नारंग	–	२२	११३७	वृहद संस्करण
१५–	संयोगिता	जयचन्द	कन्नोज	३६ वर्ष ६ माह	११५१-५२	लघुतम, लघु, मध्यम एवं वृहद संस्करण।

पृथ्वीराज का ऐश्वर्य—

'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज चौहान अपने समय का एक महान् शासक था, उन्हें छत्तीस कुल के क्षत्रियों ने अपना सिरमौर मान लिया था। उनमें छत्तीसों श्रेष्ठ लक्षण विद्यमान थे।[1] पृथ्वीराज का यश चारों दिशाओं में फैला हुआ था। समस्त क्षत्रीय वंश उनकी आधीनता में आ गए थे। पृथ्वीराज का राज-दरबार सदैव योग्य कलाकारों से भरा रहता था। उनकी आधीनता में उस युग के प्रसिद्ध योद्धा एवं सूरमा रहा करते थे, जिनकी संख्या रासोकार ने १०६ बताई है।[2] पृथ्वीराज चौहान दिल्ली का आधिपति था। जहाँ कवि ने उसकी महानता एवं सूरवीरता का विवरण दिया है, वहीं वह उसकी राजधानी की सुन्दरता का वर्णन करना भी नहीं भूला है। निगम बोध स्थित राज उद्यान[3] में लगे वृक्षों, फलों तथा फूलों की विस्तृत सूची देने के उपरान्त कवि ने दिल्ली का विवरण प्रस्तुत किया है—इन्द्रपुरी सदृश्य चौहान पृथ्वीराज की दिल्ली में घंवाल तथा नगाड़े बजते रहते हैं। राजा के समक्ष पहुँचने के लिए दस पौरियाँ पार करनी पड़ती थीं और फिर सात खडोवाला राजप्रसाद था। दिल्ली नगर की हाट मे अनेक प्रकार के माणिक्य-मोती खरीदे जा सकते थे—

घुरि घुम्मिय नग्गंध निसान धुरं, धुर है प्रथिराज कि इद्रपुरं।
प्रथमं दिलियं किलियं कहनं, ग्रह पौरि प्रसाद घना सतवं। २३।
घन नृप अनेक अनेक मती, जिन वधिय बंधन छत्रपती।
जिन अश्व चढ़ं धरि अश्व लषं, बल श्रीप्रभु मंत्र अनेक भयं। २४।
दह पौरि सु सोनत पिथ्य वरं, नरनाह निसंकित दाम नरं।
नर हट्ट सु लष्पनयं मरयं, धरि वस्त अमोल नयं नरयं।। २५।
तिहि बीच महल्ल सतप्पनमं, लपि कोटि धजो सु कवी गनयं।
नर सागर तारंग युद्ध परे, परि राति सुरायन वाट्ट परे। २६।

+ + + +

पचि लल्लिय नीलिय मानकयं, रतनं जतनं मनि तेज कयं।
सुन दिल्लिय हट्ट सु नैर मझं, करि दंत मिलंत गिरंत सझं।। ३०।[4]

उक्त विवरण से पृथ्वीराज चौहान की ऐश्वर्यता का पर्याप्त बोध हो जाता है। सम्भव

---

१. पृथ्वीराज रासो; साहित्य संस्थान उदयपुर; छं० ६९, स० १।
२. तिहि सहाय सूर ति सुभट, सत सामंत छ सूर।
तिहि सु किति प्रगटह करण, कह्यो चन्द कवि सूर।। —पृथ्वीराज रासो, छं० ७०, स० १।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५-११, स० ५९।
४. वही, छं० २३-३०, स० ५९।

है कुछ विद्वानों को यह वर्णन भट्ट-भगंत प्रतीत हो। सं० १२४० वि० में विरचित 'गर्वावली' से पृथ्वीराज की महानता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।' गर्वावली' की प्रामणिकता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। श्री जिनपति सूरि के शिष्य श्री जिनपालोपाध्याय रचित 'खरतरगच्छ गर्वावली' के आधारपर श्री अगरचंद नाहटा और श्री भंवरलाल नाहटा ने 'पृथ्वीराज की राज-सभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ नामक निवन्ध में लिखा है कि—'अतुल वलशाली महाराज पृथ्वीराज का कहाँ तक वर्णन करें जिन्होंने अपने सैन्य वल से तमाम दिशाओं को जीत लिया है, अतएवः जय लक्ष्मी ने आकर इनकी भुजाओं को अपना घर बना लिया है। जव नर्व प्रथम नवोढ़ा वधू घर में आती है तब गृहद्वार में स्वस्ति किया जाता है, वैसे ही इनकी भुजाओं में जयलक्ष्मी के प्रवेश के समय रण भूमि में भट्टानक राजा के हाथियों ने तीखे भालों की मार से फटे हुए अपने कुंभस्थल से निकलते हुए गज मुक्ताओं से स्वस्ति किया।''[1] एक स्थान पर सूरि जी ने पृथ्वीराज को राजसभा का वर्णन निम्न शब्दों से किया है।'

''राजा पृथ्वीराज का सभा मंडप कैसा है? चमकती हुई सुन्दर मणियों से इसकी भीत और गगन वनाए गए हैं। उन्हीं मणियों की रुचिर रचना से रचित फर्श से निकलने वाली किरणों से इसके चारों ओर दिशाएं जगमगा रही हैं। जिनकी सुगंध के लोभ से आगत भ्रमरों के गुंजारव से सारे ही सभा भवन का मध्य भाग भर गया है, ऐसे फूलों के गुच्छे सभा मंडप के प्रागंण में विखरे हुए हैं। इस सभा में नीले रंग का रेशमी शामियाना तना हुआ है। हवा से हिलती हुई उसके चारों तरफ की चंचल मुक्त मालाएं ऐसी प्रतीत होती हैं, मानों किसी जलाशय के चारों ओर निर्मल जल धारा टपकती हो। जिसमें कामदेव की राजधानी के उपयुक्त सुन्दरी वेश्याए विद्यमान हैं, उनके सुन्दर कटाक्षों से कामीजनों का हृदय क्षुब्ध हो रहा है। वेश्याओं के धारण किए हुए अनेक वर्ण वाले रत्न जटित आभूषणों से विस्फुटित रंग-विरंगी किरणों के समूह से निरालंक ही आकाश में चित्रकारी सी हो रही है। सभा-भवन में किसी स्थान पर आम की मंजरी खाने से मस्त हुए कोयल के कलरव के समान संगीत कला में निपुण कलावंत लोगों से सुन्दर गायन किया जा रहा है। कहीं पर सदाचार सम्पन्न सुन्दर वचनों की रचना चातुरी प्रसिद्ध नीति शास्त्र को विचारने में विचक्षण, मंत्रिमंडल आचार-अनाचार का विवेचन कर रहा है। इसी सभा में किसी स्थान पर उत्कट प्रतिवादियों को परास्त करने में समर्थ उत्तमोत्तम समस्त विद्याए जिनकी जिह्वा पर नृत्य कर रही है, ऐसे विद्वदवृंद विद्यमान है। यहां पर उद्धत कंधरा वाले अनेक मागध राजाओं की धीरता-गंभीरता और उदारता का व्याख्यान कर रहे हैं। चन्द्रमा के समान श्वेत यश द्वारा धवल की हुई पृथ्वी को मांगने वाले अनेक छोटे-वड़े सामन्त राजा आ आकर जिसमें

---

१. अगरचन्द नाहटा और भवरलाल नाहटा, पृथ्वीराज की राजसभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ; हिन्दुस्तानी पत्रिका, पृ० ८१।

प्रवेशकर रहे है। जिसमें राजा नानावर्ण की मणियों के जड़ाव से बनाए हुए इन्द्र धनुपाकार सिंहासन पर बैठे हुए हैं। जिसने अपने बाहुबल से समस्त शत्रु समुदाय को छिन्न-भिन्न कर दिया है। ऐसे राजा पृथ्वीराज के चरण कमलों में अनेक राजा लोग किरीट मुकुटाच्छादित मस्तक को झुकाते है। जैसे बगीचा पुन्नाग और श्रीफल के बगीचों से शोभित होता है वैसे ही यह सभा भवन हस्थि तुल्य पुष्टकाय पुरुषों तथा लक्ष्मी के वैभव से शोभित है। जिस प्रकार महाकाव्य काव्य-व्याख्या करने योग्य वर्णों से पूर्ण तथा हास्य, शृंगार, करुण आदि रसों से युक्त रहता है—उसी तरह यह सभा भवन ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों से युक्त है तथा अभिलाषा को व्यजित करने वाला है। जैसे सरोवर की शोभा राजहंस और कमलों से होती है वैसे ही आपके सभा भवन की शोभा राजा और पद्मजा (लक्ष्मी) से है। इन्द्र की नगरी अमरावती में कोई भी मिथ्याभाषी नहीं है तथा सदैव उसमें देवताओं की भीड़ बनी रहती है, वैसे ही इस भवन में सब सत्यवक्ता है और इस में विद्वानों की सदैव भीड़ लगी रहती है। आकाश में जिस प्रकार मंगल और शुक्र नाम के ग्रह शोभावृद्धि करते हैं, वैसे ही आपकी सभा में गायानादि मांगलिक कार्य तथा कवि लोग शोभा बढ़ाने में हेतु हैं। कान्ता के मुख की शोभा अच्छे-अच्छे आलंकारों से है तथैव इस सभा मंडप की शोभा भी सुन्दर सजावट से है। विविध प्रकार के चित्रों से यह चित्रित है।" अपने लेख को अंत में समाप्त करते हुए सूरि जी महाराज इस प्रकार लिखते हैं—"महाराज पृथ्वीराज के ऐसे सभा मंडप को देखकर किस पुरुष का चित्त आश्चर्यमग्न नहीं होता।"[1]

अन्त में शास्त्रार्थ में सूरि जी की विजय हुई। अति प्रसन्न होकर महाराज पृथ्वीराज चौहान ने कहा—"वाह। महाराज ! आप जीत गए हैं, हम आपकी विजय की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते है। मैंने अपने धर्म और न्याय के प्रभाव से हजारों स्थानों पर प्रभुता प्राप्त की है। ७०,००० (सत्तर हजार) घोड़ों पर मेरा आधिपत्य है, मैं समझता हूं कि कोई भी प्रतिपक्षी मेरे समान दरजे को अभी तक प्राप्त नहीं कर सका है। परन्तु इसी देश में मैं आपको अपने समान श्रेणि का मानता हूं, क्योंकि आपने भी समस्त देशों के धर्माचार्यों को जीत कर उन पर प्रभुता प्राप्त की है। आचार्य महोदय अब तक हमें ऐसा मालूम नही था कि आप इस प्रकार के रत्न है। इसलिए जान या आनजान में मुझ से अनुचित व्यवहार हुआ हो तो आप हमें क्षमा करें।"[2]

चौहान पृथ्वीराज एक महान शासक था, उसकी सभा में वागीश्वर, जनार्दन गौड़ और विद्यापति प्रभृति प्रकांड विद्वान राजपंडित थे और शास्त्रार्थ के समय मंडलेश्वर कैमास भी उपस्थित था। महाराज पृथ्वीराज ने स्वय अपने मुख से अपनी सेना में ७०,००० (सत्तर हजार)

---

१. अगरचन्द नाहटा और भंवरलाल नाहटा, पृथ्वीराज की राजसभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ, हिन्दुस्तानी पत्रिका, पृ० ८३-८४।

२. वही, पृ० ९१-९२।

घोड़ों का होना कहा है, यह बात विशेष महत्व की है। इतना ही नहीं अपितु यहां तक कहा है कि इतना ऊँचा पद किसी को भी प्राप्त नहीं है। इस वाक्य से पृथ्वीराज के वैभव तथा चक्रवर्तित्व का स्पष्ट परिचय प्राप्त होता है।

पृथ्वीराज की उदारता—'पृथ्वीराज रासो' में सर्व-प्रथम पृथ्वीराज की उदारता का परिचय 'आखेटक वीर वरदान' समय से मिलता है। चंद ने एक ऋषि की कृपा से परम् पराक्रमी बावन वीरों को वश में करने वाला मंत्र सिद्ध करके, उन गणों का प्रत्यक्ष पौरुष दिखाने तथा पृथ्वीराज की आज्ञानुसार उक्त मत्र सब सामन्तों को सिखाने पर, महाराज पृथ्वीराज द्वारा कवि चन्द वरदायी को उदारता पूर्वक बीस गांव तथा एक सुसज्जित अश्व देने का उल्लेख मिलता है—

बीस ग्राम कवि चन्द प्रति करी कुवर बगसीस।
एक वाजि साजति सजहि दियो सुसम्भरि ईस ॥ १७८ ॥[1]

ग्रन्थकार ने यहाँ पर बीस गांवों के नामों का उल्लेख नहीं किया है, अतः उनके नाम रासो में खोजना असभव ही है।

पृथ्वीराज की उदारता के दर्शन एक बार पुनः 'भूमि स्वप्न कथा' में होते है। लगरीराय ने पृथ्वीराज को बचा कर स्वयं अपनी तलवार द्वारा वन में शेर का शिकार कर वीरता का प्रदर्शन किया। उस समय की पृथ्वीराज की उदारता देखते ही बनती है—

भौ प्रसन्न प्रथिराज वोल बुल्लयो सु लंगरिय।
इत्तौ देऊं प्रचन्ड, पंच जो मद्धि मोह जिय।
अद्धा राज सु अद्ध, पाट अद्धा तंबूलं।
अद्धा बेस सुदेस, करों आदर संमूलं।
बोलंत बैन पृथ्वीराज सुनि, जीव लज्जि नीची नजरि।
लग्गाइ कंठ ठुकि पिट्ठ कर भली भलों सब सथ्थ करि ॥ १८ ॥[2]

अर्थात-सिंह को मारने पर पृथ्वीराज ने प्रसन्न हो लंगरीराय से कहा यदि मेरे शरीर में पांचों तत्व विद्यमान रहे तो इतना ऊँचा सम्मान दूंगा, अर्थात् मेरा आधा राजसी ठाट, आधा सिंहासन, मेरे खाने में से आधा ताम्बूल, अच्छे देश मे से आधा देश देकर सब तरह से आदर करूँगा। इस प्रकार पृथ्वीराज का कथन सुन कर उस वीर ने विरोचित ढग से बन में लज्जा का अनुभव कर दृष्टि नीची कर ली। पृथ्वीराज ने उसकी (लगरीराय) की पीठ ठोक कर कठ से लगा लिया तथा अन्य समस्त साथियों ने उसकी प्रशसा की।

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० १७८, स० ६।
२. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान, उदयपुर, छं० १८, भूमि स्वप्न कथा समय।

पृथ्वीराज चौहान की उदारता के दर्शन तो उस समय होते है जब वह अपने प्रबल शत्रु गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी को युद्ध में अनेक बार परास्त कर उदारता तथा सम्मानपूर्वक मुक्त कर देते है। पृथ्वीराज चौहान की उदारता की यह चरम सीमा है। इसी उदारता के परिणाम स्वरूप ही हिन्दुओं के अन्तिम शासक पृथ्वीराज चौहान को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। ग्रन्थकार ने गोरी को बन्दी बनाने तथा पुनः उसे उदारता पूर्वक मुक्त करने के वर्णन अनेक स्थानों पर किया है। 'माधोभाट कथा' में गोरी वीर चामण्डराय के हाथों बन्दी बनाया गया।[1] 'हुस्सैन कथा' में पुनः वीर चामण्डराय ने शहाबुद्दीन गोरी को बन्दी बनाया तथा उदारता की साक्षात मूर्ति महाराज पृथ्वीराज चौहान ने कुछ दण्ड लेकर उसे मुक्त कर दिया।[2] 'पद्मावती समय' में महाराज पृथ्वीराज राजकुमारी पद्मावती का अपहरण करके जब समुद्र शिखरगढ़ से लौट रहे थे, तब मार्ग में गोरी ने आ घेरा, इस बार महाराज पृथ्वीराज ने स्वयं ही गोरी को अपनी कमान उसके गले मे डालकर पकड़ लिया तथा दिल्ली ले गए। दिल्ली पहुंचने पर अपने विवाह के उपलक्ष में कुछ दण्ड लेकर गोरी को पुनः मुक्त कर दिया।[3] 'सलप युद्ध' समय में गोरी फिर बन्दी बनाकर मुक्त कर दिया गया।[4] 'धन कथा' समय में चित्तौड़पति रावल समरसिंह ने शहाबुद्दीन गोरी को बन्दी बनाया किन्तु महाराज पृथ्वीराज ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए और कुछ दण्ड लेकर पुनः मुक्त कर दिया।[5] 'रेवातट समय' में वीर गुज्जर ने गजनीपति गोरी को बन्दी बनाया।[6] 'अनंगपाल समय' में गोरी को वीर चामण्डराय ने बन्दी बनाया तथा महाराज पृथ्वीराज ने मुक्त कर दिया।[7] 'घघर की लड़ाई' में चाचा कान्ह के द्वारा गोरी पकड़ा गया तथा पुनः मुक्त कर दिया गया।[8] 'पीपा युद्ध समय' में वीर पीपा ने अपनी रण कुशलता का परिचय देते हुए गोरी को बन्दी बना लिया।[9] 'कैमास युद्ध समय' में पृथ्वीराज के मुख्य मन्त्री कैमास ने शहाबुद्दीन गोरी को महाराज पृथ्वीराज की आधीनता स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया।[10] 'पहाड़राय समय' में स्वयं पहाड़राय ने शहाबुद्दीन गोरी को पकड़ कर बन्दी बनाया तथा पृथ्वीराज ने पुनः दण्ड लेकर मुक्त कर दिया।[11] पंजून पातशाह युद्ध' समय में वीर

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ५८, माधोभाट कथा समय।
२. वही, छं० ७२ हुस्सैन कथा समय।
३. वही, छं० ३८, पद्मावती समय।
४. वही, छं० ७६ सलपयुद्ध समय।
५. वही, छं० ९५, धनकथा समय।
६. वही, छं० ७२, रेवातट समय।
७. वही, छं० ७०-७१ अनंगपाल समय।
८. वही छं० ३४ घघर की लड़ाई समय।
९. वही, छं० ३९ पीपा युद्ध समय।
१०. वही, छं० ५९, कैमास युद्ध समय।
११. वही, छं० ४९, पहाड़राय समय।

पज्जून के पुत्र मलयसिंह ने गोरी को वन्दी बनाया तथा महाराज पृथ्वीराज चौहान ने उसे मुक्त कर पुनः अपनी महानता एवं उदारता का परिचय प्रस्तुत किया।[1] 'दुर्गा केदार समय' में पहाड़राय ने गोरी को पकड़ कर वन्दी बनाया तथा वीर पृथ्वीराज ने गोरी को मुक्त कर दण्ड स्वरूप प्राप्त अपार सम्पत्ति पहाड़राय को पुरस्कार स्वरूप दे दी।[2] महाराज पृथ्वीराज ने प्रत्येक बार गोरी को थोड़ा-बहुत दण्ड लेकर मुक्त कर दिया. यह उनकी अखण्ड उदारता का परिचायक है। सम्भव है कवि ने अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया हो, पर इस प्रकार के वर्णन से इतना तो अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज उदार प्रकृति का था।

इतना ही नहीं, एक-दो स्थानों पर 'रासो' ग्रन्थ पृथ्वीराज की उदारता के और भी उदाहरण प्रस्तुत करता है,—'पृथा' विवाह ऐसा ही स्थल है। रासोकार ने पृथा विवाह के समय अनेक प्रकार के दानों का उल्लेख किया है, भांवर के समय पृथ्वीराज चौहान ने रावल समरसिंह को जिस प्रकार मुक्त हस्त होकर दान दिया वह देखते ही बनता है, देखिए—

एक फिरत भांवरी, साहि मेंवात गांम दिय।
दुतिय फिरत भांवरी, दुरद-दान-एक-अग्गरिय।
त्रितिय फिरत भांवरी, दयौ संभरि उदक्क कर।
चौथी भांवरि फिरत, द्रव्य दीनौं अनन्त वर॥
चांहुवान चतुर चावहिसा, हिन्दवान वर भान विधि।
गुन रूप सहज लच्छी सुवर, सहित बीर बंधौ जु सिधि॥ ३३॥[3]

उक्त छन्द में कवि ने, मेवात के ६० गांव दिए जाने का उल्लेख किया है किन्तु उन गांवों के नामों के बारे में रासोकार सर्वथा मौन है। अतः केवल ६० की संख्या के आधार पर यह ज्ञात करना कि वह गांव कौन से हैं, नितान्त असम्भव है। यहां इतने से ही सन्तोष करना पड़ता है कि पृथ्वीराज ने ६० गांव दान में दिए होंगे तथा यहां पर गांवों की ऐतिहासिकता न देख कर केवल पृथ्वीराज की उदारता पर प्रकाश डालना ही अभीष्ट है। ग्रन्थकार ने लिखा है कि चतुर्थ भांवर में साम्भर प्रदेशदान में दे दिया। सम्भर प्रदेश दान देना सम्भवतः अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन ही मानना चाहिए क्योंकि यदि पृथ्वीराज सम्भर प्रदेश रावल समरसिंह को दान दे देते तो कवि, पृथ्वीराज के लिए 'संभर नरेश' शब्द का प्रयोग न करता जो कि कवि ने स्थान-स्थान पर पृथ्वीराज के लिए किया है। अतः स्पष्ट है, कि पृथ्वीराज ने सम्भर प्रदेश दान नहीं दिया था।

'धन कथा' समय में महाराज पृथ्वीराज की उदारता चरम सीमा पर पहुंची हुई

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान, उदयपुर छं० ३०, पंजूनपात शाह समय।

२. वही, छं० १०७, दुर्गा केदार समय।

३. वही, छं० ३३, पृथा विवाह समय।

दृष्टिगोचर होती है। पृथ्वीराज की दान योजना तथा उदारता का चित्रण तीन स्थलों पर प्राप्त होता है।

(१) वन में धन निकालने पर पृथ्वीराज ने उस धन का वितरण कर दिया। (२) शाह को यवन समरसिंह की सहायता से पकड़ कर मुक्त कर दिया। (३) शाह से दण्ड स्वरूप प्राप्त हुए अश्वों को सामन्तों में बांट दिया तथा अपने लिए केवल यश ही रखा। ग्रन्थकार ने उपर्युक्त घटनाओं का वर्णन क्रमशः इस प्रकार किया है—

(१) वंटि दियौ पृथिराज, भाग विन्नौ सहु अव्वर।
एक भाग कैमास, तीय अप्पे नर सिंघ नर॥
पंच भाग चांवड़, भाग अद्धौ वर कन्हं।
द्वादस भाग नरिंद, दियौ परिगह सब थंनं॥
प्रथिराज दिट्ट आये नहीं, चिकट कुंभ ज्यों जल अभिद।
लग्गो न नीर पत्रह कमल, भिदं न मति छीवै उछिद॥ १००॥
एक भाग दिय विप्रकर, करै राज सुख कंद।
धन लभ्भिय प्रथिराज धन, कथी कथ्य कविचन्द। १०१।[1]

(२) वजि नरयंद जय पत्त, वीय वज्जा धन वज्जै।
ताहय घर गज राज राज, दरवारणि गज्जै॥
चामर छत्र रखत्त, तखत लिन्नौ सुलितानी।
उत्तर वह उत्तगं गयौ, मुलतानह पानी॥
छन्ड्यौ छत्र सुलितांन सिर राज-छत्र सिर मण्डयौ।
वाजंत नद्द निस्सांन धन, वधि साहि दंडि छंड्यौ॥ ९५॥[2]

और भी—

(३) दंड सुवर पतिसाह, दीय हय वंटि राजवर।
वीस सुनर हय कन्ह, त्रीस हय उंचह निड्डुर॥
वीस दूअ रघुवस, वीस उम्मय दाहिम्मं।
अतताइ अल्हन पहाड़, वीस हय जैत गुरंम॥
औरह सु सकल नर वीस अध, वंटि वंटि दिय सवर नर।
रख्खन सु गल्ह राजंद गुर, जस रक्खयौ निज वर सुकर॥ १०८॥[3]

---

1. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान, उदयपुर, छ० १००-१०१; धनकथा समय।
2. वही छ० ९५, धनकथा समय।
3. वही छ० १०८, धनकथा समय।

सम्भव है कवि ने अपने आश्रयदाता की कीर्ति एवं उदारता का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण किया हो। किन्तु यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि पृथ्वीराज बड़ा उदार एवं महान शासक था। ऐसा 'रासो' के आधार पर ही नहीं वरन् उसकी उदारता का परिचय देने वाले अनेक संस्कृत ग्रन्थ भी हैं।

सं० १२४० में रचित 'खरतरगच्छ गर्वावली' में भी पृथ्वीराज की उदारता पर पर्याप्त प्रकाशडाला गया है। 'पृथ्वीराज की राजसभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ' नामक निबन्ध में श्री अगरचन्द नाहटा तथा श्री भंवरलाल नाहटा ने इस प्रकार लिखा है—"सूरि महाराज की सर्व तन्त्रों में स्वतंत्र, प्रतिमा देखकर ऐसा कौन मनुष्य था जिसके हृदय कमल पर आश्चर्य लक्ष्मी विराजमान न हुई हो ? अति प्रसन्न होकर महाराज ने कहा—"वाह। महाराज ! आप जीत गए हैं। हम आपके विजय की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते हैं। मैंने अपने धर्म और न्याय के प्रभाव से हजारों स्थानों पर प्रभुता प्राप्त की है। सत्तर हजार घोड़ों पर मेरा आधिपत्य है, मैं समझता हूं कि कोई भी प्रतिपक्षी मेरे समान दरजे को अभी तक प्राप्त नहीं कर सका है। परन्तु इसी देश में मैं आपको अपने समान श्रेणी का मानता हूं, क्योंकि आपने भी समस्त देशों के धर्माचार्यो को जीत कर उन पर प्रभुता प्राप्त की है। आचार्य महोदय ! अब तक ऐसा मालूम नहीं था कि आप इस प्रकार के रत्न हैं। इसलिए जान या अनजान में मुझ से अनुचित व्यवहार हुआ तो हमें क्षमा करें। 'इस प्रकार कहते हुए नरपति ने आचार्य श्री के समक्ष क्षमा याचनार्थ दोनों हाथ जोड़े।"[1]

"महाराज पृथ्वीराज सूरि जी को विजयोपलक्ष में कुछ मांगने को कहते है किन्तु सूरि जी कुछ भी ग्रहण करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। अन्त में सेठ रामदेव जी कहते हैं कृपानाथ। आप गुरु महाराज को विजय पत्र भेंट करने की कृपा करें।

राजा— आज तो समय अधिक हो गया है दो दिन पश्चात् मैं कार्यवश अजमेर आऊंगा तब अवश्य ही सूरि जी को जयपत्र भेंट कर दूंगा।

'दो दिन के पश्चात अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए महाराज पृथ्वीराज ससैन्य अपने अजमेर के महलों में आए। वहां से हाथी के हौदे पर जयपत्र रख कर नगर के मध्य-मध्य होते हुए पौषधशाला पधारे और सूरि जी के हाथ में जयपत्र समर्पण किया।"[2]

उपर्युक्त घटना पृथ्वीराज की महानता एवं दानशीलता की घोषणामुक्त कण्ठ से करती है। महाराज पृथ्वीराज केवल उदार ही नहीं वरन् वह किसी विद्वान का उचित सत्कार करना भी भली-भांति जानते थे। सूरि जी के निवास स्थान पर ही जाकर जयपत्र देना तो पृथ्वीराज की उदारता में चार-चांद लगा देता है।

---

१. अगरचन्द नाहटा तथा भंवरलाल नाहटा, पृथ्वीराज की राजसभा से जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ, हिन्दुस्तानी पत्रिका, पृ० ९१-९२।

२. वही, पृ० ९६-९७।

गणिका—'पृथ्वीराज रासो' में जहाँ एक ओर पृथ्वीराज चौहान के १५ विवाहों का वर्णन प्राप्त होता है वहाँ दूसरी ओर यह भी लिखा है कि महाराज पृथ्वीराज चौहान ने करनाटक देश पर आक्रमण कर तथा संधि रूप में करनाटी नामक एक वेश्या को प्राप्त किया। महाराज इस वेश्या को अपने साथ दिल्ली ले आए कवि ने लिखा है—

ले आयौ नाइक्क सथ, करनाटी प्रियिराज।
जत्र-तत्र एकठ भये, सर्व साज सम्माज ॥ ४ ॥[1]

महाराज पृथ्वीराज करनाटी के रूप गुण तथा लक्षणों पर रीझ गए तथा उसे रक्षिता के रूप में रानी इच्छनी प्रमारनी के अन्तःपुर के बाहर के द्वार पर रहने के लिए व्यवस्था कर दी तथा उसके भवन पर रक्षा के लिए दिन रात बहुत सी दासियाँ रख दी गईं।

काम कला तुट्टे नृपति सुग्रिह पवारी द्वार।
तिन अवास दासी सघन, अहनिस रहि रखवार ॥ ११ ॥[2]

यहाँ पर पृथ्वीराज चौहान के महलों में १५ रानियों के अतिरिक्त एक वेश्या की सूचना मात्र देना अभीष्ट है। गणिका करनाटी के विषय में अन्यत्र विवरण प्रस्तुत किया गया है।

पृथ्वीराज के सामन्त—भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू शासक महाराज पृथ्वीराज (तृतीय) का नाम ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसने न सुना हो। भारतीय इतिहासकार ही नहीं अपितु विदेशी इतिहासवेत्ता भी पृथ्वीराज की वीरता के संबंध में बहुत कुछ लिख गए है। उनके समकालीन एवं दरबारी कवि चन्द ने भी पृथ्वीराज का शौर्य वर्णन अत्याधिक किया है। पृथ्वीराज की वीरता एवं उदारता का चित्रण हम यहाँ-वहाँ करते ही रहे हैं। अतः स्वाभाविक है, कि ऐसे वीर शासक की आधीनता में अनेक सामन्त भी रहते हों। यही कारण है कि कवि चन्द ने 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के आधीनस्थ सामन्तों की सख्या कहीं पर १०० तथा कहीं पर १०६ बतलाई है।

तिहि सहाई सूर ति सुभट, सत सामन्त छ-सूर।
तिहि सु कित्ति प्रगटह करण, कह्यो चन्द कवि सूर ॥ ७० ॥[3]

महाराज पृथ्वीराज, कवि चन्द से कन्नौज जाने का दृढ़ निश्चय प्रगट करते हैं। अतः संवत ११९१ चैत बदी ३ रविवार के दिन ग्यारह सौ घुड़सवार साथ लेकर महाराज पृथ्वीराज ने कन्नौज की ओर प्रस्थान किया—

ग्यारह से एकानवे। चैत तीज रविवार।
कनवज देषन करणे। चल्योसु समरिवार ॥ छं० १०२ ॥[4]

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ४, करनाटी पात्र समय।
२. वही, छं० ११, करनाटी समय।
३. वही, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७०, स० १।
४. वही, छं० १०२, स० ६१।

महाराज पृथ्वीराज अपने साथ में एक लाख सिपाहियों को पराजित करने में समर्थ ग्यारह सौ वीर योद्धाओं को लिए हुए थे। उनका शरीर पुष्ट था राजपूत सैनिक ऐसे हृष्ट-पुष्ट थे कि उनके हृदय पर वज्र का प्रहार भी विफल हो जाता था। युद्ध में एक रुद्र वेश धारण कर शत्रुओं को तृण के समान भस्म करने के लिए साक्षात अग्नि के समान थे। महाभारत युग से आज तक उनके समक्ष कोई योद्धा पैदा नहीं हुआ। सम्भरी नाथ पृथ्वीराज भी बस एक ही थे। उनकी वीरता की बातें देश भर में कानों-कान हो रही थी। गजनीपति को बांध-बांध कर छोड़ देने तथा कैमास जैसे मंत्री का वध कर देने ने तो उनके आतंक को और भी बढ़ा-चढ़ा दिया था। ऐसा योद्धा वीर महाराज पृथ्वीराज चाहुवान ग्यारह सौ सवार और सामन्त तथा ६ निज सूरमाओं तथा कवि चन्द को साथ लेकर राज महल से चल पड़ा और नगर के बाहर यमुना के किनारे जा ठहरा।[1]

आगे चल कर कवि ने उन सौ सामन्तों का परिचय दिया है जो पृथ्वीराज के साथ थे। यहाँ पर उन सामन्तों का नाम मात्र का उल्लेख किया जावेगा। अलग-अलग पात्र के विषय में अन्य स्थानों पर पूर्ण विवरण देने का प्रयत्न किया जावेगा। सामन्तों के नाम इस प्रकार है—(१) कन्ह, (२) गोइन्दराय, (३) सेनचन्द, (४) लगरीराय, (५) देवराज, (६) जाजराय, (७) रणधीर प्रमार, (८) जैत प्रमार, (९) आम राव, (१०) प्रसंगराय खीची, (११) पज्जूनराय, (१२) वलिभद्रराय, (१३) पाल्हन राय, (१४) निड्डुरराय, (१५) रामराय, (१६) गम्भीरसिंह, (१७) नरसिंह, (१८) जंघारभीम, (१९) अताताई, (२०) उद्दिगपगार, (२१) चन्दसेन (२२) वीरसिंह, (२३) हरसिंह, (२४) सारंगराय, (२५) विझराज, (२६) नागरराय, (२७) दाहरराय, (२८) रामसेन, (२९) रूपराय अथवा सूवराय (३०) मोहाराय, (३१) कनकराय, (३२) कनक-राय (३३) माल चन्देल (३४) मानराय, (३५) सामला सूर, (३६) वसिंह राय, (३७) देवराज, (३८) मंडलीराव, (३९) धनूराव, (४०) पहारराय, (४१) जुल्हराय, (४२) खेता खगांर, (४३) वीरमराय, (४४) रूपराय, (४५) सारंगराय, (४६) भोजराज, (४७) साखुंला वीर, (४८) सामलेसिंह, (४९) विक्रमराय (५०) सहल्लराय, (५१) ठंढरीराय (५२) सारंगराय, (५३) जयसिंह (५४) वाहराय, (५५) भीमराय, (५६) पीपाराय, (५७) देवराज, (५८) अचलेसराय (५९) कचराराय, (६०) नाहरराय, (६१) महनसिंह, (६२) भीमसिंह, (६३) लखनराय, (६४) पूरवराय, (६५) तेलज्जराय, (६६) अचलेस भट्टी, (६७) चन्द्रसेन, (६८) सग्रामसिंह, (६९), विजैराय वघेला, (७०) मोहिल्ल, (७१) लखनराय (७२) रंधरीराय, (७३) जैसिंह कमधुज्ज, (७४) पंजपराय (७५) भारथराय, (७६) जागरराय, (७७) टाकचाटा, (७८) रावतराय, (७९) दुर्गेदेव, (८०)

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, छं० १०३-५, स० ६१।

राउराव, (८१) अहट्टीराव, (८२) हाहुलीराय, (८३) पुहकरराय, (८४) कन्हराज, (८५) जंगलीराय, (८६) पंचाइत राय, (८७) रणवीरराव (८८) छग्गन, (८९) देवतीराय।'

उपर्युक्त सामन्तों की सूची देखने से पता लगता है कि इनमें १७ सामन्त कम है जबकि रासोकार कवि चन्द ने सामन्तों की संख्या १०६ तक बतलाई है। सम्भव है रासोकार ने जिन ६ निज सामन्तों का वर्णन किया है, उन्हें इस सूची में न रक्खा हो और उनके नाम छोड़ दिए हों फिर भी उपर्युक्त सूची के अनुसार ११ सामन्तों का अंतर पड़ता है जबकि कवि चन्द ने १०० सामन्तों का तो स्पष्ट होना लिखा है।

वास्तव में पृथ्वीराज अपने युग का महान शासक था। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उसकी आधीनता में १०६ सामन्त रहते थे, यह बात दूसरी है कि सामग्री के अभाव में हम उनके नाम न जान सकें। वैसे एक स्थान पर स्वयं ही महाराज पृथ्वीराज ने अपने आपको ७०,००० (सत्तर हजार) घुडसवारों का स्वामी होना कहा है—"मैंने अपने धर्म और न्याय के प्रभाव से हजारों स्थानों पर प्रभुता प्राप्त की है। सत्तर हजार घोड़ों पर मेरा आधिपत्य है, मैं समझता हूं कि कोई भी प्रतिपक्षी मेरे समान दरजे को अभी तक प्राप्त नहीं कर सका है।"' अतः स्पष्ट है कि पृथ्वीराज चौहान के पीछे उनके आधीनस्त सामन्तों की संख्या निश्चय ही अधिक होगी।

सिंहासनारोहण—जिस समय महाराज पृथ्वीराज को अपने पिता सोमेश्वर की मृत्यु की सूचना मिली तो उसने अपने पिता के पिंड के लिए षोडस (सोलह) दान देने का निश्चय किया। उस मतवाले राजा ने राजाओं की ही भांति समस्त कल्याणकारी कार्य किए। वह बारह दिन तक भूमि पर तथा तृण पट्टी पर ही सोया। भोगविलास को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए केवल एक समय ही भोजन ग्रहण किया। समस्त दान महाराज पृथ्वीराज ने अपने ही हाथों से दिया तथा इतना दान दिया कि अन्य कोई व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन में भी नहीं दे सकता था—

सुनी बत्त पृथिराज, भुम्मि सेना अधिकारी।
तात काज तिन प्यइ, दान खोडस बिच्चारी।
नह मह सद्धयो, राज गति सव्व प्रकार।
द्वादस दिन पृथीराज भुमि राज्य सयारं।
विनु भोग भोज इक्क टंक करि, सु हय दान दिय देववर।
दयंतौन कोई देहि न को, इतौ दान जनमत नर॥ ४५॥'

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, छ० १०९-३३, स० ६१।
२. पृथ्वीराज की राजसभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ-अगरचन्द नाहटा तथा भवरलाल नाहटा हिन्दुस्तानी, पृ० ९१-९२।
३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छ० ४५, सोमवध समय।

महाराज सोमेश्वर का निधन हो जाने पर उनका एक मात्र पुत्र पृथ्वीराज उनकी राजगद्दी का अधिकारी हुआ। अनेकानेक उत्सव मनाए गये। महाराज पृथ्वीराज को सर्व प्रथम नरनाह चाचा कन्ह ने अपने हाथ से तिलक किया तत्पश्चात निड्डुरराय ने तिलक किया। उस समय विप्रगण स्वस्ति वचन कर रहे थे। इसके उपरान्त समस्त सामन्तों ने बारी-बारी से महाराज पृथ्वीराज को तिलक किया तथा अपना स्वामी स्वीकार किया।

प्रथम तिलक सिर कन्ह करि, पुनि निड्डर रट्ठोर।
इन अग्गह सुभ संति करि, पच्छैं सब नर ऑर॥ ५०॥'

महाराज पृथ्वीराज सिंहासनरूढ़ हुए। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पृथ्वीराज के चन्द्रमा स्वरूपी भाल के अर्द्धांग में कन्ह का कमल रूपी कर सुशोभित हो रहा है। पृथ्वीराज के ऊपर श्वेत चमर डुलाया जा रहा था। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों सूर्य पर समस्त दिशाओं से चन्द्र अपनी किरणें फेंक रहे हों। पृथ्वीराज पृथ्वी पर प्रखर तेज को धारण कर तपने लगा। मुलतान को पकड़ने तथा बार-बार छोड़ने में उसने वीर रस रूपी अपार धन संचय किया।

कियौ तिलकु सिर कंह, पाट प्रथिराज विराजहि।
मनहु इंद अर्वंग, हत्य इन्दीवर राजहि।
चमर सेत सोभंत, ढुरहि चावाहसि सीस।
मनुहं भानं पर धरिय, किरणि ससि की प्रतिदीसं।
अवनीय यंदु लग्गौ तपन, धुवह तेज धर उद्धरण।
सुरतान गहन मोखन करण, बहुवीरा रस संचि धन॥ ५१॥'

ग्रन्थकार ने पृथ्वीराज के राज्याभिषेक के विषय में तो अवश्य लिखा, पर उसके समय का उल्लेख नहीं किया है। अतः सन्-सम्वत् जानने के लिए हमें शिलालेखों तथा इतिहास की शरण लेना आवश्यक हो जाता है। म० म० गोरीशंकर हीराचन्द ओझा एक स्थान पर रासो में वर्णित सोमेश्वर की मृत्यु की घटना को असत्य सिद्ध करते हुए लिखते हैं– 'यह सारी कथा (रासो का वर्णन) भी असत्य है, क्योंकि न तो सोमेश्वर भीमदेव के हाथ से मारा गया और न भीमदेव पृथ्वीराज के हाथ से। सोमेश्वर के समय के कई शिलालेख मिले हैं, जिनमें से पहला वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदी ३ का बिजोलियाँ का प्रसिद्ध लेख है और अंतिम वि० सं० १२३४ भाद्र पद सुदी ४ का है। पृथ्वीराज का सबसे पहला लेख वि० सं० १२३६ आषाढ़ वदी १२ का है। वि० सं० १२३६ के प्रारम्भ में सोमेश्वर का देहान्त और पृथ्वीराज की गद्दी नशीनी मानी जा सकती है, जैसा कि प्रबन्धकोष के अन्त की

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ४५, सोमवध समय।
२. वही, छं० ५१, सोमवध समय।

वंशावली से ज्ञात होता है। भीमदेव वि० सं० १२३५ में गद्दी पर बिल्कुल बाल्यावस्था में बैठा और ६३ वर्ष अर्थात् वि० सं० १२९८ तक वह जीवित रहा इतनी बाल्यावस्था में वह सोमेश्वर को नहीं मार सकता और न पृथ्वीराज ने उसका बदला लेने के लिए उस पर चढ़ाई कर उसे मारा था। गुजरात के ऐतिहासिक संस्कृत ग्रन्थों में भी कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है। राजपूताना म्युजियम में भीमदेव का वि० सं० १२६५ का एक शिलालेख विद्यमान है। आबू पर देलवाड़ा गांव के प्रसिद्ध तेजपाल के जैन मदिर की वि० सं० १२८७ की प्रशस्ति के लिखने के समय भी भीमदेव विद्यमान था। डॉ० बूलर ने वि० सं० १२९६ मार्गशीर्ष वदी १४ का भीमदेव का दान पत्र प्रकाशित किया है। इससे निश्चित है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु से अनुमान पचास वर्ष पीछे भी विद्यमान था।"[१]

उपर्युक्त कथन में कितना सत्य है, यह दूसरी बात है। किन्तु यह तो स्पष्टतः ओझा जी भी मानते हैं कि वि० सं० १२३६ में सोमेश्वर का देहान्त हो गया था तथा पृथ्वीराज को राजगद्दी प्राप्त हो गई थी किन्तु तत्कालीन खोजों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि ओझा जी का मत ठीक नहीं है। सब इतिहासकार एक मत होकर पृथ्वीराज का राज्यकाल वि० सं० १२३६ से ही मानते हैं किन्तु श्री यू० सी० भट्टाचार्य ने हाल ही में एक बारला का शिलालेख खोज कर यह सिद्ध कर दिया है कि महाराज पृथ्वीराज का राज्यकाल वि० सं० १२३४ से आरम्भ हो गया था अर्थात् वि० सं० १२३४ में पृथ्वीराज को अपने पिता की गद्दी उत्तराधिकार रूप में प्राप्त हो गई थी। बारला का शिलालेख वि० सं० १२३४ का है।[२]

अतः उक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि महाराज पृथ्वीराज को राज्य सिंहासन उत्तराधिकार के रूप में वि० सं० १२३४ में प्राप्त हो गया था।

युद्ध—११वीं तथा १२वीं शताब्दी से निरन्तर उत्तर भारत पर म्लेच्छों के आक्रमण हो रहे थे। इनका वेग पश्चिमी भारत को भी सहन करना पड़ा, जो उस समय भारतीय

---

१. श्री ओझाजी, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल कोशोत्सव स्मारक संग्रह।

२. "The Barla inscription can thus be taken as the earliest known record of the time of Prithviraja III whose reign stated some time after 'Friday of the bright fortnight of Bhadra Samvat 1234 and surely before the fourth day of the bright half of the month of Chaitra Samvat 1234. The date of Prithviraja's succession in to the Chahaman throne is thus pushed back to more then two years and should be rightly looked for within the period of about seven months begining from the date of the Anvalda inscription, i. e. Somvat 1234 Bhadra Sudi 4 Sukradine [संवत १२३४ भाद्र सुदि ४ शुक्र दिन]।' New light on the Chahaman History-By U. C. Bhattacharya, curator, Rajputana Museum. Ajmer.

सभ्यता का केन्द्र बना हुआ था। दिल्ली, कन्नौज, अन्हलवाड़ा तथा अजमेर जैसी प्रसिद्ध राजधानियां इसी क्षेत्र में अवस्थित थीं। सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरान्त केन्द्रीय राज्य-शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। शक्ति छोटे-छोटे खण्ड राज्यों में विभाजित हो गई थी। इन राज्यों में परस्पर युद्ध होते रहते थे। इधर पारस्परिक युद्ध तथा उधर निरन्तर मुसलमानों के आक्रमणों ने देश में एक प्रकार से अराजकता फैला दी थी। राजनीतिक संघर्ष के इस युग में सामाजिक परिस्थिति भी अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। गृह-कलह ने थोड़े शौर्य की भावना उत्पन्न कर दी थी, जिसका प्रदर्शन पारस्परिक अकारण युद्ध तथा स्वयम्वरों में किया जाता था। साधारण जनता तो तत्कालीन नृपतियों को आत्मार्पण करती गई और अपरिणामदर्शी नृपतियों ने घर में ही वैर तथा फूट के बीज बोए जिनका कटु फल देश तथा जाति को चिरकाल तक भोगना पड़ा। एक स्थान पर श्री स्मिथ ने भी लिखा है—'यह छोटे-छोटे राज्य शिशुओं की भाँति छोटी-छोटी बातों पर झगड़ना खूब जानते थे।'[1]

'पृथ्वीराज रासो' के महाराज पृथ्वीराज का जीवन युद्ध अथवा शिविर का जीवन है। पृथ्वीराज का समस्त जीवन युद्धों में ही व्यतीत हुआ। राजपूतों का आत्म सम्मान, वंश परम्परा, कीर्ति तथा धर्म के नाम पर युद्ध करना जीवन का एक प्रमुख अंग था। महाराज पृथ्वीराज भी शुद्ध क्षत्रि कुल में उत्पन्न हुए थे। अतः उनमें क्षत्रियता के संपूर्ण गुण होना स्वाभाविक ही था। 'पृथ्वीराज रासो' ग्रन्थ को अद्योपान्त अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग सभी समयो (अध्यायों) में युद्ध की भेरी बजती है। पृथ्वीराज ने अपनी ११ वर्ष की अल्प आयु में अपने पिता के सम्मान की रक्षा हेतु इष्ट का स्मरण कर खड्ग धारण कर मांडोवर के राजा नाहरराय को परास्त किया था। दिल्ली-अजमेर के अन्तिम हिन्दू शासक सम्राट पृथ्वीराज ने अपने ४३ वर्ष के छोटे से जीवन में छोटे-मोटे ४५ युद्धों के प्रतिदान किए। बहुतों में वह स्वयं थे और अनेक युद्धों में उसके सामन्त गण।

रासो के युद्धों को हम संक्षेप में इस प्रकार विभाजित कर सकते है—

(१) चौहान पृथ्वीराज तथा गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गौरी।
(२) चौहान पृथ्वीराज तथा कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द।
(३) चौहान पृथ्वीराज तथा गुर्जेश्वर भीमदेव।
(४) चौहान पृथ्वीराज तथा मेवाती मुंगल।
(५) अन्य।

डॉ० शम्भूनाथ सिंह ने एक स्थान पर रासो के युद्धों के विषय में लिखा है कि 'रासो को पढ़ने पर इतिहास के ये सभी भाव सत्य आँखों के सामने मूर्त हो जाते हैं। उसके युद्धों में अधिकांश व्यसन युद्ध ही हैं। पृथ्वीराज विवाह के लिए या यों भी अकारण किसी पर आक्रमण कर देता था। उस पर भी किसी बात का बदला लेने के लिए आक्रमण होते थे।

---

१. विंसन्ट स्मिथ-इम्पीरियल गजेटियर आव इन्डिया, ना० २, पृ० ३०१।

शहाबुद्दीन के आक्रमणों का तांता कभी टूटता ही नहीं था और आश्चर्य यह कि वह बार-बार पकड़ कर छोड़ दिया जाता था।.........इस प्रकार रासो में युद्ध आवश्यकता ही नहीं सामन्तों-राजाओं के दमन के रूप में भी वर्णित हुए हैं। उसमें इतने युद्धों का वर्णन हुआ है कि सबको एक साथ स्मरण भी नहीं रखा जा सकता।"[1]

यहाँ पर पृथ्वीराज द्वारा लड़े गए युद्धों का उल्लेख मात्र करना अभीष्ट था। अन्य स्थानों पर उनके विषय में स्वतन्त्र रूप से विस्तार के साथ विचार किया जावेगा। उपर्युक्त विवेचन से इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज चौहान की सम्पूर्ण आयु युद्ध करते हुए ही व्यतीत हुई।

मृत्यु—रासो समय ६६ 'लड़ाईरो प्रस्ताव' में कवि ने उल्लेख किया है कि जब महाराज पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण की सूचना प्राप्त की तो चन्द वरदायी को कांगड़ा दुर्ग के हाहुली हमीर को मना लाने तथा सहायतार्थ बुला लाने के लिए भेजा। कवि चन्द ने हमीर को अनेक प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया। अन्त में दोनों (हमीर तथा चन्द) जालन्धर—देवी के मंदिर में गए तथा देवी की स्तुति की। धूर्त हमीर ने कवि चन्द को तो मंदिर में बंद कर दिया तथा स्वयं गोरी की सहायतार्थ चल पड़ा। उस युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय हुई। पृथ्वीराज को पकड़ कर गोरी गजनी ले गया तथा वीरभद्र ने युद्ध का अन्त देखकर कवि चन्द के सम्मुख उपस्थित होकर उपरोक्त घटना कह सुनाई। इस शोकमय घटना को सुनकर कवि मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। वीरभद्र ने कवि की मूर्छा दूर की तथा उसे प्रबोधा। इस बार कवि कहने लगा कि मैं राजा के बाल स्नेह तथा सामन्तों का प्रेम बार-बार स्मरण आने के कारण इतना अधिक व्याकुल हो रहा हूं। वीरभद्र ने चन्द को अनेक प्रकार से समझाया तथा कहा, हे कवि चन्द ! अब तुम अपने दुःख का परित्याग करो तथा अपने महाराज पृथ्वीराज के उद्धार का कोई उपाय सोचो। यह शरीर तो नाशवान है, शोक न करके अपने कर्तव्य का पालन करो।

समय ६७ में कवि चन्द महाराज पृथ्वीराज के उद्धार के लिए प्रयत्न करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। कवि वीरभद्र से कहता है कि, हे वीर ! मंदिर के वज्र सदृश्य कपाट तो बन्द है, मैं कैसे निकलूं।' यह सुनते ही घनघोर शब्द के साथ द्वार खुल गए तथा कवि चन्द मुक्त हो गया। कवि मुक्त होकर दिल्ली की ओर चल दिया। दिल्ली की दुर्दशा देखकर उसे अत्यन्त दुःख हुआ, नगर निवासी महाराज के वियोग में सौ-सौ आंसू रो रहे थे। कवि ने राजा के उद्धार का दृढ़ निश्चय कर योग धारण कर लिया। योगी वेष में अपनी धुन में मस्त, कवि चन्द क्षुधा-पिपासा की ओर ध्यान न करके गजनी की ओर चल पड़ा, मार्ग के अनेकानेक कष्टों को देखकर वह क्लान्त हो उठा तब उसने देवी की वन्दना की, देवी ने उसे दर्शन

1. डॉ० शम्भुनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २९८-९९, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, १९६२।

देकर सहायता करने का वचन दिया। मार्ग के अनेकानेक कष्टों को सहन करता हुआ, कवि अन्तः गजनी पहुंचा तथा शाहबुद्दीन के दरबार के द्वारपाल के सामने जा खड़ा हुआ। द्वारपाल कवि को पहचान गया। कवि भी अपने गुप्त भेष का भंडाफोड़ होता देखकर वहां से चला आया। एक दिन तीसरे पहर में शहाबुद्दीन गोरी हदफ खेलने के लिए अपने साजबाज से निकला। कवि ने शाह को देखकर जोर से विरदावलि पढ़कर हाथ उठा कर आर्शीवाद दिया। शाह का ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ तथा परिचय जानने के लिए उसे पास बुला लिया। उसे ठहराने का भार हब्शी पीरोज खां को सौंपा गया। कवि को भीम खत्री के यहां रहने के लिए स्थान दिया गया, वहां उसने अपनी देवी का हवन पूजन कर देवी को प्रसन्न कर मन वांछित वर प्राप्त किया कि सुलतान शाह गोरी पृथ्वीराज तथा तुम (कविचन्द) एक साथ ही मृत्यु को प्राप्त होगे। दूसरे दिन प्रातःकाल दरबार में सुलतान ने कवि को बुलाने की इच्छा प्रगट करते हुए, हुजब खाँ को उसे दरबार मे उपस्थित करने की आज्ञा दी। शाह की आज्ञा सुनकर तातार खाँ ने ऐसा करने के लिए मना किया तथा शाह को अनेक प्रकार से समझाया किन्तु शाह ने उसकी एक न सुनी और कवि को दरबार में बुला लिया गया। नीतिज्ञ चन्द ने शाह गोरी को अपनी कुशल वार्ता से मोहित कर लिया तथा कहा कि पृथ्वीराज ने मुझे सात लोहे के तवे वेधने का अपना कौशल दिखाने का वचन दिया था, शाह यह सुन कर कहने लगा तुम्हारा नरेश तो अब नेत्रहीन और क्षीण वाणी वाला हो गया है। अब उसमें वह पौरुष कहां कि यह सब कृत्य कर सके। चन्द ने कहा कि यदि आज्ञा हो तो मैं अपने राजा से एक बार पूछ तो लूं। शाह इस बात पर सहमत हो गया तथा कवि को पृथ्वीराज से मिलने की आज्ञा दे दी किन्तु गोरी ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि कवि चन्द तथा बन्दी पृथ्वीराज, दोनों को दस-दस हाथ की दूरी पर रखा जावे। चन्द ने राजा पृथ्वीराज को आर्शीवाद दिया, परन्तु उन्होंने उसे सिर झुकाया तब कवि ने उसकी विरुदावलि पढ़ी जिसे सुनकर राजा ने उसे अनेक प्रकार से धिक्कारा। दुःख की अधिकता के कारण कवि के नेत्रों में पानी आ गया तथा गला भर आया किन्तु राजा ने उसे नमन न किया, तब चन्द इस प्रकार कहने लगा, कि सम्भरिधनी मुझे जो आपने वचन दिया था, उसे पूरा कीजिए, राजा ने कहा कि अब मुझमें उसे पूर्ण करने की शक्ति नहीं है तब कवि ने कहा कि मैं शाह से बुलवाऊंगा आप वचन दीजिए राजा ने इस बात पर शंका प्रकट की परन्तु चन्द ने उन्हें प्रबोधते हुए वचन ले लिया। इसके उपरान्त हुजब खां कवि को लेकर वापिस आ गया। वह पृथ्वीराज तथा चन्द के शब्दों का मर्म न समझ सका। कवि ने शाह से आकर कहा कि यदि आप आज्ञा देना स्वीकार करें तो राजा पृथ्वीराज अपने वचन को पूर्ण करना स्वीकार करते है। तातारखाँ ने चन्द को डपटा कि क्या निरर्थक बात करता है। चन्द ने फिर कहा कि यदि शाह गोरी वचन दे तो प्रत्यक्ष तमाशा देख लो, इतना सुनकर गोरी आज्ञा देने के लिए सहमत हो गया तथा लोहे के घड़ियाल सजाये जाने लगे, यह कौतुक देखने के लिए गजनी के सब नागरिकों की अपार भीड़ एकत्र होने लगी। तातार खां ने कहा कि हे शाह आज जुमेरात का दिन है तथा मैंने रात्रि में अशुभ स्वप्न देखा है। अतः आज

यह कृत्य न होने दीजिए किन्तु शाह न माना और कहा कि मैं अपने दिए हुए वचन से नहीं पलट सकता। यह सुनकर तातार खां खीज कर दरबार से उठकर चला गया। गोरी कवि चन्द ने बोला कि मैं फ़रमान (आज्ञा) दूंगा, तुम राजा का कौशल दिखाओ। यह सुनकर चन्द पृथ्वीराज को लेकर रंगभूमि में आ गया। उस दिन सम्वत, मास, पक्ष तथा घड़ी इस प्रकार थे—

संवत अट्ठावन माघ मास, अनसित्त पष्य दसमी सुभास।
दिन घटिय अंत पल आदि जात, तारक्क मूल त्रिव तिष्य पास ॥ ४६१ ॥[1]

हुजाब खाँ ने पृथ्वीराज को रंगभूमि में कई कमाने दी, जो वीर पृथ्वीराज के खीचते ही टूट गई, तब मीरशाह की कमान दी गई, बिलन्दी खां ने उसका कमान खींचना देखकर कहा कि यदि घड़ियाल फोड़ दिए तो शाह प्रसन्न होकर बहुत कुछ देगा। चन्द ने अवसर देखकर शाह से प्रार्थना की कि शाह गोरी पृथ्वीराज को उसकी स्वयं की कमान दिलवाई जावे, शाह की आज्ञा से हुजाब खाँ ने ऐसा ही किया। उस समय तातार खाँ ने शाह को यह खेल देखने के लिए फिर एक बार मना किया, किन्तु शाह ने उसकी बात पर ध्यान न दिया। अपना धनुष पाकर पृथ्वीराज प्रसन्न हो गए, निसुरत्त खां ने उसके हाथ में तरकस भी दे दिया। राजा ने वाण का संधान किया, तब चन्द ने ज्ञानोपदेश करते हुए उन्हें दृढ़ता दी तथा नाना प्रकार से उत्कर्ष देकर समझाया कि हे सम्भरि नरेश, सात को वेधने की अपेक्षा एक का वेधन कीजिए तथा एक ही वाण से अपना पराक्रम दिखाएं। बस इतना करने मात्र से आपकी कीर्ति युग-युगों तक चलती रहेगी। कवि के गूढ़ संकेत पाकर पृथ्वीराज ने शाह गोरी के समक्ष अपना मुंह कर लिया—

गिरनारा लगि गौड़, देस जीता जंगल थल।
लंका गढ़ जित्तयौ, समद जित्तौ उर सलियल।
हयिनावर जित्तयौ, सीम कंधारा वंधिय।
मथुरापुर जित्तयौ, एक मुप धार न सधिय।
प्रथिराज-सुनवि संनरिधनौ, सुहिनेंही मम जानि सुप।
इमि जंपै चन्द वरद्दिया, सजि जालंधर देस मुप ॥ छं० ५२५ ॥[2]

महाराज पृथ्वीराज सावधान होकर खड़े हो गए, कवि ने डमरू बजाकर शाह से आज्ञा देने की प्रार्थना की तथा महाराज पृथ्वीराज की विरुदावलि पढ़नी आरम्भ की। शाह के मुंह से प्रथम फरमान निकलते ही पृथ्वीराज ने अपना वाण संधाना, दूसरे पर उसे लक्ष पर अचल करके दृढ़ करते हुए प्रत्यंच्चा को कान तक खींच लिया, तीसरा फरमान प्राप्त होते ही राजा का शब्दवेधी वाण मुलतान के दांत, जीभ, तालू तोड़ता हुआ सिर के टुकड़े-टुकड़े करके पार हो गया तथा उसका धड़ नीचे गिर पड़ा—

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ४६१, स० ६७।
२. वही, छं० ५२५, स० ६७।

भयौ एक फुरमान, वान जोगिनिपुर संध्यौ।
सोइ सवद अरु वान, अग्र अविचल करि बध्यौ।
भयौ वियौ फुरमान, तानि रघ्यौ श्रवनतरि।
तियौ भयौ अन भयौ, परयौ पति साहि धरतरि।
लं दसन रसन तालू सघन, सीस फट्टि दह दिसि गवन।
सुरतान पर्यौ पां पुक्करै, भयौ चन्द राजन मरन॥ ५४९॥[1]

शाह के धराशायी होते ही कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज को योगवल द्वारा प्राण त्यागने की प्रार्थना की परन्तु उन्होंने ऐसा कर सकने में असमर्थता प्रकट की, इसी समय गोरी के दरबार में इन दोनों को, मारने के लिए चारों ओर से मलेच्छ दौड़ पड़े। तत्काल ही कवि चन्द ने अपनी जटाओं में छिपी हुई छुरी निकाल कर अपना सिर अलग कर लिया और छुरी महाराज पृथ्वीराज की ओर बढ़ा दी जिससे उन्होंने भी अपना प्राणान्त कर लिया—

कहै षान तत्तार, भट्ट करि टूक रज्ज सम।
मैं द्रिग देषत कहि भट्ट, दुष्ट देखियं काल भ्रम।
धरौ साहि अव गौरि, विनं स.हाव च.न लगि।
चन्द राज वर घेरि, लोह छुट्टै न अग लगि।
छुरिका कविंद जट मद्धि थी, कट्टि भट्ट कटि सीस अप।
ता पछै चन्द वरदाय नं, दइय राज वर हथ्थ नृप॥ छं० ५५४॥

भूत वृंत मन वृत्तयौ, मवछित पढ़ि कविचन्द।
गयौ भ्रग्ग जीवत करि, तजिय सुवर ग्रह दन्द॥ छं० ५५५॥

मरन चन्द वरदाइ, राज पुनि सुनिग स.हि हनि।
पुहुपजलि असमान, सीस छोड़ी सु देवतनि।
मेच्छ अवद्धित धरनि, धरनि सव तोय सोह सिग।
तिनहि तिनह संजोति, जोति जोतिह सप.तिग।
रासो असम नव रस सरस, चन्द छंद किय अमिय सम।
शृंगार वीर करुना विमछ, भय अद्भुत हसंत सम॥ ५५६॥[2]

इस प्रकार वीर शिरोमणि पृथ्वीराज ने अपने प्रवल शत्रु शाह गोरी से कवि चन्द वरदायी की सहायता से वदला ले लिया तथा वाद में अपने भी प्राण उत्सर्ग कर दिए, उनकी कीर्ति निःसंदेह सूर्य और चन्द्र के साथ-साथ चलती रहेगी। भारत भूमि पृथ्वीराज जैसे

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ५४९, स० ६७।
२. वही, छं० ५५४-५६, स० ६७।

[illegible] ऐतिहासिक होंगी। रासो के अन्य उद्धरण भी उपर्युक्त कथन का समर्थन करते हैं।

दानव कुल छत्रीय नाम, ढुंढा रष्यस वर।
तिहि सु जोत प्रथिराज सुर सामंत अस्ति नर।
[illegible] जोति [illegible], रूप संजोगि जोगि ग्रम।
[illegible] दोह उपन्न, इक्क दीहे समाय क्रम।
[illegible] होई निमंय, जोग भोग राजन लहिय।
[illegible] अरि दल मलन, तासु किन्ति चंदह कहिय॥ छं० ९२।'[1]

[illegible] ओझा जी पृथ्वीराज और शाहबुद्दीन की मृत्यु को अनैतिहासिक सिद्ध करते हुए लिखते हैं कि—यह (रासो की कथा) सम्पूर्ण कथन भी ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं है, क्योंकि शहाबुद्दीन की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथ से वि० सं० १२४९ में नहीं हुई किन्तु वि० सं० १२६३ चैत्र सुदि ३ को गक्खरों के हाथ से हुई थी। जब गक्खरों को [illegible] कर लाहौर से गजनी जा रहा था, उस समय धमेक के पास नदी के किनारे बाग में नमाज पढ़ता हुआ, वह मारा गया। पृथ्वीराज के पीछे भी उसका पुत्र गोविन्दराज दिल्ली की गद्दी पर नहीं, किन्तु अजमेर की गद्दी पर बैठा था, न कि रैणसी।"[2]

'रासो में वर्णित पृथ्वीराज की मृत्यु तथा इतिहासकारों द्वारा बताई पृथ्वीराज की मृत्यु के विषय में पर्याप्त भेद है। पृथ्वीराज की मृत्यु के विषय में सी० वी० वैद्य लिखते हैं—[illegible] पृथ्वीराज का अपना जीवन अन्त करने का रासो वर्णित वृत्तान्त उसकी अनैतिहासिक प्रकृति की चरम सीमा है। यह प्रतिशोध की प्रचलित गाथा है और एक कहानी है जो [illegible] गक्खरों द्वारा मुहम्मद गोरी की हत्या का सत्य विवरण विस्मृत [illegible] होगी। पृथ्वीराज की मृत्यु, पानीपत में जनकोजी सिंधिया और [illegible] की मृत्यु सदृश अभी तक रहस्य गर्भित बनी हुई है। ताज और तबकात के [illegible] है। दूसरे ग्रन्थ में इतना मात्र उल्लेख है कि 'पिथौरा अपने हाथी से उतर, एक घोड़े पर चढ़ भागा, परन्तु सरसुती के निकट पकड़ा गया और नरक भेज दिया गया। ताज (पृ० १९५) में लिखा है कि 'अजमेर' का राय बंदी बना लिया [illegible] उसे जीवन दान दिया गया। अजमेर पहुंचकर (जहां उसे ले जाया गया था) [illegible] पकड़ा गया (जैसा कि संकेत लक्षित है) इस लिए उसके शिरोच्छेद की आज्ञा दी गई और एक तलवार ने उस कमीने बंदी का शिर उसके शरीर से अलग कर दिया। ऐसी दशा में यह निर्णय करना कठिन है कि पृथ्वीराज की मृत्यु किस

1 पृथ्वीराज रासो ना० प्र० स० काशी छं० ९२, स० १।
2 श्री ओझा जी पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोषोत्सव स्मारक संग्रह।

प्रकार हुई, परन्तु हम यह विश्वास करना चाहेंगे कि पृथ्वीराज सरस्वती पर बन्दी हुए और तुरन्त ही उन्हें मार डाला गया जैसा कि तबकात में लिखा है।'[1] फारसी इतिहासकारों के मत को पुष्ट करने वाले डॉ० ए० बी० एम० हबीबुल्ला अपनी पुस्तक 'दि फाउंडेशन आव मुस्लिम रूल इन इंडिया' में लिखते हैं—"फरिश्ता के अनुसार अफगान, खिलजी और खुरासानी नायकों की अवहेलना के कारण युद्ध में पराजित होना पड़ा था और गजनी पहुंच कर उसने उसकी तीव्र निंदा की दूसरे वर्ष वह एक लाख बीस हजार सवारों के साथ लौटा और एक बार फिर तराईं के मैदान में अपने प्रतिद्वन्दी चौहान से भिड़ा। सम्भवतः अपनी तैयारियां पूरी करने के लिए तथा शत्रु को असावधान रखने के लिए ही उसने किवामुलमुल्क को लाहौर से पृथ्वीराज के पास अपनी आधीनता स्वीकार कराने के लिए भेजा। आशा के अनुसार ललकार और उपेक्षा गर्भित उत्तर आया। अन्ततः जब युद्ध का मोर्चा छिड़ा तब पृथ्वीराज की सेना में अति विश्वासनीय सूत्र से (फरिश्ता, भाग १, पृ० ५८) तीन लाख मनुष्य थे। मुईजुद्दीन ने अपनी सेना के पांच भाग किए जिनमें से चार ने शत्रु को चारों ओर से युद्ध में संलग्न कर लिया। दिन ढलने पर रोक रखे गये पांचवें भाग ने थके हुए शत्रु पर आक्रमण किया और इस युक्ति द्वारा संघर्ष का निर्णय कर डाला। खांडेराय (गोविन्दराय) जिसने पिछले वर्ष के युद्ध में मुईजुद्दीन को आहत किया था, मारा गया और निकल भागने के प्रयत्न में पृथ्वीराज को सरसुती के निकट बंदी बना लिया गया (मिनहाज, पृ० १२०) हसन निजामी के अनुसार उसे अजमेर ले जाया गया जहाँ कुछ समय के उपरान्त विश्वासघात का अपराधी पाकर उसे मृत्यु दण्ड दिया गया (ताजुल-मआसिर, पत्र ४४ व) मिनहाज का कथन है कि उसे तुरन्त मार डाला गया था। चन्द वरदायी की निराधार कहानी कि पृथ्वीराज ने किस प्रकार नेत्र विहीन करके गजनी के वन्दीगृह में रखे जाने पर भी उसकी सहायता से अपनी मृत्यु से पूर्व मुईजुद्दीन का वध कर डाला—देखिए पृथ्वीराज रासो भाग ६ तथा राज दर्शिनी पत्र ४९ अ। उसके कुछ सिक्कों पर संस्कृत के अतिरिक्त 'हम्मीर' शब्द उत्कीर्ण मिलता है जो इस बात का प्रदर्शक है कि उसने मुईजुद्दीन की आधीनता स्वीकार कर ली थी (टामस क्रानिकल्स, पृ० १२, नं० १५)।"[2]

तालउल मआसिर के लेखक द्वारा प्रथम पृथ्वीराज को प्राणदान देकर उसके पश्चात विद्रोही मान कर मस्तक विछिन्न कराने का उल्लेख स्पष्टतः यवन अत्याचारों को छिपाने का प्रयास जान पड़ता है। पृथ्वीराज के युद्ध में मारे जाने का प्रमाण अधिक विश्वासनीय है।

'तबकात' का रचयिता भी युद्ध से भागते पिथौरा को कत्ल करने का विवरण पक्षपातपूर्ण देता है। पृथ्वीराज जैसा पराक्रमी वीर रण प्रांगण में पीठ दिखाकर प्राण रक्षा का प्रयास करे, असंगत सा प्रतीत होता है। 'तारीख फरिश्ता' का प्रणेता जिसने 'तबकात' की

---

१. हिस्ट्री आव मेडीवल हिन्दू इंडिया, भाग ३, अध्याय २०, पृ० ३८५, सन् १९२६।

२. डॉ० ए० बी० एम० हबीबुल्ला, दि फाउंडेशन आव मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० ५८-५९, सितम्बर, १९४५।

भाषा में ग्रन्थ की रचना की, हिजरी सन् ५८२, वि० सं० १२४३ में शाह की बुरी तरह हार होना स्वीकार करता है। शाह के पकड़े जाने के विवरण को गुप्त रखकर वह पृथ्वीराज के सामन्त खाण्डेराय (गोविंदराय) द्वारा विशेष घायल हो, एक खिलजी प्यादे द्वारा घोड़े पर उठाकर ले भागना लिखा है। पृथ्वीराज की सेना बाहुल्य के साथ वह उसमें १५० राजाओं की उपस्थिति को भी स्वीकार करता है। रासोकार ने भी पृथ्वीराज के सामन्तों की संख्या १०६ लिखी है। शाह गोरी द्वारा धोखा भी दिया गया था कि अपने भाई से आज्ञा प्राप्त कर संधि कर सकता हूं, अतः राजपूत सेना असावधान रही। प्रातः काल होते ही गजनी की सेना ने आगे तथा पीछे दोनों ओर से भयंकर आक्रमण किया, जिससे दिल्ली का हाकिम खाण्डेराव (गोविन्दराय) तथा अन्य कितने ही राजा मारे गए तथा राय पिथौरा सरस्वती की सीमा में पकड़ा जा कर सुलतान की आज्ञा से कत्ल कर दिया गया।

स्पष्टतः देखा जा सकता है कि सभी मुसलमान तवारीखकारों का विवरण पक्षपातपूर्ण है। एक दो स्थानों पर गोरी की पराजय को अवश्य ही दबी जबान में स्वीकार किया गया है तथा वीर पृथ्वीराज को घायल अवस्था मे बन्दी बनाने के कृतघ्न कार्य को भी वह नहीं छिपा सके है। पृथ्वीराज के पराक्रम तथा उसकी विशाल वाहिनी का भी उन्होंने उल्लेख किया है किन्तु पृथ्वीराज की वीरता को अधिक महत्व न देकर यवनों का ही अधिक गुणगान किया गया है।

'हम्मीर महाकाव्य' के लेखक ने अन्तिम युद्ध का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है 'मुसलमानों ने पृथ्वीराज के अश्वशाला के अधिकारी को अपनी ओर मिलाकर युद्धार्थ नृतक घोड़े को तैयार कराया। युद्ध छिड़ने पर रणवाद्य बजते ही वह नृत्य करने लगा जिससे पृथ्वीराज शत्रु पर आक्रमण करने में असमर्थ हो, पकड़ा जाकर मारा गया।' यह विवरण भी अधिक तर्क संगत प्रतीत नहीं होता है क्योंकि तत्कालीन युद्धों में अश्व एवं अस्त्र ही योद्धाओं के साथी होते थे। ऐसी स्थिति में नृतक घोड़ों को न पहचान पाना बड़ा अजीब सा लगता है। कुछ भी हो 'हम्मीर महाकाव्य' का कथन भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है।

पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु का प्रसग अत्यन्त विवादग्रस्त होने के कारण निश्चित मत निर्धारित करना बड़ा ही कठिन मालूम होता है, फिर भी हम तो यही कहना चाहेंगे कि पृथ्वीराज सरस्वती के तट पर बन्दी बना लिया गया तथा तुरन्त ही मार डाला गया, जैसा 'तबकात' में लिखा है।

बालम्नराइ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा में ३३ वीं पीढ़ी में राजा हरिहरराय चौहान के उपरान्त उनका पुत्र बालम्नराइ उनका उत्तराधिकारी हुआ।[1] कवि ने इनका विशेष विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। रा० ए० सो० लंदन की रासो की

1. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २९१, स० १।

प्रति भी उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है। किन्तु नाम में थोड़ा सा अन्तर है। इस प्रति में बालन्नराई के स्थान पर 'बालणमराई' लिखा है। सम्भव है लिपिकारों की असावधानी के कारण ऐसा हो गया हो। वैसे तात्विक दृष्टि से दोनों नामों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।[1] रासो की अन्य प्रतियाँ जैसे धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति, तथा साहित्य संस्थान, उदयपुर वाली रासो की प्रति इनके विषय में कोई सूचना प्रस्तुत नहीं करती हैं। शिलालेख एवं संस्कृत-ग्रन्थ जिनमें चौहानों की वंशावलियाँ दी हुई हैं, इनके विषय में सर्वथा मौन हैं।[2]

पंडित सदाशिव दीक्षित के अनुसार इनका नाम चालुन्नराय था तथा वह इन्हें और चामुण्डराय को एक ही व्यक्ति मानते हुए लिखते है कि—'उपलब्ध सभी काव्यों में इसका नाम चामुण्ड अथवा चामुण्डराज कहा गया है। रासो में उल्लिखित चालुन्नराय भी चामुण्डराज का ही रूपान्तर है। अवन्ती भूपाल भोज के द्वारा वीर्यराय के वध किये जाने पर चामुण्डराज ने शासन सूत्र को अपने हाथ में ले लिया था।'[3]

पता नहीं पंडित जी ने 'चालुन्नराय' किस प्रति में लिखा हुआ देख लिया। दीक्षित जी का मत निश्चित ही कल्पना पर आधारित होने के कारण ग्राह्य नहीं है। इनकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है।

विन्दसूर अथवा बिन्दसार—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहानों की वंशपरम्परा में ८वीं पीढ़ी में राजा बिन्दसार हुए।[4] वीरसिंह के उपरान्त यही राजगद्दी के उत्तराधिकारी हुए। रासोकार ने इनका इससे अधिक विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। रा० ए० सो० लन्दन की प्रति के अनुसार भी राजा बिन्दसार, राजा वीरसिंह के उपरान्त ही गद्दी पर बैठे थे।[5] किन्तु धारणोज की प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो इनके विषय में सर्वथा मौन है। शिलालेख, पृथ्वीराजविजय महाकाव्य तथा प्रबंध कोष में बिन्दसूर के स्थान पर विग्रहराज नाम मिलता है।[6] संभव है विग्रहराज तथा रासो को बिन्दसार एक ही व्यक्ति हो। किन्तु सामग्री अभाव के कारण निश्चित मत व्यक्त करना असंभव है।

विबुधसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंशावली की २५ वी पीढ़ी में

---

१. रासो की हस्तलिखित एव अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
२. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
३. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११९।
४. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८५, स० १।
५. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
६. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।

राजा धर्मगार के उपरान्त विबुधसिंह चौहान उत्पन्न हुआ।[1] रासोकार इनके विषय में केवल उपर्युक्त विवरण देने के अतिरिक्त पूर्णतया मौन है। रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[2] किन्तु धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति तथा साहित्य संस्थान, उदयपुर से प्रकाशित रासो की प्रति में इनका नामोल्लेख नहीं हुआ है। इतना ही नहीं, शिलालेखादि एवं संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थ भी इनके विषय में मौन है।

पंडित सदाशिव दीक्षित एक स्थान पर इनके विषय में लिखते है—"इसका नाम शिलालेख में 'वाक्पति' तथा पृथ्वीराज विजय में 'वाक्पतिराज' बतलाया गया है, प्रबंधकोष में इसका नाम वापल देव है। हम्मीर महाकाव्य तथा सुर्जन-चरित में इसका नाम क्रमशः वल्लभराज तथा वल्लभ कहा गया है, और रासो में इसका स्मरण विबुधसिंह, इस नाम से किया गया है। अतः चाहमान वंश में नामों की अनेकता में भी एक विशेषता है।"[3] पंडित जी अनेकता में एक रूपता देखने के अभ्यस्त मालूम होते हैं। पता नहीं वह ऐसी निराधार कल्पना कैसे कर लेते हैं।

वीरसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश में राजा रामसिंह के उपरान्त सातवीं पीढ़ी में राजा वीरसिंह हुए।[4] वंशवृक्ष का उल्लेख करते हुए कवि ने नाम मात्र का संकेत प्रस्तुत किया है। रा० ए० सो० लंदन की प्रति के अनुसार वीरसिंह अजयसिंह के उपरान्त ही गद्दी पर बैठे थे। इस प्रति में रामसिंह नामक किसी भी राजा का उल्लेख नहीं किया गया है।[5] साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो एवं धारणोज की रासो की लघुतम प्रति इनके विषय में सर्वथा मौन है।

एक स्थान पर पंडित सदाशिव दीक्षित वीरसिंह को अजयसिंह का विशेषण मात्र मानते हुए इनके अस्तित्व में संदेह करते हुए लिखते हैं—"श्री ओझा अपने नक्शे में रामसिंह और वीरसिंह इन दो और नामों का रासो की तालिका में समावेश करते है, परन्तु—

सुअ अजयसिंघ सिंघह सुराय।
नर वीरसिंह संग्राम ताय॥

इस अर्धाली में राय और वीरसिंह के पूर्व सुत, सुतन आदि पदों के प्रयोग न होने से

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २१०, स० १।
२. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० ५०।
३. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११८।
४. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८५, स० १।
५. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० २०।

इनकी पृथक् सत्ता न तो तर्क की कसौटी पर सिद्ध होती है और न शिला लेख आदि की भित्ति पर ही। ये पद अजय सिंह के विशेषण हैं।"[१]

भोलाराय (भीमदेव) चालुक्य—गुर्जरेश्वर भीमदेव की सेना में अनेक गढ़पति रहा करते थे। सिन्ध तक के जहाजी बेड़े पर उसका अधिकार था तथा धारावर्ष तक उसकी सैनिक छावनियां फैली हुई थीं। अमरसिंह शेवड़ा नामक साधु उसकी सेवा मे रहता था। वह मत्रों द्वारा स्त्री-पुरुष तथा देवादि को वश मे करना जानता था। उसने ब्राह्मणों के अनेक बार मस्तक मुड़वा दिए थे तथा उन्हें देशनिष्कासित कर दिया था। आबू के परमार जैतसी के एक पुत्र सलख राज तथा एक पुत्री इच्छनी कुमारी थी। भीमदेव ने सुन्दरी इच्छनीकुमारी से विवाह की इच्छा प्रकट की। भोलाराय बिना सत्य-असत्य का विवेक कर राजकुमारी इच्छनी के रूप की बातें सुना करता था। यह रोग उसका इतना भीषण हो गया कि राजकुमारी इच्छनी स्वप्न में भी दिखाई देने लगी। अन्ततोत्वा इच्छनी की आकांक्षा से उसने अपने मंत्री अमरसिंह को आबूराज के पास भेज ही दिया, किन्तु राजकुमारी की सगाई पहले ही चौहान पृथ्वीराज के साथ तय हो चुकी थी। भोलाराय के प्रतिनिधि को ज्ञात होने पर, उसने कहा 'हे पर्वत पति! भोलावीर इच्छनी को भूल नहीं सकता, वह तुमसे कन्या की मांग करता है। यदि उसकी मांग को ठुकरा कर राजकुमारी इच्छनी का विवाह चौहान से कर दोगे तो निश्चय ही वह तुम्हें आबू से बाहर निकाल देगा। उसके लिए परमारों से युद्ध करना उतना ही सरल है जितना वीर अर्जुन के लिए किसी तुच्छ से युद्ध करना था।' सलख ने भीमदेव के प्रतिनिधि की बातें शांति पूर्वक सुनी तथा पांच दिन तक बहुत आदर-सत्कार करके अपने यहां रखा। अन्त में मंत्रियों से मंत्रणा कर उसने उत्तर दिया—'यदि भोला भीम मेरे राज्य की कामना करता तो निश्चय ही मैं उसे स्वेच्छा से दे देता, किन्तु उसने जैन धर्म अपना लिया है, इसी प्रकार के पाखण्ड से उसने इतनी भूमि प्राप्त की है, किन्तु उत्तर दिशा के शत्रु की शक्ति का भान नहीं है। 'जैतसी ने भी कहा—'मरुभूमि में नौ लाख योद्धा निवास करते हैं, आबू के अंतर्गत १८ राज्य हैं तथा सम्भरपति चौहान सहायतार्थ मेरे साथ है और यदि इन्होंने भी मेरी रक्षा न की तो गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करेंगे।' उपर्युक्त उत्तर देकर भीमदेव के प्रधान को विदा किया गया।

दूत को विदा करने के उपरान्त आबू पति ने मंत्रणा करके पृथ्वीराज से सहायता मांगने का निश्चय किया तथा एक पत्र में सम्भर पति को लिखा—'सलख राज की भगिनी तथा जैत की पुत्री को गुर्जरेश्वर भोलाभीम मांगता है और न देने पर आबू को उजाड़ देने की धमकी देता है। क्या सिंह का भाग्य गीदड़ के हाथों मे आ गया। वह मेरे राज्य सीमा में दिन व दिन लूट करता है मेरी प्रजा दिन पर दिन गरीब होती जा रही है।" पृथ्वीराज ने परमार का स्वागत किया तथा सलख के साथ ही सहायतार्थ चल दिया। भोलाभीम

१. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११२-१३।

उपर्युक्त सूचना पाकर अत्यन्त क्रोधित हुआ तथा मंत्रणा करके रण दुन्दुभि बजा दी। चारों दिशाओं मे सेनाए एकत्र होने लगी। गिरनार का राजा लोहाण कटारी, वीरदेव बाघेला, राय परमार, वीरम का राजा रणिङ्ग झाला, सोढ़ा शार्ङ्गदेव तथा गंग दाभी आदि सभी शूर वीर उपस्थित हुए। भोलाराय ने अपने मंत्री सहित आबू को चारों ओर से घेर लिया। कई दिनों तक भयंकर युद्ध चलता रहा। अन्ततोगत्वा परमारों की पराजय हुई तथा आबूगढ़ चालुक्यों के हाथ आ गया। भीम जय ध्वजा फहराता हुआ आबू दुर्ग पर चढ़ गया।

इसी बीच शाह गोरी ने जो ऐसे अवसर की ताक में रहता था रणवाद्य बजा दिए। मंत्रियों के लाख समझाने पर भी भोलाराय ने शाह गोरी को आमंत्रित कर बुलवाया, किन्तु शाह ने इससे मिल कर युद्ध न किया। भीमदेव तथा शाह गोरी दोनों ही ने पृथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया। पृथ्वीराज चौहान की सेना दोनों दलों के मध्य ढोल की भांति पिटने लगी। चौहान ने देवी की आराधना की। रात्रि के समय चौहानों ने चालुक्यों पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि चालुक्यों की सेना लोह दुर्ग की भांति खड़ी थी फिर भी चौहानों की विजय हुई। रात्रि के अन्धकार मे ऐसी गड़बड़ी मची कि भीम के योद्धा आपस में ही एक दूसरे को मारने लगे। यद्यपि राजा नेभी युद्ध में भाग लिया तथा अपना बल भी गँवाया, किन्तु फिर भी विवश होकर उसे पीछे हटना पड़ा।

भीमदेव को परास्त करने के उपरान्त चौहान पृथ्वीराज ने थोड़ी सी सेना भीम की गति-विधि पर दृष्टि रखने के लिए छोड़ कर एक विशाल वाहिनी लेकर शाह गोरी पर आक्रमण कर, उसे भी परास्त किया।[1]

भीमदेव के काका सारंग देव के सात पुत्र, भीमदेव से कहा सुनी हो जाने के कारण दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान के दरबार में रहने लगे थे। एक बार दरबार में महाभारत का प्रसंग चल रहा था जिसमे प्रतापसिंह चालुक्य का हाथ मूछों पर जा पड़ा। चाचा कन्ह ने कुपित होकर उसके दो टुकड़े कर दिए। भीमदेव को अपने चचेरे भाइयो की मृत्यु की सूचना पाकर अपार कष्ट हुआ तथा उसके हृदय में बदला लेने की भावना प्रज्वलित हो उठी। इसी बीच पृथ्वीराज को दिल्ली राज सौंप कर अनंगपाल बद्रीकाश्रम चले गये जिससे भीम को और भी बुरा लगा।

गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य के हृदय मे सांभरपति सोमेश्वर सदैव शूल की भांति चुभता रहता था तथा पृथ्वीराज अंगारे के समान जलन पैदा करता था। उसने-अपने मंत्रियों से मंत्रणा कर चतुरंगिणी सेना तैयार की। वह कहने लगा 'अब मैं शत्रु को कुचल कर मार डालूंगा तथा समस्त पृथ्वी पर एक छत्र राज्य करूंगा।'

जिस भांति छोटे-छोटे अनेक स्रोत आ-आकर नदी में मिलते है उसी प्रकार भिन्न-

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, भोलाराय समय।

भिन्न राज्यों की सेनाएं एकत्र होने लगीं। एक विशाल सेना को लेकर भीमदेव ने सोमेश्वर की सीमा का अतिक्रमण किया। वेचारी प्रजा भयभीत होकर भाग गई तथा भीमदेव ने लूट मचा दी। अपनी प्रजा की आर्तवाणी सुन कर सोमेश्वर घोड़े पर शीघ्र चढ़कर इसी प्रकार तैयार हो गया जिस प्रकार कोई सती अपने पति के साथ जाने के लिए तैयार हो जाती है। सोमेश्वर पृथ्वीराज को दिल्ली में ही छोड़ कर अन्य सामन्तों को साथ लेकर भीमदेव का सामना करने चल दिय।

सोमेश्वर चौहान तथा भीमदेव के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। पृथ्वी भय से कांप उठी। लाश पर लाश पड़ने लगी, खून की सरिताएं वह चली। स्वयं सोमेश्वर ने आगे बढ़ कर गुजरातपति का सामना किया। दोनों ही देश रक्षक राजा थे, छत्रपति थे, कवच धारण किए हुए थे, दोनों ही हिन्दू धर्म की मर्यादा रूप थे तथा दोनों ही सच्चे राजपूत थे। उस समय रण क्षेत्र ऐसा दिखाई पड़ रहा था मानों वर्षा ऋतु की घनघोर अंधकार तथा तूफानी रात्रि में पर्वतों पर दावानल जल रहा हो। सच्चा योद्धा सोमेश्वर चौहान रणक्षेत्र में वीरता दिखाता हुआ खण्ड-खण्ड होकर गिर पड़ा। सोमेश्वर सोम (चन्द) लोक को चला गया तथा चालुक्यों ने अपना हाथ रोक लिया। समस्त पृथ्वी भोलाराय की जय-जय कार से गूंज उठी।''[1]

पृथ्वीराज ने युद्ध परिणाम सुना तो शोक समुद्र में डूब गया। पृथ्वीराज ने बची हुई सेना वापिस बुला ली तथा अपने पिता के लिए षोडश पिण्ड दान किया। पृथ्वीराज ने बारह दिन तक कुशशय्या पर शयन किया, एक बार भोजन किया तथा स्त्रियों के संसर्ग को छोड़ दिया। ब्राह्मणों को दान दिया गया। सोने से सींग तथा खुरी मंढ़ी हुई आठ हजार श्रेष्ठ गाएं ब्राह्मणों को दान में दी।[2]

पिता की क्रिया कर्म करने के उपरान्त पृथ्वीराज ने भीम से बदला लेने का पूर्ण निश्चय किया तथा पगड़ी न बांधने की प्रतिज्ञा की। उसने बार-बार कहा 'भीम चालुक्य को मार कर मैं उसकी अंतड़ियों में से अपने पिता को निकालूंगा। धिक्कार है उस पुत्र को जो अपने पिता का बदला न ले।' यह कहते हुए राजा पृथ्वीराज की आंखें लाल हो गईं। पृथ्वीराज ने एक विशाल सेना तैयार कर प्रथम राज्याभिषेक का कार्य सम्पन्न कर पुनः भीमदेव से युद्ध करना निश्चय किया।

पृथ्वीराज के हृदय को भीम निरन्तर सलता रहता था, शत्रु के प्राण लिए बिना उसकी प्रबल कोपाग्नि शान्त नहीं हो सकती थी। अतः उसने मंत्रियों से मंत्रणा कर तथा शुभ मुहूर्त दिखाकर रण-वाद्य बजवा दिए। पृथ्वीराज ने निश्चय घड़ी में प्रस्थान कर उपयुक्त स्थान पर

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान, उदयपुर, छं० १७-४० सोमवध समय।
२. वही, छं० ४५-४६ सोमवध, समय।

उसने निर्दिन गाड़ दिया। भीमदेव के गुप्तचरों ने जाकर खबर दी कि चौहान चौसठ हजार सैनिक लेकर युद्ध हेतु गुजरात की ओर अग्रसर हो रहा है।

समाचार सुन कर भीम कुपित हो उठा। उसके अंग-प्रत्यंग शौर्य से फड़कने लगे तथा आंखें लाल हो गई। उसने तुरन्त मंत्रियों को बुलाकर सेनाएं तैयार करने का आदेश दिया। बात की बात में सब सेनाएं एकत्र होने लगीं।

सांभरपति के गुप्तचर ने जाकर सूचना दी कि 'समुद्र के समान गर्जन करती हुई चालुक्य सेना तैयार हो रही है, उसमें एक लाख योद्धा तथा एक हजार हाथी हैं। यह सुनकर पृथ्वीराज ने कहा 'यदि युद्ध में भीम मेरे समक्ष आया तो जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में पवन की सहायता से अग्नि विशाल वनों को भस्म कर देती है उसी प्रकार मैं इन सबों को नष्ट कर दूंगा।' दूसरे दिन पृथ्वीराज की सेना अपार उत्साह के साथ आगे बढ़ी। वीर पृथ्वीराज ने गुर्जर नरेश को भड़काने के लिए चन्दवरदाई को भेजा—

'अहो चन्द चन्दह मरन, दिन दिन सल्लै दुख्ख।
कहो जाइ चालुक्क सम, मगं वैर समुख्ख॥ छं० ९८।
ले चल्लौ नृप भीम कौ, चंगी दोय रसाल।
एक तुरंगी पग्घरी, इक कंचुकी भुजाल॥ छं० ९९।'[1]

चौहान ने कहा कि हे चन्द, मुझे पिता की मृत्यु की वेदना दिन प्रति दिन कष्ट दायक सिद्ध हो रही है, अतः तुम चालुक्य भोलाभीम को सूचित करो कि मैं तुरन्त शत्रुता का बदला लेना चाहता हूँ। तुम उसके पास दो चंगी ले जाओ। एक लाल पगड़ी तथा दूसरी लाल रंग की चोली। इतना ही नहीं पृथ्वीराज ने निम्नांकित संदेश और भी भेज दिया—

'मन माने सोई गहौ, करिव चित्त इकतार।
इह संसार सुपन्न, अपन सुक्खं इक बारं॥
चन्द हथ्थ कहि पठय, भीम सम समरि बारं।
तात वैर संग्रहन, बचन तत्ते उच्चार॥
गज माट सुभर घट भजि तुअ, सरित चलाऊं रुधिर की।
धार मिचि सोमेस कहूं तर्पति बुझाऊं उअर की॥ छं० १०१'[2]

और भी—

नामाइन मदहन, हरिद घन अमृत धार।
बाल्मिकि पंडुव, सींचि लय रघुपति सार॥
अरजुन मदन समेत, आनि बब्बर पताल मनि।
वेद व्यास भारथ्थ, सकल छोहनि दीपक बनि।

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ९८-९९, स० ४४।
२. वही छं० १००, स० ४४।

चाहुआन कहाइय चन्द कर, पिता वैर कज हह वयन।
चालुक्क भीम उन सम सुनहु, तुमहु जिवावन अब कवन।। छं० १०१।[1]

पृथ्वीराज ने चन्द को एक लाल चोली तथा एक लाल पगड़ी तो उपर्युक्त कठोर संदेश के साथ देकर भेजी ही किन्तु कवि चन्द अपनी ओर से एक जाल, नसैनी, कुदाल, दीपक तथा हाथी का अंकुश भी साथ लेकर गुजरात की राजधानी में पहुंचा। चन्द की ऐसी विचित्र दशा देख, तत्काल ही देखने वालों की भीड़ लग गई। चन्द ने भोला के पास पहुंच कर घोषणा की कि 'सांभरपति आ पहुँचा है। चन्द की ऐसी विचित्र दशा देखकर भोलाराय ने पूछा कि हे भाट ! तुम्हारी लाई हुई इन विचित्र वस्तुओं का क्या अर्थ है—

चल्यौ चन्द गुज्जरह, गरं जारी जंजारह।
नीसरनी कुद्दाल, दीप अंकुस आधारह।।
करन सूल संग्रहे, गयौ चालुक दरबारह।
इह अचंभ जन देषि, मिल्यौ पेषन संसारह।
भेट्यौ सु भीम भोरा सुभर, कहिय वत्त संभरि वयन।
हो भट्ट चट्ट बोल्हु कयन, कहा इहै डंबर सयन।। छं० १०२।[2]

कवि चन्द ने उत्तर दिया—'पृथ्वीराज की आज्ञा है कि यदि तुम पानी में जाकर छुपोगे तो इस जाल से पकड़ लिए जाओगे, यदि आकाश में उड़ोगे तो यह नसैनी बन्दी बनाने के लिए प्रस्तुत है। यदि पाताल में जाकर छिपोगे तो इस कुदाल से खोद कर पकड़ लिए जावोगे, अन्धकार में छिपोगे तो दीपक के प्रकाश से खोज कर बन्दी बना लिए जावोगे, यह अंकुश तुम्हें वश में करने के लिए है तथा इस त्रिसूल से तुम्हारा वध कर दिया जावेगा।

एन जाल संग्रहो, जाम जल भीतर पड्यौ।
इन नीसरनी ग्रहो, जाम आकासह चढ्यौ।।
इन कुद्दाल पनौ, जाम पायाल पनठ्ठो।
इन दीपक संग्रहौ, जाम अंधारं नठ्ठो।।
इन अंकुस असि वसि करौं, इन त्रिसूल हनि हनि सिरौं।
जगमगं जोति जग उप्परं, तो डर प्रथम नंरिदरं।। छं० १०३।[3]

चन्द के वचन सुनकर भोलाराय भभक उठा, उसने भी ऐसा ही उत्तर दिया—"मुझे जो धमकी देता है, उसका मैं वध कर डालता हूँ। मेरा नाम भीम है, मैं भयंकर युद्ध करने वाला हूँ। इतना बढ़-बढ़ के बातें मत कर जो कुछ पूर्व हो चुका है उसका भी स्मरण कर ले।"

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० १०१, स० ४४।
२. वही, छं० १०२, स० ४४।
३. वही, छं० १०३, स० ४४।

झाल ज्वाल करि भसम, करस नीसरनी कट्टौं।
घन भंजौ कुद्दाल, दीप कर पवन झपट्टौ।
अंकुस अंकुर मोड़ि, तिनह अमूल संकोड़ौं।
हनन कहै ता हनौं, जोति जग मच्छर मोड़ौं।
हौं भीम भीम कन्दल करौं, मो डर डंक अचंभ नर।
सम घरइ प्रब्ब धरिलज्ज अब, बितक पुब्ब परच्चि पर ॥ छं० १०४।[1]

चन्द ने पुनः उत्तर दिया—यदि दैव योग से कभी कोई चूहा बिलार को पराजित कर ले, गिद्ध पवित्र राज हंस के शिर पर नाच ले, युद्ध में मृग सिंह का सामना करले, मेढ़क सर्प को निगल जाय तो इसे विधाता के विधान की विचित्रता ही समझना उचित है—ऐसी बातों की पुःनरावृत्ति होगी, सोचना मूर्खता है। क्या पर्वतों पर छाए हुए भीषण वन को भस्म करने वाली दावाग्नि की बराबरी एक छोटा सा दीपक कर सकता है? अर्थात् नहीं।

रे उंदर बिड्डाल, कोई करन सिर मच्चौ।
रे गिद्दिन सिर हंस, दैव जोगह सिर नच्चौ।
रे मृग वध संग्राम, लरै वर अप्पन आयौ।
रे श्रप्पह सो समर, करै मंडुक जस पायौ।
आंचम ब्रह्म गति वह नहीं, बार बार तुहि सिख्यियं।
प्रज्जरै झार तरवर गिरह, का दीपक लै विप्पियं ॥ छं० १०५।[2]

तर्क बढ़ता देख कर भीम ने उत्तर दिया—'भाटो के पुत्र तो केवल वाणी युद्ध जानते हैं। यदि सोमेश्वर की मृत्यु का बदला चाहते हो तो अपने घर का धन बान्धवों को बाँट दो, जाकर पृथ्वीराज से कहना कि इस प्रकार की डींगों से बच्चे ही भयभीत हो सकते हैं, यदि उसमें कुछ बल हो तो सेना सजाकर युद्ध भूमि में निर्भयता से आवे।'

बैन बाद सो करै, होई भट्टह को जायौ।
रारि रारि सो करै, जे न रस पय्य न पायौ।
हय्य वय्य सो भिरै, घरह धन बंधव बट्टै।
इह सोमेसर बैर, लेहु अप्पन सिर सट्टै।
तुम कहौ जाई संभरि वयन, इन डिमन डिभरु डरै।
संच्यौ दरक हक्कं वरत, सज्ज फटक्कं निक्करै ॥ छं० १०६।[3]

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० १०४, स० ४४।
२. वही, छं० १०५, स० ४४।
३. वही, छं० १०६, स० ४४.

कवि चन्द ऐसा उत्तर पाकर क्षुब्ध हो गया तथा उसके नेत्र लाल हो गए। वह तुरन्त पृथ्वीराज के पास लौट आया—

चन्द मंद मन आतुरह, उठ्यौ रत्त करि नैन।
फिरि पहुच्यो नृप पिथ्थ पैं, कहै चरक्का वैन ॥ छं० १०७।[1]

भोलाराय भीम, चन्द की बातों से उत्तेजित हो ही चुका था अतः उसने अपने भाट जगदेव को चन्द के पास अपने भेजे हुए सन्देश का उत्तर लाने के लिए भेजा। जगदेव ने चन्द से कहा कि तुम दीपक, जाल, कुदाल साथ लेकर विचित्र रूप धारण करके गुर्जरेश्वर को छेड़ने गए थे, यदि कैमास, चामण्डराय अथवा सम्भरी नरेश गए होते तो मालूम पड़ जाता, तुमको तो उसने दूत समझ कर छोड़ दिया—

कहु मिसरे छेड़्यौ, राउ गुज्जरी नरंसर।
दीवी जाल कुदाल, कहमि वह सह आडंबर॥
कह मिसरं कैमास, जास पुच्छंत विचप्पन।
चामंड रा कहां गयौ, बहुत राया वर दप्पन॥
कह मिसरं कन्ह बिप्पनौ, जग्गदेव सचौ चविय।
वमन हय या दिद्ध घर, कह मिसरे संभरि धनिय॥ छं० १०९।[2]

चंद ने कहा कि बातें बनाने वाले गुर्जरेश्वर ने अभी तक अनेक खेल किए हैं, इस बार उसे पूरा आनन्द मिल जावेगा संभर नरेश अन्य राजाओं की भांति नहीं है जिनको उसने रण में पराजित कर लिया। बिच्छू का मंत्र बिना जाने सर्प के बिल में हाथ दिया है अर्थात् अब तो उसे अपने किया का फल भोगना ही पड़ेगा—

बार बार बोलयौ, सरस बत्ताड़िया गुज्जर।
अब विगत्ति लभिम है, मिरच चब्बै ज्यों गज्जर॥
तू अनि राव मजाय, जिके रन अगम जित्ता।
इन संभरि वै राव, कोड़ि सै सहस विधत्ता॥
भेदयौ नहीं गुरु अप्परौ, कविय वयन संम्हो सरं।
कर नहीं मंत्र बीछिय तनौ, घत्ते हय सप्पा हरं॥ छं० ११०।[3]

कवि चन्द की बातें सुन कर जगदेव प्रत्यावर्तित हो गया तथा भोलाराय भीम से बोला कि चौहान पृथ्वीराज हाथी, घोड़े तथा योद्धाओं की चतुरंगिणी सेना सजा कर युद्ध हेतु आ रहा है—

---

१. पृथ्वीराज रासो ना० प्र० स० काशी, छं० १०७, स० ४४।
२. वही, छं० १०९, स० ४४।
३. वही, छं० ११०, स० ४४।

सुनि सु बेन जगदेव फिरि, कहि मोरा भीमंग।
आयौ नृप चहुआन सजि, हय गय भर चतुरंग ॥ छं० १११ ।[1]

यह सुनकर भोलाराय भीम भी अपनी विशाल वाहनी लेकर रण क्षेत्र में आ गया तथा युद्धारम्भ हो गया।[2] अन्ततोगत्वा दोनों दलों में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें भीमदेव सम्भर नरेश पृथ्वीराज के हाथों वीरगति को प्राप्त हुआ।

प्रसिद्ध इतिहासकार म० म० रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने भीमवध के विषय में इस प्रकार लिखा है—'रासो का कर्त्ता लिखता है—'गुजरात के राजा भीम के हाथ से पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर मारा गया। अपने पिता का वैर लेने के लिए पृथ्वीराज ने गुजरात पर चढ़ाई कर भीमदेव को मारा और उसके पुत्र कचराराय को अपनी ओर से गद्दी पर बैठा कर गुजरात के कुछ परगने अपने राज्य में मिला लिए।[3]

यह सारी कथा असत्य है, क्योंकि न तो सोमेश्वर भीमदेव के हाथ से मारा गया और न भीम पृथ्वीराज के हाथ से। सोमेश्वर के समय के कई शिलालेख मिले हैं, जिनमें से पहला वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदी ३ का बिजोलियाँ का प्रसिद्ध लेख है[4] और अंतिम वि० सं० १२३४ भाद्र पद सुदी ४ का है।[5] पृथ्वीराज का सबसे पहला लेख वि० स० १२३६ आषाढ़ वदी १२ का है।[6] वि० सं० १२३६ के प्रारम्भ में सोमेश्वर का देहान्त और पृथ्वीराज की गद्दी नशीनी मानी जा सकती है, जैसा कि प्रबंधकोष के अन्त की वंशावली से ज्ञात होता है।[7] भीमदेव वि० सं० १२३५ में गद्दी पर बिल्कुल बाल्यावस्था में बैठा और फिर ६३ वर्ष अर्थात् वि० सं० १२९८ तक वह जीवित रहा।[8] इतनी बाल्यावस्था में वह सोमेश्वर को नहीं मार सकता और न पृथ्वीराज ने उसका बदला लेने के लिये उस पर चढ़ाई कर उसे मारा था। गुजरात के ऐतिहासिक संस्कृत ग्रन्थों में कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है। राजपूताना म्यूजियम में भी भीमदेव का वि० सं० १२६५ का एक शिलालेख विद्यमान है।[9] आबू पर देलवाड़ा गाँव में प्रसिद्ध तेजपाल के जैन मंदिर की वि० सं० १२८७ की प्रशस्ति

---

१ पृथ्वीराज रासो ना० प्र० स० काशी, छं० १११, स० ४४।

२. वही, छं० १२४-२५, स० ४४।

३ पृथ्वीराज रासो, भीमवध, चौवालीसवां समय, रासोसार पृ० १५९, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

४. जर्नल, रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, जिल्द ५५, भाग १, सन् १८८६ ई० पृ० ४०-४६।

५. धौड़ गांव का लेख विक्टोरिया हाल, उदयपुर में सुरक्षित।

६. लोहारी गांव का लेख विक्टोरिया हाल, उदयपुर में सुरक्षित।

७ प्रबंध चिन्तामणि, पृ० ५४।

८ प्रबन्ध-चिन्तामणि, पृ० २४९।

९. इण्डियन एंटिक्वेरी, जिल्द ११, पृ० २२१-२२२।

के लिखने के समय भी भीमदेव विद्यमान था।[1] डॉ० बूलर ने वि० सं० १२९६ मार्ग शीर्ष वदी १४ का भीमदेव का दान पत्र प्रकाशित किया है।[2] इससे निश्चित है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु से अनुमानतः पचास वर्ष पीछे भी विद्यमान था।"[3]

श्री गोपाल नारायण बहुरा 'रासमाला' ग्रन्थ के अनुवाद की टिप्पणी में भीमवध के विषय में लिखते हैं कि—' वास्तव में भीमदेव की मृत्यु इस युद्ध में नहीं हुई थी, न पृथ्वीराज रासो में ही ऐसा लिखा है। रासो में इस प्रकरण को 'भीमबंध' नाम से लिखा गया है जिसको सम्भवतः भीम वध समझ लिया गया है। इस युद्ध का निर्णायक पद्य नीचे दिया जाता है जिसका तात्पर्य यह है कि चालुक्य घायल हुआ और पकड़ा गया।

सिलह मद्धि खग धार, बीय उययौ ससि सोभं।
कं नव वधु नखछित्त, काम कामिनि रस लोभं॥
मर्म वीर कत्तरी, दिसा दुति तिलक पुव्व वर।
कं कूंची स्यगार, सुभग भामिनि स्यंध्या कर॥
सोभंति चन्द की कला नभ, कल कलंक सुम्भंन तन।
ढुढंयौ खेत सामंत नृप, वुज्झि राज तामस मन॥ ७० ॥

चालुक्य के 'सिलह' अर्थात् कवच पर लगी हुई खड्गधार अथवा तलवार की चोट ऐसी शोभित होती थी मानों द्वितीया का चन्द्रमा ही उदित हुआ है अथवा वह नववधू के नखछत के समान है। जो कामी और कामिनियों को रस लुब्ध कर देता है अथवा वीर की कत्ती (कर्तरी) का मर्म (रहस्य अर्थात् धार है) या पूर्व दिशा (के भाल) का द्युतिमान तिलक है अथवा सुन्दरी सन्ध्या यामिनी के हाथ में श्रृंगार (पिटारी) की कुन्जी है। परन्तु, चन्द्रमा की कला तो नभ में शोभित होती है—यह कलंक (रूपी चोट) शरीर पर शोभा नहीं पाती। (ऐसे आघातयुक्त) नृप को सामन्तों ने रण क्षेत्र में ढूंढ निकाला जिससे राजा के मन का तामस अर्थात् क्रोध बुझ गया अथवा शान्त हो गया।"[4]

श्री गोपालनारायण बहुरा ने उपर्युक्त छन्द साहित्य संस्थान से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो से लिया है। श्री मोहनसिंह ने भी लिखा है कि—'भीमबंध' में पृथ्वीराज ने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए भीम को बन्धन में ले लेने की प्रतिज्ञा की। ज्योतिषी द्वारा मुहूर्त

---

१. एपीग्रफिया इंडिका, जिल्द ८, पृ० २१९।
२. इंडियन ऐंटीक्वेरी, जिल्द ६, पृ० २०६-२०८।
३. म० म० रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४५-४६ वि० सं० १९८५।
४. फार्वस, रासमाला अनुवादक-गोपालनारायण बहुरा, टिप्पणी पृ० २६३-२६४, मंगल प्रकाशन जयपुर, सन् १९५८।

देखकर भी इस बात की पुष्टि की गई। कवि चन्द ने कहा कि इस समय पृथ्वीराज और चित्तौड़ेश्वर रावल समर सिंह विक्रम दोनों ही शक्तिशाली हैं और भारत की डांवाडोल अवस्था के समय भारत का भार इन्हीं के कंधों पर है। तत्पश्चात पृथ्वीराज ने गुर्जर प्रदेश पर चढ़ाई की। दोनों सेनाओं में साबरमती के तट पर भयानक युद्ध हुआ। युद्ध के अन्त में भोलाभीम पृथ्वीराज की दया का पात्र बना (बन्धन में लेकर छोड़ दिया गया)।"[1]

रासो के अनुसार पृथ्वीराज तथा भीमदेव के मध्य हुए युद्ध को डॉ० दशरथ शर्मा प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक मानते हुए लिखते हैं कि—"भीम चालुक्य और पृथ्वीराज के परस्पर कलह की बात भी अकाट्य है, पृथ्वीराज विजय महाकाव्य के वर्णन से ही सिद्ध है कि पृथ्वीराज के मंत्री कदम्बवासादि चौलुक्यों को अपना शत्रु समझते थे।[2] पार्थपराक्रम व्यायोग से यह सिद्ध है कि पृथ्वीराज ने भीम चौलुक्य के मातहत आबू के राजा धरावर्ष पर आक्रमण किया था।[3] इसलिए आबू के लिए या आबू के निकट दोनों राजाओं में युद्ध होना सिद्ध है। रासो में सलख परमार का नाम मिलता है। बहुत संभव है कि वह राजा विक्रमसिंह का पुत्र हो। जिसे सं० १२०२ के लगभग कुमार पाल ने आबू की गद्दी से उतार दिया था।[4] चौलुक्य विरोधी चौहान संभवतः उसे अब भी आबू का सच्चा अधिकारी समझते थे। आबू का तत्कालीन राजा धारावर्ष चौलुक्यों के मातहत था, और उसे गद्दी से उतार कर सलख अर्थात् विक्रमसिंह के पुत्र या किसी निकट सम्बन्धी को यदि पृथ्वीराज ने आबू की गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। धारावर्ष और पृथ्वीराज के युद्ध का प्रमाव तो प्राप्य ही है। परन्तु वह युद्ध किस कारण से हुआ—यदि यह हम मालूम करना चाहें तो सम्भवतः रासो की कथा हमारी कुछ सहायक हो। नागौर के निकट चौलुक्यों से विरुद्ध, युद्ध का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु बिकानेर रियासत के चरलू नामक एक ग्राम में कुछ शिलालेख मिले है, जिनमें लिखा है, कि आहड़ और अम्बराक नामक दो चौहान सरदार संवत् १२४१ में नागपुर अर्थात् नागोर की लड़ाई में मारे गये। बहुत सम्भव है यह युद्ध पृथ्वीराज और भीम चौलुक्य के बीच में ही हुआ हो। जिनपाल उपाध्याय[5] रचित खरतरगच्छ पट्टावली में भी पृथ्वीराज और भीमदेव चौलुक्य के युद्ध का स्पष्ट निर्देश है। संवत १२४४ में भीम चौलुक्य के सेनापति जगदेव प्रतिहार ने मालवा पर आक्रमण किया था उसी समय सपादलक्ष अर्थात् अजमेर राज्य का एक संघ तीर्थ यात्रा के

---

१. पृथ्वीराज रासो-तृतीय भाग-साहित्य संस्थान उदयपुर, संपादकीय पृ०, ४।
२. पृथ्वीराज विजय महाकाव्य, एकादश सर्ग।
३. गायकवाड़ ओरियन्टल सिरज में प्रकाशित इस नाटक की प्रस्तावना।
४. जिन मण्डन गणि, कुमारपाल प्रबंध, द्वयाश्रम महाकाव्य और सं० १२०२ का धारावर्ष का लेख।
५. उपाध्याय ने सं० १२६२ में पदस्थानक नामक वृत्ति की रचना की।

लिए गुजरात पहुँचा। धार्मिक विद्वेष के कारण तद्देशीय एक दण्डनायक ने उसे लूटना चाहा और जगद्देव की अनुमति चाही। सेनापति ने इस बात की स्पष्ट शब्दों में यह कहते हुए मनाही की कि अभी मैं बड़ी मुश्किल से पृथ्वीराज से संधि कर पाया हूँ। यदि तुमने सपादलक्ष के संघ से छेड़छाड़ की तो तुम्हें गधे के पेट से सी दिया जायगा। भीम और पृथ्वीराज के बीच युद्ध का इससे अधिक स्पष्ट और क्या प्रमाण मिल सकता है।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज तथा भीम चौलुक्य के मध्य संग्राम अवश्य हुआ था। यदि यह भी मान लिया जावे कि पृथ्वीराज ने भोलाभीम चौलुक्य को बन्धन में लेकर मुक्त कर दिया था तो भी भोलाराय तथा सोमेश्वर के मध्य हुआ संग्राम विवादास्पद ही बना रहता है, किन्तु इतना स्पष्ट प्रमाणित है कि भोलाराय भीमदेव चौलुक्य पृथ्वीराज के समकालीन था तथा बाद तक जीवित रहा। डॉ० माताप्रसाद गुप्त भी उक्त विचार का समर्थन करते हुए लिखते है–'भीमदेव चालुक्य के समय का प्रथम प्राप्त अभिलेख सं० १२३५ का किराडू का है, और अन्तिम प्राप्त अभिलेख सं० १२८७ का है। इसलिए यह स्पष्ट है कि वह पृथ्वीराज (सं० १२३६-१९४९) का समकालीन था। दोनों में वैमनस्य के प्रमाण भी मिलते है। पृथ्वीराज विजय में पृथ्वीराज के चौलुक्य को शत्रु समझने का उल्लेख हुआ है जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा रचित 'खरतरगच्छ पट्टावली' में पृथ्वीराज और भीम चौलुक्क के सेनापति जगद्देव प्रतिहार के बीच कठिनाई से हो पायी एक संधि का उल्लेख हुआ है। डॉ० दशरथ शर्मा ने चरलू (बीकानेर) के मिले हुए शिला लेखों का उल्लेख किया है, जिनसे आहड़ और अम्बराक नामक दो चहुवान सामंतों का सं० १२४१ के नागपुर (नागौर) के किसी युद्ध में मारे जाने का उल्लेख है। इसलिए दोनों में कोई युद्ध हुआ हो, तो असंम्भव नहीं है।"[2]

शहाबुद्दीन गोरी ने दिल्ली तथा कन्नौज के राजाओं को पराजित कर गुजरात की ओर ध्यान दिया। रासमाला कार ने लिखा है कि "सन् ११९४ ई० में कुतुबुद्दीन ने फौज लेकर गुजरात प्रान्त की राजधानी नेहरवाला (अणहिलवाड़ा) पर चढ़ाई की और वहाँ पर भीमदेव को हरा कर अपने स्वामी की दुर्दशा का पूरा-पूरा बदला लिया। वह कुछ दिनों तक धनी नगरों को लूटता रहा परन्तु गजनी से वापस लौटने की आज्ञा आने पर उसको अचानक दिल्ली चला जाना पड़ा।

दूसरी जगह वही मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि जब कुतुबुद्दीन ने अणहिलवाड़ा

---

१. डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार—राजस्थानी भाग ३, अंक ३, जनवरी, १९४० कलकत्ता।

२. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और रचना तिथि, पृ० ९६९, राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, १९५९।

के बाहर आकर डेरा डाला तो भीमदेव का सेनापति जीवणराय उसको देख कर भाग गया। फिर जब, उसका पीछा किया गया तो सामने होकर युद्ध किया परन्तु वह मारा गया और उसकी फौज भाग गई। इस पराजय का समाचार सुनते ही भीमदेव भी अपनी राजधानी छोड़ कर भाग गया।'

कुतुबुद्दीन की जीत अवश्य हुई, परन्तु गुजरात पर उसका स्थाई रूप से अधिकार न हो सका और हार होने तथा राजधानी से भगा दिये जाने पर भी भीमदेव की शक्ति में कमी न आई, वही ग्रन्थकार लिखता है कि "दो वर्ष बाद (सन ११९९ ई० में) कुतुबुद्दीन को समाचार मिला कि नागौर और नेहरवाला के राजा तथा अन्य हिन्दू राजाओं ने मेर लोगों के साथ मिलकर मुसलमानों से अजमेर छीन लेने का विचार किया है। इस समय उसका लश्कर इधर-उधर के प्रान्तों में बिखरा हुआ था इसलिये जो कुछ थोड़े बहुत विश्वासपात्र सिपाही थे उन्ही को लेकर यथा शक्ति नेहरवाला की सेना की बढ़ती को रोकने के लिये रवाना हुआ परन्तु उसकी हार हुई। लड़ाई में वह कितनी ही बार घोड़े पर से गिर पड़ा और उसके छह घातक घाव लगे, परन्तु बाद में उसके सिपाही उसको बरबस पालकी में डालकर रणक्षेत्र से अजमेर ले गये।"[1] भीमदेव चालुक्य सन् १२१५ ई० में मर गया और यहीं मूलराज चालुक्य के वंश का अन्त हो गया।[2]

रासमाला के अनुवादक श्री गोपाल नारायण बहुरा भोलाराय भीम की मृत्यु १२१५ ई० नहीं मानते हैं, वे लिखते हैं कि 'यह सही नहीं है क्योंकि १२४० ई० का उसका ताम्रपत्र मिलता है। भीमदेव के विषय में आगे लिखते हैं कि—"ऐसा जान पड़ता है कि भीमदेव (द्वितीय) पर बहुत-सी आपत्तियां आ पड़ी थी इसलिये वह निर्बल हो गया था। कीर्ति कौमुदी में आगे चलकर लिखा है कि "बलवान मन्त्रियों और माण्डलिक राजाओं के होते हुये भी उसने बालराज के राज्य को क्षीण हो जाने दिया।"

सुकृत संकीर्तन में लिखा है—"निरन्तर दान देते रहने से जिसकी लक्ष्मी क्षीण हो गई, बहुत ही शुभ्र क्रान्ति वाली जिसकी कीर्ति है, जिसने अपने बल से भूमंडल को वश में कर लिया है, ऐसा मन्नेश्वर भीम भूपति चिरकाल से बढ़ती हुई चिन्ता के कारण व्यथित चित्त हो गया।

पौष सुदी ३ सोमवार संवत् १२८० का ताम्रपत्र, डॉ० बूलर ने अपनी चालुक्य लेखावली के पृ० ५८ से ६८ में दिया है, उसमें लिखा है—श्रीमदणहिलपुर राजधानी अधिष्ठित-

१. फार्बस, रासमाला, अनु० गोपालनारायण बहुरा, पृ० २६९, मंगल प्रकाशन जयपुर, सन् १९५८।

२. वही, पृ० २७१।

अभिनवसिद्धराज श्रीमज्जयन्तसिंहदेव' इससे ज्ञात होता है कि इस जयन्तसिंह ने भीमदेव (द्वितीय) का राज्य दवा लिया था परन्तु इसके वाद में सम्वत् १२८३, १२८८, १२९५ और १२९६ के लेख भीमदेव के ही मिलते है। इससे यही जान पड़ता है कि भीमदेव ने फिर अपने राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया था।

चैत्र सुदी ६ सम्वत् १२९८ के लेख से विदित होता है कि भीमदेव (द्वितीय) के वाद त्रिभुवन पाल देव राजा हुआ।"[1] अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भीमदेव चालुक्य सम्वत् १२९८ तक जीवित रहा।

श्री के० एम० मुंशी[2] जी के मतानुसार भीमदेव चालुक्य की वंशावली इस प्रकार थी—

चालुक्य वंश

१—मूलराज	सन् ९४२-९९६
२—चामुण्डराय	सन् ९९६-१०१०
३—वल्लभराज	सन् १०१०-१०१०
४—दुर्लभराज	सन् १०१०-१०२२
५—भीमदेव (प्रथम)	सन् १०२२-१०६४
६—कर्णदेव (प्रथम)	सन् १०६४-१०९६
७—जयसिंह (सिद्धराज)	सन् १०९६-११४४
८—कुमारपाल	सन् ११४४-११७३
९—अजयपाल	सन् ११७३-११७६
१०—मूलराज (द्वितीया)	सन् ११७६-११७८
११—भीमदेव (द्वितीया)	सन् ११७८-

डॉ० वासुदेवशरण[3] अग्रवाल भी भोलाराय भीम का समय सम्वत् १२३५ से १२९८ मानते हैं जैसा कि उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है—चालुक्यवंश की वंशावली उन्होंने इस प्रकार दी है—

१—मूलराज (पत्नी माधवी)	विक्रम संवत् ९९८-१०५३
२—चामुण्डराज	विक्रम संवत् १०५३-१०६६
३—वल्लभराज (छह्माम शासन किया)	विक्रम संवत् १०६६-
४—दुलभराज	विक्रम संवत् १०६६-१०८०

---

१. फार्वस 'रासमाला' अनुवादक—गोपाल नारायण बहुरा, टिप्पणी पृ० २७१-७२ मंगल प्रकाशन जयपुर, १९५८।

2. The Glory that was Gurjaradesa Pt. III Bhartiya Vidya Bhavan Bombay, Ist edition 1944.

३. फार्वस 'रासमाला' हिन्दी अनुवाद, भूमिका, पृ० ७, मंगल प्रकाशन जयपुर, सन् १९५८।

५–भीमदेव प्रथम (पत्नी उदयमती)	विक्रम संवत् १०८०-११२२
६–कर्ण सोलंकी (पत्नी मयणल्ल देवी)	विक्रम संवत् ११२२-११५०
७–जयसिंह सिद्धराज	विक्रम संवत् ११५०-१२००
८–कुमारपाल (पत्नी भूपालदेवी)	विक्रम संवत् १२००-१२२९
९–अजयपाल (पत्नी नायकी देवी)	विक्रम संवत् १२२९-१२३२
१०–मूलराज द्वितीय	विक्रम संवत् १२३२-१२३५
११–भीमदेव द्वितीय (पत्नी सुमलादेवी) (भोलाभीम)	विक्रम संवत् १२३५-१२९८
१२–त्रिभुवनपालदेव	विक्रम संवत् १२९८-१३०२

उपर्युक्त दोनों विद्वानों के मतानुसार भी भीमदेव (द्वितीय) का समय संवत् १२३५-१२९८ ठहरता है। अतः नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में दी हुई भोलाराय भीमदेव की मृत्यु का विवरण पूर्णतया अनैतिहासिक सिद्ध होता है।

महदेव अथवा महादेव—पृथ्वीराज रासो के अनुसार चौहान वंशकी तृतीय पीढ़ी में राजा सामन्तदेव के उपरान्त महदेव अथवा महादेव नामक राजा राजगद्दी का उत्तराधिकारी हुआ।[1] रासोकार ने इनके नाम मात्र का उल्लेख किया है। रा० ए० सो० लन्दन की प्रति में भी महदेव नामक राजा का विवरण प्राप्त होता है। किन्तु उदयपुर से प्रकाशित तथा धारणोज की रासो की प्रति में इनका उल्लेख प्राप्त नहीं होता है किन्तु एक स्थान पर पंडित सदाशिव दीक्षित नरदेव में विशेषण का आभास पाकर संस्कृत के ग्रन्थों के आधार पर नरदेव को ही महादेव मानते हुये लिखते हैं—"प्रबंधकोष, हम्मीर महाकाव्य और सुर्जन चरित में इस व्यक्ति को नरदेव कहा गया है और रासो में इसको महादेव। वस्तुतः नरदेव की अपेक्षा महादेव अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि नरदेव तो विशेषण-सा आभासित होता है।"[2]

पं० सदाशिव का मत कल्पना पर आधारित होने के कारण ग्राह्य नहीं है।

महासिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा की १६वीं पीढ़ी में राजा माणिक्यराय चौहान के उपरान्त महसिंह नाम का राजा उनका उत्तराधिकारी हुआ।[3] सम्पूर्ण रासो में वंशवृक्ष के अन्तर्गत ही इनका उल्लेख हुआ है। सम्पूर्ण रासो इनके विषय में मौन है। रा० ए० सो० लन्दन की रासो की प्रति उपर्युक्त मत का समर्थन करती है।[4]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २८४, स० १।

२. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा पृ० ११२।

३. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८७, स० १।

४. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।

धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति[1] तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो इनके विषय में मौन है। शिलालेख एवं संस्कृत ग्रन्थों में इनका नाम प्राप्त नहीं होता।[2]

पंडित सदाशिव दीक्षित रासो के महसिंह को शिलालेखों तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों का 'गूवक' ही मानते हैं। उन्होंने लिखा है—'हर्ष मन्दिर की प्रशस्ति का प्रारम्भ गूवक से होता है। शिलालेख में भी इसका नाम गूवक ही दिया है। पृथ्वीराज विजय में गोविन्दराज, सुर्जन चरित में गुर्जर और रासो में महीसिंह इन भिन्न-भिन्न नामों से इसका स्मरण किया गया है। प्रबंधकोष और हम्मीर महाकाव्य इसके विषय में मौन हैं।"[3] पता नहीं पंडित जी ने इन सब नामों को एक ही व्यक्ति का नाम कैसे मान लिया। कुछ भी हो सामग्री अभाव के कारण इन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति मानने में सन्देह ही रह जाता है। जब तक अन्य कोई तर्क पूर्ण प्रमाण सामने नहीं आता, तब तक इनके विषय में कुछ निश्चित धारणा बनाना भ्रम फैलाना ही है।

मानिक्यराय— पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश की १३वीं पीढ़ी में राजा अरिमंत के उपरान्त राजा मानिक्यराय हुये जो चौहान वंश मे अत्यन्त शूरमा थे।[4] वंशावली के नामों की गणना करने पर वीर मानिक्यराय १५वीं पीढ़ी में आते हैं। सम्भव है बीच के दो नाम वास्तव में नाम न होकर विशेषण हों। हो सकता है रासो-सम्पादकों ने भ्रम वश विशेषणों को भी नाम मान लिया हो। ग्रन्थकार ने पृथ्वीराज रासो के 'आदि समय' में वंशावली का विवरण प्रस्तुत करते हुये इनका नाम मात्र का उल्लेख किया है किन्तु 'रासो समय ५७' के अन्तर्गत कवि चन्द ने लिखा है कि 'एक बार सेमरा देव से वीर मानिक्यराय को वरदान प्राप्त हुआ था कि यदि वह अश्वारूढ़ होकर जितनी भूमि की परिक्रमा कर डालेगा, उतनी भूमि चाँदी की हो जावेगी—

चढ़ी पवंग पहुमि परिहै जितक्क।
अनखूट रजत ह्वै है तितक्क॥ छं० २१२।[5]

किन्तु साथ ही पीछे देखने का निषेध भी किया गया था। वीरवर माणिक्यराय बारह कोष तक तो बिना पीछे मुड़े हुये चले गय किन्तु देववशात् इसके उपरान्त इन्होंने पीछे घूम-

---

१. डॉ० दशरथ शर्मा, पथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, पृ० २, राजस्थानी भाग ३. अंक ३, १९४०, कलकत्ता।
२. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रवन्ध परिशिष्ट भाग।
३. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो-समीक्षा, पृ० ११४।
४. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८६, स० १।
५. वही, छं० २१२, स० ५७।

कर देख लिया। वीर मानिक्यराय का पीछे घूमकर देखना था कि सब भूमि चाँदी के स्थान पर ऊसर या नमक ही गई—

द्वादसह कोष ऊतर क्रमन्त।
भवतव्य कौन मेटै निमन्त॥
मन आनि भ्रन्ति फिरि देषि पच्छ।
ह्वै गयो लवन गरि सर प्रत्यच्छ॥ छं० २१३।[1]

'मुहणोत नैणसी की ख्यात' में भी खींची वंश की उत्पत्ति कथा का विवरण मानिक्यराय के उपर्युक्त कथा से समान प्रस्तुत किया गया है—"एक बार आसराव अपने पुत्र माणकराव से प्रसन्न हुआ और कहा कि तू प्रभात से सन्ध्या तक जितनी पृथ्वी में फिर आवे वह भूमि तुझको दे दी जावेगी। तब माणकराव दिन निकलते ही चला और सन्ध्या तक बराबर फिरता रहा। वह सांभर का चढ़ा इतनी जगत गया नागोर, पट्टी के ८४ गांव और मारी महाण जहां इसने गढ़ बांधने का विचार किया। सन्ध्या होते जापल की तरफ निकला, वहां गवारे (बैल लादने वाली एक जाति) ठहरे हुये थे, उन्होंने भोजन की मनुहार की, यह भी दिन भर फिरता-फिरता भूखा हो गया था, कहा कोई पका-पकाया अन्न हो तो लाओ। उस वक्त उनके खिचड़ी तैयार थी वह कटोरे में ले आये। माणकराव ने ऊंट की सवारी पर चढ़े-चढ़े ही वह चावल-मूंग की खिचड़ी खाई और सन्ध्या होते पिता के पास पहुंचा। पिता ने पूछा कितनी धरती में फिर आया? उसने सब हकीकत कह सुनाई। फिर पूछा कि कहीं गढ़ की बैठ भी निश्चय की है? कहा महाणा के पास गढ़ बांधने का विचार है। पिता बोला दिन भर में कुछ खाया भी? उत्तर दिया कि गवारों के यहां खिचड़ी खाई है। पिता ने कहा तूने खिचड़ी खाई इसलिये तेरी सन्तान खींची कहलावेगी और जो धरती उसने देखी थी वह उसको दे दी और महाणा व जायता में गढ़ बधवा कर दोनों जगह राजस्थान रखने की आज्ञा दी। माणकराव ने वैसा ही किया।"[2]

'रासो' तथा 'ख्यात' की उपर्युक्त कथाओं में कितनी समानता है यह कहने की बात नहीं है।

'रासो' के प्रायः समस्त संस्करण वीर मानिक्यराय के अस्तित्व को मानते हैं। रा० ए० सो० लन्दन की रासो की प्रति के अनुसार भी वीर माणिक्यराय अरिमंत के पुत्र थे।[3] धारणोज की प्रति में भी मानिक्यराय नाम का उल्लेख मिलता है।[4] बीकानेर की एक लाख अक्षर

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २१३, स० ५७।
२. रामनारायण दूगड़, मुहणोत नैणसी की ख्यात, पृ० १८४-८५, प्रथम भाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० १९८२।
३. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
४. धारणोज की प्रति, आदि पर्व।

वाली 'पृथ्वीराज रासो' की प्रति के अनुसार वीर मानिक्यराव, चौहान वंश का आदि पुरुष था—

'ब्रह्मा न जग्ग अपन भूर । मानिकराई चहुआन सूर ।।"

डॉ० दशरथ शर्मा धारणोज की रासो की प्रति को प्रामाणिक सिद्ध करते हुये मानिक्यराव के विषय में लिखते हैं—"मानिक्यराव का नाम प्रायः सभी ख्यातों और कुछ पुराने शिलालेखों में प्राप्त है उसका वंशधर धर्माधिराज सम्भवतः राजा चामुण्डराज हो।"[1]

इसके अतिरिक्त साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो भी इन्हें, चौहान वंश का आदि पुरुष मानता है तथा इनके दस पुत्र होने का उल्लेख भी करता है—

चहुआना रे वंस, वीर मानिक्क पुत्र दस।[2]

शिलालेख एवं संस्कृत के ग्रन्थों में इनके नाम का उल्लेख प्राप्त नही होता है, किन्तु पंडित सदाशिव दीक्षित शिलालेखों एव संस्कृत ग्रन्थो के विभिन्न नामों को मानिक्यराय के नाम ही मानते हुये लिखते हैं—"इनका नाम शिला लेख में दुर्लभ और पृथ्वीराजविजय और प्रबंध कोष में दुर्लभराज कहा गया है। हम्मीर महाकाव्य में इनका नाम जयराज बतलाया गया है और रासो में माणिक्यराय। सुर्जन चरित में इनके अनुल्लेख का कारण उसके कर्ता को ही विदित होगा।"[3] पता नही पंडित जी ने यह सब कैसे सोच लिया। मानिक्कराय चौहान के विषय में इतिहास सर्वथा मौन है किन्तु 'रासो' के प्रायः सभी संस्करण इनके व्यक्तित्व का समर्थन करते हैं।

मोहन्त—पृथ्वीराज रासो के अनुसार चौहान वंश की चौथी पीढ़ी में राजा महदेव अथवा महादेव के उपरान्त मोहन्त गद्दी पर बैठे।[4] कवि ने इनका विशेष विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। रा० ए० सो० लन्दन वाली रासो की प्रति मे इनके नाम का उल्लेख नही प्राप्त होता है। साथ ही साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो तथा धारणोज की प्रति इनके विषय में सर्वथा मौन है। पंडित सदाशिव दीक्षित 'मोहन्त' को नाम न मान कर 'महादेव' का विशेषण ही बतलाते हैं—"रासो में महादेव का एक विशेषण 'मोहन्त' कहा गया है, अर्थ का बोध न होने के कारण सम्पादकों ने उससे एक पृथक नाम की कल्पना कर ली है।"[5]

---

१. डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार. पृ० ४, राजस्थानी, भाग ३, अंक ३, जनवरी, १९४० कलकत्ता।

२ पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान, उदयपुर, छ० ७०, स० १।

३. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११४।

४. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २८४, स० १।

५. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११२।

सम्भव है दीक्षित जी का मत सत्य हो, किन्तु शिलालेखों तथा संस्कृत के ग्रन्थों में इनका संकेत भी प्राप्त नहीं होता है।[1]

मोहसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहानों की २०वीं पीढ़ी में राजा प्रतापसिंह चौहान के उपरान्त उनका पुत्र मोहसिंह उनका उत्तराधिकारी हुआ। इनका रूप अत्यन्त मोहक था तथा युद्ध भूमि में साक्षात 'प्रेत' के समान था।[2] ग्रन्थकार ने इनका विशिष्ट परिचय प्रस्तुत नहीं किया है। रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[3] धारणोज की प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित 'रासो' इनके विषय में सर्वथा मौन है। शिलालेख एवं संस्कृत ग्रन्थों में भी इनका नाम देखने को नहीं मिलता है।[4] किन्तु पंडित सदाशिव दीक्षित जी इन्हें संस्कृत ग्रन्थों मे दी हुई वंशावली का 'गूवक' मानते हैं। किस आधार पर उन्होंने अपना मत व्यक्त किया है यह स्पष्ट नहीं करते—"इनका नाम प्रशस्ति, शिलालेख, पृथ्वीराज विजय और हम्मीर महाकाव्य में 'गूवक' सुर्जन चरित में ग्रज तथा रासो में 'मोहसिंह' बतलाया गया है। प्रबंध कोष में इसका अनुल्लेख है।"[5] दीक्षित जी का मत अनुमानपर आधारित होने के कारण मोहसिंह का अस्तित्व संदेहास्पद ही बना रहता है।

रामसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश में राजा अजयसिंह के उपरान्त छठवीं पीढ़ी में राजा रामसिंह उनके उत्तराधिकारी हुये।[6] कवि ने इनके नाम का उल्लेख चौहानों की वंशावली का विवरण प्रस्तुत करते समय किया है। रासो के अन्य किसी भी प्रति में रामसिंह का नाम नही मिलता है।[7]

पं० सदाशिव दीक्षित रामसिंह एवं वीरसिंह नामों को नाम ही नहीं मानते वरन् अजयसिंह के विशेषण मात्र मानते हैं। "श्री ओझा अपने नक्शे में रामसिंह और वीरसिंह इन दो और नामों का रासो की तालिका में समावेश करते हैं—परन्तु

सुअ अजयसिंह सिंघह सुराय।
नर वीर सिंघ सग्राम ताय॥

---

१. देखिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
२. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी छ० २८८, स० १।
३. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
४. देखिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
५. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा पृ० ११५।
६. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छ० २८५, स० १।
७. (१) रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति।
   (२) साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो की प्रति।
   (३) धारणोज की अप्रकाशित रासो की प्रति।

इस अर्धाली में राय और वीरसिंह के पूर्व सुत, सुवन आदि पदों के प्रयोग न होने से इनकी पृथक सत्ता न तो तर्क की कसौटी पर सिद्ध होती है और न शिलालेख आदि की भित्ती पर ही। ये पद अजयसिंह के विशेषण है।"[१]

रामसिंह के विषय में शिलालेख एवं समस्त संस्कृत ग्रन्थ मौन है। अतः ऐसी विषम परिस्थिति में इनके विषय में कुछ निश्चित मत देना असंभव है। असंभव नहीं यदि यह कोई कवि-काल्पनित नाम हो।

रैनसी अथवा रैनसिंह—पृथ्वीराज रासो के मतानुसार दिल्ली अजमेर में अन्तिम हिंदू शासक पृथ्वीराज चौहान का एक मात्र पुत्र राजकुमार रैनसी था। 'विवाह समय ६५' के अन्तर्गत पढ़ते हैं कि महाराज पृथ्वीराज का १३ वर्ष की अवस्था में दाहिमा से विवाह हुआ था।[२] इस विवाह का सम्पूर्ण रासो में अन्यत्र कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। सम्भवतः इसी रानी के गर्भ से राजकुमार रैनसी का जन्म हुआ था क्योंकि 'कैमास वध प्रस्ताव ५७' के अन्तर्गत पढ़ते है कि भानजे रयनकुमार तथा मामा चामंडराय दाहिम में परस्पर अत्यन्त प्रीति थी—

दिल्ली वै चहुआन। तपै अति तेज पग्ग वर॥
चपि देश सब सोम। गंजि अरि मिलय धनुद्धर॥
रयन कुमार अति तेज। रोहि हम पिट्ठ विसमं॥
साथ राव चामण्ड। करै कलि कित्ति अतमं॥
मेवास वास गजै द्रुगम। नेह नेह वड्ढै अनत॥
मातुलह नेह भानेज पर। भागनेय मातुल सुरत॥ छं १।[३]

तथा उनकी परस्पर प्रीति देखकर चंदपुंडीर ने पृथ्वीराज के कान भरे थे।

'बड़ी लड़ाई को प्रस्ताव ६६' के अन्तर्गत सूचना प्राप्त होती है कि गजनिपति शाह शाहबुद्दीन गोरी का प्रबल आक्रमण सुनकर तथा स्वयं के पक्ष को निर्बल समझकर महाराज पृथ्वीराज चौहान ने अपने पुत्र का राज्याभिषेक कर दिया था——

करिय सुचित भर सब्ब। राज दिन्नेव द्रव्य भर।
मंगि मदन श्रगार। गज्जवर पट्ट मह्ह सर॥
रयनकुमर आभासि। दीन माला मुत्ताहल॥
असी बंधि निज पानि। बंदि कीनो कोलाहल॥

---

१. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ ११२-११३।
२. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी छं० २, स० ६५।
३. वही, छं० १, स० ५७।

अशीषि मात कुम्मार निज । दक्षु पंथ सा सिसु किय ।
सोलिन्नि वरि पट्टासन पट्ट । नन्द काज मन्नेय इय ॥ छं० ६०८ ।[1]

[illegible] की सूचना के उपरान्त 'राजा रयनसी नाम प्रस्ताव ६८' के अन्तर्गत पढ़ते हैं कि पृथ्वीराज चौहान को गोरी द्वारा बन्दी करके उन्हें गजनी ले जाने का समाचार पाकर [illegible] सामन्तों ने रयनसी (रैनसी) को राजगद्दी पर बिठाया–

गजनेस प्रोहित । आय आमासि उचारं ॥
दिल्ली पर दिल्लिय । होइ निरधार अपारं ॥
सर्व सूर सामंत । रैन राजन आचारं ॥
[illegible] मन सच्च । रीति राजन व्यवहारं ॥
शुभ दिवस लगन निधासनह । धरि मूढ़ा गादी सरिय ॥
[illegible] सामंत मिलि । मेघाडम्बर सिर धरिय ॥ छं ७ ।[2]

राजा रैनसी ने शाह गोरी तथा पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु की सूचना प्राप्त कर, अपनी [illegible] सामन्त सरदारों को बुलाकर, शाह सेना से बदला लेने का निश्चय किया और विपक्षी दल को खदेड़ कर लाहौर पर अपना अधिकार कर लिया–

[illegible] थान सब साहि मड्डि ।
उट्टए सकल रयनस पढ्डि ॥
बिय चंप साहि दिल्लिय मरान ।
अच्छे जु सूर तपि चहुआन ॥ ५१ ॥
लाहोर लोह छड्डिय सुधाई ।
पिर मंडि अस्य जनु पिट्टराई ॥
अहुआन सयर दिन दिन प्रकार ॥
गोरी नरिंद दर गई पुकार ॥ छं० ५२ ।[3]

उपर्युक्त सूचना गजनी पहुँचने पर शाह ने कुटकर खां नामक सामन्त को प्रतिनिधि नियुक्त कर आर्यावर्त पर आक्रमण करने का आदेश दिया। शाही सेना ने निरन्तर आगे बढ़ते हुए दिल्ली दुर्ग का घेरा डाल दिया। खान शाह दो दिन तक निरन्तर किला घेरने के उपरान्त [illegible] सुरंग लगा कर किले की दीवार उड़ा दी। परिणाम स्वरूप युद्ध अनिवार्य हो गया तथा दोनों ओर से तलवारें बज उठीं।[4] अंत में रैनसी अपने अपूर्व पौरुष का

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ६०८, स० ६६ ।
२. वही, छं० ७, स० ६८ ।
३. वही, छं० ५१-५२, स० ६८ ।
४. वही, छं० ८२-८३ स० ६८ ।

परिचय देते हुए समर भूमि में कूद पड़े तथा फीरोजखां को मार कर अपार साहस एवं वीरता का परिचय देते हुए स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुए।[1]

महामहोपाध्याय डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा रैनसी को ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानते हैं। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि 'पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि १३ वर्ष की अवस्था में पृथ्वीराज ने दाहिमा चामण्ड की बहन से विवाह किया, जिससे रैनसी का जन्म हुआ।[2] यह कथन भी निराधार कल्पित है क्योंकि पृथ्वीराज का पुत्र रैनसी नहीं, किन्तु गोविंद राज था, जो कि पृथ्वीराज के मारे जाने के समय बालक था। फारसी तवारीखों मे उसका नाम 'गोला या गोदा' पढ़ा जाता है, जो फारसी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण गोविंदराज का बिगड़ा हुआ रूप ही है। हम्मीर महाकाव्य में भी गोविन्दराज नाम मिलता है।[3] सुलतान शहाबुद्दीन ने अपनी आधीनता में उसे अजमेर की गद्दी पर बिठाया, परन्तु उसके सुलतान की आधीनता में रहने के कारण पृथ्वीराज के छोटे भाई हरिराज ने उसे अजमेर से निकाल दिया, जिससे वह रणथम्भौर में जा रहा। हरिराज का नाम पृथ्वीराज रासो में नहीं दिया, परन्तु पृथ्वीराज विजय, प्रबंध कोष के अंत की वंशावली और हम्मीर महाकाव्य में दिया है।[4] और फारसी तवारीखों में ही राज या हेमराज मिलता है।[5] जो उसी के नाम का बिगाड़ा हुआ रूप है।"[6] किन्तु सुर्जन चरित महाकाव्य में हरिराज के स्थान पर मानिक्यराज मिलता है। वस्तुतः रैनसी के सम्बन्ध में अभी पर्याप्त अनुसंधान की आवश्यकता है।

लोहधीर अथवा लोहसार—पृथ्वीराज रासो के अनुसार चौहान वंशावली की २६वीं पीढ़ी में राजा आनन्दराज चौहान के उपरान्त लोहधीर हुए तथा इन्होंने ही उत्तराधिकार

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० १७३-२१३, स० ६८।
२. पृथ्वीराज रासो, विवाह समय (६५ वां समय), रासोसार, पृ० ३८२।
३. तत्रास्ति पृथ्वीराजस्य प्राक्पित्रा तो निरासितः।
पुत्रो गोविंदराजाख्यः स्वसामर्थ्यात्तवैभवः ॥ २४ ॥
हम्मीर महाकाव्य, सर्ग ४।
४. जर्नल आफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, पृ० २७०-७१, ई० सं० १९१३।
५. इलियट, हिस्ट्री आव इंडिया, जिल्द २, पृ० २१९।
६. म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४८-४९।

नोट—'रासो' के प्रायः सभी संस्करण इस मत की पुष्टि करते हैं कि रयनसी पृथ्वीराज का पुत्र था। (१) पृथ्वीराज रासो साहित्य संस्थान, उदयपुर, छं० ४, पृथ्वीराज रासो के मध्यम संस्करण की हस्तलिखित प्रति, छं० ४ कंमास वध समय २९।

सन् में राजगद्दी प्राप्त की।[1] रासोकार ने इनका नाम मात्र का विवरण प्रस्तुत किया है। रा० ए० सो० लंदन की रासो की प्रति में उपर्युक्त कथन का समर्थन हो जाता है।[2] किन्तु रासो के अन्य संस्करण जैसे धारणोज की प्रति, बीकानेर की एक लक्ष अक्षर वाली प्रति, तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो उपर्युक्त कथन का समर्थन नहीं करता है। शिलालेख एवं संस्कृत के ग्रन्थों में भी इनके विषय में विवरण प्राप्त नहीं होता है।[3]

पंडित सदाशिव का कथन है कि लोहधीर का शिलालेखों तथा संस्कृत ग्रन्थों में दुर्लभ अथवा दुर्लभराज के नाम से सम्बोधित किया गया है—"इसका नाम प्रशस्ति तथा शिलालेख में दुर्लभ और पृथ्वीराज विजय में तथा प्रबन्ध कोष में दुर्लभराज कहा गया है, परन्तु रासो में इसका उल्लेख लोहसार—इस नाम से किया गया है। यह विग्रहराज (आनन्दराज) का अनुज था। हम्मीर महाकाव्य एवं सुर्जन चरित में इसका उल्लेख नहीं है।"[4] प्रमाणों के अभाव में इस प्रकार के तर्कहीन विचार ग्राह्य नहीं हो सकते है।

विजयपाल—गाहड़वाल वंश का चक्रवर्ती सम्राट विजयपाल इतिहासकारों के अनुसार विजयचन्द्र ई० सं० ११५६-११७७ के लगभग कन्नौज का आधिपति था। रासो के अनुसार राजा जयचन्द का पिता यही था। हरिश्चन्द्र के दान पत्र में जयचन्द के पिता सम्राट विजयपाल को एक शक्तिशाली नरेश लिखा गया है।

अजनि विजय चन्द्रो नाम तस्यान्नेरन्द्र।
सुरपति इव नूभृत पक्ष विच्छेद दक्षः॥[5]

राजा विजयपाल का द्वितीय नाम मल्लदेव भी था।[6] इतिहास प्रसिद्ध पराक्रमी राजा विजयपाल का चित्रण रासोकार ने भी बड़ा उत्कृष्ट रूप से किया है। समस्त उत्तरी भारत को अधिकृत करने वाला यही पराक्रमी योद्धा विजयपाल ही था।[7] अपने समस्त राज्यकाल में राजा विजयपाल को अत्यन्त क्षति, विग्रहराज बीसलदेव का सामना करने के फलस्वरूप

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८९, स० १।
२. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
३. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
४. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११७।
५. ठाकुर गोपाल सिंह राठौर, जयमल वंश प्रकाश, टिप्पणी १, पृ० ४१।
६. रम्भा मंजरी नाटक, भूमिका तथा पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, जिल्द १, समय १।
७. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, समय १।

उठानी पड़ी जिससे गाहड़वाल वंश के हाथ से साम्राज्य का पश्चिमी भाग का महत्वपूर्ण प्रदेश दिल्ली निकल गया जिस पर कालान्तर में चौहानों का प्रभुत्व स्थापित हुआ।[1]

ग्रन्थकार के मतानुसार एक वार राजा विजयपाल ने दिग्विजय की कामना से दिल्ली-पति अनंगपाल तोवर पर आक्रमण किया—

दिल्ली वै अनंग, राज राजगं अभंगं।
ता उप्पर कमध्वज्ज सेन सज्जी चतुरंगं॥
अग आतस आभूत, पुट्ठि वधै गजपत्तं।
ता पुट्ठं विजयपाल, समर सज्जै रन मत्तं॥
अजनंज भोज नीसान दल, मनुवसंत रज्जिय विपिन।
करि कूय कूप उप्परधरा, वंध अतंर सपन॥ ६१७।[2]

राजा अनंगपाल ने कमधज्ज के आक्रमण की सूचना पाकर अपनी विशाल वाहिनी एकत्र कर कालिन्दी की उत्तर दिशा में मुकाम किया। इसी बीच अजमेर पति राजा सोमेश्वर अनंगपाल की सहायतार्थ दिल्ली की ओर अपनी विशाल चतुरंगिनी सेना लेकर अग्रसर हुआ। सोमेश्वर चौहान तथा तोवर अनगपाल की सम्मिलित सेना ने राजा विजयपाल की सेना को दबा दिया जिससे विवश हो राजा विजयपाल को हटना पड़ा—

जित्ति भत्ति भारथ्थ गौ, गौ फिरि ग्रह कमधज्ज।
उप्परि अजमेर पेहु डोला पंच सुरज्ज॥

विजयोपलक्ष एवं सोमेश्वर की सहायता के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन हेतु दिल्लीपति राजा अनंगपाल तोवंर ने अपनी एक पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर से कर दिया तथा दूसरी कन्या सुरसुन्दरी का कान्यकुब्जेश्वर राजा विजयपाल के साथ चिर मैत्री के फलस्वरूप विवाह कर दिया—

अनंगपाल पुत्री उनय। इक दीनी विजयपाल।
एक दीनी सोमेस कौ। बीज ववन कलिकाल॥ छं० ६८१।
एक नाम सुर सुन्दरी। अनिवर कमला नाम।
दरसन सुर नर दुल्लही। मनो सु कलिका काम॥ छं० ६८२।[3]

रासो में ही विजयपाल की एक अन्य रानी का भी उल्लेख मिलता है जो राजा जय-चन्द के विमाता पुत्र वीरमराय की जननी थी। इसका नाम सैरन्धी था।

---

१. डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, हिस्ट्री आव कन्नौज, पृ० ३८७।

२. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ६१७, स० १।

३. वही, छं० ६८१-८२, स० १।

'गंधोरा जय चन्द्रा विजयपाल सपुत्तह ।
संरुग्यो वर जनम नाम बीरम रावतह ॥''[1]

इसके विपरीत इतिहासकार राजा विजयपाल की रानी का नाम चन्द्रलेखा मानते हैं तथा तोमर वंशी राजा अनंगपाल से उसके किसी सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते हैं।[2]

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ० ओझा विजयपाल तथा जयचन्द आदि नामों को छोड़कर विजयपाल की विवाहादि 'रासो' वर्णित घटनाओं को कल्पित मानते हुये लिखते हैं कि—"चन्द लिखता है कि कन्नौज के राजा विजयपाल ने, जिसने दिल्ली के अनंगपाल की पुत्री सुन्दरी से विवाह किया था, विजय यात्रा करते हुये सतुबंध तक का सारा प्रदेश जीत लिया। बहुत से राजा अधीन हो गये, परन्तु पृथ्वीराज ने उसकी अधीनता स्वीकार न की। विजयपाल ने सुन्दरी से उत्पन्न पुत्र जयचन्द ने भी जब राजसूय यज्ञ के लिये सब राजाओं को निमंत्रित किया, तब भी पृथ्वीराज न आया।......

इस सम्पूर्ण कथन में विजयपाल के पुत्र जयचन्द के उसके पीछे गद्दी पर बैठने और पृथ्वीराज तथा जयचन्द की समकालीनता के सिवा एक भी बात सत्य नहीं है। सोमेश्वर के समय अनंगपाल दिल्ली की गद्दी पर था ही नहीं और न उसकी पुत्रियों का विजयपाल और सोमेश्वर से विवाह हुआ था। कमला की सोमेश्वर के साथ विवाह की कथा के समान सुन्दरी के विजयपाल के साथ विवाह की कथा भी कल्पित ही है। विजयपाल के दिग्विजय की कथा भी निर्मूल है।''[3]

इतिहासकारों के मतानुसार राजा विजयचन्द अथवा विजयपाल वैष्णव मतावलम्बी था तथा उसने अनेक विष्णु मन्दिर बनवाये थे।[4] डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी तथा अनेक दानपत्रों के विवरणों के अनुसार वह परम महेश्वर था।[5] वृद्धावस्था होने पर अपने जीवन काल में ही उसने अपना राज्य अपने परम प्रतापी पुत्र जयचन्द को सौंप दिया था।[6]

पृथ्वीराज रासो का उपर्युक्त वर्णन भले ही कुछ कल्पना प्रसूत हो किन्तु उसके वर्णन से इतना स्पष्ट अवश्य हो जाता है कि राजा विजयपाल एक पराक्रमी शासक था जिसे इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं। विद्वानों को यह भी दृष्टि में रखना चाहिये कि रासो एक काव्य ग्रन्थ है, इतिहास नहीं। अतः उसमें कल्पना का योग होना स्वाभाविक ही है।

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ६१, स० ५८, जिल्द ४, पृ० ८०२।
२. डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी हिस्ट्री आफ कन्नौज, पृ० २९६।
३. पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४८।
४. जगदीशसिंह गहलोत मारवाड़ का इतिहास, पृ० ८६।
५. डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, हिस्ट्री आव कन्नौज पृ० ३०७, जिल्द ४, पृ० ११८।
६. धीरेन्द्र पाण्डेय, भारत का वृहत इतिहास, पृ० ४११।

वीरदण्ड—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार राजा वीरसिंह के उपरान्त चौहानों की वंशावली में १२वीं पीढ़ी में राजा वीरदण्ड हुये ।[1] रासोकार केवल नाम का उल्लेख करता है, विस्तृत विवेचन कहीं भी प्राप्त नहीं होता । रा० ए० सो० लन्दन की रासो की प्रति, धार-णोज की प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो इनके विषय में सर्वथा मौन है । रासो का कोई भी अन्य संस्करण वीरदण्ड नामक राजा का समर्थन नहीं करता है ।

पंडित सदाशिव दीक्षित 'वीरदण्ड' को वीरसिंह का विशेषण मात्र मानते हैं ।[2] रासो के अन्य संस्करणों में इनका उल्लेख न होना सन्देह का विषय है । इसी प्रकार से कवि-राव मोहनसिंह ने भी अनेक नामों को विशेषण माना है ।[3] ऐसी विषम स्थिति में इनके विषय में अधिक कुछ लिखना भ्रम का प्रतिपादन मात्र होगा ।

वीरसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार राजा वैरसिंह के उपरान्त चौहान वंशावली की १२वीं पीढ़ी में राजा वीरसिंह हुये ।[4] ग्रन्थकार ने इनका नाम मात्र वंशावली में प्रस्तुत किया है । समस्त ग्रन्थ इनके विषय में मौन है । रा० ए० सो० लन्दन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है ।[5] किन्तु धारणोज की रासो की प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो इनके विषय में सर्वथा मौन है । शिलालेख एवं प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भी इस नाम का अस्तित्व प्राप्त नहीं होता है ।[6]

पंडित सदाशिव पता नहीं किस आधार पर गोपेन्द्र, गोविन्दराज, जयपाल चक्री आदि नामों को वीरसिंह के ही नाम मानते है और लिखते है कि—"इनका नाम शिलालेख में गोपेन्द्र, पृथ्वीराज विजय में गोपेन्द्रराज, प्रबन्धकोष मे गोविन्दराज, हम्मीर महाकाव्य में जयपाल चक्री और रासो में वीरसिंह बतलाया गया है । यद्यपि उपर्युक्त सभी ग्रन्थों में इनके नाम में वैषम्य पाया जाता है, तथापि इनके नामों की अनेकता से दोष का परिहार हो जाता है और किसी की भी प्रामाणिकता मे सन्देह का अवसर नहीं रहता ।"[7] दीक्षित जी को भले ही सन्देह न रहा हो किन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में यह कैसे माना जा सकता है कि यह सब नाम एक ही व्यक्ति के है । अतः वीरसिंह आज भी विवाद का विषय बने हुये हैं ।

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८६, स० १ ।
२. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११० ।
३. कविराव मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर पुनर्विचार, फुटनोट, पृ० १५, राजस्थान भारती, भाग १, अंक २-३ युग्मांक जुलाई-अक्टूबर ।
४. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८६, स० १ ।
५. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १० ।
६. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग ।
७. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११३-१४ ।

वीसलदेव—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा की ३६वीं पीढ़ी में राजा धर्माधिराज चौहान के उपरान्त वीसलदेव उनका उत्तराधिकारी हुआ। प्रारम्भ में कवि ने वीसलदेव का संक्षिप्त परिचय कुछ छन्दों में वर्णित कर दिया है[1] किन्तु उनका विस्तृत वर्णन आना (अर्णोराज) कि मां उनके जन्म कथा से लेकर दानव होने तक की कथा अपने पुत्र के आग्रह करने पर इस प्रकार कहती है—"ऋषियों ने आबू पर्वत पर यज्ञ किया तथा उन्हीं से कालान्तर में राज्य प्राप्त हुआ। पर्याप्त समय के उपरान्त उसी कुल में महाराज धर्माधिराज ने जन्म ग्रहण किया तथा उन्हीं राजा के घर मे कालान्तर से वीसलदेव नामक बालक ने जन्म ग्रहण किया—

पुत्त सुनहु इह वत्त पुरानी। कहतं होइ गद गद वानी॥
अनल कुंड आबू रिषि कीनों। राज उपाइ राजसिर दीनों॥ छं० ३३७॥
ताके कुल तें उप्पन्नो। महाराज ध्रंमाधि॥
ताके वीसलदेव नृप। सर्व राज आराधि॥ छं० ३३८॥[2]

राजा वीसलदेव के बड़े होने पर उन्हें उत्तराधिकार के रूप में अपने पिता धर्माधिराज चौहान की राजगद्दी आनन्द सं० ८३१ शुक्रवार वैसाख मास में प्राप्त हुई। राज्यमहोत्सव में छत्तीसों वंश के छत्रिय उपस्थित थे। अजमेर नगरी में उत्सव इस प्रकार मनाया गया मानों इन्द्रपुरी में उत्सव मनाया गया हो।[3] राजा विसलदेव ने अपने अन्तिम समय में पट्टन पर आक्रमण करके उसे अपने आधीन बना लिया तथा वहाँ पर छत्र धारण किया।[4] राजा वीसलदेव के घर एक पुत्र ने जन्म लिया, जिसका नाम सारंगदेव था। राजा वीसलदेव स्वभाव से आखेट प्रिय था। एक वार मृगया के अन्तर्गत एक अत्यन्त रमणीक स्थान देखकर, अपने समस्त मंत्रियों को एकत्र कर, उस स्थान पर एक सुन्दर सरोवर बनवाले की आज्ञा प्रदान की—

तवदेखि नरिन्द अनूप ठाम। निर्झर गिरिन्द वन अभिराम॥
बुल्लाय लिए मंत्री प्रधान। सर रचौ इहां पहुकर समान॥ छं० ३६४।[5]

यह सरोवर आज भी अजमेर के निकट विद्यमान है। रासो के सम्पादक त्रय ने टिप्पणी में इस सरोवर के विषय में इस प्रकार लिखा है। "यह वीसल का तालाव अब तक अजमेर के पास विद्यमान है। उसके किनारे पर जहाँगीर बादशाह ने एक महल बनाया था जिसमें

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २९२-३०५ स० १।
२. वही, छं० ३३७-३३८, स० १।
३. वही, छं० ३३९, स० १।
४. वही, छं० ३४०, स० १।
५. वही, छं० ३६४, स० १।

उसने इंग्लिस्तान के बादशाह जेम्स पहिले के एलची से मुलाकात की थी। इस टिप्पणी को हमने इस तालाब के किनारे पर खड़े होकर लिखा है। यदि कोई पुरातत्ववेत्ता इस तालाब की वर्तमानदशा अपनी आंख से देखे तो उसको बड़ा शोक और आश्चर्य होगा कि अंग्रेज सरकार के राज्य में ऐसे प्राचीन स्थलों का जीर्णोद्धार राजकोष के द्रव्य से होता है परन्तु रेलवाले अपनी रेल इस पर दौड़ा-दौड़ाकर उसको नष्ट-भ्रष्ट किये डालते हैं कि थोड़े दिनों में वह समूल नष्ट हो जायगा।"[1]

राजा वीसलदेव के एक विशाल हरम था किन्तु राजा सर्वश्रेष्ठ पोवार जाति की पट्-रानी से अधिक प्रेम करता था जिससे अन्य रानियाँ सपत्नीकडाह के कारण राजा वीसलदेव से खिन्न रहा करती थीं—

सुरंगधाम अभिराम, तहां विश्राम राजकिय ॥
राग रग नाटक, विनोद सुष महल चोल लिय ॥
पटरागिनि पांवार, रूपरता गुन जुब्बन ॥
प्रमदा प्रान समान, नहीं विसरत्त इक्क छिन ॥
रति भोग सुरति तिन सों सदा। कबहु आन न दिट्ठ त्रिय ॥
खिझि सौति सकल एकत्र भय। पुरुषातन तिन दध किय ॥ छ० ३७० ।[2]

सपत्नीकडाह के कारण एक दिन सब रानियों ने मिलकर एक दूती को बुलाकर राजा बीसलदेव का पुरुषत्व नष्ट करवा दिया—

मंगाइ अगिनि तब कियो होम। पर स्वान मांस प्रति घास धोम।
उच्चरयौ मंत्र आराधि इष्ट। तत काक नयौ कान तं नष्ट ॥
दस दिसा लग्गि इह करीविद्धि। गत नौ पुरुषातन रहि न सिद्धि।
दै द्रव्य कह्यौ माता सिधाव। इह सहर छंडि अनि सहर जाव ॥ छं० ३७७-७८ ।[3]

राजा बीसलदेव का पुरुषत्व भग हो जाने पर उन्हें अपार क्लेश हुआ तथा कर्तव्य का पालन करते हुये उन्होंने गोकर्णेश्वर महादेव[4] की यात्रा करने के लिये गुजरात की ओर

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्रथम समय, टिप्पणी पृ० ३७।

२, वही, छ० ३७०, स० १।

३. वही, छं० ३७७-७८, स० १।

४. गोकर्णेश्वर महादेव की उत्पत्ति कथा स्कन्ध पुराण में मिलती है—

चमत्कारपुरोत्पत्तिः श्रुतात्यत्तो महायते।
तत्क्षेत्रस्य प्रमाणं यत्तदस्मांक प्रकीर्तय ॥ १ ॥
यानि तत्र च पुण्यानि तीर्थान्याय तनानि च।
संहितानि प्रभावेन नानि सर्वाणि कीर्तय ॥ २ ॥

प्रदान किया। राजा ने महादेव की निरन्तर आराधना करके अपना पुरुषत्व पुनः प्राप्त कर लिया—

पहुर रात पाछली राज आये डेरा मधि।
घड़ी काम कामना नई पुरुषातन की सिधि॥
प्रात काल करि न्हान धेन विप्रन कौं दीनी।
पन्ना अम्रित धूप दीप सिव सेवा कीनी॥
तिहि बार हुकुम देवल करन पुर वसाइ वीसल धरह।
मंगाइ हस्ति असवार हुई फिरयौ राजघर आतुरह॥

राजा वीसलदेव को महादेव की आराधना के फलस्वरूप पुरुषत्व तो प्राप्त हो गया किन्तु उसकी कामशक्ति अत्यन्त प्रबल हो उठी। काम के मद में उसे उचित-अनुचित का भी ज्ञान न रह गया—

काम लुबध वोलि सब कामिनि। च्यार जाग गई जागत जामिनी।
सब नारिन को सोच उपन्नौ। ऐसो कहा संभुवर दिन्नौ॥
सात दिवस एकसौ काम कामना सु बढ्ढिय।
प्रौढ़ मुगध वय प्रिद्ध सर्व थरहरि यिम गढ्ढिय॥
परघरनी लै वोलि घरी नह विलंब लगावै।
जो बिलंब करि रहै ताहि हनिवे कौं आवै॥
भै भीत काम विसराम विन नाम सुनत औढ़िक परैं।
अजमेर नयर वीसल निरपति प्रमदा देषत प्रज्जरैं॥

और भी—

जितै जाइ रह मान काम कामना सु बढ्ढिय।
अवर ताहि उप्परह थयन मूरष पर चढ्ढिय॥

पंचकोश प्रमाणेन क्षेत्रं ब्राह्मण सत्तमा।
आयामव्यास तच्चैव चमत्कारपुरोद्भव॥ ३॥
प्राच्यां तस्यां गयाशीर्ष पश्चिमेन हरे पदं।
दक्षिणोत्तरयोश्चैव गोकर्णेश्वर संज्ञिकं॥ ४॥
हाटकेश्वर संज्ञं तु पूर्यमासी द्विजोत्तमाः।
तत्क्षेत्र प्रथितं लोके सर्वपातकनाशनं॥ ५॥
ततः प्रभृति विप्रेभ्यो दत्तं तेन महात्मना।
चमत्कारेण तत्स्थानं नाम्ना ख्याति ततो गतं॥ ६॥
अध्याय २६, स्कन्ध पुराण।

तिन दिष्षत वर वस्त मगि अप्पन मुप अप्पहि।
अवला संग उल्लास काहु की कानि न रप्पहि॥
दुज पत्रि वंस सूद्रह वरन, तर्ज न किह तक्कत नयन।
वीसल नरिंद इहनय अकलि लहै न कहुं निस दिन सयन॥

नागरिकों के निवेदन करने पर राजा वीसलदेव ने अपने मन को सुन्दर बनाने के निमित्त से अपने प्रधानमंत्री करिपाल को बुलाकर आज्ञा दी कि समस्त धन सम्पत्ति लेकर वीसल सरोवर पर डेरा करो तथा स्वयं ने अपने सब दुष्ट-मित्रों को वीसल तालाब पर एकत्र करके गुजरातपति वाकुलराय पर आक्रमण कर दिया। गुजरात नरेश वालुकाराय भी वीसलदेव का सामना करने के लिये अग्रसर हुआ।[1] वीसलदेव ने अपनी सेना को गरुड़व्यूह में तथा वालुकाराय ने अहिव्यूह में अपनी सेना को युद्ध हेतु खड़ा किया।[2]

युद्ध का अन्त संधि में हुआ। राजा वीसलदेव उस स्थान पर महल तथा नगर बसाने का आदेश देकर पुनः अजमेर लौट आया।[3] इसी बीच एक दूत ने वीसलदेव को समाचार दिया कि यहाँ पर एक अत्यन्त सुन्दर वणिक पुत्री है।[4] राजा वीसलदेव ने वीसलपुर में [illegible] संवत् ९८७ में प्रवेश किया।[5] पुष्कर नगर में वह वणिक पुत्री उग्र तपस्या कर रही थी। राजा वीसलदेव उसे देखते ही मुग्ध हो गया। उस वणिक पुत्री ने नाना प्रकार से प्रार्थना की किन्तु कामान्ध वीसल ने उसकी एक न सुनी और उसका सतीत्व नष्ट कर दिया। वणिक पुत्री ने राजा के कुकृत्य से दुःखी एवं क्रोधित होकर शाप दिया कि तू दानव होकर नर भक्षण करने वाला हो—

पुत्री वनिक सराप दीय नर पुहकर नर लोइ।
असुर होइ वीसल नरपति नर पल चारो सोइ॥ छं० ४९१।[6]

तपस्वनी गौरी के शाप से राजा वीसलदेव की बुद्धि में भ्रष्टता आ गई।[7] इसी बीच एक दिन उनके जूते में बैठे हुये सर्प के काटने से उनकी मृत्यु हो गई—

देषि राज फरि क्रोध वान की दण्ड परिय कर।
वेधि पनग फन जिपक परयो धर तरफत बेसिर॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४१८-४१, स० १।
२. वही, छं० ४४९, स० १।
३. वही, छं० ४६४-६८, स० १।
४. वही, छं० ४७१, स० १।
५. वही, छं० ४७२, स० १।
६ वही, छं० ४९१, स० १।
७. वही, छं० ५०७, स० १।

छुटि तिहि वेर मंतग पेल देषन कौ धायौ ।
एक मोजरी मद्धि पनग फन आनि लुकायौ ।।
फिर राय आय हैंवर चढ्यौ पहरत मौजे पग डस्यौ ।
भवितव्य वात आघात गति इतनी कहि राजन हस्यौ ।। छं० ५०९ ।[1]

लाख उपाय किये गये किन्तु फिर भी वीसल न बच सका, इसी बीच रथी के मध्य से विष-ज्वालाएं उगलता हुआ एक दानव निकला जिसने मनुष्यों का भक्षण करना आरम्भ कर दिया—

राज मरन उप्पनो सव्व जन सोच उपन्नो ।
पटरागिनि पावार निकसि तव ही सत दिन्नौ ।।
तिन मुष इय उच्चर्‌यो होइ जादवनि सपुत्तय ।
मो असीस इह फुर्‌यो तुम्म भोगवहु धरत्तिय ।।
जिन रथी मद्धि ऊठे असुर धर्वं ज्वाल तिन मुष विषम ।
नर भषय जहां लसकर सहर मिले मनिष ते ते भषम ।। छं० ५११ ।[2]

जब सारंगदेव ने वीसलदेव की असुरत्व की बात सुनी तो उसने युद्ध की तैयारी की किन्तु दुर्भाग्यवश सारंगदेव अपने दानव पिता के समक्ष न ठहर सका और वीरगति को प्राप्त हुआ—

एकादसयी दिवस प्रात दानव पुर आयौ ।
सफल सैन लै सस्त्र उट्ठि लरिवे को धायौ ।।
वे वाहैं तरवारि इहे मुष पकरि सु कट्टै ।
ज्यौं वेली द्रुम सघन देषि मरकट फल चुट्टै ।।
किय पिता पुत्त जुद्ध सम असम गिर सौ जनु सारंग गिरयौ ।
मन जानि असुर नर घुसि रहे सव ढुढां ढुढंत फिरयौ ।। छं० ५१२ ।[3]

दानव वीसल देव ढूंढ़-ढूंढ़कर मनुष्यों को भक्षण करने लगा । अतः इसका नाम इसी कारण से ढुढा पड़ा । कवि ने लिखा है कि—

ढूंढि ढूंढि खाये नरन, तातैं ढूंढा नाम ।
देव पुरी अजमेर पुर, रम्न करी ये राम ।। छं० ५१७ ।[4]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५०९, स० १ ।
२. वही, छं० ५११ स० १ ।
३. वही, छं० ५१२, स० १ ।
४. वही, छं० ५१७, स० १ ।

दानव ढूंढा का आतंक चारों ओर फैल गया था। भय के कारण लोगों ने अजमेर नगर खाली कर दिया। दानव जिस वन में रहता था उसमें किसी जीव का प्रवेश भय के कारण न होता था, समस्त दिशायें शून्य हो चुकी थी। उसकी घोर हिंसात्मकता के कारण मनुष्य और अन्य समस्त जीवों की क्या चर्चा सिंह सदृश्य विकराल जन्तु भी पलायन कर चुके थे—

सो दानव अजमेर धन, रह्यो दोह घन अन्त।
सुन्न दिसानन जीव को, थिर थावर जग मन्त ॥ छं० ५२६।
तहँ सिंह न म्रग्ग न पंखि बनं, दिसि सून भई डरि जीव धनं।
नह मातह मंत अमंत कियं, पिय को घरनी रह तत लियं ॥ छं० ५२७।
तहँ ठाय भयानक सोच तयं, तहँ ठाय फलाफल सोषि वयं।
तिह ठाय नयं नर नारि नरं, तिह ठाय न पंथिय पंथ चलं ॥ छं० ५२८।
तिहँ ठायँ गजवर बाजि ननं, तिहँ ठाय न सिद्धय साधकनं।
तिहँ ठाय न दारिद्र द्रव्य गनं, हिम मात न तात न मोह मनं ॥ छं० ५२९।[1]

ग्रन्थकार के अनुसार यह दानव सौ हाथ ऊंचा था, हाथ में विकराल खड्ग लिये रहता था तथा मुंह से निरन्तर अग्नि ज्वालाएं फेंका करता था—

अगह मान प्रमान, पंच सै हथ्थ उनं कह।
छह ऊँचो उनमान, जिनय लछ्छिनह विवेकह।
हथ्थ खड्ग विकराल, मुष्प ज्वालधन सट्ट ॥ छं० ५८०।[2]

राजा आना ने दानव की सेवा करने का निश्चय किया किन्तु उसकी माता ने उसे बहुत समझाया कि कुमंत्र मत ग्रहण करो। ढूंढा दानव जो इतना भीषण है, यह तो मनुष्यों को ढूंढ़-ढूंढ़ कर भक्षण करता है और तुम उसकी सेवा करने के लिये आग्रह करते हो—

पुत्र अमंत जु सिष्यो, सिष्यो उरह दहंत।
ढूंढो नर ढुंढं नषन, तू सेवनह कहंत ॥ छं० ५२२।[3]

आना ने अपने पिता सारंगदेव चौहान की मृत्यु का बदला लेने की भावना से उस दानव को अपनी सेवा भाव से प्रसन्न करने का निश्चय किया तथा अजमेर के वनों में जाकर अपनी बुद्धि से निर्भयता पूर्वक उस दानव को प्रसन्न कर लिया।[4] परिणामस्वरूप दानव ढूंढा,

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ५२६-५२९, स० १।
२. वही, छं० ५८०, स० १।
३. वही, छं० ५२२, स० १।
४. वही, छं० ५२२-५१, स० १।

राजा आना को अजमेर का राज्य देकर आकाश मार्ग में उड़ गया।[1] आकाश मार्ग में उड़ता हुआ यह दानव नेमि तथा हारीफ मुनियों की प्रेरणा से निगमबोध में तीन सौ अस्सी वर्ष तक कठोर तप में संलग्न हुआ।[2] निगमबोध में उस उग्र तपस्वी दानव की अपार महिमा हुई तथा वह सिद्ध महात्मा हो गया। दिल्लीपति अनंगपाल की पुत्री की सेवा से प्रसन्न होकर उसने उसको वीर प्रसविनी होने का वरदान दिया।[3] वर देकर ढूंढा दानव काशी की ओर उड़ गया।[4] काशी में उसने अपने अंगों को काट-काटकर हवन कर दिया।[5] उसी के विभिन्न अंगों से पृथ्वीराज (तृतीय), संयोगिता तथा अन्य सामन्तों ने जन्म ग्रहण किया—

दिय वीसल वरदान, कुप्प उपजै माहाभर।
वीर रस उत्तान, जुद्ध मंडै न कोई नर॥
वीर जोति अवतार, भट्ट जिह्वा तन भारिय।
नयन जोति संजोगि, पत्ति कुछ पति संधारिय॥
दिष्षे सु नयन पुहकर प्रसिध, दियो पाप इन ध्रुव करि।
उप्पजै नारि अति रूप तिन, तेन लिन्न जायं सुघर॥ छं० ५८२।
वर दिन्नो ढुंढा नरिंद, जाय कासी तट सिद्धो।
अरत लियो अवतार, भट्ट रसना रस पिद्धो॥
सोमेसर परिगह, प्रबन्ध सित उपने पिति नर।
हुये वीस अजमेर, क्रिये उप्पने अपर घर॥
सोमेसर वीर सुत पिथ्थ हुए, ठौर ठौर ऊपजि वलिय।
विधि विधि विनान अवलोकि गति, अवर सूर आये मिलिय॥ छं० ५८३।[6]

इस प्रकार अपने पापों का प्रायश्चित कर अपनी आत्मा का उद्धार करके उसने पुनः इस पृथ्वी पर जन्म ग्रहण किया तथा कवि चन्द वरदायी ने उसका छंदों में वृतान्त वर्णन किया—

इम आतम उद्धार करि, जनम लियो भुंअ आय।
सो वृतांत कवि चन्द कहि, वरन्यो कवित्त बनाय॥ छं० ५८८।[7]

दानव ढुंढा की कथा का अन्त यहीं नहीं होता है। 'पृथ्वीराज रासो समय २२' के

---

१. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० ५५२-५३, स० १।
२. वही, छं० ५५४-६८, स० १।
३. वही, छं० ५६९-७४, स० १।
४. वही, छं० ५७५, स० १।
५. वही, छं० ५७६, स० १।
६. वही, छं० ५८२-८३, स० १।
७ वही, छं० ५८८, स० १।

अन्तर्गत हम फिर ढूंढा की कथा का वर्णन पढ़ते हैं। इतना ही नहीं उसके साथ ही कवि ने उसकी बहन ढुंढिका का भी विवरण प्रस्तुत किया है। कथा इस प्रकार है। होली के पर्व को देखकर महाराज पृथ्वीराज ने कवि चन्द वरदायी से पूछा कि होली का पर्व क्यों मनाया जाता है—इस पर कवि ने उत्तर दिया "चौहान कुल में ढूंढा नाम का दानव था, उसकी छोटी बहन का नाम ढुंढिका था, जिसके यौवन काल में ही गुणों की प्रशंसा हो रही थी।[1] ढुंढा बनारस गया तथा वहाँ पर वर्षों से निरन्तर तपस्या कर रहा है, यह सुनकर ढुंढिका भी भाई की सहायतार्थ पहुंची।[2] ढूंढा दानव ने अपने शरीर को अग्नि में भस्म कर दिया, जिससे पृथ्वीराज चौहान तथा अन्य सूरमा उत्पन्न हुये।[3] किन्तु ढुंढिका वहीं सौ वर्ष तक बैठी रही, केवल वायु का सेवन करते हुये उसने तपस्या की, उसी का वृत्तान्त सुनो।[4] उसकी लगन और तपस्या से प्रसन्न होकर पार्वती ने उससे वर मांगने के लिये कहा।[5] ढुंढिका ने कहा कि मुझे यह वरदान दीजिये कि मैं बालक, युवा एवं वृद्ध सबको भक्षण कर सकूं।[6] यह सुनकर पार्वती जी स्तम्भित रह गयीं तथा उन्होंने शिवजी से जाकर कहा कि ऐसा उपाय बताइये कि ढुंढिका को वर तो मिल जाय परन्तु वह मनुष्य भक्षण न कर सके।[7] भगवान आशुतोष ने कहा कि उससे कह दो कि जो विह्वल तथा व्याकुल करने वाली वाणी से असुरों की भाँति अनन्त प्रकार के शब्द करे उन्हें छोड़कर सबका अन्त कर सकती है।[8] इधर भगवान शिव ने पवन को आज्ञा दी कि पृथ्वी पर यह समाचार फैला दो कि लोग फाल्गुन मास में तीन दिन तक विचित्र रंग-ढंग कर लें, गदहों पर चढ़-चढ़कर हंसें, सिर पर सूप रख, समूह बनाकर गलियों में भ्रमण करें तथा हो-हो शब्द का उच्चारण करके शोर मचावें।[9] ढुंढिका राक्षसी ने आकर देखा कि लोग पागलों की भाँति गदहों पर चढ़े हुये हो-हो शब्द कर रहे हैं, अश्लील बात कर रहे हैं, सिन्धूराग बजाते हुये 'नवला' गीत गा रहे हैं। हो-हो करके हा-हा करते हुये वे विपरीत आचरण कर रहे हैं घर-घर में आग जला रखी है, वे धूल और राख उड़ा रहे हैं तथा नाचते गाते हुये परस्पर कांख दिखाते हैं। फाल्गुन मास में वायु ने इस प्रकार का भाव पैदा कर दिया, लाज तो चली गयी किन्तु विघ्न भी टल गया।[10]" इस प्रकार ढुंढि

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५ स० २२।
२. वही, छं० ६, स० २२।
३. वही, छं० ७, स० २२।
४. वही, छं० ८, स० २२।
५. वही, छं० ९, स० २२।
६. वही, छं० १०, स० २२।
७. वही, छं० ११, स० २२।
८. वही, छं० १३, स० २२।
९. वही, छं० १४-१५, स० २२।
१०. वही, छं० १६-२०, स० २२।

हुई विरति दूर हुई। सबके हृदय का द्वन्द्व नष्ट हो गया, चैत्र का महीना आया तथा घर-घर में आनन्द छा गया।[1] जाड़ा बीतने तथा वसंत आगमन पर लोग होलिका पर्व की पूजा तथा ढुंढिका राक्षसी की स्तुति गान करते है—

गतेनु यार समये, वसंते च समागमे।
होलिका प्रव्व पूज्यन्ते, ढुंढा देवी नमोस्तुते॥ छं० २२।[2]

इसी प्रकार की कथा का विवरण भविष्य पुराण में भी देखने को मिलता है। पृथ्वीराज के समान ही, इसमें युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण भगवान से होलिकोत्सव के विषय में जानने की जिज्ञासा प्रकट की। कृष्ण भगवान ने उत्तर दिया कि कृतयुग में महाराज रघु ने पुरवासियों द्वारा बालकों को नाना प्रकार के कष्ट देने वाली ढौंढी राक्षसी के उपद्रव सुनकर गुरू वशिष्ट से उसके बारे में पूछा था जिसके उत्तर में उन्होंने ढुंढी की कथा कही थी।[3]

काशी के विश्वनाथ पंचागम् के होलिका दाह प्रकरण के अन्तर्गत भी ढूंढा राक्षसी का उल्लेख हुआ है।[4]

कहने की आवश्यकता नहीं कि ढुंढिका की कथा का विवरण किसी क्षेपककर्त्ता की कृपा का फल है। सम्भवतः क्षेपककर्त्ता को ढुंढिका की कथा विदित रही होगी, उसी ने ढुंढा दानव के नाम सादृश्य पर ढुंढिका को उसकी कथा में जोड़ दिया तथा ढुंढिका को उसकी बहन लिख दिया है। वीसलदेव के कोई बहन थी, ऐसा उल्लेख रासोकार ने कहीं नहीं किया है। वीसलदेव का उपर्युक्त विवरण प्रायः रासो की सभी संस्करणों में कम या अधिक मात्रा में प्राप्त हो जाता है। ढुंढिका की कथा केवल वृहत रूपान्तर में ही देखने को मिलती है।

पंडित सदाशिव दीक्षित वीसलदेव को प्रामाणिक सिद्ध करने की चेष्टा करते हुये लिखते है—पृथ्वीराज विजय के अतिरिक्त समुपलब्ध सभी आधारों से इसका नाम वीसल प्रतीत होता है, विग्रहराज नहीं। केवल जयानक ही इसे विग्रहराज (तृतीय) इस नाम से सम्बोधित करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वीसल उपाख्यान अध्ययन करने के अनन्तर अनेक समीक्षकों का अनुमान है कि कदाचित् इसका नाम विग्रहराज रहा हो, परन्तु अपने दुराचरणों के कारण इसने वीसलदेव इस नाम से ख्याति पाई हो। प्रयोग शूद्र, अत्याचारी शासक, धर्म नाशक, धरती धमक आदि के लिये किया जाता है। ,[वृषं धर्मं लाति गृह्लाति इति वृषलः, अथवा वृषं धर्मं लुनाति छिनत्ति इति वृषलः।][5]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २१, स० २२।
२. वही, छं० २२, स० २२।
३. भविष्य पुराण, १३-३०, प्र० १३२।
४. विश्वनाथ पंचागम्, होलिका दाह प्रकरण, १।
५. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११९-१२०।

डॉ० दशरथ शर्मा भी वीसल को कामन्ध एवं मदान्ध देखकर उसको विग्रहराज मानते हुये लिखते हैं कि—"उसका (धर्माधिराज) का पुत्र विग्रहराज तृतीय वास्तव में कामी एवं मदान्ध था। सम्वत् १३४० से पूर्व रचित चौहानों की वंशावली में भी उसे ऐसा ही बताया गया है।"[1] प्रबन्धकोष के अन्त में दी हुई वंशावली के आधार पर श्री सदाशिव वीसलदेव के विषय में लिखते हैं कि—'इस विग्रहराज तृतीय ने मालवाधीश उदयादित्य की समुन्नति की साधना के लिये अपने पूर्व वैर को विसार कर सारंग नामक अपना अश्व दे डाला था, जिसकी समुपलब्धि से उसने (मालवाधीश ने) गुजरात पर विजय पाई थी—इसका उल्लेख पृथ्वीराज विजय के पंचम सर्ग में स्पष्ट रूप से पाया जाता है—

मालवेनोदयादित्येनास्मादेवाप्यतोन्नतिः।
मन्दाकिनीहृदादेव लेभे पूरणमब्धिना ॥७६॥
सारङ्गस्य तरङ्ग स ददौ यस्मै मनोजवम्।
मह्य् च्यैः श्रवसं क्षीरसिन्धोरन्यः प्रयच्छति ॥७७॥
जिगाय गुर्जर कर्णं तमश्वं प्राप्त मालवः।
लब्धानूसः सूर्यरथ करोति व्योमलंघनम् ॥

वीसलदेव के इस कृत्य से किसी गूढ़ाभिसन्धि का, किसी दुर्भावना का और रासोकार के शब्दों में इसकी कामुकता का परिचय मिलता है।

जग दुष्ष वीर वीसल नरिंद, बहु पाप रत्त वरयान अंध।
कामंध अंध सुज्यौ न काल, हुक अहुक जोरि गिरि इवरूमाल।
धनमदन सदन नरि सब्ब जम्म, तिहि परत उद्दिट मित्या कदम्म।

पृथ्वीराज विजयकार ने विग्रहराज तृतीय को भोगीन्द्र—इस विशेषण से विभूषित कर उसकी कामुकता की अभिव्यक्ति जिस विशेषण से प्रदर्शित की है वह विवेचनीय है—

'तस्य विग्रहराजेन भोगीन्द्रेणानुजन्मना।'

रासोकार के 'कामान्ध' इस पद से जिस चरित का आभास मिलता है, भोगीन्द्र पद से वैसी ही अभिव्यंजना होती है। 'वीसलदेव' उपाख्यान कामान्ध और भोगीन्द्र इन पदों से पूर्णतया परिपुष्ट हो जाता है।"[2]

अन्यत्र पंडित जी ने—वीसलदेव का ही नाम विग्रहराज होने के समर्थन में इस प्रकार लिखा है—"प्रबन्ध चिन्तामणि में लिखा है कि एक बार अजमेर शासक का एक [illegible] श्री कुमार पाल भूपाल की सभा में पहुँचा। राजा ने उससे पूछा कि 'आपके स्वामी कुशल से तो हैं?'

1. डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, पृ० ४, राजस्थानी, भाग ३, अंक ३ जनवरी, १९४०, कलकत्ता।
2. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० १२०-१२१।

इस पर उसने उत्तर दिया कि 'विश्व के ग्रहण करने के कारण जिसका नाम विश्वल (वीसल) पड़ गया हो, उसके विजय में संदेह करना व्यर्थ है।' इस पर राजा के कपर्दी मंत्री ने कहा कि 'तुम भूल करते हो, गमनार्थक श्वय अथवा श्वल धातु से इसकी निष्पत्ति हुई है। अतः पक्षी के समान फुदकने वाले पुरुष का नाम विश्वल (वीसल) है।' इस प्रकार अपने नाम में दोष देखकर राजा ने पंडितों की सम्मति से अपना नाम विग्रहराज रखा। दूसरे वर्ष जब श्री कुमारपाल के सम्मुख यह नाम बतलाया गया तो कपर्दी मंत्री ने फिर कहा कि 'विग्रहराज का पद की निष्पत्ति दो पदों से हुई है विग्र और हराज, जिससे इसका अर्थ होता है जिसने हर (रुद्र) और अज (नारायण) को नासिकारहित कर डाला हो।' इस पर राजा ने अपना नाम कवि बान्धव रखा।"[1]

जहाँ एक ओर पंडित सदाशिव, दीक्षित डॉ० दशरथ शर्मा आदि वीसलदेव को प्रमाणिक व्यक्ति सिद्ध करने में भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जैसे व्यक्ति वीसलदेव को पूर्णरूपेण अनैतिहासिक तथा उससे सम्बन्धित समस्त घटनाओं को काल्पनिक मानते हैं। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि "पृथ्वीराज रासो में वीसलदेव की गद्दी नशीनी का संवत् ८२१ दिया है और लिखा है कि उसने शत्रुओं से अजमेर लिया और उसके बुलाने पर वीसल सरोवर (वीसलिया नाम का तालाब, अजमेर में) पर अन्य राजा तो आ गये, परन्तु गुजरात के चालुक्य राजा बालुकाराय के न आने के कारण वीसलदेव ने उसकी राजधानी पाटन पर चढ़ाई की। बालुकाराय के मंत्रियों ने उससे मिलकर संधि कर ली।

यह सम्पूर्ण कथन भी निराधार है। अजमेर बसने के बाद वीसलदेव नाम का एक ही चौहान राजा (सोमेश्वर का बड़ा भाई) हुआ, जिसने अपने नाम से वीसलसर तालाब बनवाया और उसके समय के शिलालेख वि० १२१०, १२११ और १२२० के मिले हैं (संवत् १२१० मार्ग सुदी ५ आदित्य दिने श्रवण नक्षत्रे मकरस्थे चन्द्रे हर्षणयोगे बालवकरणे हर केलि-नाटकं समाप्तं ॥ मंगल महाश्रीः ॥ कृतिरियं महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विग्रहराज-देवस्य''''''(शिलाओं पर खुदा हुआ हरकेलि नाटक, राजपूताना म्यूजियम, अजमेर में सुरक्षित)।

(ॐ ॥ संवत् १२११ श्रीः (श्री) परमपासु (शु) पताचार्येन (ण) विश्वेश्वर (प्र) ज्ञेन श्री वीसलदेव राज्ये श्री सिद्धेश्वर प्रासादे मण्डपं (भूपितं)। (लोहारी के मंदिर का लेख, अप्रकाशित)।

(ॐ ॥ संवत्, १२२० वैशाख सुदि १५ शाकम्भरी भूपति श्री मदनल देवात्मज श्री मद्वीसलदेवस्यं ॥ (इंडियन एंटिक्वेरी जिल्द १९ पृ० २१८)।

जिनमें वि० सं० ८२१ अर्थात् पंड्या जी के अनद संवत् के अनुसार वि० सं० ९३१ में

---

१. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० १२२।

उसका राज्याभिषेक होना किसी प्रकार नहीं माना जा सकता। इसी पांड्या जी के माने हुये संवत् तक पाटन में सोलंकियों का अधिकार भी नहीं हुआ था। उस समय तो क्षेमराज चावड़ा गुजरात का राजा था। वि० सं० १०१७ में सोलंकी मूलराज ने अपने मामा सामन्तसिंह को मारकर पाटन का राज्य लिया और चावड़ा वंश की समाप्ति की। बालुकाराय नाम का सोलंकी राजा गुजरात में कोई हुआ नहीं।

विग्रहराज (वीसलदेव) नाम के चार चौहान राजा हुये, जिनमें से तीन तो अजमेर बसने से पूर्व हुये थे। दूसरे विग्रहराज ने, जिसके समय की वि० सं० १०३० की हर्षनाथ मन्दिर की प्रशस्ति है, मूलराज सोलंकी पर जिसने १०१७ से १०५२ तक राज्य किया था (राजपूताने का इतिहास, जिल्द १, पृ० २१४-१५) शाकंभरी (सांभर) से चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई का वर्णन पृथ्वीराज विजय, हम्मीर महाकाव्य और प्रबन्ध चिन्तामणि में मिलता है, परन्तु पृथ्वीराज रासो के कर्ता को तो केवल एक वीसलदेव का ज्ञान था जिसने वीसलसर बनाया था। वह मूलतः चतुर्थ वीसलदेव था। वीसलदेव (दूसरे) की सोलंकी राजा मूलराज पर चढ़ाई करने की परम्परागत स्मृति से रासो के कर्ता ने चौथे वीसलदेव की गुजरात पर चढ़ाई लिख दी और वहाँ के राजा का ठीक नाम ज्ञात न होने से उसका नाम बालुकाराय धर दिया।"[1]

रासो के 'वीसलदेव' में सत्यता का अंश कितना भी हो किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि वीसलदेव ऐतिहासिक पात्र है। वास्तविकता यह है कि वर्तमान रासो में बहुत अधिक क्षेपक होने के कारण मूल कथा का अस्तित्व विलीन प्रायः हो गया है। सम्भवतः मूल रासो में इस प्रकार की बहुत-सी अनर्गल बातें न रही होंगी। जब तक रासो के समस्त संस्करणों को लेकर उनका वैज्ञानिक रूप से सम्पादन प्रस्तुत नहीं किया जाता तब तक रासो विवाद का विषय ही बना रहेगा। कोई भी विद्वान अटकल भिड़ाने के अतिरिक्त कर ही क्या सकता है।

वैरसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार राजा संकाविहार के उपरान्त चौहान वंशावली में ११वीं पीढ़ी में राजा वैरसिंह हुये।[2] रासोकार ने केवल इनके नाम का ही उल्लेख किया है। रा० ए० सो० लन्दन की रासो की प्रति भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती है।[3] धारणोज की प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो इनके विषय में मौन है। शिलालेख एवं संस्कृत ग्रन्थों में दिये हुये 'चन्द' नाम को ही पंडित सदाशिव दीक्षित वैरसिंह मानते हैं—उन्होंने लिखा है कि—"शिलालेख में ये श्री चन्द इस संकेत से सम्बोधित किये गये हैं और

---

१. म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा; पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, पृ० ५१-५३, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० १९८५।

२. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २८६, स० १।

३. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ १०।

पृथ्वीराजविजय, प्रबन्धकोष और हम्मीर महाकाव्य में चन्द्रराव इस नाम से। सुर्जनचरित में इनका नामान्तर सामन्तसिंह दिया गया है और रासो में वैरसिंह।"[1]

पता नहीं पंडित जी ने यह सब कल्पना किस आधार पर कर ली। सामग्री अभाव के कारण वैरसिंह की प्रामाणिकता एवं ऐतिहासिकता के विषय में कुछ भी लिखना अत्यन्त कठिन है।

संकाविडार—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार राजा उद्दारहार के उपरान्त चौहान वंशावली में १०वीं पीढ़ी में राजा संकाविडार हुये।[2] ग्रन्थकार ने इनका नाम वंशावली में गिना दिया है, इनका अतिरिक्त कुछ भी विवरण प्राप्त नहीं होता। रा० ए० सो० लन्दन की प्रति उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती है।[3] धारणाज की प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो इनके विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं करता। शिलालेख एवं समस्त प्राचीन संस्कृत के ग्रन्थ भी इनके विषय में मौन हैं।[4] संकाविडार को पंडित सदाशिव दीक्षित राजा विन्दसार का विशेषण मात्र मानते हैं।[5]

ऐसी स्थिति तथा सामग्री अभाव में कुछ भी विश्वासपूर्वक कहना कठिन है। अतः इन्हें ऐसी ही स्थिति में छोड़कर, विवश होकर संतोष करना पड़ता है।

संग्रामसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा की १७वीं पीढ़ी में राजा महसिंह के उपरान्त राजा संग्रामसिंह चौहान उनके उत्तराधिकारी हुये।[6] कवि ने इनका नाम वंश-वृक्ष का उल्लेख करते हुये ही किया है, अन्य स्थानों पर कवि सर्वथा मौन है। रा० ए० सो० लन्दन की प्रति के अनुसार संग्रामसिंह महसिंह का पुत्र था तथा इनके उपरान्त राजगद्दी पर बैठा। संक्षेप में उपर्युक्त कथन की पुष्टि रासो की उक्त प्रति से हो जाती है।[7] धारणाज की प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित 'रासो' इनके विषय में मौन हैं।

पं० सदाशिव दीक्षित इन्हें काल्पनिक व्यक्ति मानते हैं। इनके विषय में उन्होंने लिखा है कि "श्री ओझा जी ने अपनी तालिका में एक और 'संग्राम' नाम की कल्पना की है जो कि रासो के परिशीलन करने पर अनर्गल प्रतीत होता है। रासो में लिखा है—

---

१. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११३।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २८५, सं० १।
३. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
४. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
५. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११३।
६. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २८७, सं० १।
७. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति पृ० १०।

जुध इष्ट सुवन ता सहस मथ्थ।
महिंसिघ सिघ संग्राम पथ्थ ॥"[१]

संग्रामसिंह की पुष्टि शिलालेखों एवं संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में भी नहीं होती।[२] सम्भव है यह अनैतिहासिक व्यक्ति हो तथा भाटों की कल्पना का फल हो।

सम्प्रतिराय—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा में २३वीं पीढ़ी में राजा सेनराय अथवा सेनराज के उपरान्त उनका पुत्र सम्प्रतिराय राज्य का उत्तराधिकारी हुआ।[३] कवि ने इनके विषय में अन्य कोई उल्लेखनीय घटना का विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। रा० ए० सो० लन्दन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती है।[४] धारणोज की प्रति, बीकानेर की एकलक्ष अक्षर वाली प्रति एवं साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो में इनका उल्लेख नहीं हुआ है। शिलालेख एवं संस्कृत ग्रन्थ भी इनके विषय में कोई सूचना प्रस्तुत नहीं करते हैं।[५]

पंडित सदाशिव एक स्थान पर इनके विषय में लिखते हैं कि—"इनका नाम प्रशस्ति में वाक्पतिराज, शिलालेख में 'वप्पयराज' पृथ्वीराज विजय में 'वाक्पति' प्रबन्ध कोश में 'वत्सराज' हम्मीर महाकाव्य में 'वप्रराज' सुर्जन चरित में 'विश्वपति' तथा रासो में 'सम्प्रति-राज' कहा गया है। इसने तन्त्रपाल का पराभव कर सांभर से विन्ध्यांचल तक अपना अधि-कार जमा लिया था। वि० ८५७ से १०५७ के बीच समुत्पन्न सम्पूर्ण चाहमान राजाओं में यह श्रेष्ठ माना जाता है। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि इतने प्रसिद्ध राजा का नाम भी प्रत्येक ग्रन्थकार ने भिन्न-भिन्न रूप से दिया है। कुछ लोगों ने रासो में उल्लिखित माणिक्य-राय से इसके एकीकरण का प्रयास किया है, परन्तु प्रमाणाभाव से इस मत की उपादेयता निस्सार प्रतीत होती है। पांच पीढ़ी पूर्व समुत्पन्न माणिक्यराय से सम्पत्तिराज का एकीकरण असम्भवित है। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि वाक्पति के कनिष्ठ पुत्र लक्ष्मण ने वि० सं० १००० में नाडूल में इसी कुल की एक स्वतन्त्र शाखा स्थापित की। सिरोही राज्य के वर्तमान राजा अपने को इसी शाखा के वंशज मानते हैं।"[६]

पता नहीं पंडित जी ने वाक्पतिराज, वप्पयराज, वाक्पति, वत्सराज, वप्रराज, विश्वपति आदि नामों के साथ सम्प्रतिराय का एकीकरण कैसे कर लिया। कल्पना पर आधारित होने

---

१. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११४।
२. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २८८, स० १।
४. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
५. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
६ पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११५-१६।

के कारण उनका मत अधिक ग्राह्य नहीं है। सामग्री अभाव के कारण इस विषय में निश्चित मत प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन है।

सामन्तदेव—कवि चन्द वरदायी के मतानुसार चाहुवान जी के उपरान्त उनके वंश में सामन्तदेव नाम का राजा हुआ।[1] कवि ने वंशावली का उल्लेख करते हुये इनका नाम मात्र का विवरण प्रस्तुत किया है। रा० ए० सो० लन्दन वाली रासो की प्रति में भी इनके नाम का समर्थन किया है, किन्तु साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित 'रासो' में तथा धारणोज की प्रति में इनका उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। किन्तु शिलालेख, पृथ्वीराज विजय महाकाव्य तथा प्रबन्धकोष में इनका नाम रासो के समान ही मिलता है। अन्तर केवल इतना है कि पृथ्वीराज विजय में इनका नाम सामन्त राय है तथा रासो में इनका नाम सामन्तदेव। बिजोलियां के शिलालेख में लिखा है कि—

विप्र श्रीवत्सगोत्रेऽभूदहिच्छत्रपुरे पुरा।
सामन्तोऽनन्तसामन्तपूर्णतल्लो नृपस्ततः॥ १२॥

पं० सदाशिव दीक्षित ने एक स्थान पर उपर्युक्त श्लोक का अर्थ स्पष्ट करते हुये तथा सामन्तदेव का अस्तित्व स्वीकार करते हुये इस प्रकार लिखा है—"इस साधारण श्लोक के अर्थ करने में अनेक पुरातत्ववेत्ताओं ने अपनी प्रतिभा का अपव्यय किया है। कोई विप्र को विप्र मानकर सामन्त को ब्राह्मण सिद्ध करने का भगीरथ प्रयास करता है, और कोई पूर्णतल्ल को विशेषण मानकर उसे सामन्त का सुत सिद्ध करने का द्रविड़ प्राणायाम करता है। वस्तुत: इस श्लोक का सीधा-सादा अर्थ यह है कि 'पूर्व काल में श्री वत्स नामक ब्राह्मण के गोत्र में अनन्त सामन्तों से परिवृत्त सामन्त नामक एक राजा अहिच्छत्र पुरी में हुआ था।' अनेक बातों पर विचार करने से यह प्रतीत होता है कि मुसलमानों के आक्रमण का प्रतिकार करने और आर्य संस्कृति की रक्षा करने में बाप्पारावल के समान ही तत्कालिक सामन्त के उत्कर्ष की कथाएं किससे अपरिचित है। रासोकार ने 'अरिनंह मंत जित्तो जुरेव' से इसका संकेत कर दिया है। इसका शासन काल वि० ८०७-८३५ के लगभग बतलाया जाता है। ऐसे इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति का उल्लेख न करके हम्मीर महाकाव्य तथा सुर्जन चरित के प्रणेताओं ने अपनी इतिहासानभिज्ञता प्रकट कर दी है।"[2]

सारंगदेव—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा में ३७वीं पीढ़ी में राजा वीसलदेव चौहान के एक मात्र पुत्र सारंगदेव पैदा हुआ। राजकुमार सारंगदेव का जन्म राजा वीसलदेव की परम प्रिया पटरानी परिहारनी के गर्भ से हुआ था किन्तु दुर्भाग्यवश इन्हें मां

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २८४, स० १।
२. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० १११; मोतीलाल बनारसीदास, संस्कृत पुस्तकालय पो० बा० नं० ७५, नेपाली खपड़ा, वाराणसी।

का प्यार न मिल सका। इनका लालन-पालन एक वणिक स्त्री ने किया। उस वणिक स्त्री के एक गौरी नाम की कन्या थी। राजकुमार सारंगदेव तथा गौरी एक स्थान पर पैदा तथा एक ही स्थान पर बड़े हुये थे। सारंगदेव नौ वर्ष तक कन्या गौरी के साथ रहे किन्तु इसके उपारान्त राजा वीसलदेव ने उस कन्या का विवाह कर दिया। विवाहोपरान्त एक बार गौरी का पति वन में गया, जहाँ पर उसकी हत्या एक सिंह ने कर दी—

पट रागिनि परिहार, ग्रन्न सारंग उपन्नौ।
पुत्र होत भइ मृत्य, बाल बानिका कौ दिन्नौ॥
ता वानिक नंदिनिय, नाम गोरी सारग सन।
इक्क थान पय पान, इक्क सिज्या इक आसन॥
नव वरस लगि कन्या रही, व्याह राज बीसल कियौ।
विवाह हुये वर वन गयौ, तहां सिंघ वर विनसयौ॥ छं० ३४७।[1]

राजकुमार सारंगदेव अपने बहनोई (धा-बहिन के पति) की मृत्यु द्वारा तथा सुनकर विरक्ति से भर उठे तथा बौद्ध-धर्म ग्रहण कर अस्त्र-शस्त्रों का परित्याग कर दिया। जब यह सूचना राजा वीसलदेव (विग्रहराज) ने सुनी तो अत्यन्त दुःखी हुये—

अति दुचित्त भयौ सारंगदेव। नित प्रति करै अरहंत सेव॥
बुध ध्रम्म लियौ बंधं न तेग। सुनि श्रवन राज मन भौ उदेग॥ ३४८।[2]

राजा वीसल देव ने राजकुमार को बुलाकर सम्मान किया तथा पूछा कि तुमने यह धर्म क्यों ग्रहण कर लिया। तुम अपने मन की मर्म को छोड़ कर बतलाओ, क्या वणिक पुत्र के लिए ही तुमने यह धर्म ग्रहण किया है। बौद्ध धर्म का ज्ञान, नष्ट ज्ञान है, इसे श्रवण करने से भी दोष होता है। यह पुरुषत्व का खण्डन करने वाला तथा कीर्ति की हानि पहुँचाने वाला है। तुमने राजवंश में जन्म लिया है, तुम राजाओं के साथ दुर्गम वनों में मृगया का आनन्द लो। बौद्ध धर्म के ग्रन्थों की शिक्षा का परित्याग कर दो तथा रामायण और महाभारत को श्रवण करो, तथा चारों प्रकार के राज कार्यों को करो—

बुल्लाइ कुंअर सनमान कीन। किहि राज तुम्म यह ध्रम्म लीन॥
तुम छंडि सरम हम कहौ वत्त। वानिक्क पुत्र हत तें दुचित्त॥ छं० ३४९।
इह नष्ट ग्यान सुनियं न कान। पुरषातन भज्जै कित्ति हान॥
तुम राजवंश राजनह संग। मृगया सर खेलो वन दुरंग॥ छं० ३५१।
परमोध तजो बोधक पुरान। रामाइन सुन भारथ निदान।
अभिमान दान रिन सरन ध्रम्म। चार्यौ प्रकार सुनि राजध्रम्म॥ छं० ३५२।[3]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ३४७, स० १।
२. वही, छं० ३४८, स० १।
३. वही, छं० ३५०-३५२, स० १।

राजा वीसलदेव ने उपर्युक्त उपदेश देकर राजकुमार सारंगदेव का चित्त बौद्ध धर्म की ओर से फिराकर तत्काल दान आदि देकर उसे अस्त्र-शस्त्र धारण करने को दिए तथा राजधर्म का अनुसरण करने के लिए साम्भर प्रदेश का शासक नियुक्त करके भेज दिया—

परमोघ मानि राजन कुमार। तत्काल मंगि वंघे हथ्यार।
भय प्रसन राज कीनो पसाव। संभरि रजधानी करहु जाव।। छं० ३५३ ॥[1]

कालान्तर में राजा वीसलदेव, वणिक पुत्री गौरी के शापवश दानव होकर अजमेर के वनों में विचरण करते हुए मनुष्यों का भक्षण करने लगे। राजा सारंगदेव ने जब अपने पिता की ऐसी अवस्था का वर्णन सुना तो उन्होंने अपनी रानी को रणथम्भ भेज कर स्वयं पिता से युद्ध करने का निश्चय किया—

सुनिय वात तो तात तव। हौं पठई रिन थंभ।
मंचि वद्दि तिन तेग वल। जुद्ध जुरन आरम्भ ॥ छं० ५१२।[2]

राजा सारंगदेव चौहान ने एक सहस्त्र श्रेष्ठ योद्धाओं को अपने साथ लेकर अजमेर दुर्ग को घेर लिया—

एक सहस नरि सथ्थकरि। सवल सकर दिय फेरि।
दै निसान चहुवान चढ़ि। पहुंचिय गढ़ अजमेर ॥ छं० ५१४।[3]

राजा सारंगदेव तीन दिन तक दानव (वीसलदेव) ढुंढा की प्रतीक्षा करता रहा, किन्तु साक्षात्कार न हो सका। अजमेर की अस्त-व्यस्त दशा देखकर राजा सारंगदेव को अत्यन्त कष्ट हुआ तथा उनकी आँखों में आँसू आ गये। अन्त में उन्होंने अजमेर को पुनः बसाने का निर्णय किया—

अति उद्यान सवयान। भये मढ़ धाम भयानक ॥
दिप्ट देखि सारंग। देव चिंते तव वानिक ॥
ताकै कुल उपनीय। तर्पनि हम को कुव पोयो।
तात पुकारे नीर। भरे नैनन्ह घन रोयो ॥
दिन तीन रहत हुअ कोट मधि। असुर नयन दिप्यो नहिय।
तय सुचित भए सारंगदे। पुरी वसाओ इह कहिय ॥ छं० ५१५।[4]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, छं०३५३, स० १।
२. वही, छं० ५१२, स० १।
३. वही, छं० ५१४, स० १।
४. वही, छं० ५१५, स० १।

इधर सारंगदेव ने नगरी को पुनः बसाने का संकल्प किया, उधर एकादशी के दिन प्रातःकाल ही दानव ढुंढा (वीसलदेव) ने नगरी में प्रवेश किया। राजा सारंगदेव की समस्त सेना दानव को मारने के लिये अग्रसर हुई। इधर योद्धागण तलवार का प्रहार कर रहे थे, उधर वह दानव उन्हें अपने मुँह द्वारा समाप्त कर रहा था। जिस प्रकार से कोई बन्दर वाटिका को उजाड़ कर देता है, उसी प्रकार देखते ही देखते दानव ढुंढा ने सेना को तहस-नहस कर दिया। अन्त में पिता-पुत्र का विकट संग्राम हुआ जिसमें सारंगदेव पराजय को प्राप्त हुआ—

एक दसमी दिवस। प्रात दानव पुर आयो।
सकल सेन लै सस्त्र। उट्ठि लरिवें को धायो॥
वे वाहे तरवारि। इहे मुष पर्फारि सु फट्टै।
ज्यों वेली द्रुम सघम। देषि मरकट फल चट्टै॥
किय पिता पुत्त जुध सम असम। गिर सों जनु सारंग गियो।
मन जाति असुर नर धुसि रहे। सब ढुंढा ढुंढत पियो॥ छं० ५१६।[1]

रा० ए० सो० लन्दन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन का कुछ अंशों में समर्थन करती है।[2] किन्तु धारणोज की प्रति तथा साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो में इनका नामोल्लेख तक नहीं हुआ है। बीकानेर की एकलक्ष अक्षर वाली प्रति में सारंगदेव को वीसल का पुत्र होना लिखा है। इसी प्रति के आधार पर डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखा है कि सारंग उसके (विग्रहराज अथवा वीसलदेव) पुत्र पृथ्वीराज का नाम हो सकता है।[3] शिलालेख एवं संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ जिसमें चौहानों की वंशावली दी हुई है इनके विषय में मौन हैं।[4]

पंडित सदाशिव दीक्षित ने एक स्थान पर लिखा है कि—"इनके तीन नाम हैं—अजय देव, आल्हणदेव और वल्हण। अजयदेव, अजयराज और अजय की एकनामता उतनी ही सुगम है जितनी आल्हणदेव तथा आल्लणराज की एक रूपता। अजेय तथा सारंदेव एक ही व्यक्ति हैं—इसका प्रतिपादन रासो के आधार पर अति सुगमता से स्पष्टतया किया जा सकता है। सुर्जन चरित में इसका नाम वल्हण है।"[5] पता नहीं पंडित जी ने अजेय तथा सारंगदेव

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५१६, स० १।
२. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० ११।
३. पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, पृ० ८, राजस्थानी, वर्ष ३, भाग ३, जनवरी १९४०, कलकत्ता।
४. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
५. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० १२३।

को एक ही व्यक्ति कैसे मान लिया है। पंडित जी का मत अधिक स्पष्ट न होने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकता।

सम्भव है डॉ० दशरथ शर्मा के कथनानुसार सारंगदेव, वीसलदेव अथवा विग्रहराज के पुत्र पृथ्वीराज का नाम रहा हो। सम्भव है मूल रासो में इस प्रकार की गलती न हो। जब तक रासो का वैज्ञानिक रूप से सम्पादन कर कोई संस्करण सामने नहीं आता तब तक सारंगदेव सन्देह का ही विषय बने रहेंगे। पृथ्वीराज रासो के सारंगदेव पर अब भी प्रश्नवाचक चिन्ह लगा हुआ है।

सेनराय अथवा सेनराज—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वंश परम्परा में २१वीं पीढ़ी में राजा मोहसिंह चौहान के उपरान्त उनका पुत्र सेनराय अथवा सेनराज उनका उत्तराधिकारी होकर गद्दी पर बैठा।[1] कवि ने इनका विस्तृत विवरण ग्रन्थ में प्रस्तुत नहीं किया है। रा० ए० सो० लन्दन की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[2] धारणोज एवं साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो की प्रतियाँ इनके विषय में मौन हैं। शिलालेख एवं संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार भी सेनराय अथवा सेनराज नाम का शासक चौहान वंश में नहीं हुआ।[3] किन्तु पंडित सदाशिव 'चन्दन' नामक शासक में सेनराय का आभास पाकर इस प्रकार लिखते है—"इनके नाम प्रशस्ति और शिलालेखों में 'चन्दन' पृथ्वीराज विजय में नन्दनराज हम्मीर महाकाव्य में नन्दन तथा रासो में 'सेनराज' लिखे गये हैं। प्रबन्धकोष तथा सुर्जन चरित में उसके अनुल्लेख का कारण अवगत नहीं।"[4] पता नहीं पंडित जी यह सब अटकल किस प्रकार लगा लेते हैं। स्पष्ट एवं पुष्ट प्रमाणों के अभाव में पंडित जी का मत ग्राह्य प्रतीत नहीं होता है। चौहानों के विषय में कोई प्रामाणिक ग्रन्थ न होने के कारण ही विद्वानों को ऐसी निराधार कल्पना करने का अवसर मिल गया है। सेनराज के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से लिखना कठिन है।

सोमेश्वर—रासो के अनुसार अजमेरपति आनन्दमेव का पुत्र सोमेश्वर उनके उपरान्त अजमेर की राजगद्दी पर बैठा।[5] सोमेश्वर की वीरता एवं पराक्रम का वर्णन कवि चन्द ने इस प्रकार किया है—

जिह सोमेसर सूर। सूर जित्त पुरसानी।
जिहि सोमेसर सूर। चढिवि गुज्जर घर मानी॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २८८, स० १।
२. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
३. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
४. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११५।
५. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६१३, स० १।

जिहि सोमेसर सूर। लियो नाहर परिहारिय।
फल उप्पम कवि चन्द। चन्द राहा जिम मारिय॥
वर वीर धीर धारह धनी। संभरि धरिन भंजयो।
इक दौरि गौर राजौर ग्रह। पां वद गुज्जर गंजयो॥ छं० ६१६।[1]

एक बार दिल्लीपति अनंगपाल पर कन्नौज के राजा विजयपाल ने आक्रमण किया।[2] राजा अनंगपाल ने भी आई हुई विपत्ति का सामना करने के लिये जमुना नदी के ऊपर मुकाम किया।[3] जब अजमेरपति ने राजा अनंगपाल पर आक्रमण की बात सुनी तो वह तुरन्त ही एक विशाल सेना लेकर उनकी सहायतार्थ दिल्ली की ओर चल पड़ा--

मन्नेव सूर नर मंत बाम। घुम्मेर नद्द नीसान ताम।
चढ़ि चल्या सेन सजि चहुवान। उप्पटे जानि सत सिपुपान॥ छं० ६२१।
आगे सु सोम दिल्ली सहाय। अग्गेव विप्प हर कंठ लाय।
अग्गेव मनी लम्मी फुनिंद। अग्गेव सरद निसि उग्गि चंद॥ छं० ६२२।[4]

राजा अनंगपाल ने राजा सोमेश्वर की सहायता से विजयपाल से घोर संग्राम किया। राजा सोमेश्वर ने इस संग्राम में अपने अपार पराक्रम एवं शौर्य का परिचय दिया तथा विजयपाल कमधज्ज को युद्ध में परास्त कर दिया। विजयपाल कमधज्ज को परास्त करके राजा सोमेश्वर अजमेर की ओर प्रत्यावृत्ति हुये।

जित्ति भत्ति नारयूप नो। गो फिरि ग्रह कमधज्ज॥
उप्पारे अजमेर पहुं। टोला पंच सरज्ज॥ छं० ६६९।[5]

राजा अनंगपाल ने सोमेश्वर की वीरता से प्रसन्न होकर अपनी एक पुत्री कमला का विवाह उनके साथ बड़े धूमधाम से कर दिया।[6] कालान्तर में इसी रानी के गर्भ से हिन्दुओं के अन्तिम शासक दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान ने जन्म ग्रहण किया--

सोमेसर तोंअर घरनि, अनंगपाल पुत्रीय।
हिन सु पिथ्य गर्भ धरिय, दानव कुल छत्रीय॥ छं० ६८५।[7]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नगरी प्रचारिणी सभा, छं० ६१६, स० १।
२. वही, छं० ६१७, स० १।
३. वही, छं० ६१८, स० १।
४. वही, छं० ६२१-६२२, स० १।
५. वही, छं० ६६९, स० १।
६. वही, छं० ६८१-६८२, स० १।
७. वही, छं० ६८५, स० १।

पुत्र जन्म के अवसर में राजा सोमेश्वर ने नाना प्रकार के उत्सव मनाये तथा अनेक प्रकार के दान किये—

सुनि सोमेस वधाइ दिय, हैं गै चीर गुराव ।
अति उछाह अनन्द नरि, नरप मुख चढ़िढय आव ॥ छं० ६९१ ।[1]

सोमेश्वर शिव उपासक थे । वह प्रातः नित्य सोने का तुलादान दिया करते थे ।[2] मण्डोवर का नरेश नाहरराय राजा अनंगपाल के अधीन था । एक बार दिल्ली आने पर, वहाँ पृथ्वीराज को देखकर इन्होंने अपनी कन्या का विवाह करने का वचन दिया था । पृथ्वीराज की ११ वर्ष की आयु होने पर अजमेरपति सोमेश्वर ने नाहरराय के पास दूत भेजकर अपने पुत्र का विवाह करने का सन्देश भेजा किन्तु नाहरराय ने अपना वचन तोड़कर विवाह करने से इन्कार कर दिया तथा पत्र द्वारा सूचित कर दिया कि तुम्हारा कुल हमारे अनुकूल न होने के कारण ही यह सम्बन्ध स्वीकार नहीं ।[3] सोमेश्वर इस अपमान को सहन न कर सके । दोनों दलों में संग्राम असम्भावी हो गया । युद्ध में महाराज सोमेश्वर की विजय हुई । सेना द्वारा लूट का धन सोमेश्वर ने समस्त सैनिकों को बाँट दिया ।[4]

सोमेश्वर ने अपनी राज्य सीमा की अभिवृद्धि की कामना करते हुये एक बार मेवातपति मुंगल (मुद्गल) को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि या तो तुम हमारी आधीनता स्वीकार कर, हमें कर दिया करो अथवा देश छोड़कर समुद्र पार चले जाओ ।[5] राजा मुंगल ने भी वीरोचित उत्तर देकर राजा सोमेश्वर की चुनौती स्वीकार कर ली । अतः दोनों दलों में युद्ध होना आवश्यक हो गया । एक दिन सोमेश्वर ने अपने समस्त सामन्तों को एकत्र कर शुभ मुहूर्त देखकर मेवातपति मुंगल पर आक्रमण कर दिया ।[6] जिसमें सोमेश्वर की ही विजय हुयी ।

एक बार महाराज पृथ्वीराज चौहान के चाचा कन्ह ने भोलाराय भीमदेव के चचेरे भाइयों को मार डाला ।[7] इस कारण भोला भीमदेव चालुक्य के हृदय में सोमेश्वर सदैव चुभता रहता था तथा दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान अगारे के समान जलन पैदा करता था । भीमदेव चालुक्य ने अपने मन्त्रियों को बुलाया तथा एक विशाल चतुरंगिणी सेना तैयार की । उसने अपने मन्त्रियों से कहा "अब मैं शत्रुओं को कुचल डालूंगा तथा समस्त पृथ्वी पर एकछत्र

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६९१, स० १ ।
२. वही, छं० १-४, स० ७ ।
३. वही, छं० २८-२९, स० ७ ।
४. वही, छं० १, स० ८ ।
५. वही छं० ३, स० ८ ।
६. वही, छं० ४, स० ८ ।
७. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, कन्ह पट्टी समय ।

राज्य करूँगा।" इसी भावना से प्रेरित होकर भोलाराय भीमदेव चालुक्य ने सोमेश्वर की राज्यसीमा पर आक्रमण कर दिया। ज्योंही सोमेश्वर की सीमा में चालुक्यराज की सेना ने प्रवेश किया त्योंही वहाँ के नगर निवासी घर-बार छोड़कर भाग निकले तथा सेना में लूट मचा दी। अपनी प्रजा की पुकार सुनकर सोमेश्वर भी घोड़े पर चढ़कर उसी प्रकार तैयार हो गया जिस प्रकार सती अपने पति के साथ जाने को तैयार हो जाती है। दोनों दलों में घोर संग्राम हुआ। राजा सोमेश्वर ने स्वयं युद्ध में भाग लिया तथा मारकाट मचा दी।[1] अन्तिम समय में महाराज सोमेश्वर युद्धस्थल में मरना निश्चय कर, महाभारत के योद्धाओं के समान भिड़ गया, जिसमें अनेक हाथी-घोड़े तथा कितने ही सैनिक धराशायी हुये। वह रक्त-रंजित होकर समरभूमि में शस्त्र चलाने लगा। उसने हुङ्कार कर तथा घूमकर शत्रु समूह को काट दिया। योद्धाओं के प्राण पखेरू उड़-उड़कर सूर्यमण्डल में मिलने लगे। वीर-धाव खण्ड-खण्ड हो रुधिर में सन गये। कितने ही रुण्ड युद्धस्थल में खड़े हुए प्रसन्न दिखाई पड़े—

हय गय नर नर परिय, निरयि भारत्थ समानं।
सोमेस्वर चितयौ, मरण निर्च्चे रण थानं॥
रत्त रंग सह अंग, जंग सारह उम्मारं।
हक्कि मार धकि सार, सु मि मुकि मुंड सुसारं॥
फल हंत अंक अनभूत हुव, उटहि हंस हसहि मिलहि।
तन तुट्टि रुधिर पल हड्ड सनि, किंयक कमंध उठि रण खिलहि॥ छं० ३७।[2]

राजा सोमेश्वर ने अपने ही समान श्रेष्ठ एक सहस्त्र घुड़ सवारों को युद्ध-क्षेत्र में तत्पर किया, उनमें से पचास वीर महाभारत के योद्धाओं के समान थे। उनमें से ३९ योद्धा वीरगति को प्राप्त हो गये। राजा सोमेश्वर युद्ध क्षेत्र में घिर गये। गिद्ध-सिद्ध वैतालादि ने उनकी प्रेमपूर्वक मन में आराधना की। उसने अद्भुत भक्ति से मुक्ति का साधन किया। उसका प्राण सूर्य में जा मिला। राजा सोमेश्वर ने चन्द मण्डल में जाकर गति प्राप्त की। उसका पंच भौतिक शरीर पंचतत्व में मिल गया—

बाज नषिव सोमेस, सहस घर इक्क प्रमानं।
तिन मज्झह पंचास, वीर भारत नर जानं॥
तीन तीस लट्ठ परें, परयें सोमेपुर हेतं।
गिद्ध सिद्ध बयताल, इनहि पूजयौ मन हेतं॥
सद्धीस मुक्ति अद्भुत जुगति, हंसु हंकि हंसहि मिलयऊ।
सोमेस करी सोमेस गति, पंचतत्त पंचह मिलयऊ॥ छं० ३८।[3]

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, सोमवध समय।
२. वही, छं० ३७, स० ३५।
३. वही, छं० ३८, स० ३५।

रासो के अनुसार सोमेश्वर, चालुक्य राज भोलाराय भीमदेव के हाथों पंचतत्व को प्राप्त हुआ।

रासो के अतिरिक्त भी अन्य समस्त ग्रन्थ इस बात की घोषणा करते हैं कि सोमेश्वर पृथ्वीराज (तृतीय) का पिता था। इतिहासकार भी इस विषय में एक मत हैं। सम्भव है रासो की सोमेश्वर सम्बन्धी समस्त घटनाएं इतिहास से मेल न खाती हों, फिर भी सोमेश्वर को ऐतिहासिक व्यक्ति मानने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा सोमेश्वर तथा मेवातपति मुंगल के युद्ध को अनैतिहासिक मानते हुये लिखते हैं कि—"रासो में लिखा है कि सोमेश्वर ने मेवात के मुंगल राजा (मुद्गल राय) से अन्य राजाओं के समान कर मांगा। उसके इन्कार करने पर सोमेश्वर ने चढ़ाई कर दी। पृथ्वीराज भी कुछ समय बाद अजमेर से चला और रातोंरात मुंगल सेना पर उसने आक्रमण कर दिया। युद्ध में मुंगल पराजित हुये। मुंगल राजा का ज्येष्ठ पुत्र वाजिद खां मारा गया और वह स्वयं कैद हुआ।

यह कथा भी कल्पित है। सोमेश्वर के समय में मेवात प्रदेश अजमेर के राज्य के अन्तर्गत था। वहां कोई स्वतन्त्र राजा नहीं था और मुगलों का तो क्या, अन्य मुसलमानों तक का इस प्रदेश पर अधिकार नहीं था। सोमेश्वर की जीवित अवस्था में पृथ्वीराज इतना बड़ा न था कि युद्ध में जा सकता।"[1]

ओझा जी के उपर्युक्त मत के विरुद्ध कविराव मोहनसिंह पृथ्वीराज तथा मुंगल नरेश के युद्ध को ऐतिहासिक मानते हुये लिखते हैं कि "मेवाती मुगल क्षत्रिय था, सोमेश्वर तथा पृथ्वीराज के साथ इसके युद्ध होते रहे। बाद में महामन्त्री कैमास के दो बहिनें थी, उनमें से एक मुंगल को तथा दूसरी पृथ्वीराज को ब्याह दी गई। इस प्रकार सम्भव है उस दक्ष मन्त्री कैमास ने आपसी विद्रोह की समाप्ति की।"[2] कविराव मोहनसिंह ने मुंगल तथा कैमास की बहन की विवाह की बात रासो के आधार पर ही की है।[3]

डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा एक स्थान पर सोमेश्वर की मृत्यु के विषय में सन्देह करते हुये लिखते है कि "रासो का कर्ता लिखता है गुजरात के राजा भीम से हाथ से पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर मारा गया। अपने पिता का वैर लेने के लिये पृथ्वीराज ने गुजरात पर चढ़ाई कर भीमदेव को मारा और उसके पुत्र कचराराय को अपनी ओर से गद्दी पर बिठाकर गुजरात के कुछ परगने अपने राज्य मे मिला लिये।

---

१. म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, पृ० ५७, कोशोत्सव स्मारक संग्रह,।

२. पृथ्वीराज रासो, प्रथम भाग, सम्पादकीय पृ० १२, साहित्य संस्थान उदयपुर, सं० २०१२।

३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १०, स० १६।

यह सारी कथा भी असत्य है, क्योंकि न तो सोमेश्वर भीम के हाथ से मारा गया और न भीम पृथ्वीराज के हाथ से। सोमेश्वर के समय के कई शिलालेख मिले हैं, जिनमें से पहला वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदी ३ का बिजोलियाँ का प्रसिद्ध लेख है और अन्तिम वि० सं० १२३४ भाद्र पद सुदी ४ का है। पृथ्वीराज का सबसे पहला लेख वि० सं० १२३६ आषाढ़ वदी १२ का है। वि० सं० १२३६ के प्रारम्भ में सोमेश्वर का देहान्त और पृथ्वीराज की गद्दी नशीनी मानी जा सकती है, जैसा कि प्रबन्धकोष के अन्त की वंशावली से ज्ञात होता है। भीमदेव वि० सं० १२३५ में गद्दी पर बिल्कुल बाल्यावस्था में बैठा और ६३ वर्ष अर्थात् वि० सं० १२६८ तक वह जीवित रहा। इतनी बाल्यावस्था में वह सोमेश्वर को मार नहीं सकता और न पृथ्वीराज ने उसका बदला लेने के लिये उस पर चढ़ाई कर उसे मारा था। गुजरात के ऐतिहासिक सस्कृत ग्रन्थों में भी कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है। राजपूताना म्युजियम में भीमदेव का वि० स० १२६५ का एक शिलालेख विद्यमान है। आबू पर देलवाड़ा गाँव के प्रसिद्ध तेजपाल के जैन मन्दिर की वि० स० १२८७ की प्रशस्ति के लिखने के समय भी भीमदेव विद्यमान था। डॉ० बूलर ने वि० सं० १२९६ मार्ग शीर्ष वदी १४ का भीमदेव का दानपत्र प्रकाशित किया है। इससे निश्चित है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु के अनुमानतः पचास वर्ष पीछे भी विद्यमान था।"[1]

सम्भव है सोमेश्वर से सम्बन्धित कुछ घटनाओं में कल्पना का योग हो, फिर भी यह निर्विवाद सत्य है कि यह ऐतिहासिक पात्र है जिसकी सत्ता में इतिहासवेत्ताओं को भी संदेह नहीं है। डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज विजय महाकाव्य के आधार पर लिखते हैं कि "पृथ्वीराज (द्वितीय) के पीछे मन्त्रियों ने सोमेश्वर को राज्यसिंहासन पर बिठाया, जिसने तब तक सारा समय विदेश में बिताया था और अपने नाना जयसिंह से शिक्षा पाई थी। सोमेश्वर ने चेदि (ज्वालापुर जिला) की राजधानी त्रिपुरा में जाकर चेदिराज की कन्या कर्पूरदेवी से विवाह किया, जिससे उक्त काव्य के चरित्र नायक पृथ्वीराज और हरिराज उत्पन्न हुये। अजमेर की गद्दी पर बैठने के थोड़े ही समय पीछे सोमेश्वर का देहान्त हो गया, और अपने पुत्र पृथ्वीराज की नाबालिगी में अपने मन्त्री कादम्बवास (काइवास) की सहायता से कर्पूर देवी राज-काज चलाने लगी।"[2]

अतः अब सोमेश्वर की ऐतिहासिकता में किसी प्रकार के सन्देह को स्थान नहीं रहता है।

हरिहरराय—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहानों की ३२वीं पीढ़ी में राजा [illegible] चौहान के उपरान्त उनका एक मात्र पुत्र हरिहरराय उनका उत्तराधिकारी हुआ जो मनुष्यों में बुद्धि वाले प्रसिद्ध थे।[3] कवि ने इनका विशेष परिचय नहीं दिया है। रा० ए० सो०

१. डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, पृ० ४५-४६ कोषो-त्सव स्मारक संग्रह।

२. वही, पृ० ४६।

३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २९०, स० १।

लन्दन की रासो की प्रति उपर्युक्त कथन का समर्थन करती है।[1] किन्तु धारणोज की प्रति, बीकानेर की एकलक्ष अक्षर वाली प्रति, साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो की प्रति इनके विषय में कोई उल्लेख प्रस्तुत नहीं करती है। शिलालेख एवं संस्कृत के ग्रन्थ भी उक्त नाम के किसी व्यक्ति की पुष्टि नहीं करते हैं।[2]

पंडित सदाशिव दीक्षित इन्हें काल्पनिक एवं निराधार बताते हैं। उन्होंने लिखा है कि–"अनेक विद्वानों ने इसके अनन्तर रासो में 'हरिहरराय' इस एक और नाम के दर्शन किये हैं, परन्तु रासो के परिशीलन करने पर उनका मत भ्रमात्मक प्रतीत हुये बिना नहीं रह सकता, क्योंकि रासो में लिखा है–

सुअ क्रिस्न राज जस क्रिस्न चित ।
हरिहरइ राइ भट विवुध मंत ।।[3]

प्रमाणों के अभाव में हरिहरराय को ऐतिहासिक अथवा प्रामाणिक मानना अत्यन्त कठिन है।

---

१. रासो की हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, पृ० १०।
२. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, परिशिष्ट भाग।
३. पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, पृ० ११८।

३

हिन्दू पात्र : सान्मत वर्ग

पृथ्वीराज रासो मूलतः भारत वर्ष के अन्तिम हिन्दू शासक महाराज पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) का जीवन चरित्र है। यही कारण है कि कवि ने महाराज पृथ्वीराज चौहान के विस्तृत वर्णन के साथ ही साथ उनके सहयोगी शूर-वीर सामन्तों[1] का भी विस्तृत वर्णन किया है। इतना ही नहीं, कवि ने पृथ्वीराज चौहान के तत्कालीन महान प्रतिद्वन्द्वी गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य, कान्यकुब्जेश्वर जयचंद गाहड़वाल तथा गजनाधिपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का चित्रण भी पृथ्वीराज चौहान की महानता प्रदर्शन करने के लिए ही किया है। 'रासो' युद्ध प्रधान काव्य है तथा इसी कारण उस समय की आदर्श वीरता का इसमें चित्रण किया गया है। पृथ्वीराज चौहान के जीवन चरित्र लिखते समय उनके सहयोगी सामन्तों का वर्णन करना भी आवश्यक हो गया था। यही कारण है कि कवि ने पृथ्वीराज चौहान के सामन्तो का चरित्र-चित्रण जन्म से मृत्यु पर्यन्त नहीं किया है। किन्तु प्रसंगानुसार क्षात्र धर्म तथा स्वामि धर्म पर मर मिटने वाले सामन्तों का रासो के अनुसार परिचय प्राप्त कर लेना अनुचित्त न होगा।

अचलेस चौहान—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार यह पृथ्वीराज चौहान का प्रसिद्ध सामन्त था। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी संग्राम में वीर अल्हनकुमार की मृत्यु के पश्चात् पृथ्वीराज चौहान ने अचलेस चौहान को युद्ध-भूमि में अग्रसर होने का आदेश दिया—

---

१. "राज्य की आय के आधार पर राजा के कई भेद किए गए हैं। जिस राजा के राज्य से प्रति वर्ष प्रजा को पीड़ित किए बिना एक लाख कर्ष (एक प्रकार का सिक्का) संचित होता है, उसे सामन्त कहते हैं।"
डॉ० राजबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ७१-७२, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, प्रथम संस्करण, सं० २०१४ वि०।

तब जंपै प्रथिराज। सुनौ अचलेस संभरिय।
इह सु सूर आचरन। नहीं सामंत संभरिय।।
मैन सूर धरि कध। राह संधित गयौ धन।
इह अचंभ आचरन। देव दानव दैतानन।।
सुनि दानव परहरि पर। अपर जुद्ध संधि पंगुर दलह।
सक ही सामि संकट परै। सकल किति कित्ती चलह।। छं० २३०२।[1]

पृथ्वीराज के वचन सुनकर अचलेस चौहान ने अपना मस्तक नवा कर युद्ध क्षेत्र का मार्ग ग्रहण किया। वीर अचलेस ने अपने पराक्रम तथा रण-कुशलता से अनेक शत्रुओं का सफाया कर दिया तथा स्वयं ने भी अपूर्व संग्राम करते हुए स्वामि धर्म हेतु स्वर्ग लोक की राह ली—

करि विरंज अचलेस। सु छल चहुआन जग्ग गहि।
अरि दल वल सहर्‌यौ। पूरि धर भरित रुधिर दहि।
मच्छति हैवर तिरहि। कच्छ गज कुंभ विराजहि।।
उअर हंत उड़ि चलहि। हंस मुख कमलहि राजहि।
चवसट्ठि सद्द जं जै करहि। छत्रपति परि संचरिय।
बोहिथ्थ वीर वाहर तनै। दिल्लीपति चढि उत्तरिय।। छं० २३१२।
सुनत धाव विहृयौ सघन। ढह्यौ अचल चहुआन।
गयौ मोह कमधज्ज दल। परे पच से थान।। छं० २३१३।[2]

अमरसिंह सेवड़ा—अमरसिंह सेवड़ा, गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य का प्रधान मंत्री था।[3] मंत्री सेवड़ा तन्त्र-मंत्र शास्त्र में अत्यन्त निपुण था। इसने जायसी के पद्मावत[4] के राघव-चेतन की भाँति अपनी सिद्धि के बल पर अमावस के दिन चन्द्रमा दिखा दिया था तथा दण्डस्वरूप योग्य ब्राह्मणों के सिर मुड़वा दिए थे, इतना ही नहीं यह अत्यन्त पराक्रमी भी था, इसने दक्षिण तथा पश्चिम के अनेक देशों को विजित किया था।

जिन अमरसिंह सेवरा, चन्द मावस उग्गाइय।
जिन अमरसिंह सेवरा, विप्र सब सीस मुडाइय।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २३०२, स० ६१।
२. वही, छं० २३१२-१३, स० ६१।
३ वही, छं० ८, स० १२।
४ राघव पूजि जाखिनी, दुइज देखाएसि सांझ।
वेद पंथ नहि चलहिं, ते भूलहिं बन मांझ।। ३८, २।। जायसी, पद्मावत।

कहर कूर पाषंड, चंट चारन मिलि दसं।
दुज दो पंजर हेम, देहि उत्तर धन हिसं।
नर नाग देव छंदा चलै, आकर्षं आवंत घर।
विहरम्न देस दष्षिन दिसा, सब जित्तो पच्छिम मुधर ॥ छं० १।

तथा—

पट उभय कोस उद्योत हुअ। चिप्रतीस मृद्दिय सयन्न ॥
चित्त मंत ध्रंम आध्रंम घर। नुवर मंत्र किज्जै सकन्न ॥ छं० २१४।[1]

गुर्जरेश्वर भोलाराय भीमदेव चालुक्य (द्वितीय) का सन्देश लाहूराति मकदराज के पास ले जाने वाला प्रधान सम्भवतः यही था, स्पष्ट नाम के अभाव में निश्चित रूप से कहना तो कठिन है, किन्तु इच्छनी का विवाह भोलाराय भीमदेव के साथ कराने में यह पुरोहित भी असफल रहा।

जैन मंत्री अमरसिंह, मोहन, वशीकरण, तंत्र-मंत्र आदि में अत्यन्त निपुण था। महाराज पृथ्वीराज (तृतीय) ने अपने कुशल मन्त्री कैमास को नागौर में चालुक्य भोलाभीम से होने वाले युद्ध का भार सौंपा। मंत्री ने राजा भीमदेव (द्वितीय) को मंत्रणा दी कि एक ही साथ पृथ्वीराज तथा गोरी दोनों पर आक्रमण करना चाहिए। उधर नागौर में कैमास अपनी मोर्चा बंदी कर रहा था, इधर अमरसिंह उसे मंत्र बल से बंदी बनाने के लिए नाना-प्रकार के तांत्रिक अनुष्ठान में दत्तचित्त लगा हुआ था। मंत्री कैमास नागौर से बढ़कर हो कर भीमदेव चालुक्य की सेना पर आक्रमण करना ही चाहता था कि इतने में ही अमरसिंह सेवरा का भेजा हुआ भाट बड़े साजबाज से नागौर आ पहुंचा। उसने कैमास से मिल कर अमरसिंह की दी हुई एक बहुमूल्य मोतियों की माला नजर की तथा सन्धिपत्र प्रस्तुत किया। उस पत्र में शिष्टाचार पूर्ण शब्द लिखे थे, उसके बाद बहुत कुछ बड़ाई लिखकर एक सुन्दरी स्त्री का चित्र लिखा हुआ था और लिखा था कि तुम इस स्त्री को लेकर आनन्द करो।[2] अमरसिंह के मंत्र बल से वशीभूत होकर वह चित्र पर ऐसा मोहित हो गया कि उस समय से कैमास, जैन मंत्री की इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य करने में समर्थ न रह गया। कैमास, अमरसिंह द्वारा भेजी हुई अत्यन्त रूपवती लाले खत्राणी में ऐसा लुब्ध हुआ कि अपने स्वामि-धर्म को भी भूल बैठा। पृथ्वीराज के नाम को भी भूल गया तथा भीमदेव की आज्ञा का निपटवशवर्ती बन गया, तथा समस्त नागौर प्रदेश पर भोलाराय भीमदेव (द्वितीय) की दुहाई फिर गई।[3]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १ तथा २१४, स० १२।
२. वही, छं० २३६-३७, स० १२।
३. वही, छं० २६६-६७, स० १२।

कवि चन्द वरदाई ने उपर्युक्त घटना की सूचना स्वप्न में पाकर नागौर की ओर प्रस्थान किया तथा वहाँ पहुँच कर प्रत्यक्ष भी देखा।[1] चन्द ने भैरों तथा देवी का अनुष्ठान कर[2] जैन की माया को पराजित करने का वरदान माँगा—

आई तू उमया अखंड तनया दाता दुरी नासिनी।
संतुष्टा सुर नाग किनर गना दैत्यानि सन्नासिनी॥
यस्या चारु चंतति चारु कमल संतुष्टयं साधुनं।
जैन यद्धंस वर्द्धयाइ चरन जं जै सुजिव्हासन॥ छं० २८२।[3]

यह समाचार पाकर अमरसिंह सेवरा ने चन्द का मंत्र नष्ट करने के लिए मंत्र प्रयोग किया तथा घट स्थापित किया।[4] अमरसिंह के मंत्र बल के प्रभाव से एक क्षण के लिए चन्द भी भ्रम में पड़ गया किन्तु शीघ्र ही सम्भल कर अनुष्ठान करने लगा तथा योगिनियों को जागृत करने का मंत्र प्रारम्भ किया। अमरसिंह ने अनेकानेक पाखण्ड किए किन्तु कवि चन्द ने अपने मंत्र बल से उसे परास्त कर दिया तथा मंत्री कैंमास का उद्धार किया—

घर पाषंड न पुज्जयौ, किये अमर घन तंत।
को जित्ते कविचन्द सों, दुग्गा सहाइक मंत॥ छं० ३०२।
जो पाषंड बहुत अभ्यासे, चन्द मीन विष ज्यों ग्रहि ग्रासे।
छिनक एक विद्या गुन सधी, वर पायड मंढि कवि बंधी॥ छं० ३०३।
यद्धा जैन सुजैन लगि, जीत चद चारित्त।
मार्मो नट्ट सुमन्त किय, मरन जियन करि हित्त॥ छं० ३०४।
तुट्टि लये पाषंड सब, छुटि मंत्री कैंमास।
हर हरंत आयास लगि, चन्द न घंडे पास॥ छं० ३०५।[5]

उपर्युक्त विवेचन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि मंत्री अमर सिंह सेवरा जैन मतावलम्बी था। ब्राह्मण धर्मावलम्बी कवि चन्द ने जैनों के सेवरा पंथ पर बड़े ही व्यंगात्मक ढंग से लिखा है—'द्वारिकापुरी में गोमती में स्नान करके जो अपने को शुद्ध नहीं करते, वे पुनः जन्म लेने पर सेवरा होते है, उनके केश लुंचन किए जाते हैं, वह न मुंह धोते हैं, न विवेक पूर्वक अपने वस्त्रों को साफ करते है, अश्रु प्रभाव पर अनेक उपवास करते है, देवताओं के दर्शन नहीं करते, गंगा, गया श्राद्ध आदि कर्म में विश्वास नहीं करते, इस मार्ग पर भ्रमण करने वाले व्यक्ति की न जाने कैसी गति होती होगी—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी छं० २७२-७६, स० १२।
२. वही, छं० २७७-८१, स० १२।
३. वही, छं० २८२, स० १२।
४. वही, छं० २८७-२८८, स० १२।
५. वही, ३०२-३०५, स० १२।

नह्न मेघ नह हुए । जाइ गोमत्ति न न्हायं ।
तजं न ध्रम सेवरा । होई करि फेल लुचायं ।,
मुष पावन हन करै । वस्त्र धोवं न विवेकं ।
आसूं अपं परंत । करत उपवास अनेकं ॥
परसन्न देव मानं नहीं । गंगा गया न श्राद्ध प्रम्न ।
कवि चन्द कहत इन कहा गति । कहि मारग लग्गं सुभ्रम ॥ छं० ४९ ।[1]

द्वारिकापुरी से प्रत्यावर्तित होते हुए कवि चन्द भीमदेव (द्वितीय) चालुक्य की राजधानी पट्टनपुर आया । गुर्जरेश्वर भोलाराय भीमदेव ने चन्द तथा अपने जैन मंत्री अमरसिंह सेंवरा से शास्त्रार्थ कराया, जिसमें कवि चन्द की विजय हुई तथा अमरसिंह सेवरा परास्त हो गया—

तव पुच्छिय भीमंग, तुम वरदान सु दिद्दिय ।
वाद वद्दि देयंग, सुपन पिष्पिय मन सिद्धिय ॥
चंद देव किय सेव, तिन सु अमरा बुल्लाइय ।
थूल रथ्थ आरुढ़, चन्द असमान चलाइय ॥
तरवर सुचंत्त बैठो तिनह, फिरि न वाद कीनों चलिय ।
नट्टी जु सपी उपजी अनल, सुरस पंचि नचो पलिय ॥ छं० ८१ ।

तीता वे जीता चदानं, परि पिष्पिय रष्पिय रंगानं ।
मुष दुल्लै जं जं चहुआनं, नाटिका करि नंचे निसान ॥ छं० ८२ ।

हल हलंत तंबू हल हिलियं, वंदि भ्रत हैं गं पति चलियं ।
चद मंत्र पट्टन चल चलियं, मनो अय ताराइन तुलिय ॥ छं० ८३ ।[2]

अमरसिंह वास्तव में जैन धर्मावलम्बी था । सेवरा शब्द का प्रयोग जैन के लिए किया गया है । दिल्लीपति बादशाह अकबर के शाही फरमान में जैन मुनि हीरविजय सूरि को सेवड़ा कहा गया है—'........इससे योगाभ्यास करने वालों में हीरविजय सूरि सेवड़ा और उनके धर्म के मानने वालों की जिन्होंने हमारे दरबार में हाजिर होने की इज्जत पाई है और जो हमारे दरबार के सच्चे हितेच्छु हैं—योगाभ्यास की सचाई, वृद्धि और ईश्वर की शोध पर नजर रख कर हुक्म हुआ कि उस शहर (उस तरफ) के रहने वालों में से कोई भी उनको हरकत (कष्ट) न पहुंचावे और इनके मंदिरों तथा उपाश्रयों में भी कोई न उतरे...।' (सूरीश्वर और सम्राट अकबर पृ० ३७६, परिशिष्ट (क) फर्मान नं० १

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४९, स० ४२ ।
२. वही, छं० ८१-८३, स० ४२ ।

अनुवाद)।'[1] श्वेताम्बर जैन साधुओं के लिए संस्कृत में 'श्वेतपट' शब्द है। इसी का अपभ्रंश भाषा में सेवड़ा रूप होता है, वही रूप विशेष बिगड़ कर सेवड़ा हुआ है। 'सेवड़ा' शब्द का प्रयोग दो तरह से होता है—जैनों के लिए और जैन साधुओं के लिए। अब भी मुसलमान आदि कई लोग प्रायः जैन साधुओं को सेवड़ा कहते है (विद्या विजय)।'[1]

डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी एक स्थान पर तात्कालिक जैन धर्म पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि—'१२वीं शताब्दी में अर्थात् चंद के समय उत्तरी भारत में राजपूताना और गुजरात में जैनों के अनेक धर्म प्रवर्तक प्रबल केन्द्र स्थापित हो चुके थे तथा जैसा कि गुजरात के इतिहास में देखते है वहाँ जैनाचार्यों का प्राबल्य था, गुर्जर नरेश जैन न होकर भी इन आचार्यों को सब प्रकार से सहायता दिया करते थे तथा अधिकांश जनता जैन धर्म ग्रहण कर चुकी थी। ऐसी परिस्थिति में आए दिन प्राचीन समय के स्थापित ब्राह्मण धर्म के आचार्यों तथा जैनाचार्यों में धार्मिक मुठभेड़ होना स्वाभाविक था। इन वाक् युद्धों में येन-केन प्रकारेण अपने पक्ष को ऊँचा सिद्ध करना, विपक्षी को पराजित करना तथा उसके विफल होने पर दण्ड स्वरूप उसके सिर मुंडन आदि के विधान होने के हम तत्कालीन साहित्य में अनेक प्रमाण पाते हैं।'"[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य के समय में जैन धर्म का बोल बाला था। सम्भव है भीमदेव का मंत्री अमरसिंह 'सेवरा' ही रहा हो। अमर-सिंह सेवरा के विषय में इतिहास सर्वथा मौन है। किन्तु पृथ्वीराज रासो के प्रायः समस्त संस्करण अमरसिंह सेवड़ा का विवरण प्रस्तुत करते हैं। तात्कालिक स्थिति पर दृष्टिपात करते हुए असम्भव नही है यदि कोई अमरसिंह नाम का व्यक्ति रहा हो। अन्य ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में निश्चय पूर्वक मत प्रकट करना अत्यन्त कठिन है।

अल्हणकुमार—अल्हण कुमार पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) के १०६ अथवा १०० प्रसिद्ध सामन्तों में से एक था। इनका विशेष विवरण 'कनवज्ज समय ६१' के अंतर्गत प्राप्त होता है। जब पृथ्वीराज संयोगिता का अपहरण करके ले आये तो संयोगिता युद्ध से भयभीत हो उठी। उसे शंकातुर देख कर वीर अल्हन कुमार ने उसे समझाते हुए कहा—

तब बोलै अल्हन कुमार। सब्ब ब्रह्मांड वीर वर।
जिहि मिलत चर सुभर। होहि तन मत्त धीर सर॥

---

१. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, चन्द बरदाई और उनका काव्य, पृ० ४८, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद—१९५२।

२. वही, पृ० ४८।

३ वही, पृ० ४७।

मिलै सरित सब गंग। होइ गगा सब अगा ॥
भग्गं सब परपंच। मिलै ब्रह्मा ब्रह्म हु मग्गा ॥
ऐसे सुवीर सामंत सो। ढोल बोल बोले बदन ॥
जनै न वत्त घर बंध की। पहुँचावे दिल्ली सुपन ॥ छं० १३०० ।[1]

और भी—

फुनि जंप्यो अल्हन कुमार। सुनि सुन्दरी सुर बल।
वर अगनित अंजुली। पंग सो से समुद दल ॥
सार मेघ वुट्ठतें। धीर टट्टी चित्तोरं ॥
वर दम्पति संयोगि। वंधि दल गीत न जोरं ॥
उप्पारि सस्त्र गो पढनहु। निरप रवि दरसी नेम नल ॥
कमधज्ज इद वुद्दं प्र पुनि। सुमन संच जानं सकल ॥ छं० १३०४।[2]

जयचन्द तथा पृथ्वीराज के मध्य विकट संग्राम छिड़ने पर तथा [illegible] चामुण्डराय की मृत्यु के उपरांत वीर अल्हनकुमार युद्ध क्षेत्र की ओर अग्रसर हुआ। [illegible] कर तथा जाप करके उस अद्भुत पराक्रमी वीर ने अपने हाथ से अपना सिर काट कर पृथ्वीराज के पास उसे छोड़ कर उसका धड़ अपने दायें हाथ में कटार लेकर युद्ध के लिए अग्रसर हुआ तथा पंगदल को अपनी भीषण मार-काट से विचलित कर दिया—

मह नाइ चित चितीस आल। जंप्यो सु मत्र देवी कराल ॥
आश्रम देवि किय निज्ज धाम। कट्टयों सीस निज हथ्थ ताम ॥ छं० २२८६।
मुक्कयो सीस निज अग्ग राज। हुंकार देवि किय निज्ज काज।
धायो सु धरह बिन सीस धार। सग्रह्यो बांह दायं कटार ॥ छं० २२८७।
उच्छयो पग्ग वर दच्छपानि। संमुहो धीर धायो परानि ॥
कौतिग्ग सव्व देषतं सूर। छिप्यो न दिट्ठ कारन करूर ॥ छं० २२८८।
सांक्षी पयट्ठ सा सेन पंग। बज्जे करूर दज्जत जंग ॥
कौतिग्ग सूर देषंत देव। मारहु रुद्र रस हुंत एव ॥ छं० २२८९।
धर परं धार तुट्टं सु धार। हल हले पंग सेना सुमार ॥
सव्वनिय राय धीरया नाथ। गज चढ्यो जुद्ध सब्बहु समाथ ॥ छं० २२९१।[3]

इस प्रकार इस पराक्रमी योद्धा का रुंड अपार पराक्रम दिखा कर [illegible]
वीर अल्हन कुमार पंचतत्व को प्राप्त हुआ—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १३००, स० ६१।
२. वही, छं० १३०४, स० ६१।
३. वही, छं० २२८६-२२९१, स० ६१।

सिर तुट्टं रंध्यो गंयद । कट्यो कट्टारी ।
तहां सुमरिय महमाइ । देवि दीनो हुंकारी ॥
अमिय सद्द आभास । लयौ अच्छरिय उछंगह ॥
तहां सु भइ परतप्यि । अरित अरि कहत कहंगह ॥
अल्हन कुमार विभ्रम सुन्यौ । रन कि विमानह मनु मन्यौ ॥
तिहि दरसि तिलोचन गंगधर । तिम संकर सिर धर धुन्यौ ॥ छं०२२९७ ।[1]

डॉ० माताप्रसाद गुप्त वीर अल्हन कुमार चौहान की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए लिखते है कि—"कहा गया है कि यह पृथ्वीराज का एक सामन्त था, जो शहाबुद्दीन के विरुद्ध उसके और पृथ्वीराज के एक युद्ध में लड़ा था, यह पहले भीम का भट था, यह पृथ्वीराज के साथ कन्नौज गया था और वहां पर युद्ध करता हुआ मारा गया। सं० १२०९ का किराडू का एक शिला लेख है, जिसमें नाडोल के चाहमान महाराजा आल्हण देव को चौलुक्य कुमारपाल का सामन्त कहा गया है। इसके समय के नाडोल के दो ताम्रपत्र सं० १२१८ के भी प्राप्त हुए है। और सं० १२२० का बामनेरा का एक ताम्रपत्र इसके पुत्र कल्हण को प्राप्त हुआ है, जिसमें उसने अपने को महाराज कहा है। इसलिए आल्हण का देहान्त सं० १२१८ तथा १२२० के बीच हो चुका था। यदि 'रासो' का अल्हण यही आल्हण है, तो वह भीम और पृथ्वीराज के राज्याभिषेक (सं०१२३५ और १२३६) के पूर्व ही दिवंगत हो चुका था।

मदनपुर का एक शिला लेख सं० १२३५ का महाराजा पुत्र आल्हण देव का अवश्य प्राप्त है, जो विकौर का शासक था। 'रासो' का अल्हन भी 'कुमार' है इसलिए दोनों एक प्रतीत होते है। किन्तु यह आल्हणदेव भीम का सामन्त किसी भी समय हो सकता था, इसमें संदेह है, क्योंकि विकौर वर्तमान मध्य प्रदेश में है।"[2]

ऐतिहासिक तथ्य कुछ भी हो, किन्तु इतना निर्विवाद सत्य है कि यह निश्चय ही अद्वितीय पराक्रमी योद्धा था। इस युग का इतिहास अन्धकारमय होने के कारण निश्चित मत प्रकट करना सम्भव नहीं है।

आरज्जसिंह—पृथ्वीराज रासो के अनुसार आरज्जसिंह ने 'बड़ी लड़ाई प्रस्ताव समय ६६' के अन्तर्गत महाराज पृथ्वीराज चौहान के पक्ष से शाह शहाबुद्दी गोरी की सेना से युद्ध किया था। इनका विस्तृत विवरण प्रायः प्राप्त नहीं होता है। पराक्रमी आरज्जसिंह ने विकट युद्ध करके शाही सेना में कोहराम मचा दिया, किन्तु दुर्भाग्यवश एक मुसलमान सरदार ने पीछे से

---

1. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं०२२९७, स० ६१।
2. डॉ० माताप्रसाद गुप्त; पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और रचना-तिथि, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ९५४, अक्टूबर १९५९।

आकर ऐसा घातक प्रहार किया जिससे आरज्जमिह् संभल न सका तथा वीर गति को प्राप्त हुआ-

दिप्पौ साह् संमीप सारूप षांन। चषं लग्ग आयौ नयौ [illegible] ॥
तमे आय पुट्ठी हए अस्सि तामं। वर सीस तुट्टयौ गिरयौ भूमि तामं ॥छं० १३१७॥
सनंमुष्प साहाव संमीप मग्गे। विना सीस धायौ धरे [illegible] ॥
हयं षड झांक हय कध तुट्यौ। हयं जुत्त साहाव सार्म्रवि तुट्यौ ॥छं० १३१८॥
गिर्यौ भूमि आरज्ज सारज्ज सूरं। कुसम सुनवे सिर देव सुर ॥छं० १३१९॥[1]

अल्हा-ऊदल—पृथ्वीराज रासो के 'महोवा समय' के अनुसार आल्हा तथा ऊदल दोनों चन्देल राजा परमार्द्दिदेव के सामन्त थे। इसकी पुष्टि [illegible] कवि विरचित 'परमाल रासो' तथा जगनिक विरचित 'आल्हा खंड' से भी हो जाती है। आल्हा खण्ड की भूमिका में आल्हा तथा ऊदल का जीवन वृतान्त वर्णित है, उसी के अनुसार यहां पर क्रमशः प्रस्तुत है—"दस्सराज की स्त्री देवकुंवरि के गर्भ से आल्हा का जन्म हुआ। महाराज परिमाल और रानी मल्हना ने बड़ा उत्सव किया। दस्सराज और वच्छराज दोनों भाइयों ने बड़ा आनन्द मनाया। राजा परिमाल ने ज्योतिषियों को बुलाया, बालक के लक्षण पूछे तब पंडितों ने कहा कि यह बालक सिंह लग्न में उत्पन्न हुआ, सब राजाओं पर सिंह समान गरजेगा, इसका नाम आल्हा जगत में प्रसिद्ध होगा। इसका नाम युगों तक प्रसिद्ध होगा और इसके नाम के साथ हजारों राजाओं का नाम वीरता के साथ बखाना जायगा, यह सुनकर राजा परमाल बहुत प्रसन्न हुए और ज्योतिषियों को अनेक रत्न देके विदा किया। आल्हा जब मांडो से अपने बाप का बदला लेकर महोवे आए तब वहां से पंच सब्दा हाथी, घोड़ा पपीहा लाये तो भी आल्हा की सवारी में हाथी और पपीहा घोड़ा भी रहा। आल्हा का विवाह नैनागढ़ के राजा नैपाली की कन्या सुनमा (सुलक्षणा) से हुआ था। सुनमा का दूसरा नाम मछला था। आल्हा सब युद्धों में विजय पाते रहे कहीं हार न हुई, सेना के नष्ट होने पर युद्ध में महाक्रोध करके आल्हा ने भगवती की दी हुई खड्ग को म्यान से निकाला, उस खड्ग के उठाने से जहां तक उसकी आभा पड़ी वहां तक के सब वीर सिर हीन हो गये। केवल पृथ्वीराज और चन्द कवि वृक्ष की ओट में शेष रहे, उसी समय में श्री गोरखनाथ जी आ गये और आल्हा का हाथ पकड़ लिया फिर बोले कि ऐसा मत करो। इस खड्ग को बन्द करो। इस प्रकार गोरखनाथ जी ने पृथ्वीराज के पास जाकर बहुत समझाय-बुझाय दिल्ली को भेज दिया और आल्हा को साथ लिए तप करने के अर्थ वन को चले गये। आल्हा ने देवी जी की बहुत उपासना करके अमरत्व वरदान पाया था। आल्हा युधिष्ठिर जी के अवतार हैं जो पाण्डवों में सबसे बड़े और प्रतापी तथा सत्यवादी थे"।[2]

१, पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १३१७-१३१९, स० ६६।
२. खेमराज श्री कृष्ण दास, आल्हा खण्ड, पृ० ५८-५९. श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुम्बई।

आल्हा का जीवन वृत्त संक्षेप में 'आल्हा खण्ड' के आधार पर दिया गया है। ऊदल का जीवन वृत्त भी आल्हा खण्ड के आधार पर इस प्रकार है—

"दस्सराज की रानी देवकुंवरि के गर्भ से भीमसेन जी ने आकर जन्म लिया। राजा परिमाल ने पुत्र जन्म सुन कर आनन्द माना। परन्तु देवकुंवर ने अपने पति के शोक में उस पुत्र का होना अच्छा नहीं समझा, अपनी बांदी को तुरन्त दे दिया और कहा कि इस पुत्र को ले जाकर कहीं फेंक दे। विधवा होने पर मेरे यह पुत्र हुआ, इस कारण मैं इस पुत्र को नहीं चाहती। बांदी ने बहुत कुछ कहा—सुना परन्तु देवकुंवर ने यही कहा कि इस पुत्र को मेरे सामने से ले जा। तब बांदी ने उस पुत्र को ले जाकर मल्हना को दिया और सब हाल कहा, मल्हना ने उस पुत्र को ले लिया और पालन करने लगी। राजा परिमाल ने ज्योतिषियों को बुलाकर उस बालक के लक्षण पूछे तब पंडितों ने कहा कि यह पुत्र बड़ा बलवान होगा, रण-क्षेत्र में किसी से नहीं डरेगा। इसका नाम ऊदल प्रसिद्ध होगा। यह अपने आल्हा भाई के नाम के साथ प्रसिद्ध होगा, इसके नाम को जगत में लोग बड़ी वीरता के साथ लेंगे। और इसका यश गावेंगे। यह सुनकर परिमाल बहुत प्रसन्न हुए, मल्हना रानी ने अपने पुत्र ब्रह्मा के साथ-साथ ऊदल की भी पालना की, एक सिंहिनी नाम वाली महिषी थी उसका दूध पिला कर ऊदल को पाला, जब ऊदल बारह वर्ष के हुए तब अस्त्र धारण कर वन में शिकार खेलने को जाने लगे और बाललीला करके सबको सुख देने लगे। एक दिन देवी की पूजा करते-करते अपना सिर काट कर देवी जी को चढ़ाने की इच्छा से खांडा लिया उस समय देवी जी की आभा बोली हे पुत्र ! ऐसा मत करो, हम तुझसे प्रसन्न है, तू संसार में महाबली प्रसिद्ध होगा और रण में जा कर तू किसी से नहीं डरेगा। तेरी मृत्यु ब्राह्मण के हाथ से होगी यह सुन ऊदल प्रसन्न हुए ब्राह्मण के हाथ से अपनी मृत्यु जान कर सन्तोष किया।

ऊदनस्य कृतं कर्म क एवं मानवेषु च ॥
रणे कुर्याद्द्वितीयो यः शूरसामन्तघातिनम् ॥ १७ ॥

अर्थात शूर सामन्तों के मारने वाले ऊदल के लिए कर्मों का कौन ऐसा दूसरा मनुष्य है जो कर सके।" [1]

'रासो' के अनुसार वीर आल्हा तथा ऊदल दोनों ही महोबापति परमाल के सामन्त थे। माहिल की ईर्ष्यापूर्ण चुगलियों के परिणाम स्वरूप स्वामिभक्त होने पर भी चन्देल राज ने इन्हें महोबा से निर्वासित कर दिया था। अन्यायपूर्ण इस अपमान से क्षुब्ध हो कर उन्होंने कन्नौजपति राजा जयचन्द का आश्रय ग्रहण किया, जहाँ उन्हें पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ—

आल्हा गयो कनवज्ज छाड़ि परिमाल, वास वइ।
नृपति की जागीर वाध उज्जार जारि घर॥

---

१. खेमराज श्री कृष्ण दास, आल्हा खंड, पृ० ६८-६९, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई।

करि आदर जै चन्द दियव, यह देस सुमान्हिय।
घोरे पांच मंगाय, दोय हथ्थियव हित सान्हिय॥
मोतिन माल उत्तंग अति, हीरा पहुंची मढान्हिय।
दस-राज सुतन अरप्यो अधिक मिलि मांद मंगल मन्हिय ॥ छं० १४७।[1]

आल्हा तथा ऊदल दोनों पराक्रमी सहोदर पंगराज जयचन्द के आश्रय में रहने लगे। इसी बीच दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज ने महोबा पर प्रबल आक्रमण किया। जगनिक विरचित प्रसिद्ध 'आल्हा खण्ड' तथा 'रासो' के 'महोबा समय' दोनों में महोबा पर पृथ्वीराज द्वारा आक्रमण करने के भिन्न-भिन्न कारण दिए हुए हैं। महोबा खण्ड के अनुसार युद्ध का कारण इस प्रकार है—'समुद्रशिखर गढ़ की सुन्दरी पद्मावती का अपहरण कर प्रत्यावर्तित होते समय चौहान पृथ्वीराय को शाहबुद्दीन गोरी ने आ घेरा। घोर संग्राम के पश्चात् पृथ्वीराज ने उसे बन्दी बना लिया तथा आठ सहस्र घोड़े दण्ड स्वरूप लेकर उसे पुनः मुक्त कर दिया। पृथ्वीराज चौहान सकुशल दिल्ली पहुंच गये, किन्तु सेना के कुछ घायल योद्धा मार्ग भूल कर भटकते हुए महोबा जा पहुँचे। सन्ध्या का समय था, प्रबल वायु के साथ वर्षा हो रही थी, जिससे घायल और भी व्याकुल हो गये। समीप ही राजा परिमाल का उद्यान था, उसमें घायल योद्धा अपनी रक्षा के निमित्त जाने लगे, बाग के रक्षक ने रोका। इस पर एक घायल योद्धा ने उसका सिर काट डाला। माली की स्त्री ने जाकर मल्हना रानी से कहा, रानी ने राजा को सुनाया, राजा ने कुछ सेना भेजकर घायलों को निकालने का आदेश दिया किन्तु घायल योद्धाओं ने लड़कर उस सेना के समस्त दुर्दनों को मार गिराया। तब राजा परमाल ने क्रोधित होकर अपने स्वामि भक्त सामन्त ऊदल को बुला कर घायल वीरों को बन्दी बना कर मार डालने का आदेश दिया। ऊदल ने आहत सैनिकों पर प्रहार करने एवं बन्दी बनाने का प्रतिवाद करते हुए निवेदन किया—

कही तब उद्दिल बैन प्रसिद्ध सुनो नृप ए रजपूत सबद्द।
नहीं ब्रढ़ राजन को भ्रम ताक, करौ इनकी अब भूल सु माफ ॥छं० ३४।[2]

ऊदल का उत्तर सुनकर माहिल ने दस्सराज के पुत्रों के विरुद्ध राजा परिमाल को यह कह कर भड़काया कि ऊदल कायर तथा युद्ध भीरु है, इस कारण पृथ्वीराज के घायल वीरों को मारना नहीं चाहता। कान के कच्चे राजा परमाल ने क्रोधावेश में ऊदल को अपने आदेश को शीघ्र ही कार्यरूप में परिणित करने का, पुनः आदेश दिया। आज्ञाकारी एवं विवेकी ऊदल ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए एक बार पुनः आहत सैनिकों के जीवन दान के लिए अनुनय की—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४७, स० ६९।
२. वही, छं० ३४, स० ६९।

तब उद्दिल उच्चरिग सुनहु परिमाल अरज इक।
घाइल कह् अवद्ध, कहिय परमाल स्यास बक ॥
होइ योध चहुआन, रोस सामन्त समारिय।
अतुल तेज प्रथिराज, करों विनती हितकारिय।
चन्देल राइ मानहु अरज अरय सरै सोइ कीजिये।
रजपूत दूत हनिये नहीं, जीव दान नृप दीजिये ॥ छं० ३६ ।[1]

सुसम्मति की किसी प्रकार सुनवाई न होने पर, विवश हो वीर ऊदल ने पृथ्वीराज चौहान के आहत सैनिकों को युद्ध में परास्त कर, मार डाला । इस दुःखद घटना के उपरान्त ही माहिल की दुष्टता एवं चुगली की आदत के कारण आल्हा-ऊदल को महोबा छोड़ने पर विवश होना पड़ा। यही युद्ध परिमाल के विनाश का कारण भी सिद्ध हुआ।

'महोबा समय' के अनुसार परिमाल तथा पृथ्वीराज की शत्रुता का मूल कारण आहत सैनिकों का वध है। किन्तु 'आल्हा खण्ड' के अनुसार शत्रुता का कारण आल्हा के घोड़ों तथा हाथियों का पृथ्वीराज चौहान द्वारा मांगा जाना तथा राजा परिमाल के अत्याधिक अनुरोध करने पर भी आल्हा का स्वाभिमान रक्षा हेतु अपने प्रसिद्ध घोड़ों एवं हाथियों को पृथ्वीराज को न देना ही महोबा पर आक्रमण का मूल कारण है।

कारण कुछ भी रहा हो, पृथ्वीराज चौहान द्वारा महोबा पर आक्रमण की पुष्टि दोनों ग्रन्थ करते है। आहतों के वध की सूचना प्राप्त होने पर दिल्लीपति चौहान ने महोबा को जा घेरा। पृथ्वीराज चौहान का आक्रमण होने पर परमाल को महोवा बचाने की चिन्ता हुई। किन्तु आल्हा तथा ऊदल जैसे पराक्रमी एवं स्वामिभक्त सामन्तों की अनुपस्थिति और भी गहन चिन्ता का विषय बन गयी। गहन चिन्ता की स्थिति में परिमाल की रानी मल्हनादे ने आल्हा तथा ऊदल को कन्नौज से पुनः बुलाने की अमूल्य सम्मति दी। साथ ही दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज को दो मास तक युद्ध स्थगित करने के लिए भी अनुनय का परामर्श दिया। रानी मल्हनादे के परामर्शानुसार राजा परिमाल ने कन्नौजपति राजा जयचन्द गाहड़वाल को आल्हा-ऊदल भेजने के लिए प्रार्थना पत्र लिख भेजा—

राना जगनक कनवज पठ्यो जहां बनाफर रूठ सु बठ्यो।
आल्हा आए जुमा विचारो जो पीयल क्षत्री ध्रम छारो ॥छं० १४२ ।[2]

शरणागत वत्सल दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान ने महोबापति राजा परिमाल की अनुनय को मान लिया तथा युद्ध को दो माह की अवधि तक स्थगित कर दिया।

जगनिक भट्ट द्वारा अपने आमंत्रण की वार्ता जान कर स्वाभिमानी आल्हा-ऊदल ने महोबा जाने से इन्कार कर दिया तथा भट्ट को परिमाल के दुर्व्यवहार पर बहुत कुछ खरी-

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ३६, स० ६९।
२. वही, छं० १४२, स० ६९।

खोटी सुनाई। किन्तु अपनी वीरांगना माता द्वारा-उसी माता द्वारा जिसने अकस्मात ही राज्य हेतु महोवा त्यागने का आदेश दिया था—अपने पुत्रों को स्वदेश रक्षा एवं स्वामि धर्म से विरक्त होते देख कर स्वयं को हतभाग्य कह कर विलाप करने पर तत्काल ही दोनों भाई महोवा की सहायतार्थ सन्नद्ध हो उठे। शीघ्र ही महोवा प्रयाण हेतु रण सज्जा सजा कर दोनों भाई पंगराज की सभा में आज्ञा लेने जा उपस्थित हुए—

चलन महोवे कीन मत देवल सीप उपाय।
अरज करन जयचन्द सो चले सु दोनों भाय॥ छं० १९४।[1]

दोनों भ्राताओं की रण-सज्जा देख कर आश्चर्य चकित हो पंगराज राजा जयचन्द द्वारा आकारण विरोचित बाने का कारण पूछने पर निर्भीक बनाफर सरदारों ने विनम्रता से उत्तर दिया—

हम कही बनाफर जाइकर, लेन सु जगनक आइयव।
प्रिथिराज महोवे जुद्ध कहु, हम परिमाल बुलाइयव॥ छं० १९६।[2]

अर्थात—पृथ्वीराज चौहान ने महोवा पर आक्रमण कर दिया है, अतः राजा परिमाल ने जगनीक भट्ट को भेज कर सहायतार्थ बुलवाया है। अतः महोवा जाने का मुख्य कारण यही है।

यकायक इस प्रकार दोनों भाइयों को महोवा जाने को तत्पर देख कर कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचन्द ने महोवा जाने का प्रतिरोध किया तथा क्रोधित होकर बोला—

नयन रत्त करि बुल्लय वानिय, मरिबे काज महोवे जनिय।
अच्चल गढ्ढ हमारी पायो, चन्देलन ढिग लग्गहु जायो॥ छं० १९७।
सगरी नाव जाय बंध किज्जिय, आल्हा उदिल उतरत्त नहि दिज्जय।
छावनि करी हमारे पास, छाड़ौ अब महुए की आस॥ छं० १९८।[3]

बनाफर वीरों ने अपने मार्ग को इस प्रकार अवरुद्ध होता देखकर क्रोध से उन्मत्त होकर स्वाभिमानी आल्हा ने पंगराज जयचन्द को निर्भीक उत्तर दिया—

तब आल्हन रत्त कीनें नैनह, सुनि जयचन्द नृपति के बैनह।
कनवज लूटि अहिद सब करिहों, पीछे जुद्ध महोवे करिहों॥ छं० १९९।[4]

वैमनस्यता के ऐसे उग्र समय में ही जगनीक भट्ट द्वारा कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचन्द को महोवापति परिमाल द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हो गया, जिसे पढ़ कर पंगराज ने स्वयं ही

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १९४, स० ६१।
२. वही, छं० १९६, स० ६१।
३. वही, छं० १९७-१९८, स० ६१।
४. वही, छं० १९९, स० ६१।

आल्हा-ऊदल को महर्ष अपनी सेना सहित परमाल की सहायतार्थ शीघ्र जाने की अनुमति दे दी—

वत्ति अरज जयचन्द नृप बोलि दियान जरूर।
विदा करो सेना सजो आल्हा संग गरूर॥ छं० २०२।[1]

वीर आल्हा को विशेष रूप से सम्मानित कर तथा शिरोपाव प्रदान कर अपने भ्रातृज मानसिंह सहित, कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचन्द ने महोबा प्रस्थान करने की आज्ञा प्रदान कर दी।

जयचन्द के आश्रय में रह कर इन बनाफर वीरों ने गांजर, संवागढ़, विजहट, कुड़हर तथा बंगा आदि युद्धों में अपार पराक्रम एवं शौर्य का प्रदर्श किया था और महोबा आ कर दिल्लीपति चौहान की सेना से जूझ पड़े। 'महोबा समय' के इसी युद्ध में वीर ऊदल अपार पराक्रम एवं वीरता से युद्ध करता हुआ पराभव को प्राप्त हुआ तथा आल्हा अपने भयंकर पराक्रम तथा तंत्र-मंत्र प्रयोगों द्वारा चमत्कारिक युद्ध कौशल दिखाने के उपरान्त, अन्त में अपने गुरु गोरखनाथ के आदेशानुसार रण से विमुख होकर जंगल में तप हेतु चला गया।

आल्हा-ऊदल के व्यक्तित्व ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त विवादास्पद है। जनरल कनिंघम के मतानुसार जब पंगराज राजा जयचन्द ने अश्वमेघ यज्ञ किया था, तब आल्हा-ऊदल ने भी महाराज पृथ्वीराज चौहान से युद्ध किया था।[2] किन्तु उक्त कथन ऐतिहासिक तुला पर पूर्ण नहीं उतरता। यह सम्भावना व्यक्त अवश्य की जा सकती है कि जयचन्द के यज्ञोत्सव में राजा परिमाल के साथ आल्हा-ऊदल अवश्य गए होंगे, किंतु जब संयोगिता द्वारा पृथ्वीराज चौहान का वरण हो गया होगा, तब सभी राजा-महाराजा अपने-अपने स्थान को लौट गये होगें। आल्हा-ऊदल भी महोबा परमाल के साथ आ गये होगें। उनका पृथ्वीराज से युद्ध करना ऐतिहासिक एवं प्रमाणिक नहीं जान पड़ता। एक अन्य स्थान पर श्री केशवचन्द्र मिश्र ने लिखा है कि जब भारतवर्ष पर तुर्कों ने आक्रमण किया, तब राजा सोमेश्वर ने अन्य राजाओं से सहायता ली, तो चन्देल सेना के साथ आल्हा-ऊदल ने भी इस युद्ध में भाग लिया था।[3] किन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में निश्चित मत देना अत्यन्त कठिन है।

यद्यपि आल्हा-ऊदल का नाम किसी भी शिला लेख में प्राप्त नहीं होता है, फिर भी इनके सम्बन्ध में इतनी प्रबल जनश्रुति होने के कारण, इन्हें काल्पनिक भी नहीं माना जा सकता। ऐतिहासिक ग्रन्थ इन दोनों वीरों के सम्बन्ध में भले ही चुप हों, पर महोबा समय, परमाल रासो, आल्हा खण्ड, तथा आल्ह-राइछो जैसे प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थों एवं महोबा, नैनागढ़ तथा सिरसागढ़ आदि स्थानों में सुरक्षित प्रबल जन-श्रुतियों मे ये सदा अमर रहेगें।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २०२,स० ६१।
२. जनरल कनिंघम—आर्कोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द-१, पृ० १८३, १८६२-३।
३. श्री केशवचन्द्र मिश्र—चन्देलों का राजत्य काल, पृ० १३१।

कचराराय–गुंजरेश्वर भोलाराय भीमदेव चालुक्य के हाथ से महाराजा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर की मृत्यु हो गई थी। अपने पिता का वैर लेने के लिए महाराज पृथ्वीराज ने गुजरात प्रान्त पर आक्रमण कर भीमदेव को मारा तथा उसके पुत्र कचराराय को अपनी ओर से गद्दी पर बिठा कर गुजरात के कुछ परगने अपने राज्य में मिला लिए।[1]

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर कचराराय भोलाराय भीमदेव चालुक्य का पुत्र था तथा गुंजरेश्वर की मृत्यु के उपरांत पृथ्वीराज द्वारा इसे गुजरात का शासन प्राप्त हुआ था। उसी समय से कचराराय पृथ्वीराज की अधीनता में रहता था तथा उनके प्रसिद्ध सामन्तों में इसकी भी गणना होती थी। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी युद्ध में वीर कचराराय ने पृथ्वीराज की ओर से भाग लिया था। पृथ्वीराज के दल से पहाड़राय तोमर की मृत्यु के उपरान्त वीर कचराराय युद्ध क्षेत्र की ओर अग्रसर हुआ तथा विपक्षी दल के महादेवराय से घमासान द्वन्द्व युद्ध करके वीरगति को प्राप्त हुआ—

कच्चराराय चालुक्क धीर। आवंत देषि दल गज्जि वीर।
सिरनाइ राज प्रथिराज ताम। चल कलिय वदन उरयंक स्याम ॥२४०७॥
इक वार पहिल लग्गे सुघाय। जितए गुजर तिन पगराई ॥
संजोगि नेग दिय कंठ माल। पहिराइ कट वज्जी भुआल ॥२४०८॥
गज्जियो भीम जिम सुअन भीम। पेषेय जूह मनुहरि करीम ॥
कस्सियो तंग वज्जी स नेत। संकलपि सीस प्रथिराज हेत ॥२४०९॥

० ० ०

धाइयो ताम महदेव तम्म। चालुक्क हयो नंगी उरम्म।
दुअ लग्गि वीर मिलि विषय घाव। आवद्ध तुट्टि हुअ वीर ताव ॥२४१७॥
लग्गं सु वग्ग समवय सरुप। दुअ अट्ठ दरप दुअ प्रम्म नूप।
लग्गं सु कंठ असि उठ्ठि ताम। दुअ मुज्झि नूप दुअ सामि काम ॥२४१८॥
दुअ चले मुक्ति मारग्ग सग्ग। विम्मान जानि तिचि विचित्र लग्ग ॥
अच्छरिय उंच रुंधे सु नेव। जय जय चवंत नंदि कुसुम देव ॥२४१९॥[2]

इस प्रकार वीर कचराराय अपार पराक्रम दिखा कर स्वामि धर्म हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग करके स्वर्ग लोक को गया—

संग राय भानेज। राय कचरा अरि रुच्चर ॥
गरुअ प्रेम स्वामित्त। सार संमुह रन भुच्चर ॥

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छंद ८८, सम्मत ४४।
२. वही, छं० २४०७-२४०९ तथा २४१७—२४१९, स० ६१।

पट्टन लिर अरु पट्ट । गंग घट्टह घन नप्पयो ॥
जं जं जं ऊपि सद्द । नद्द त्रिभुअनपति नप्प्यो ।
पप्परत पलिय वज्जिय विहर । उग्र राय रठ्ठौर धर ॥
चालुक चलंत सुन स्वरगमन । ग्रह्म अरघ दीनी सुघर ॥छं० २४३१ ।[1]

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार पृथ्वीराज द्वारा भोलाराय भीमदेव चालुक्य को मारना तथा उसके पुत्र कचराराय को गुजरात राज्य देने वाली कथा 'रासो' में काल्पनिक है। उन्होंने अपने प्रवल एवं तथ्य पूर्ण तर्कों द्वारा अपने मत का समर्थन इस प्रकार किया है—"वह सारी कथा असत्य है, क्योंकि न तो सोमेश्वर भीमदेव के हाथ से मारा गया और न भीमदेव पृथ्वीराज के हाथ से। सोमेश्वर के समय के कई शिलालेख मिले हैं, जिनमें से पहला वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदी ३ का बिजोलियां का प्रसिद्ध लेख है (दि जर्नल आव ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, जिल्द ५५, भाग १ ई० सं० १८८६, पृ० ४०-४६) और अंतिम वि० सं० १२३४ भाद्र पद सुदी ४ का है (आंवलदा गांव का लेख (अप्रकाशित) यह लेख उदयपुर के विक्टोरिया हाल में सुरक्षित है)। पृथ्वीराज का सबसे पहला लेख वि० सं० १२३६ आपाढ़ वदी १२ का है (लोहारी गांव का लेख, विक्टोरिया हाल उदयपुर में सुरक्षित)। वि० सं० १२३६ के प्रारम्भ में सोमेश्वर का देहान्त और पृथ्वीराज की गद्दी नशीनी मानी जा सकती है, जैसा कि प्रवध कोप के अन्त की वंशावली से ज्ञात होता है (प्रवंध चिन्ता मणि, पृ० ५४)। भीमदेव वि० सं० १२३५ में गद्दी पर बिलकुल बाल्यावस्था में बैठा और ६३ वर्ष अर्थात् वि० सं० १२९८ तक वह जीवित रहा (प्रवंध चिन्तामणि पृ० २४९)। इतनी बाल्यावस्था में वह सोमेश्वर को नहीं मार सकता और न पृथ्वीराज ने उसका वदला लेने के लिए उस पर चढ़ाई कर उसे मारा था। गुजरात के ऐतिहासिक संस्कृत ग्रन्थों में भी कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है। राजपूताना म्युजियम में भीमदेव का वि० सं० १२६५ का एक शिलालेख विद्यमान है (इन्डियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द ११, पृ० २२१-२२२)। आबू पर देलवाड़ा गांव के प्रसिद्ध तेजपाल के जैन मंदिर की वि० सं० १२८७ की प्रशस्ति के लेख के समय भी भीम देव विद्यमान था (एपीग्रेफिया इन्डिका, जिल्द ८, पृ० २१९)। डॉ० बूलर ने वि० सं० १२९६ मार्गशीर्ष वदी १४ का भीमदेव का दानपत्र प्रकाशित किया है (इन्डियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द ६, पृ०२०६-२०८)। इससे निश्चित है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु से अनुमानतः पचास वर्ष पीछे भी विद्यमान था"।[2]

अतः ओझा जी के उपर्युक्त कथन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कचराराय वाली

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २४३१, स० ६१।

२. म० म० रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोषोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४५-४६, वि० सं० १९८५।

घटना भी ऐतिहासिक नहीं है क्योंकि जब पृथ्वीराज ने भीमदेव चालुक्य को मारा ही नहीं तो फिर कचराराय को गुजरात की गद्दी कैसे दी जा सकती है। अतः कचराराव के विषय में कोई भी निर्णायक मत देना अत्यन्त कठिन है। सामग्री के अभाव में कचराराव का ऐतिहासिक संदेहास्पद ही अधिक जान पड़ता है।

कनकराय वडगुज्जर :[1] पृथ्वीराज रासो के अनुसार कनकराय वडगुज्जर पृथ्वीराज चौहान का सामन्त था, जिसकी गणना उनके श्रेष्ठ १०६ अथवा १०० सामन्तों में होती थी। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी युद्ध में जब पृथ्वीराज का श्रेष्ठ सामन्त वीरगति को प्राप्त हो गया तब पराक्रमी कनकराय वडगुज्जर ने विपक्षी दल का सामना किया। कनकराय वडगुज्जर स्वामि पृथ्वीराज को मस्तक नवा कर युद्ध क्षेत्र की ओर अग्रसर हो गया—

भो आयस प्रथिराज। कनक नायो वड़गुज्जर।
हम तुम दुस्सह मिलन। स्वामि दुज्जं सु अप्प घर॥
हो रवि मंडल भेदि। जीय लगि सत्त न छंडों।
षंड षंड करि रुंड। मुंड हर हार सु मंडों।
इन वंस भग्गि जानै न को। हो पति कंप अनुसरयो।
इम जंपै चन्द वरद्दिया। कोस पट्ट चहुआन गो। छं० २१६४।[2]

विपक्षी दल से वीरमराय कमधज्ज कनकराय वड़गुजर का सामना करने के लिए अग्रसर हुआ। भीषण युद्ध के परिणाम स्वरूप दोनों ही वीर अपूर्व कौशल प्रदर्शित करते हुए वीर गति को प्राप्त हुए—

कर वाम चंप्पौ निज सीस अप्पं। करे षग्ग धायौ संनरिन्न दप्प।
करी दाहि ढंढोरि मास्सी कनक्के। ढुरे कोई ढारं पनक्के सटक्के। छं० २१६६॥

---

१. कर्नल टाड ने वडगुज्जरों के विषय में लिखा है कि "वडगुज्जर सूर्यवंशी हैं तथा गुहिलोतों को छोड़कर केवल यही एक वंश ऐसा है, जो अपने को रामचन्द्र के बड़े बेटे लव से निकलना बतलाता है। वड़गुज्जर लोगों के बड़े-बड़े राज्य ढूंढाड़ (जयपुरराज्य) में थे और माचोड़ी (अलवर के राजाओं का मूल स्थान) के राज्य में (राजोरगढ़) का पहाड़ी किला उनकी राजधानी थी। राजगढ़ और अलवर भी इनके अधिकार में थे। जब वड़गुजरों को कछवाहों ने उनके निवास स्थानों से निकाल दिया तो इन दल में एक दल ने गंगा किनारे जाकर शरण ली तथा वहां पर नया निवास स्थान अनूप शहर बसाया।" टॉड, राजस्थान, जिल्द १, पृ० १४०-४१।

नोट–गुहिलोत वंशी राजा अपने को रामचन्द्र के बड़े पुत्र लव के वंश में नहीं वरन् कुश के वंश में मानते हैं। कर्नल टॉड ने यह सम्भवतः भ्रम वश लिख दिया है।

२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २।६४, स० ६१।

चरी अच्छरा विद साचीनि मन्ने । हुर्यो कन्नकू धार सो धाई धन्ने ।।
सयं पंच सारद्ध वीरम्न सथ्थे । परे पेत पदे कनक्कू सु हथ्थे ।।छं० २१७७ ।।[1]

कन्ह (कर्नाटक नरेश)—पृथ्वीराज रासो के रचयिता के मतानुसार कर्नाटक नरेश कन्ह किल्हण पंगराज का आधीनस्त नरेश था। इतिहास में इस नाम के किसी भी शासक का अस्तित्व प्राप्त नहीं होता है। रासोकार के अनुसार अपनी दिग्विजय में कन्नोजपति राजा जयचन्द ने सुदूर दक्षिण तक के प्रदेशों को आधीकृत किया था, फलस्वरूप कर्नाट-पति कन्ह किल्हण भी पंगराज की आधीनता स्वीकार करता था। संयोगिता अपहरण के समय पंगराज तथा चौहान पृथ्वीराज के मध्य होने वाले विकट संग्राम में कर्नाटक नरेश ने कान्यकुब्जेश्वर के पक्ष से अपार युद्ध किया था—

चदे किल्हनं कन्ह कन्नाट राजी।
उठी वंक मुच्छं ससी बीस लाजी।।

नवमी के युद्ध में घोर संग्राम करता हुआ वीर कर्नाटक नरेश कन्ह किल्हण वीर गति को प्राप्त हुआ।

रासो का उक्त वर्णन इतिहास से मेल नहीं खाता है। कर्नाटक प्रदेश पर कन्ह किल्हण नाम के कोई भी राजा राज्य नहीं करता था। "कर्नाटक में लगभग दूसरी शताब्दी ई० से गंगवंश के शासक राज्य कर रहे थे। लगभग ८१९ ई० में राज मल्ल गंगों का राजा था, जिसने अपने प्रदेश को राष्ट्रकूटों के प्रभाव से सर्वथा मुक्त कर लिया था। सन् १००४ ई० में तंजोर के चेलों ने गंग शासकों से राज्य छीन लिया, परन्तु गंग वंश का पूर्णतया अन्त नहीं हुआ। गंग वंश की कलिंग शाखा ने १६ वीं शदी के मध्य तक शासन किया। चोलों ने सन् १००४ ई० में तलकाड पर अपना अधिकार स्थापित किया"[2] "इनका राज्य 'चोल मण्डलम्' कहलाता था जिसके अन्तर्गत आधुनिक तंजोर तथा त्रिचनापल्ली के जिले तथा पद्दुकोट्ट के राज्य का भी कुछ भाग आ जाता था।"[3]

"चालुक्यों के साथ चोलराजाओं का संघर्ष ११ वीं शदी से ही प्रारम्भ हो गया था। चालुक्यराज सोमेश्वर के समय में यह संघर्ष चरम सीमा को पहुँचा, किन्तु अन्ततोगत्वा संधि के रूप में परिणित हुआ। अन्तिम चोल शासक अधिराजेंद्र की हत्या के उपरान्त सन्तान हीन होने के कारण उत्तराधिकार का प्रश्न उठने पर चालुक्य राजकुमार कुलोत्तुंग चोल—राज्य का

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २१७६-७७, स० ६१।
२. श्री नेत्र पाण्डेय—भारत का वृहत इतिहास, पृ० ४४५।
३. वही, पृ० ४५३।

शासक हुआ। १२ वीं शताब्दी का समय संघर्षमय बीता। १३ वीं सदी के बीच राज्य का अधिकांश भाग होयसल वंश के हाथ में आ गया था"।[1]

इतिहास के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि रासो वर्णित कथा सर्वथा अनैतिहासिक एवं कल्पना मात्र है। अतः स्पष्ट रूप से एवं विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि कर्नाटक नरेश कन्ह किल्हण एक कवि कल्पना प्रसूत पात्र है, जिसका इतिहास में कहीं भी अस्तित्व नहीं है।

कन्ह चौहान—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार कन्ह चौहान अजमेरपति सोमेश्वर के छोटे भाई तथा पृथ्वीराज चौहान के चाचा थे।[2] कन्ह की प्रतिज्ञा थी कि उनके समक्ष कोई भी व्यक्ति मूछों पर ताव नहीं दे सकता था। यदि कोई अज्ञानवश ऐसा करता भी था तो वह उनका कोप-भाजन बनता था। एक बार गुर्जरेश्वर भोलाराय भीमदेव चालुक्य ने अपने सात चचेरे भाइयों को हाथी मारने के अपराध में गुजरात से निकाल दिया था।[3] पृथ्वीराज को यह ज्ञात होने पर उन्होंने सातों भाइयों को अपने दरबार में बुला कर आश्रय देकर सम्मानित किया तथा अनेक ग्रामादि दिए।[4] एक दिन कुंवर प्रतापसिंह पृथ्वीराज की राज्य सभा में आया तथा चाचा कन्ह के सामने बैठ कर अपनी मूछों पर ताव देने लगा। चाचा कन्ह को यह देखकर एकदम क्रोध उमड़ आया तथा उन्होंने तुरन्त ही भरे दरबार में उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।[5] परिणाम स्वरूप अन्य छः भाई भी युद्ध करते हुए कन्ह चौहान के हाथों पराभव को प्राप्त हुए। चाचा कन्ह की इस विग्रह में विजय हुई—

परि भूमि पावार। उररि भंजन बिय्यार हुअ।
तब लगि कन्ह तमकि। आइ पहुंची अत धनुअ॥
कुपिक रोस असि तमकि। धाई सिर झार्द रह्यो उग।
मनहुं सक्ति वल देन। अग जनु हन्या अजा सुत॥
तिन हनत सिभु पुन हनिय सिर। राजग्रेह मधि समर हुअ।
हल हलकि मच्चि कोलाहलह। हाय-हाय दरबार हुअ ॥छं० २१॥[6]

---

१. जयचन्द—भारतीय इतिहास की रूपरेखा, पृ० ५६।
२. सोमेश्वर के छोटे भाई अर्थात् पृथ्वीराज के चाचा [रासो सर्गो १, कन्नौजिया नेम समय—[Asiatic Journal. Vol. XXV, Page 234.]
३ पृथ्वीराज रासो, कन्ह पट्टी समय, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ९, स० १९।
४. वही, छं० ११, स० १९।
५. वही, छं० १३, स० १९।
६. वही, छं० २५, स० १९, तथा पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ० ५३, स० ५।

चालुक्य-भाइयों के वध की सूचना पाकर राजा पृथ्वीराज अत्यन्त आकुल हुए। अजमेर में हड़ताल हो गई तथा सात दिनों तक दरबार में चाचा कन्ह के न आने पर संभरेश स्वयं ही चल कर उनके घर गये तथा चाचा कन्ह को सम्बोधित करते हुए कहा कि अपने घर आये दूतों के साथ आपने ऐसा व्यवहार किया, यह दोष आपको लग गया तथा इस बुराई से संसार में अपयश होगा—

आएति विपें अप्पन सुघर। सो रावर ऐसी करिय।
इह दोस अप्प लग्गयौ खरौ। वत्त वित्तरिय जग बुरिय ॥ छं० ९०।[1]

पृथ्वीराज ने दरबार की निन्दा मिटाने हेतु तथा शरणागत की हत्या के प्रायश्चित स्वरूप 'बंध बंध पट्ट रतन' का प्रस्ताव करके उनकी आंखों पर पाव लाख मूल्य की एक पट्टी बंधवा दी। यह पट्टी हमेशा कन्ह के नेत्रों पर बंधी रहती थी केवल युद्ध के अवसर पर अथवा रनवास में ही पट्टी खोली जाती थी—

सो पट्टी निस दिन रहै, छोरि दई द्वै ठाम।
कै सिज्या वामा रमत, कै छुट्टत संग्राम ॥ छं० ४७।[2]

चाचा कन्ह पृथ्वीराज चौहान के साथ हमेशा रहे तथा उसके ऊपर छाया की भांति मंडराकर रक्षा करते रहे। नरनाह कन्ह अत्यन्त पराक्रमी योद्धा थे। इनके पराक्रम के विषय में रासोकार ने लिखा है—

परिय मंझ जग मंझ। टरिय कंकन रंकन घन।
भरिय पत्र जुनिनीय। करिय सिव सीस माल घन ॥
मुरिय न म्रित चालुक। धरिय रस रोस कन्ह हिय।
पंर चलिय दरबार। सीह गज घट्टि उहट्टिय ॥ छं० ७९।[3]

अन्त में चाचा कन्ह का रौद्र रूप 'कनवज्ज समय ६१' में दिखाई देता है। पृथ्वीराज ने जयचन्द की पुत्री संयोगिता का अपहरण कर लिया। फलस्वरूप युद्ध के नगाड़े निनादित हो उठे। छागन के युद्ध में मारे जाने के उपरान्त वीर पराक्रमी नरनाह कन्ह की आंखों से पट्टी हटा दी गई तथा पट्टी हटते ही उन्होंने भीषण मार-काट मचा दी—

पट्टं पल छुट्टत। कन्ह धाराहर वज्जयौ।
जनुकि मेघ मद्दलिय। वीर बिज्जुलि गहि गज्यौ ॥
हय गय नर तुट्टंत। बिरह तुट्टिय तारायन।
तुट्टिय पोहनि पंग। राय क्षोनिय मारायन ॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ९०, स० ५।
२. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ४७, स० १९।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७९, स० ५।

हल हलिय नाग नागिनि पुरत । नागिन सिर छुट्यौ महि ।
आवहि न संग सिगार मन । मननि सीस मुक्कौ सु घर ॥ छं० २२३२ ।[1]

परिणाम स्वरूप पृथ्वीराज चौहान संयोगिता को लेकर दिल्ली की ओर [illegible] अग्रसर हो गया—

दहं कोहसा स्वामि आराम छुट्टौ । पछै पंग रा सेन आसन्न उट्टौ ॥ छं० २२३७ ।[2]

भीषण युद्ध के परिणाम स्वरूप नरनाह कन्ह चौहान का सिर धड़ से अलग हो गया किन्तु फिर भी उनके धड़ ने तीन घड़ी तक विकट युद्ध किया तथा तीन हजार सैनिकों को काट डाला—

लरत सीस तुट्यौ सु हर । धर उठ्यौ करि मार ।
घरी तीन लों सीस बिन । कट्टे तीस हजार ॥ छं० २२५३ ।
बिन सीस हसी तरवारि वहै । निघटं जन सावन घास महै ।
धर सीस निरांस हुंअत इसे । सुन राजनु राह संपत जिसे ॥ छं० २२५४ ।[3]

इस धड़ की रण क्रीड़ा निरन्तर रूप से तब तक चलती रही जब तक वह टुकड़े-टुकड़े होकर छिन्न-भिन्न न हो गया—

इहि विधि सु कन्ह रिन केलि किन्न ।
परि अंग अंग होइ छिन्न-भिन्न ॥ छं० २२७१ ।[4]

कन्ह की इस संसार में अपार सुकृति फैली तथा उन्होंने पंगराज की सेना के एक लाख सत्तर हजार सैनिकों को काट कर मोक्ष पद प्राप्त किया—

एक लप्प सित्तर सहस । कट्टि किये अरि कन्ह ।
दोय दीन मध्यं सु इम । धनि धनि नृप्प सु कन्ह ॥ छं० २२८२ ।[5]

कान्ह कमधज्ज—रासो के अनुसार कान्यकुब्जेश्वर के मंत्री सुमंत की मृत्यु के उपरान्त कान्ह कमधज्ज को ही उक्त गौरवशाली पद सौंपा गया था।[6] 'कनवज्ज समय ६१' के पूर्व 'सामन्त पंग युद्ध समय ५५' के अन्तर्गत सर्वप्रथम कान्ह के शौर्य एवं पराक्रम का परिचय प्राप्त होता है।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २२३२, स० ६१।
२. वही, छं० २२३७, स० ६१।
३. वही, छं० २२५३-२२५४, स० ६१।
४. वही, छं० २२७१, स० ६१।
५. वही, छं० २२८२ स० ६१।
६. वही, छं० १४३६, स० ६१।

किरिय कान्ह जनु कान्ह गिरि, निरन नृप भर पंग।
जनु दव लग्गो चिय वनह, भर छ पंगिय जंग। छं० १४२।[1]

उपर्युक्त युद्ध में पंगराज की पराजय के अवसर पर कान्ह कमधज्ज बुरी तरह से घायल हुआ था। इसी स्थल पर वीर कान्ह को कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द का भ्रातृज्य होने का कवि ने संकेत दिया है—

कान्ह भतीज उठाय लिय, हय नच्यो वर अग्ग।
पंग दूढि भारथ्थ भर, सह मिट्यो जुरि ब्रग्ग॥ छं० १०८।[2]

आहत भ्रातृज कान्ह को उठा कर पंगराज जयचन्द कन्नौज की ओर प्रात्यावर्तित हुये थे।

'आल्हा खण्ड' के अन्तर्गत भी कान्ह कमधज्ज को चौहान पृथ्वीराज ने 'भारीशूर कन्नौजी राय' कह कर सम्बोधित किया है। 'कन्नवज समय ६१' के अंतर्गत दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान पक्ष के प्रसिद्ध सामन्त सलख प्रमार, कनकराय, रघुवंशी, लप्पन बघेला, पहाड़राय भाटिया तथा पंचाइन चौहान आदि को युद्धाग्रसर होते देखकर, इस पराक्रमी योद्धा कान्ह कमधज्ज ने स्वयं संग्राम करने की इच्छा प्रकट की थी। किन्तु कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द द्वारा तत्काल मंत्री पद पर नियुक्त किये जाने के कारण युद्ध में सक्रिय भाग लेने से रोक दिया गया—

वज्जे सुनवि पंगसुर रूपं, चक्रित चित भूपाल सु कूपं।
पुक्कारे वर उन नृप अगं, अरि गो भंजि पान सुर भंजं॥
अग्गे सुवग वज्जीर वीर, फुरमान अप्पि अरि गहन मीर।
बंधि सिलह कन्ह उभ्भै फरूर, मनुवार छुट्टि मह वत्तिसूर॥ छं० १४३६।[3]

संयोगिता अपहरण सम्बन्धी दिल्लीपति पृथ्वीराज तथा कन्नौजपति जयचंद के मध्य होने वाले घोर संग्राम में नवमी के युद्ध में अन्य रावतों के साथ वीर कान्ह कमधज्ज भी वीरगति को प्राप्त हुआ। 'नृप कन्हराव मरहट्ट ग्रै।' तथा पंग सेना ने पराजित हो कन्नौज दिशा को पलायन किया।

काशी नरेश—पृथ्वीराज रासो में कवि चन्द ने गाहड़वाल राजा जयचन्द के सहयोगियों में काशी नरेश का भी उल्लेख किया है। ग्रन्थकार ने इस नरेश का नामोल्लेख कहीं भी नहीं दिया है, एक स्थान पर 'कासह नरिंद रविवंश धीर' कह कर धैर्यवान काशी नरेश को सूर्यवंशी होने का संकेत मात्र प्रस्तुत किया है। महाराज जयचन्द गाहड़वाल के पूर्वजों के

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४२, स० ५५।
२. वही, छं० १०८, स० ५५।
३. वही, छं० १४३६, स० ६१।

अधिकार में वाराणसी प्रारम्भ से ही थी। अतः तत्कालीन राजनैतिक दशा को दृष्टि में रखते हुए, ऐसा अनुमान करने को बल मिलता है कि वह कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द की ओर से काशी राज्य का प्रबंधकर्ता कोई रघुवंशी क्षत्रप रहा होगा। काशी नरेश कन्नौजपति राजा जयचन्द के प्रबल सहयोगी के रूप में 'कनवज्ज खंड' में पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध पंगराज के पक्ष से युद्ध करता हुआ दृष्टिगोचर होता है–

कासिराज सज्जयौ मुदल, फुनि क्षग्गा दिय दंग।
गाजे मीर अमीर रनि, वाजे विषम सु संग॥२०३६।[1]

कविचन्द ने काशी नरेश के सैन्य दल का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। स्पष्ट है कि काशी नरेश संयोगिता अपहरण सम्बन्धी पृथ्वीराज चौहान तथा जयचन्द के मध्य होने वाले संग्राम में पंग की सहायतार्थ उपस्थित था–

कासिराज दल विषम, नद्धि जानुत्तार विट्टिय।
भिरिनि हार जुध धार, अद्ध अट्टह लिय दंगिय। छं० २०३८।[2]

काशी नरेश का सामना विपक्षी दल चौहान पृथ्वीराज के सामन्त हाड़ा हम्मीर से हुआ। दोनों ही अपार पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए–

हाडाराय हलकि उत्त, कासि राजह पर धर पत्त।
जोगिनिपुर सामत, वहत कनवज्ज वीर रग॥
विचौ वीर आहुरिय, परिय दत्त हार आवध।
नामि वीर निज्जुरि, करिय बहरि कुल साधय॥
उड़ि हंस नसंह मुहर पहुरति सा दलिय मुहर।
जग्गयौ नाग तव नागपुर, होम दुरग धामंक धर॥छं० २०४२।[3]

काशी नरेश का अपूर्व रण कौशल देख कर वीर पृथ्वीराज चौहान के सामन्तों को भी एक बार यह सन्देह होने लगा, कि वह दिल्ली सकुशल पहुंच भी सकेंगे अथवा नहीं।

कुम्भा जी–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार कुम्भा जी चित्तौड़पति रावल समरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था। रावल समरसिंह द्वारा छोटे पुत्र रतनसिंह को राजगद्दी का उत्तराधिकारी बनाने के परिणाम स्वरूप यह रूठ कर दक्षिण को चला गया तथा वहां [illegible] का मुसाहिब होकर बीदरनगर का जागीरदार बन गया–

समर सिंघ निज पट्ट। थप्पि रायण रत्तनं॥
दोहित्तो सोमेस। सनद नरि कुम्भ एकनं॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, छं० २०३६, स० ६१।
२. वही, छं० २०३८, स० ६१।
३. वही, छं० २०४२, स० ६१।

दच्छिन दिसि संक्रमिय। मिलि यह वसीपति साहं।
बिदुर नयर दिय पट्टे। रहिय अनुचरि तिहि ठाहं॥

चौराधि थोर वज्जाय पग। हनिय वप्र तन करि उतन॥
इह सुपन रयनि लहि चन्द कहि। चलि पुमान गढ़क॥छं० ६।[1]

किन्तु 'रासो' के उपर्युक्त कथन को असत्य एवं अप्रमाणिक सिद्ध करते हुए रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने लिखा है कि "शहाबुद्दीन के साथ की पृथ्वीराज की लड़ाई तक न तो समरसिंह का जन्म हुआ था और न दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश हुआ था। मुसलमानों का प्रथम प्रवेश दक्षिण में अलाउद्दीन खिलजी के समय वि० सं० १३५९ में हुआ। बहमनी सुलतान अलाउद्दीन हसन ने दिल्ली के सुलतान से विद्रोह कर बहमनी राज्य की स्थापना की थी। इस वंश का दसवां सुलतान अहमदशाह वली ई० सं० १४३० (वि० सं० १४८७) में बीदर बसा कर गुलबर्गे से अपनी राजधानी वहां ले आया। अतएव ऊपर लिखा हुआ कुम्भा का वृतान्त वि० सं० १४८७ से पीछे लिखा जा सकता है, जिससे पूर्व बीदर का पृथक् राज्य भी स्थापित नहीं हुआ था।"[2] अतः इस प्रकार कुम्भा जी की ऐतिहासिकता संदिग्ध हो जाती है।

कुमोदमनि—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार कुमाऊगढ़ के अधिपति का नाम कुमोदमनि था।

सवालष्य उत्तर सयल, कमऊंगढ़ दूरग।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिव्व अभंग॥ छं० २६।[3]

समुद्रशिखर गढ़ के राजा विजयपाल ने अपना पुरोहित भेज कर अपनी एक मात्र पुत्री पद्मावती का सम्बन्ध राजा कुमोदमनि से पक्का कर दिया।[4] राजा कुमोदमनि यथा समय अपने इष्ट-मित्रों सहित बारात लेकर समुद्रशिखर गढ़ पहुंचा[5] किन्तु दिल्ली-अजमेर का अन्तिम हिंदू शासक पृथ्वीराज चौहान पद्मावति का अपहरण करके दिल्ली ले गया। राजा कुमोदमनि ने पृथ्वीराज का जम कर सामना किया किन्तु परास्त हो, विवश होकर कमाऊंगढ़ लौटना पड़ा।[6] कवि ने कुमोदमनि का उल्लेख फिर समस्त पृथ्वीराज रासो में कहीं भी नहीं

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६, स० ६६।
२. रायबहादुर ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ५९।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २६, स० २०।
४. वही, छं० २०, स० २०।
५. वही, छं० २८-३१, स० २०।
६. वही, छं० ४२-५१, स० २०।

किया है। 'रासो' के अन्य समस्त संस्करण इनके विषय में मौन हैं। इतिहास भी इस नाम के किसी राजा का समर्थन नहीं करता है।

कूरंभराय–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार कूरंभराय पृथ्वीराज के प्रसिद्ध सामन्तों में से एक था। कूरम्भराय पल्हन राय का भाई था। रेवातट समय २७' में वीर कूरम्भ शहाबुद्दीन गोरी के सामन्त खुरासान खां के साथ युद्ध करता हुआ दिखाई देता है। रासोकार ने लिखा है कि– दुर्जनों को सालने वाले पल्हन के लघु भ्राता ने हांक लगाई। खुरासान खां ने उसका सामना किया तथा अपनी लम्बी तलवार उठाई जिससे उसका टोप टूट कर बिखर गया तथा कबंध से सिर टूट गया। कटे हुए सिर से मारो-मारो की ध्वनि उच्चरित होती रही तथा कटा हुआ धड़ ताल पर नृत्य करता रहा। यह भीषण युद्ध देखकर रुद्र ने भयंकर अट्टहास किया तथा नंदी हाय-हाय करने लगा। चंद कवि कहते हैं कि शैल पुत्री यह नया महाभारत देख कर चकित रह गईं—'

दुज्जन सल कूरंभ। बंध पल्हन हथकारिय।
सम्हो षां षुरसांन। तेग लम्बी उप्पारिय॥
टोप टुट्टि घर परिय। सीस घर तुट्टि कमंधं।
मार मार उच्चार। तार तं नचि कमंधं॥
तहं देषि रुद्र रुद्रह हस्यो। हय-हय-हय नंदी कह्यौ।
कवि चन्द सयल पुत्री चकित। पिष्षि बीर भारथ नयौ॥ छं०१०३'।

उपर्युक्त छन्द क्षेपक प्रतीत होता है, क्योंकि वीर कूरम्भराय रेवातट समय में पृथ्वीराज तथा शहाबुद्दीन गोरी के मध्य होने वाले संग्राम में मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ था, क्योंकि संयोगिता अपहरण सम्बन्धी युद्ध में कूरम्भ नामक योद्धा को पुनः युद्ध करते हुए पाते हैं। पृथ्वीराज रासो 'कन्नवज समय ६१' का कूरम्भ भी पल्हन राय का भाई है। ऐसी स्थिति में दोनों को अलग नहीं माना जा सकता है। 'कन्नवज समय ६१' में चन्द्र पुंडीर आदि योद्धाओं के धराशायी होने पर वीर कूरम्भ ने युद्ध क्षेत्र में बढ़कर विपक्षियों का सामना किया, युद्ध-भूमि में पंगदल के सामन्त बाघराज से उसका सामना हुआ, परिणाम स्वरूप दोनों योद्धा युद्ध करते हुए वीर गति को प्राप्त हुए—

परत राइ पुंडीर। गहिय कूरम घन घायौ।
बाघ राइ बघ्घेल। उट्ठि असिवर षरि सायौ॥
निर्भ निर्म्भ निम्मरिग। तेग झारिय टट्टर पर।
मनुह देद दुजहीन। पिट्टि [illegible] जानै हर॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०३, स० २७।

गल वांद लग्गि गट्ठी पिशुन। मीत नेट महा विच्छुरिय।
उर चंपि दोइ कट्टारि कर। मुगति मग्ग लग्गो धरिय॥ छं० १४८९।[1]

स्पष्ट है वीर कूरम्म रेवा नदी के तट पर पृथ्वीराज तथा मोहम्मद गोरी के मध्य होने वाले संग्राम में खुरासान खाँ के हाथों नहीं मारा गया था वरन् 'कनवज्ज समय' के अन्तर्गत बाघराय बघेल से युद्ध करता हुआ मोक्ष-मार्ग को प्राप्त हुआ।

केहरि कण्ठीर—कवि चन्द वरदायी वर्णित पंगराज के दरबार के अदृश्य वर्णन में केहरि कण्ठीर का भी नामां उल्लेख हुआ है—"केहरी सह्य चालुक्क वीर"॥[2] जयचन्द गाहड़वाल का यह सामन्त महान योद्धा था। 'कनवज्ज समय ६१' के अंतर्गत संयोगिता अपहरण सम्बन्धी पृथ्वीराज चौहान तथा पंगराज के मध्य घोर संग्राम में पंगराज की दुविधामय स्थिति देखकर पंगराज के मंत्री सुमंत ने जयचन्द को केहरि कण्ठीर को युद्धादेश देने का परामर्श दिया था—

केहरि कण्ठीर पठौ सुनरप इन समान छित्री न छित्ति।
अड्डी सुधरो विवम्भार धन, रावन रिन सिव ईय पत्ति॥१४२४।[3]

केहरि कण्ठीर अत्यन्त विवेकशील था, सेनाध्यक्ष रावन के समान वह भी जानता था कि चौहान पृथ्वीराज को पकड़ने में सभी पंगदल का नाश होगा किन्तु फिर भी वह रण प्रहारों को वीरता से सहन करने को प्रस्तुत रहा—

भंजो जुवीर चहुआनल, इह दुवह सम्हों भिरै।
भारथ्थ वीर मंटन सहै, अरी जीत कायर मुरै॥छं० १४२६।[4]

सामन्त केहरि कण्ठीर स्वामि की आज्ञा शिरोधार्य कर युद्ध हेतु रण प्रांगण की ओर अग्रसर हुआ—

केहरि कण्ठ सुगत्त भी, करि जुहार नृप भार।
हस्ति काल जय जाल ले, चलि अग्गं कुटवार॥ छं० १९१७।[5]

रणक्षेत्र में केहरि कण्ठीर का सामना दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज से हुआ। दोनों में घोर संग्राम हुआ तथा इस चतुर सामन्त ने उचित अवसर पाकर अपनी कमान चौहान के गले में डाल दी—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४८९, स० ६१।
२. वही, छं० ५२२, स० ६१।
३. वही, छं० १४२४, स० ६१।
४. वही, छं० १४२६, स० ६१।
५. वही, छं १९१७, स० ६१।

केहरि रा कण्ठीर स्वामि निगिनि गर घल्लिय ।
वचन पास निय चंद कोक पाल्ह पति मत्तिय ॥
हंसि हलक्किक हयवारि पंग पुत्तिय जानन बन ।
तात अग्य सवरिय, राज राजत आनी घन ॥
चहुआन रच्य सच्य चढ़िय, नपि वच्च कमधज्ज दर ।
अब देषि वाल लालन नुपर, भुवन हाल विरचौ मुहर ॥ छं० १९१८ ।[1]

वह समय दूर नहीं था जब पृथ्वीराज चौहान के साथ कोई भीषण दुर्घटना हो जाती किन्तु चौहान के घोड़े पर बैठी हुई वीरांगना संयोगिता ने ठीक समय पर कण्ठीर की प्रत्यञ्चा काट कर पृथ्वीराज की प्राण रक्षा की तथा पृथ्वीराज ने तलवार द्वारा वीर केहरि कण्ठीर पर असि-प्रहार किया—

गुन कट्टिय रमनी सुवर उसनह पंग कुआरि ।
असि वर स्तर प्रथिराज हनि, सूर हथ्थ नर धारि ॥ छं० १९१९ ।[2]

पृथ्वीराज चौहान तथा केहरि कण्ठीर के मध्य घोर असि संग्राम हुआ जिसमें पराक्रमी केहरि कण्ठीर ने अपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया—

जु क्रमे वर केहरि चंगल चंपि ग्रहे कर पांव उडत उतारि
घरे सम जंगल पुच्छ सरोह सनपत मंडल उठल गोह ॥ छं० १९२१ ।[3]

दिल्लीपति चौहान के साथ इस घोर संग्राम में कमधज्जपति जयचन्द [illegible] पराक्रमी तथा सहयोगी सामन्त पचतत्व को प्राप्त हुआ तथा साथ ही उसकी [illegible] का युद्धावसान भी हो गया ।

कैमास दाहिम[4]—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार कैमास पृथ्वीराज चौहान का प्रधान

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १९१८, स० ६१ ।

२. वही, छं० १९१९, स० ६१ ।

३. वही, छं० १९२१, स० ६१ ।

४. 'दाहिमा जोधपुर राज्य के गोठ और मांगलोद गांवों के बीच दधिमती माता का बहुत प्राचीन प्रसिद्ध मन्दिर है। इस मन्दिर के आस-पास का प्रदेश प्राचीन काल में दधिमती [दाहिम] क्षेत्र कहलाता था। उस क्षेत्र से निकले हुए ब्राह्मण, राजपूत, जाट आदि दाहिमे ब्राह्मण, दाहिमे राजपूत, दाहिमे जाट कहलाये, जैसे कि श्रीमाल (भीनमाल) नगर के नाम से श्रीमाली ब्राह्मण, श्रीमाली महाजन, श्रीमाली सोनी आदि। दाहिमे राजपूतों का प्राचीन काल में कोई बड़ा राज्य नहीं था, वे सामन्तों की स्थिति में ही रहे। राजपूताने में इस वंश का अब तक कोई शिलालेख या ताम्रपत्र नहीं मिला। चौहान पृथ्वीराज के मंत्री कैमास (कदम्बवास) का दाहिमा होना माना जाता है। [illegible]

मंत्री था। कैमास, दाहिमराज का पुत्र था, इसकी बहन दाहिमी से पृथ्वीराज का विवाह हुआ था।[1]

सर्व प्रथम कैमास को 'मेवाती मुंगल समय' के अन्तर्गत युद्ध करते हुए कवि ने दिखाया है। कैमास ने विपक्षी दल के पठान बाजिद खां से घोर युद्ध किया था[2] जिसमें बाजिद खां, मृत्यु को प्राप्त हुआ।[3] 'हुसेन कथा समय' के अन्तर्गत कैमास, पृथ्वीराज चौहान को हुसेन को शरण देने के पक्ष में राय देता दिखाई देता है।[4] भोलाराय भीमदेव चालुक्य से युद्ध होने पर पृथ्वीराज चौहान की ओर से कैमास ने सेनापतित्व ग्रहण कर भीमदेव पर आक्रमण किया किन्तु उसके मंत्री अमरसिंह सेंवरा ने अपने मंत्र-बल तथा लाले नामक यक्षाणी के रूपजाल में फंसा कर उसे परास्त कर नागौर में भीमदेव की विजय पताका फहरा दी। कवि चन्द वरदाई ने नागौर आकर सेंवरा की मंत्र-विद्या को भंग कर दिया तथा नागौर शहर से भोलाराय की सेना को मार भगाया। इस प्रकार शत्रु को परास्त कर जब कवि चन्द कैमास के पास गया तो कैमास ने लज्जित होकर अपना सिर झुका लिया। वह कवि चन्द के सामने भी न देख सका।[5] कवि चन्द ने उसकी ऐसी स्थिति देख कर आश्वासन देकर कहा कि, हे बुद्धिमान कैमास! इसमें तुम्हारा दोष नहीं है, मंत्र-तंत्र से देवता भी वशीभूत हो जाते हैं, तब मनुष्य की गणना ही क्या?[6] ऐसे समझा कर उसने कैमास को संतोष दिया तथा भोलाराय पर आक्रमण करने को उत्साहित किया। कवि चन्द ने कहा कि वीर कैमास अब तुम भीमदेव को परास्त करके ही अपना मुख उज्जवल करो। उधर दिल्ली में जब कैमास के मंत्र-वश में होने का समाचार पहुंचा तो सब राज में खलबली पड़ गई।[7] कन्ह, चामुंडराय, चण्ड पुण्डीर आदि सब सामन्त पृथ्वीराज को अजमेर में छोड़ कर नागौर की ओर सहायतार्थ चल पड़े। वीर कैमास ने इन समस्त वीरों के आने से उत्साहित होकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया। सप्तमी की रात को भीमदेव ने कैमास पर आक्रमण किया। दोनों ओर से लोहा झरने लगा। तीर तुबक, तलवार, कटार बर्छी, बांक, विछुए आदि की खचा-खच मार होने लगी। बड़े-बड़े मतवाले हाथी, सामन्तों की तेज तलवार से दो-दो टूक हो-होकर नदी की कगारों के समान

तो उनकी कोई जागीर भी नहीं है।' —रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूताने का इतिहास, जिल्द पहली, पृ० २७०, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, द्वितीय संस्करण।

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १०, स० १६।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २५, स० ८।
३. वही, छं० २६, स० ८।
४. वही, छं० १३, स० ९।
५. वही छं० ३०८-९, स० १२।
६. वही, छं० ३११, स० १२।
७. वही, छं० ३२१, स० १२।

गिरते थे। इस युद्ध में वाजीखां जो कि भीमदेव का एक प्रसिद्ध सरदार था, पाँच हजार योद्धाओं सहित वीरगति को प्राप्त हुआ।[1]

युद्ध में कैमास की विजय हुई। भीमदेव के तेरह हजार सैनिक मार डाले गये तथा उसके तीन हजार सैनिकों की आहुति देकर परम पराक्रमी कैमास ने भोलाराय भीम को पराजित कर दिया।

अन्त में इस पराक्रमी वीर तथा पृथ्वीराज के परम विश्वासी मंत्री का वध भी पृथ्वीराज के हाथों हुआ। 'रासो' ने लिखा है—एक बार पृथ्वीराज अपने सामन्तों सहित वन में शिकार खेलने गये हुए थे। वर्षा ऋतु थी। कैमास तथा महाराज पृथ्वीराज की परम प्रिय दासी करनाटी एक दूसरे पर आसक्त थे। अतः पृथ्वीराज की अनुपस्थिति से लाभ उठा कर करनाटी दासी ने कैमास को अपनी दासी द्वारा अपने महल में बुलाया। प्रेम भरा संदेश पाकर कैमास अपने को न रोक सका, अतः दासी के साथ स्त्री-भेष धारण करके करनाटी के महल की ओर चल दिया—

सुनि दासी करनाटि वच। निज संचारि सच मुद्ध।
मत्ति घटी असमी सरति। कालनिसा व्रत निद्ध॥ छं० ५४।
सहचरि वर भो कल्लि कें। तर्क थट्ट कैमास।
सम समद्धि सज्जें रह्यो। करि करि हिये विलास॥ छं० ५५।
निसि भद्दव कद्दव कहल। आवेटक प्रथिराज।
दाहिम्मो दहि काम रत। काल रैनी कै काज॥ छं० ५६।
दासिय हथ्थ सु हथ्थ दिय। त्रिय अबंर आछादि।
दासिय अंतर अप्प हुअ। दरन स पिथ्थो सादि॥ छं० ५७।[2]

किन्तु दुर्भाग्यवश सीढ़ी चढ़ते हुए पृथ्वीराज की रानी इंच्छिनी ने कैमास को देख लिया तथा उसके सुग्गे ने कहा कि देखो आज काग मुक्ता खाने चला है—

सुक चरित्र दासिय परषि। कहि इंछिनि सजोई।
काग जाइ मुत्तिय चरै। हरति हंस का होई॥ छं० ६०।[3]

अतः रानी इंच्छिनी ने अपनी दासी द्वारा उपर्युक्त समाचार लिखकर पृथ्वीराज के पास वन में भेज दिया। राजा पत्र प्राप्त होते ही, अत्यन्त कुपित हो, रानी इंच्छिनी के महल में आ गया—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ३३४-३६, स० ५२।
२. वही, छं० ५४-५७, स० ५७।
३. वही, छं० ६०, स० ५७।

आयो नृप इंछिनि महल। राज रीस चित मानि।
अगनि दगध कैमास कै। चोर वरन्निय पानि॥ छं० ७७।[1]

पृथ्वीराज के महल में आने पर रानी इछिनी ने पृथ्वीराज को, कैमास तथा करनाटी को बिजली के प्रकाश में दिखा दिया। महाराज पृथ्वीराज दोनों को एक साथ देख कर अपने को सम्भाल न सके तथा उन्होंने अपने प्रिय मंत्री कैमास पर बिजली के प्रकाश में अपना बाण संधान किया–

निसि अद्धी सुत्तझं नहो। वर कैमासय काज।
तड़ित करिग अगुंलि धरम। बान भरिग प्रथिराज॥ छं० ८७।[2]

इतने में ही महाराज पृथ्वीराज चौहान के बाण ने कैमास मंत्री का हृदय विदीर्ण कर दिया, जिससे उसके प्राण पखेरू उड़ गये–

बान लग्ग कैमास उर। सो ओपम कवि पाइ।
मनो हृदय कैमास कै। हृय्ये बुझ्झिय लाइ॥ छं० ८९।[3]

मंत्री कैमास के मर जाने पर करनाटी तो भाग निकली किन्तु महाराज पृथ्वीराज ने कैमास को वही पर गड्ढा खुदवा कर गाड़ दिया–

पनि गड्यौ कैमास तंह। दासी सम करि भग।
पच्च तत्त सरसे सुपं। प्राप्त प्रगट्टं रग॥ छं० १००।[4]

कवि ने कैमास मंत्री की प्रसंशा इस प्रकार की है–

जिन कैमास सुमत्रि। पोवि पट्टू घन कढ्यो।
जिन कैमास सुमत्रि। राज चहुआन सु चढ्यो॥
जिन कैमास सुमंत्रि। पारि परिहार मुरस्थल।
जिन कैमास सुमंत्रि। मेछ वध्यौ बल सब्बल।
विहु ओर जोर चहुआन नृप। तुरक हिन्द फरपन डरह।
वाराह वय्य वाराह विच। सु बस्ति बास जंगल धरह॥छं०९७।[5]

कैमास वध कथा असत्य प्रतीत नहीं होती है। कैमास का स्त्री के प्रति मोह 'भोलाराय समय' से ही स्पष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कैमास करनाटी दासी में अनुरक्त हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

---

१. पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७७, स० ५७।
२. वही, छं० ८७, स० ५७।
३. वही, छं० ८९, स० ५७।
४. वही, छं० १००, स० ५७।
५. वही, छं० ९७, स० ५७।

कैमास के अस्तित्व को मानते हुए डॉ० दशरथ शर्मा ने एक स्थान पर लिखा है कि—'कैमास वध की कथा भी प्रमाण रहित प्रतीत नहीं होती। पृथ्वीराज विजय महाकाव्य में कदम्बवास अर्थात् कैमास को पृथ्वीराज का प्रधान मंत्री बतलाया गया। सोमेश्वर की मृत्यु के बाद उसी ने अजमेर राज्य का सुप्रबन्ध किया था। जिनपाल उपाध्याय रचित खरतरगच्छ पट्टावली में भी मण्डलेश्वर कइमास का उल्लेख है। जब पद्मप्रभ और श्री जिनपति सूरि का शास्त्रार्थ हुआ तब पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में वही सभापति माना गया था। इसलिए इतना तो स्पष्ट ही है कि कैमास को अजमेर राज्य में बहुत ऊँचा पद प्राप्त हुआ था। अब रहा उसके वध का प्रश्न। सो भी अब प्रायः हल हो चुका है। कतिपय वर्ष पूर्व मुनिराज श्री जिनविजय जी ने पुरातन प्रबन्ध संग्रह नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। इसके सबसे पुराने आदर्श का सम्वत १५२८ है। परन्तु अन्य कारणों से जिनविजय जी का अनुमान है कि पृथ्वीराज प्रबन्ध सम्भवतः सं० १२९० के आस-पास लिखा गया था। यद्यपि मैं इस विचार से सर्वथा सहमत नहीं हूं (प्रबन्ध में पृथ्वीराज के भाई का नाम हरीराज मिलना उसकी अत्यन्त प्राचीनता को संदिग्ध बनाता है) तथापि इतना तो प्रायः निश्चित है कि उसमें दिए अपभ्रंश अवतरणों की भाषा जैनसी से छन्द आदि ग्रंथों की भाषा से कई सौ वर्ष पुरानी है। ये अवतरण निम्नलिखित है—

इक्कु बाण पहुवीस जु पइं कइंबास ह मुक्कओ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ॥
बीअं करि संधीउं भमइ सूमेसर नन्दण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरि वणु॥
फुड छडि न जाइ इहु लुब्भिउ बारह पलकउ खल गुलह॥
न जाणउं चन्द बलद्दिउ कि न वि छुट्टइ इह फलह॥
अगहुम गहि दाहिमओ रिपुराय खयंकर।
कूड मंत्रमम ठवओ एहु जं बूय मिलि जग्गर॥
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खविउं बुज्झइ।
जंपइ चन्दबलद्दिु मज्झ परमक्खर सुज्झइ॥
पहु पहुविराय सइंभरि धणी सयंभरि सउणइ संभरिसि।
कइंबास विआस विसट्ट विणु मच्छिबंधि बद्धओ मरिसि॥'[1]

इसी भांति डॉ माताप्रसाद गुप्त भी कैमास के अस्तित्व में विश्वास करते हुए लिखते हैं कि "जयानक के पृथ्वीराज विजय में भी मंत्री कदम्बवास का उल्लेख है और उसमें कहा गया है कि उसी के संरक्षण में पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ था। पृथ्वीराज विजय की रचना और

---

१. डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, राजस्थानी अंक ३, भाग ३, जनवरी १९४०।

इसके कुछ भी अनंतर खंडित है इसलिए कंदवयास का और अधिक वृत्त उसमें नहीं मिलता है। जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा लिखित 'खरतरगच्छ पट्टावली' में मंडलेश्वर कैंमास का उल्लेख है और कहा गया है कि जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ में पृथ्वीराज के विश्राम-काल में मध्यस्थता का कार्य इसी ने किया था। इससे ज्ञात होता है कि यह विद्वान था और धार्मिक विचारों में उदार भी था। कैंमास दाहिमा के पृथ्वीराज के प्रधान होने और पृथ्वीराज के द्वारा उसका वध किए जाने की एक कथा 'पुरातन प्रवन्ध संग्रह' में संकलित 'पृथ्वीराज प्रवन्ध' में आई है, यद्यपि उसमें वध का कारण राजनैतिक बताया गया है। इस जैन प्रवन्ध का रचना काल अनुमान से चौदहवीं शती विक्रमीय का उत्तरार्द्ध होना चाहिए। इसलिए कैंमास (कंदवयास) का पृथ्वीराज का प्रधान अमात्य होना, उसका बुद्धिमान और विद्वान होना प्रमाणित है। किसी कारण पृथ्वीराज ने उसका वध किया यह भी विश्वासनीय प्रतीत होता है।"[1]

'पुरातन प्रवन्ध संग्रह' के दोनों छन्द 'पृथ्वीराज रासो' में भी प्राप्त हो जाते है। कैंमास वध कथा भी प्रायः 'रासो' के समस्त संस्करणों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। इससे कैंमास-वध आख्यान की सत्यता एवं प्राचीनता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता। 'मुहणोत नैणसी की ख्यात' में भी इसी प्रकार की कथा का उल्लेख प्राप्त होता है—'राजा पृथ्वीराज चौहान की रानी सुहवदे जोइयाणी अपने पति से रूठ कर पिता के घर आन वैठी, उसके पिता ने खाटू (गांव) की पहाड़ी पर पुत्री के लिए एक महल बनवा दिया। वह इतना ऊँचा था कि उसमें जलता हुआ दीपक अजमेर से नजर आता था। जोइयाणी की आशनाई गुंदलराव से हो गई। गुंदल ने अपने गांव से उस महल तक एक सुरंग (गुप्त मार्ग) खुदवाई, जिससे होकर वह जोइयाणी के महल में आया-जाया करता था। एक बार पृथ्वीराज की दूसरी राणी अजयदेवी दहिमाणी ने उस दीपक को देख कर अनुमान वांधा कि वहाँ अवश्य कोई मर्द आता-जाता होगा और उसने यह बात पति को कही, तब अपनी चौकी के घोड़े पर सवार होकर पृथ्वीराज अचानक सुहवदे के महल की ड्योढ़ी पर जा पहुंचा और घोड़े से उतर पड़ा। द्वारपाल ने राणी के पास खबर पहुंचाई इतने में तो 'पृथ्वीराज' भी महल में पहुंच गया। गुंदलराव तो तत्काल सुरंग के मार्ग से चलता बना परन्तु उसके पांव का जोड़ा वहीं रह गया। प्रभात को जब पृथ्वीराज ने वह जोड़ा देखा तो सुहवदे से पूछा कि यह किसका है और यहाँ कौन मर्द आता है। थोड़ी देर तक तो वह टाल-मटोल का उत्तर देती रही परन्तु जब देखा कि सच कहे विना चलेगा नहीं तो स्पष्ट कह दिया कि यहाँ गुंदलराव खींची आता है। यह सुनकर पृथ्वीराज पीछा अजमेर को लौट आया और दूसरे

---

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और रचना तिथि, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ९५५, सन् १९५९।

ही दिन दाहिम चामण्डराय को फौज देकर जमाल की तरफ गोरियों पर विदा किया।"
उपर्युक्त कथा में भी गुइंदराव खींची पृथ्वीराज का सामन्त है। अतः इससे प्रमाणित होता है, कि जन परम्परा से यह बात प्रचलित थी कि पृथ्वीराज चौहान की किसी रानी अथवा प्रेयसी का अनुचित सम्बन्ध, उसके किसी सामन्त से था तथा उसने उसे या तो मार दिया था अथवा मार डालने का प्रयत्न किया था।

खेमकरन खंगार, वीरसिंह तथा जरासिंह—'पृथ्वीराज रासो' के कथानुसार उपर्युक्त तीनों आबूपति सलषराज के सामन्त थे जो भोलाराय भीमदेव चालुक्य से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे।[1] इतना ही नहीं साथ में आबूपति सलषराज भी इसी युद्ध में पराभव को प्राप्त हुए। रासो के लघु तथा लघुतम रूपान्तर इनके विषय में मौन हैं। इतिहास में इनका अस्तित्व प्राप्त नहीं होता है।

गोविन्दराय गहलोत—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार यह पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) का सामन्त था तथा इसकी गणना उनके प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ सामन्तों में होती थी। गोविन्दराय गहलोत को सम्पूर्ण रासो में कई नामों से सम्बोधित किया गया है—गोविन्दराव, गोविन्दराय गोविन्दराज। यह गुहिलोत वंश का क्षत्री था, अतएव गुहिलोत राजवंशी उपाधि 'आहुट्ट' भी इसको प्राप्त थी।[2] पृथ्वीराज चौहान ने गोविन्दराय गहलोत को अन्य राजाओं के साथ अपनी बहिन पृथाबाई के विवाह में रावल समरसिंह को भी दहेज में दिया था।[3] इसी गोविन्दराय गहलोत ने दो बार शाह शहाबुद्दीन गोरी को बन्दी बनाया था।[4] 'रेवातट समय २७' में गोविन्दराय गहलोत की मृत्यु का वर्णन इस प्रकार से प्राप्त होता है—"तब खिलजी खां तलवार रोक कर खड़ा हुआ तब यवन सेना समुद्र की भांति गर्जना करने लगी। हाथी तथा घोड़ों की विशाल लहरों के समान आते देखकर गहलौत गोइंद ने अपने को युद्ध में तत्पर होने के लिए तैयार किया। अगम्य एवं अभग जलधार के समान वीर आगे बढ़े तथा अत्यधिक दलबल से आहुट्टि को लज्जित कर प्रवाहित कर दिया अर्थात् उसे मार डाला। यद्यपि उसका पृथ्वी का राज्य चला गया किन्तु फिर भी वह राजा होने से न रह सका। उसके बदन में धूलि नहीं लगी, वह रज-रज हो गया। अप्सराओं ने उसे गोद में ले लिया तथा देवताओं के विमान पर चढ़कर वह (स्वर्गलोक) चला गया।"[5]

---

१. श्री रामनारायण दूगड़, मुहणोत नेणसी की ख्यात, प्रथम भाग, पृ० १८४-८८, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० १९८२।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०७, स० १२।
३. "गोइंद राजा आहुट्टपति"
४. "दियौ राज गोइंद दियं सीस हथ्थौ महा तेज ताजं"। छं० १०८, स० २१।
५. गोयंदराय गहिलौत नेस। जिन रोय फेर मग्गन गहेस। छं० ९३८, स० २१। तथा छं० ९३८, स० ६१।

लग्ग हट्किक जुट्टिक्क, जमन सेन समुंद गजि ।
हय गय वर हिल्लोर, गरुअ गोइंद दिप्पि सजि ॥
अगम अठेल अभग, नीर असि मीर समाहिय ।
अति दल बल आहुट्टि, पच्छ लज्जी परवाहिय ॥
रज तज्ज मुक्कि न रहयौ, रज न लगो रज रज भयौ ।
उच्छंगन अच्छर सों लयौ, देव विमानन चढ़ि गयौ ॥छं० १००।[1]

गोविन्दराय की मृत्यु का वर्णन उपरोक्त कवित्त में स्पष्ट रूप से हुआ है किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि यह प्रसिद्ध गोविन्दराय गहलोत न था वरन् उसका कोई भाई अथवा सम्बन्धी रहा होगा, क्योंकि प्रसिद्ध गोविन्दराय हमें 'कनवज्ज समय ६१' में पुनः पंगराज से युद्ध करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यह भी असंभव नहीं कि उपरोक्त छन्द क्षेपक हो। गोविन्दराव गहिलौत संयोगिता अपहरण के अवसर पर महाराज पृथ्वीराज चौहान के साथ था।[2] चन्द वरदायी ने इसकी अपार प्रशंसा की है।[3] अन्त में संयोगिता अपहरण के अवसर पर होने वाले संग्राम में गोविन्दराय, लोहाना आजानबाहु के मृत्यु के उपरान्त युद्ध भूमि की ओर अग्रसर हुआ तथा विपक्षी दल के अनेक सामन्तों का संहार करके वीरगति को प्राप्त हुआ—

उठे हक्कि करि क्षारि फोपेज डांक ।
हये च्चार मीरं दुवाहंड ढालं ॥
उरं लग्गि जंबूर आरास बानं ।
पर्‌यो राव गोयंद दिल्ली भुजान ॥छं० १४७२।[4]

महाकवि चन्द ने गहलोत की वीरता का वर्णन इस प्रकार किया है—

पहर एक असिवर सुनर । आरिसि बुद्‌ढी सार ।
जिनैं फौन गोयंद सिर । जे पग तुट्टिय धार ॥ छं० १४७३ ।
तब गरज्यो गहिलौत । पत्ति पाहार धार चढ़ि ।
वड़वानल असि तेज । पंग पारस संमुह चढ़ि ॥
अरि अबुझ्झ सिप्पवं । मस्त्र बच्ची तन झिल्लै ॥
अंकै मरन समूह । सस्त्र वर सस्त्रन छिल्लै ।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १००, स० २७ ।
२. मतो गरुअ गोयंद कहि । वर दिल्ली सुर पान ।
हय्य थोर बिरुझाइ चलि । धर लग्गै सुरतान ॥स० ६१ ।
३. गुरु राव गोयंद वदं सु इंदं । मुतं मडलीकं सबै सेन चंदं ॥ छं० १११, स० ६१ ।
४. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४७२, स० ६१ ।

आवृत घाय तन सब्बरिय । मन उच्चारि निन तन दन्ति ।
गोयंदराय आहुट्ठ पति । सुगति मग्ग [illegible] [illegible] ॥ [illegible]

वह पृथ्वीराज चौहान के बहनोई समरसिंह गुहिलोत का निकट सम्बन्धी रहा होगा। इलियट महोदय ने लिखा है कि "उसने पृथ्वीराज की बहिन से विवाह किया था।"[2] इलियट महोदय ने समरसिंह गुहिलोत तथा गोविन्द गुहिलोत नामों को समझने में भूल कर दी है। इसी से भ्रमवश उन्होंने ऐसा लिख दिया है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त गोविन्दराय गहलोत की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए लिखते है कि— 'कहा गया है कि यह पृथ्वीराज का एक प्रमुख सामन्त था, जो [illegible] युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ा था। यह पृथ्वीराज के साथ कन्नौज के जयचन्द-पृथ्वीराज के युद्ध में तथा बाद में शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में भी था, वह [illegible] का रक्षक था। 'तबकात-ए-नासिरी' के अनुसार दिल्ली का गोइंदराज शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ा था। 'जांगल' नाम के कई प्रदेश थे, 'कुरु जांगल', दिल्ली का ही एक प्रान्त था। सपादलक्ष प्रदेश का भी एक अन्य नाम 'जांगल' था। पृथ्वीराज इन दोनों प्रदेशों का शासक था, किन्तु 'रासो' में यह गोइंदराय [illegible], 'जगल हवास कालिदी कूल' इसलिए यह स्पष्ट है कि वह 'कुरु जांगल' का ही रक्षक था। फलतः 'तबकात-ए-नासिरी' से रासो के कथन का समर्थन होता है।'[3] गोइंदराय गहलोत की पुष्टि तबकात-ए-नासिरी से हो जाती है।[4] यद्यपि अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ गोविन्दराय गहलोत के विषय में मौन है, फिर भी इसकी ऐतिहासिकता में अधिक सन्देह नहीं किया जा सकता।

चण्डपुण्डीर—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चण्डपुण्डीर, पृथ्वीराज का [illegible] था। चण्डपुण्डीर रेवातट समय में पृथ्वीराज चौहान द्वारा नियुक्त लाहौर का शासक कहा गया है।[5]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० [illegible], छं० [illegible]।
२ Elliot, Races of N. W. Provinces of India, Vol. I, Page 9[illegible].
३. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और रचना तिथि, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ९४५, अक्टूबर १९५९।
४. इलियट और डाउसन, मिनहाजुस्सिराज, तबकात-ए-नासिरी, भाग २, पृ० [illegible]।
५. 'रासो के रेवातट सम्यौ में चन्दपुण्डीर को पृथ्वीराज द्वारा नियुक्त लाहौर का शासक कहा गया है। लाहौर नगर और दुर्ग पर फारसी इतिहासकार, मुस्लिम अधिकार [illegible] हैं। अन्य विश्वस्त सूत्रों के अभाव में हम दो सम्भावनाएं [illegible] कर सकते हैं कि या तो लाहौर नगर और दुर्ग पर कुछ समय के लिए पृथ्वीराज का अधिकार हो गया था या इस सम्यौ में वर्णित लाहौर से नगर का अर्थ न लेकर 'लाहौर' शब्द [illegible]

लाहौर के मालक चण्डपुण्डीर ने महाराज पृथ्वीराज को एक पत्र लिख कर दूत द्वारा भेजा, इसमें उसने लिखा था कि "खां तातार मारुफ खां ने शाह गोरी के हाथ से पान ग्रहण किया है। चौहानों को उखाड़ फेंकने के लिए वायु में बाजे बज रहे है। हे राजन ! गोरी के सेनापति तातार मारुफ खां ने ढोल बजा कर सारी तैयारी कर ली है तथा उसकी चतुरंगिणी सेना हम लोगों पर आक्रमण करने के लिए प्रस्तुत है। भयंकर आक्रमण करने की इच्छा से खानों ने अपने घोड़ों पर जीन कस ली है।"

> षां ततार मारुफ षां, लिये पांन कर साहि।
> धर चहुआंनो उप्परं, बज्जा बज्जन वाई ॥ छं० १४।
> श्रोतं नृपय गोरिय वर मरं, बज्जाइ सज्जाइने।
> सा सेना चतुरग बंधि उलल, ततार मारुफय ॥
> तुज्झी सारस उप्परा वसरसी, पल्लानयं पानयं।
> एकं जीव सहाव साहि न नयं, बीयं स्तय सेनय ॥ छं० १५।[1]

महाराज पृथ्वीराज ने चण्डपुण्डीर द्वारा प्रेषित पत्र को प्रमाण मान कर अपने श्रेष्ठ सामन्तों से परामर्श किया, जिससे हिन्दू सेना में तैयारी होने लगी।[2] इसी समय एक अन्य दूत ने आकर सूचना दी कि गोरी ने चिनाव नदी पार कर ली है तथा वीर चण्डपुण्डीर गोरी का सामना करने के लिए नदी के किनारे पहुंच गया है।" जहां पर गोरी के सेना नायकों ने चिनाव नदी पार की, वहीं पुण्डीर बरछी गाड़े हुआ डटा हुआ था। शाहबुद्दीन गोरी ने हाथियों की सेना तैयार की है तथा तदुपरान्त समस्त सैनिक आपस में धक्का-मुक्की करते हुए अग्रसर हुए। दोनों दलों ने अपने-अपने धर्म का नाम लिया तथा टेढ़ी तलवारें खींच ली।[3]

चण्डपुण्डीर और गोरी के इस विषम युद्ध में पुण्डीर के पांच बान्धवों के मरने पर उसने सामना करना छोड़ दिया तथा तभी गोरी चिनाव नदी पार कर सका।[4] दूत द्वारा

होगा; आधुनिक काल में जिस प्रकार लाहौर नगर और उस प्रदेश का थोड़ा भाग पाकिस्तान में है तथा उक्त प्रदेश का अधिक भाग हिन्दुस्तान में कुछ ऐसी परिस्थित उस समय भी रही होगी।" डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, परिशिष्ट भाग, पृ० १६५।

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, छं० १४-१५, स० २७।
२. मनो कूह दल हिन्दु के कसे सनाह सनाह।
   वर चिराक दस सहस मइ. बजि निसांन अरि दाह ॥ छ० ३९, स० २७।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४७-५१, स० २७।
४. उतरि साहि चिन्हाव, धाय पुंडीर लुध्यि पर।
   उप्पारयो वर चन्द, पंच बंधव सुपव्व्य धर ॥ छं० ५२, स० २७।

पृथ्वीराज ने चण्डपुण्डीर तथा गोरी के युद्ध का [illegible] समाचार पाकर अपनी सेना को कूच करने की आज्ञा दे दी। पृथ्वीराज की सहायता मिलने पर चण्डपुण्डीर ने [illegible] गोरी की सेना पर पुनः वार करने प्रारंभ किये, जिससे गोरी की सेना व्याकुल होकर भाग खड़ी हुई—

छट्टि अद्ध वरघटिय, चट्यौ मध्यांन भान गिर।
सूर कंध वर कट्टि, मिले कायर कुरंग डर॥
धरी अद्ध वर अद्ध, लोह सौं लोह जु लग्गे।
मन अग्गै अरि मिले, चित्त में कक धरक्के॥
पुण्डीर नीर भजर निरन, लरन तिरच्छौ लग्गयौ।
नव वधू जेम संका सुघर, उदौ जानि जिमि सग्गयौ॥ [illegible][1]

इसके अतिरिक्त वीर चण्डपुण्डीर पृथ्वीराज की ओर से कन्नौज के युद्ध में भी [illegible] दिखाई देता है। कन्नौज में महाराज जयचन्द की असंख्य सेना पृथ्वीराज और [illegible] समस्त सामन्तों को घेरे हुए युद्ध कर रही थी। इसी बीच [illegible] विवाह सम्पन्न हो गया। पृथ्वीराज ने संयोगिता से अपने साथ चलने के लिए [illegible][2] संयोगिता ने अपने पिता पंगराज के बल तथा पराक्रम का विचार कर [illegible] का अनुभव किया।[3] उसकी ऐसी स्थिति देखकर अन्य सामन्तों के साथ ही चण्डपुण्डीर ने उत्साह एवं गर्व पूर्ण वाक्यों से प्रबोधा। चण्डपुण्डीर ने संयोगिता को [illegible] दिया कि जब तक हमारे साथ निड्डुरराय जैसे सामन्त हैं, तब तक तुम्हें चलने में संकोच न करना चाहिए—

कहै चंद पुंडीर। सूर नहि सूर परप्पर॥
चास लगै नन सस्त्र। मजै आभग मंत्र वर॥
पग पान युद्दंत। तम नज्जंन [illegible] पर॥
प्रथी जेम बल अवन। संग चतुरंगी निड्डुर॥
निमषेक निकष पर [illegible] को। [illegible]।
असि प्रान मान सामन्त को। नृप सुंदरि जन लिखि [illegible]
तब कहि चन्द पुण्डीर। मतो सुनि [illegible]।
लष्प एक लरियई। एक [illegible]॥
बल अगनित अति जुद्ध। [illegible]।
दाधा नल सामंत। [illegible]॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७२, स० ६३।
२. वही, छं० १२७६-८०, स० ६१।
३. वही, छं० १२८१-८७, स० ६१।

दंतोरि ढाल गजदंत कटि। फवल पोर फन्ह हत्ति वर।
नव्वं सु बाजि गम भीम दुत्ति। पग सेन प्रथिराज नर ॥ छं० १३१२।[1]

योद्धाओं के ऐसे उत्साह एवं साहस पूर्ण वाक्यों को सुन कर संयोगिता चलने के लिए तैयार हो गई तथा पृथ्वीराज ने उसे अपने घोड़े पर बैठा लिया।[2] पृथ्वीराज की ओर से इस संग्राम में नरसिंह के मारे जाने के उपरांत वीर चण्डपुण्डीर ने विपक्षी दल के कमोंद का सामना किया तथा अपार साहस एवं पराक्रम का प्रदर्शन करके स्वामि-धर्म हेतु वीरगति को प्राप्त हुआ—

धोर नीर कामोद। आय जध पुंडिर उप्पर।
विहय तेज उम्मारि। बाहि निजझाहि चंद उर ॥
सेल-सेल समुहिय। हड्ड भजिय हिय चपिय।
मुधर ढार निझ्झार। बाहि असुराइन कपिय ॥
पुंडीर राइ आसर समन। भूत जिम नंचिय समर।
दल पति पंग पुंडीर परि। जय जय सुर सद्दे अमर ॥छं० १४८७।[3]

चामण्डराय दाहिम—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार चामण्डराय दाहिम दाहिमराज का छोटा पुत्र तथा चण्डपुण्डीर एवं कैमास का भाई था।[4] देवागिरि सम्यो के अनुसार पृथ्वीराज चौहान ने देवगिरी के राजा की पुत्री शशिवृता का अपहरण कर उससे विवाह किया। इसके फलस्वरूप पृथ्वीराज के सेनापति चामण्डराय की अध्यक्षता में देवगिरी के राजा ने जयचंद गाहड़वाल की संयुक्त वाहनी से युद्ध किया। युद्ध में चामण्डराय की विजय हुई।[5] चामण्डराय पृथ्वीराज चौहान का सेनापति था। रासो के 'विवाह सम्यो ६५' में वर्णित है कि तेरह वर्ष की अवस्था में दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान ने सेनापति चामण्डराय की बहिन से विवाह किया था। इस विवाह का विस्तृत अथवा संक्षिप्त विवरण अन्य किसी समय (अध्याय) में नहीं है।[6] चामण्डराय की बहिन दाहिमी के गर्भ से ही पृथ्वीराज के पुत्र रयनसी ने जन्म ग्रहण किया था। 'कैमास वध नाम प्रस्ताव ५७' में लिखा है कि भानजे रयनकुमार तथा मामा चामण्डराय में परस्पर अत्यन्त प्रीति थी—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १२९८ तथा १३१२, स० ६१।
२. वही, छं० १३१५-२२, स० ६१।
३. वही, छं० १४८७, स० ६१।
४. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १०, स० १६।
५. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, देवगिरी सम्यो २९।
६. ना पाई दाहिमी। राय डाहर की कन्या ॥ छं० १, स० ६५।

दिल्ली वै चहुआन । तपै अति तेज पग्ग पर।
चंपि देस बस सीम । गजि अरि निलय धनुद्धर ॥
रयन कुमार अति तेज । रोहि हय पिट्ठ विसम ।
साथ राय चामंड । करै फलि किस्ति असम ॥
मेवास वास गंजै द्रुगम । नेह नेह बढ्ढै अनत ।
मातुलह नेह भानेज पर । भागनेय मातुल गुरत्त ॥ छं० १।[1]

और उनकी इस प्रगाढ़ प्रीति को लक्ष करके चण्टपुंडीरने पृथ्वीराज चौहान से चामण्ड-राय के विरुद्ध कान भरे।[2] एक दिन महाराज पृथ्वीराज का हाथी अपने स्थान से छूट गया तथा सारे शहर म उत्पात मचा दिया। शांति स्थापित करने के उद्देश्य से वीर चामण्डराय ने उस हाथी को मार गिराया।[3] पृथ्वीराज एक तो चामण्डराय के विरुद्ध कान भरने के फलस्वरूप पहले से क्रुद्ध थे, दूसरे उनके प्रिय हाथी की हत्या के विषय में सुन कर उनके क्रोध का पारावार न रहा तथा उन्होंने क्रुध होकर सेनापति चामण्डराय को बन्दी बनाने की, कठोर आज्ञा प्रदान की।[4] सेनापति चामण्डराय ने अपने को निर्दोष मानते हुए भी स्वामी की आज्ञा से बेड़ियाँ धारण कर लीं।[5]

'बड़ी लड़ाई से प्रस्ताव ६६' के अन्तर्गत पढ़ते है, कि रावल समरसिंह के समझाने पर पृथ्वीराज चौहान, चामण्डराय को मुक्त करने के लिए राजी हो गया तथा चामण्डराय की बेड़ी उतारने के लिए स्वयं उसके घर गया।[6] कवि चन्द ने नाना प्रकार से समझाने के फलस्वरूप चामण्डराय बेड़ियाँ उतारने के लिए तैयार हुआ तथा कवि द्वारा 'पारस पेरो लोन, गले तोष नृप आन की' आदि शब्द द्वारा उसे सावधान कर दिया। चामण्डराय के मुक्त

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १, स० ५७।
२. वही, छं० २, स० ५७।
३. वही, छं० २४-२५, स० ५७।
४. वही, छं० २७, स० ५७।
५. बंदि लई चामंड ने । बेरी सम्हो हथ्थ ।
सास ध्रम्म जुग रप्पयो । जीरन जग्ग सु कथ्थ ॥ छं० ३२।
यों घल्ली चामंड पय । ज्यो मद मत्त गयंद ।
लाज राज अकुंसन मिटि । पनि दाहिम्म मरिंद ॥ छं० ३३।
यो अग्या प्रथिराज की । मनो दाहिम इंद ॥
ज्यों सुनि संमह गारुडी । मानत आन फुनिंद ॥ छं० ३४, स० ५७।
६. इक सुरतान अवाज सुनि, विय राजन घर जाय ।
हूं आनन्द बधाइयो । हूं घर चामंड राइ ॥ छं० १९८, स० ६६।

होने से सर्वत्र उत्सव मनाये गये। पृथ्वीराज ने इस शुभ अवसर पर अपनी तलवार, सिरोपाव तथा अनेक अन्य इनाम देकर उसे सम्मानित किया—

> छोरि तेग नृप अप्पकर। अप्पी अयुधनि सूर।
> ले चामण्ड सु बधि द्रिढ़। तू घर रठ्यन नूर ॥ छं० ४०१।
> डेढ़ हजार तुरग वर। हसती तेरह तीन।
> मुत्तिय माल सुरंग दस। राजन अप्पि नवीन ॥ छं० ४०५।
> चीर पटम्बर फेरि सिर। बज्जा बज्जन वग्ग।
> वर वरदाह वरद्दिया। बोल समंगल लग्ग ॥ छं० ४०६।[1]

'अन्तिम युद्ध प्रस्ताव' के अन्तर्गत गजनीपति शाह शाहाबुद्दीन गोरी द्वारा दिल्ली पर आक्रमण करने पर वीर चामण्डराय ने पृथ्वीराज की ओर से यवन सेना का सामना करके विपक्षियों के छक्के छुटा दिये। विषम मारकाट करने के उपरान्त गोरी की ओर से मियां मनसूर सहिल्ला नामक यवन सरदार सेनापति चामण्डराय का सामना करने के लिए अग्रसर हुआ। वीर चामण्डराय तथा मनसूर सहिल्ला का द्वंद्व-युद्ध हुआ जिसमें दोनों ही योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए—

> च्यारि सहस असवार। मद्धि चामंड दहिम्मो।
> चौदह से मफरद्द। मियां मनसूर सहिल्लो ॥
> हूह हक्क हिलकार। सीस तुट्टहि धर धावहि।
> आनंदित अपछरा। आज इच्छायर पावहि ॥
> चावंड राइ दाहर तनय। हर हारावलि सट्ठयौ।
> मफरद्द पान पीरोज सुअ। तेज वत मिस्तिहि गयौ ॥छं०१२३३।[2]

वीर चामण्डराय को 'आल्हा' के भूमिकाकार ने 'चौड़ा ब्राह्मण' लिखा है। "इन्द्रदत्त ब्राह्मण बकरना में रहता था, उस गुणी ब्राह्मण के दो पुत्र थे (१) सूर्यमणि (२) चामुण्ड दोनों देवी जी के उपासक थे, पांच वर्ष की पूजा से प्रसन्न हो देवी जी ने आकाशवाणी द्वारा कहा कि ब्राह्मणों, अब तुम दोनों से हम प्रसन्न है, इच्छानुसार वरदान मांगो। यह सुनकर सूर्यमणि ने यह वर मांगा कि हे भगवती ! हमको राजधन और यश से परिपूर्ण करो, देवी ने कहा एवमस्तु। चामुंड ने कहा, हे भगवती ! मैं कुछ दिन और पूजन करके वर मांगूगा, यह कह बड़े प्रेम से देवी जी का पूजन करने लगा, सूर्यमणि को व्याघ्रवंशी महाराज रींवा नरेश ने बुलाकर आदर पूर्वक बहुत सा धन दे अपना पुरोहित नियत कर राज्य के उत्तम अधिकार दिया, दो वर्ष के उपरान्त देवी ने चामुण्ड से कहा कि हे विप्र ! अब वर मांगों, तब चामुण्ड ने कहा हे भगवति, रण में विजय, युद्ध के कुशलता और अमरतत्व प्रदान कीजिए तब देवी जी ने कहा कि तुम युद्ध में कुशल होगे, अपने से समान वालों के साथ युद्ध करके विजयी और योद्धाओं में श्रेष्ठ होगे परन्तु अमरतत्व संसार में दुर्लभ है। रण में सब शत्रु तुम्हारे

---

१. पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४०१-४०६, स० ६६।
२. वही, छं० १२३३, स० ६६।

हाथ से मारे जायंगे परन्तु तुम्हारी मृत्यु देशराज के पुत्र (आल्हा) के हाथ से होगी। यह कह कर देवी जी अन्तर्ध्यान हो गई। चामुंड वीर अपने घर आया।'[1]

'आल्हा' के उक्त कथन की पुष्टि 'बलभद्र विलास' नामक ग्रन्थ से भी हो जाती है। 'बलभद्र विलास' के अनुसार चामण्डराय जाति का ब्राह्मण तथा दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान का सेना नायक था।[2]

पृथ्वीराज रासो, आल्ह खण्ड तथा बलभद्र विलास में वर्णित चामण्डराय दाहिमा के विवेचन में पर्याप्त भेद है। 'रासो' के अनुसार चामण्डराय दाहिमा वंशी क्षत्रिय था। सम्भव है, चामण्डराय नाम का कोई अन्य ब्राह्मण भी पृथ्वीराज चौहान के राज दरबार में रहा हो, जिसका वर्णन आल्हा खण्ड तथा बलभद्र विलास में प्राप्त होता है। रासो का चामण्डराय दाहिमा वंशी क्षत्री ही था। रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन के पृथ्वीराज रासो के मध्ययम संस्करण के अनुसार भी चामण्डराय दाहिमा वंशी क्षत्री था।[3]

छग्गनराय—पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर छग्गनराय [illegible] था तथा पराक्रमी योद्धा होने के कारण इसकी गणना महाराज पृथ्वीराज चौहान के प्रसिद्ध सामन्तों में होती थी। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी युद्ध में वीर छग्गनराय भी साथ में था। वीर 'बलरेत' के मारे जाने के उपरान्त पराक्रमी छग्गनराय ने शत्रु दल का सामना किया तथा इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ—"वीर छग्गन का घोड़ा कट जाने पर वह पैदल होकर युद्ध करने लगा, पैर कट जाने पर उसने हाथों से शत्रु सेना को नष्ट कर दिया, हाथ कट जाने पर उसका सिर भिड़ पड़ा तथा सिर कट जाने पर उसके धड़ ने तब-तक [illegible] जब-तक कि वह छिन्न-भिन्न नहीं हो गया। देवता मनुष्य तथा नाग उसको धन्यवाद कर रहे

---

१. पं० नारायणप्रसाद सीताराम, आल्हा की भूमिका, पृ० २५-२६, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई।

२. सर्वेषां त्वमरीणां च रणे मृत्युर्भविष्यति।
देशराजात्मजं प्राप्य भवान्गन्ता यमक्षयम्।४।
ततो नृपस्तत्कुशलं विदित्वा कृतादरं तं निजपुरं [illegible]।
ददौनियासंकतिचिह्नानिविचारयंस्तद्गुणकर्मशीलम्।५।
निरीक्ष्य विप्रारणभूजयत्व तथा समालक्ष्य वरं [illegible]।
सम्मंत्र्यसर्वैः प्रददौविलोचयराजन्सत स्वमनिश भूमि [illegible]।६।
अथ प्रजानामधिपस्त्वसैन्यमाहूय सर्वं वचसा समूचे।
मयाद्विजोऽयंनवदाधिपत्येप्रवर्तितोयः सन्मानमीयः।७।
—बलभद्र विलास, पृ० ४०।

३. पृथ्वीराज रासो, रा० ए० सो० लन्दन, हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति [illegible] समय २९।

है।''' इस प्रकार इस वीर ने स्वामि धर्म हेतु अपूर्व पराक्रम दिखा कर अपना शरीर छिन्न-भिन्न कर कटवा दिया तथा अन्त में मोक्ष पद को प्राप्त किया। इसके विषय में इतिहास सर्वथा मौन है।

जंघारा भीम²—पृथ्वीराज रासो के अनुसार जंघारा भीम पृथ्वीराज चौहान का प्रसिद्ध सामन्त था। जंघारा भीम महाराज पृथ्वीराज के सहयोगी के रूप में दिखाई देता है। 'रेवातट समय २७' में जब शाह शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया तब वीर जंघारा भीम का युद्ध एवं पराक्रम देखते ही बनता है—'जंघार, योगियों में योगीन्द्र के समान दिखाई दिया। उसके हाथ में खुली हुई कटार थी, एक हाथ में फरसा, पीठ पर ऊँचा त्रिशूल तथा बाघम्बर पहने हुए था। सर पर जटाएं बांधे, बाण तथा सिंगी बाजा लिए तथा शरीर पर भभूत लगाये हुए, वह साक्षात शिव की भांति लगता था। उसने मंत्रों द्वारा विषम मद से सबके अपनी बाहु फैला दी। वह स्वर्ग लोक में मृत्यु होने पर अप्सरी अर्थात् योगियों की पंक्ति में देखा जा सकता है, उसके मस्तक पर अमरत्व प्रदान करने वाला अमृत से युक्त

---

१. हय कट्टत न मर्यौ। भये मुनयन पतडूयौ।
पय कट्टत कर मर्यौ। करहि सब सैन समिडूयौ।
कर कट्टत सिर भिडूयौ। जिन्ह कबन्ध होय जुडूयौ।
सिर तुट्टत धर मर्यौ। धन्ह तिलतिल होय तुटूयौ॥

धर तुट्टि तुट्टि कवि चन्द कहि। योगन्नीन विथ्यौ सरन।
सुर नरह नाग अस्तुति करहि। कलि बलि बलि छग्गन मरन॥ छं० २२९४, स० ६१।

लरि छग्गन छयौ सुनहु। लियौ सु हूर विमान।
जिन झुझत निरखै नर्यौ। जहां कोत चहुआन॥ छं० २२९६, स० ६१।

—चन्दबरदाई, पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

२. जंघारा—यह रुहेलखंड के दक्षिण पूर्व के तुअर वंशी राजपूतों की एक बड़ी और लड़ाकू जाति है। भूर और तरई अँधारे इसकी दो शाखाएं हैं। पृथ्वीराज की अध्यक्षता में ये इस देश में आकर बसे थे। पृथ्वीराज की वीरता और बदायूँ के नायक से मोर्चा लेने पर इनकी अनेक कविताएँ सुनी जाती हैं। एक समय कोइल (अलीगढ़) के समीप ये बड़े शक्तिशाली थे और इनकी चार मिल चौरासियाँ थीं। पुंडीरों के साथ इनके बराबर के सम्बन्ध होते हैं। ये अपनी लड़कियाँ चौहानों और बड़गूजरों को देते हैं तथा गौड़, जैन और गुहिलौतों की लड़कियाँ पाते हैं। Elliot, Races of North-west Provinces of India, Vol. I, Page 141 तथा डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, पृ० १०३।

चन्द्रमा शोभायमान है। राम तथा रावण के संग्राम के उपरान्त ऐसा युद्ध संसार में नहीं हुआ था।[1]

'रेवातट समय' के अन्तर्गत ही लिखा है कि "एक पहर दिन चढ़ने पर वीर जंघारा युद्ध भूमि में कूदा किन्तु मीर से युद्ध करके, वह जलते हुए बाण सदृश्य पृथ्वी पर गिर पड़ा अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हुआ—

जाम एक दिन चढ़त वर, जंघारौ झुकि वीर।
तीर जेम तत्तौ पर्यौ, धर अब्बारे मीर॥ छं० ११२।[2]

उपर्युक्त छंद से स्पष्ट हो जाता है कि जंघारा भीम इस संग्राम में मारा गया था, किन्तु हम उसे पुनः संयोगिता अपहरण सम्बन्धी संग्राम में युद्ध करते हुए पाते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जंघारा भीम उक्त युद्ध में वीरगति को प्राप्त नहीं हुआ होगा, वरन् बुरी तरह घायल हो गया होगा।

वीर जंघारा भीम पृथ्वीराज के साथ कन्नौज गया था तथा संयोगिता को दिल्ली लाते समय अपार पराक्रम दिखा कर वीरगति को प्राप्त हुआ था—

घरिय च्यार रवि रत्त। पंग दल बल आहट्यौ।
तब जंघारौ भीम। भ्रमं स्वामित तन तुट्यौ॥
सगर गौर सिर मौर। रेह रष्षिय अजमेरिय।
उड़त हंस आकास। दिट्ठ घन अच्छरि घेरिय॥
जंघार सूर अवधूत मन। असि विभूति अंगह घसिय।
पुच्छ्यो सुजान त्रिभुवन सकल। को सु लोक लोकें वसिय॥छं २४५४।[3]

इतिहास एवं सिलालेखों से वीर जंघारा भीम की पुष्टि नहीं होती है। अतः इनकी ऐतिहासिकता संदिग्ध ही कही जावेगी।

जसवन्तसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के 'लोहाना आजानबाहु समय ४' के अन्तर्गत जसवन्त-

---

१. जघारौ जोगी जुगिंद, कढ़्यौ कट्टारौ।
फरस पानि तुंगी त्रिसूल, पष्षर अधिकारौ॥
जटत बांन सिंगी विभूत, हर बर हर सारौ।
सबर सद्द बद्द्यौ, विषम दग्गं घन झारौ॥
आसन सदिट्ठ निज पत्ति में, लिय सिर चन्द अभ्रित अमर।
मडलीक रांम रावत भिरत, न भौ वीर इत्तौ समर॥ छं० ११३, स० २७।
—पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ११२, स० २७।

३. वही, छं० २४५४, स० ६१।

[illegible] रूप धारण [illegible] हेतु उन्होंने पलायन किया कर अपना शरीर छिन्न-[illegible] किया [illegible] में [illegible] को प्राप्त किया। इनके विषय में [illegible] [illegible] है।

जयारा भील'—पृथ्वीराज रासो के अनुसार जयारा भील पृथ्वीराज चौहान का प्रसिद्ध [illegible] था। जयारा भील [illegible] पृथ्वीराज के सहयोगी के रूप में दिखाई देता है। 'रेवातट समय' [illegible] के जब [illegible] शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया तब वीर जयारा भील का [illegible] देखते ही बनता है—'जयारा, योद्धाओं में योगीन्द्र के समान दिखाई दिया। उसके [illegible] में बँधी हुई कटार थी, एक हाथ में फरसा, पीठ पर ऊँचा त्रिशूल तथा [illegible] धारण किये हुए था। सिर पर जटाएँ बाँधे, डमरू तथा सिंगी बाजा लिए तथा शरीर पर [illegible] लगाये हुए, वह साक्षात् शिव की भाँति लगता था। उसने मंत्रों द्वारा विषम मद के [illegible] दिया था। वह स्वर्ग लोक में मृत्यु होने पर अपनी अर्थात् योगियों की [illegible] में देखा जा सकता है, उसके मस्तक पर अमरत्व प्रदान करने वाला अमृत से युक्त

---

१. [illegible] मयो। [illegible] पलट्यो।
[illegible] करहि [illegible] मनिट्यो।
[illegible] होय फुट्यो।
[illegible] तिलतिल होय तुट्यो॥

[illegible] रोम-रोम [illegible] सरन।
[illegible] अंगुलि [illegible] मदन॥ छं० २२१४, स० ६१।

[illegible] हूर विमान।
[illegible] कोस [illegible]॥ छं० २२१६, स० ६१।

—चन्दबरदायी, पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

२. [illegible]—यह [illegible] के दक्षिण पूर्व के [illegible] वंशी राजपूतों की एक बड़ी और लड़ाकू जाति है। [illegible] और तराई [illegible] इनकी दो शाखाएँ हैं। पृथ्वीराज की अध्यक्षता में ये इस देश में आकर बसे थे। पृथ्वीराज की वीरता और [illegible] के नायक से [illegible] लेने पर इनकी अनेक कविताएँ सुनी जाती हैं। एक समय कोइल (अलीगढ़) के [illegible] ये बड़े शक्तिशाली थे और इनकी चार [illegible] चौरासियाँ थीं। पुंडीरों के साथ इनके बराबर के सम्बन्ध होते हैं। ये अपनी लड़कियाँ चौहानों और बड़गूजरों को देते हैं तथा [illegible], [illegible] और [illegible] की लड़कियाँ पाते हैं। Elliot, Races of North-west Provinces of India, Vol. I, Page 141 तथा डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, रेवातट समय पृ० १०३।

चन्द्रमा शोभायमान है। राम तथा रावण के संग्राम के उपरान्त ऐसा युद्ध संसार में नहीं हुआ था।[1]

'रेवातट समय' के अन्तर्गत ही लिखा है कि "एक पहर दिन चढ़ने पर वीर जंघारा युद्ध भूमि में कूदा किन्तु मीर से युद्ध करके, वह जलते हुए वाण सदृश्य पृथ्वी पर गिर पड़ा अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हुआ—

जाम एक दिन चढ़त वर, जंघारौ झुकि वीर।
तीर जेम तत्तौ पर्‍यौ, धर अप्पारे मीर॥ छं० ११२।[2]

उपर्युक्त छंद से स्पष्ट हो जाता है कि जंघारा भीम इस संग्राम में मारा गया था, किन्तु हम उसे पुनः संयोगिता अपहरण सम्बन्धी संग्राम में युद्ध करते हुए पाते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जंघारा भीम उक्त युद्ध में वीरगति को प्राप्त नहीं हुआ होगा, वरन् बुरी तरह घायल हो गया होगा।

वीर जंघारा भीम पृथ्वीराज के साथ कन्नोज गया था तथा संयोगिता को दिल्ली लाते समय अपार पराक्रम दिखा कर वीरगति को प्राप्त हुआ था—

घरिय च्यार रवि रत्त। पंग दल वल आहट्ट्यौ।
तव जंघारौ भीम। ध्रमं स्वामित तन तुट्यौ॥
सगर गौर सिर मौर। रेह रष्षिय अजमेरिय।
उड़त हंस आकास। दिट्ठ घन अच्छरि घेरिय॥
जंघार सूर अवधूत मन। असि विभूति अंगह घसिय।
पुच्छ्यौ सुजान त्रिभुवन सकल। को सु लोक लोकं वसिय॥छं २४५४।[3]

इतिहास एवं सिलालेखों से वीर जंघारा भीम की पुष्टि नहीं होती है। अतः इनकी ऐतिहासिकता संदिग्ध ही कही जावेगी।

जसवन्तसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के 'लोहाना आजानवाहु समय ४' के अन्तर्गत जसवन्त-

---

१. जघारौ जोगी जुगिंद, कढ़्यौ कट्टारौ।
फरस पानि तुंगी त्रिसूल, पष्षर अधिकारौ॥
जटत बांन सिंगी विभूत, हर वर हर सारौ।
सबर सद्द वद्द्यौ, विषम दग्गं घन झारौ॥
आसन सदिट्ठ निज पत्ति में, लिय सिर चन्द अम्रित अमर।
मडलीक रांम रावत भिरत, न भौ वीर इत्तौ समर॥ छं० ११३, स० २७।
—पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ११२, स० २७।

३. वही, छं० २४५४, स० ६१।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इच्छिनी था जिसका विवाह दिल्ली-अजमेर के अंतिम शासक महाराज पृथ्वीराज चौहान के साथ हुआ था।[1] महाराज पृथ्वीराज ने राजकुमारी इच्छिनी से बारह वर्ष की अवस्था में विवाह किया था तथा यह उनकी दूसरी रानी थी।[2] जैत प्रमार ने पृथ्वीराज का सदा साथ दिया था। 'रेवातट समय २७' में हम पढ़ते है कि जैतराय प्रमार ने सेनापतित्व का उत्तरदायित्व पूर्ण पद का भार ग्रहण किया था—' मुख्यछत्र अपने सिर पर धारण करके जैत सेना नायक बना तथा उसने अपनी सेना को चन्द्र व्यूह में खड़ा किया। वहाँ सब राजा महाराजा एकत्र हुए। एक ओर हुसैन खाँ तथा दूसरी ओर पुंडीर था तथा बीच में वीर पराक्रमी योद्धा रघुवंशी राम था। साँखला का योद्धा तथा सारंग देव गोरी के समुख खड़े थे। वे दोनों सिरों पर बहुत सी छोटी तथा बड़ी तोपें[3] लिए हुए क्रोधित खड़े हुए थे।"

छत्र मुजीक सु अप्पि, जैत दीनो सिर छत्रं।
चन्द्रव्यूह अङ्कुरिय राजु, हुअ तहाँ इकत्रं॥
एक अग्र हुस्सैन बीय अग्रह पुण्डीरं।
मद्धि माग रघुवंस, राम उप्पमौ वर वीरं॥
सांषलौ सूर सारग दे, उररि पांन गोरीय मुष।
हय नारि जोर जबूर घन, दुहु बांह उपमेति रूव॥ छं० ७१।[4]

संयोगिता अपहरण सम्बन्धी संग्राम में जैतराय प्रमार पृथ्वीराज के साथ था तथा युद्ध करता हुआ आहत हुआ था।[5] 'बड़ी लड़ाई सम्यों ६६' के अन्तर्गत लिखा है कि जैत प्रमार पृथ्वीराज की ओर से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ था—

पर्यौ जैत पांवार। छत्र नीचै छिति पूरिय।
ढाहे मोर मसंद। पंति पष्षलि परि नूरिय॥
सहस वीस इक मल्ल। सकल आसुर परि सथरि।
हड्ड मस कट्ठवसु। श्रोन गूदह तथ्यं करि॥
किलकंत जुध्य जोगिनि नचौ। रची रथ्थ अच्छरि वरी।
डहकंत ढक्क सुर वीर हर। रजिय गनन जंबुक ररी॥ छं० १२३४।[6]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, रासो सम्यौ २४।

२. वरयं वरस का सलष सोय। दिन्नी सु आय इंछनी लोय।
आबू सु तोरि चालुक्क राजि। किन्नौ सु व्याह परिमाव मंजि॥छं०४, स० ६५।

३. भारत में सर्व प्रथम तोपों का प्रयोग बाबर ने किया था। सम्भवतः 'हयनारि गोर जंबूर घन' पंक्ति प्रक्षिप्त है। प्रायः सम्पूर्ण रासो इसी प्रकार के प्रक्षिप्त अंशों से परिपूर्ण है।

४. पृथ्वीरास रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७१, स० २७।

५. वही, समय ६१।

६. वही, छं० १२२४, स० ६६।

जैत प्रमार की मृत्यु पर पृथ्वीराज को अत्यन्त दुःख हुआ तथा उनके व्यथित हृदय से उसके लिए निम्न उद्गार निकल पड़े—

परयौ राव जैतह सु रन। पति अब्बू घन घाय।
सूर राय सोमेस सुत। करिय अप्प सिर छाय ।। छं० १२४५।

हम दिय छत्र जुछांह कों। तुम लिय छत्र मरन्न।
हम दुर्जोधन जोधमय। तुम कलि करन करन ।।

तुम कलि करन करंन्न। हंकि उठि सिंघ-सिंघ पर।
भ्रर उभ्रारि भ्रंभोरि। तोरि गहि दंति दंत घर।।

गौ वच्छां प्रति मोह। दोह लग्गौ सुदाह कह।
कहै राज प्रथिराज। छत्र हम दियौ छांह कह ।। छं० १२४६।[1]

जैतराय प्रमार 'प्रमारवंशी' राजदूत था। प्रमार के स्थान पर पंवार, परमार, पवार, पुआर आदि शब्द भी 'रासो' में प्राप्त होते हैं। अग्नि वंशी चार कुलों में एक प्रमार भी हैं।[2] यह (प्रमार जाति) अग्नि कुलों में सबसे अधिक शक्तिशाली मानी जाती थी तथा ८५ शाखाओं में विभक्त थी।[3]

महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जैतराय प्रमार को काल्पनिक पात्र मानते है तथा 'रासो' की घटना को अनैतिहासिक सिद्ध करते हुए लिखते हैं कि—"पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि बारह वर्ष की अवस्था में पृथ्वीराज ने आबू के परमार राजा सलष की पुत्री और जैत की बहिन इंच्छिनी से विवाह किया। यह कथा भी ऐतिहासिक नहीं है। आबू पर सलष या जयत नाम का परमार राजा कभी हुआ ही नहीं। आबू पर की वि० सं १२८७ की वस्तुपाल के मन्दिर की प्रशस्ति में आबू के परमारों की उस समय तक की वंशावली दी है। उसमें वहाँ के परमार राजा यशोधवल का पुत्र धारावर्ष होना लिखा है। यशोधवल का वि० सं० १२०२ का शिलालेख राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में विद्यमान है। उसके पुत्र धारावर्ष के १४ शिलालेखों और एक ताम्रपत्र मिला है, जिनमें से वि० सं० १२२० ज्येष्ठ सुदी १५, के चार मूल लेख राजपूताना म्यूजियम में सुरक्षित हैं, जिनसे निश्चित है कि पृथ्वीराज की गद्दी नशीनी के पूर्व से लगभग उसकी मृत्यु के बहुत पीछे तक

---

१. पृथ्वीराज रासो; नागरी प्रचारणी सभा काशी, छं० १२४५-१२४६, स० ६६।
२. वही, रासो सम्यो १।
३. टाड, राजस्थान, भाग १, पृ० ९०-९१। तथा Sherring, Hindu Tribes and castes, Vol. I, Page. 143-49.

आबू का राजा धारावर्ष था, न कि सलख या जैत।"[1] अमृतलाल शील[2] ने भी ओझा जी की भाँति अपने विचार व्यक्त किये हैं।

जोवन राय—पृथ्वीराज रासो के मतानुसार यह महाराज पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) का सामन्त एवं पराक्रमी योद्धा था। महाराज पृथ्वीराज चौहान की आज्ञा होने पर यह मण्डेलश्वर नाहरराय को युद्ध भूमि में खोजने के लिए अग्रसर हुआ किन्तु बहुत खोज के उपरान्त भी नाहर को न पा सका।[3] जोवनराय नामक पात्र होने की पुष्टि रासो के अप्रकाशित मध्यम संस्करण से हो जाती है। उसमें भी नाहरराय से युद्ध होने पर जोवनराय नामक सामन्त युद्ध करता हुआ दिखाई देता है।[4]

तिरहुत नरेश—रासोकार कवि चन्द वरदायी ने पंगराज जयचन्द का आधिपत्य तिरहुत प्रदेश पर बताया है, जो इतिहास के विवरण से मेल खाता है, किन्तु अधिकार स्थापना का विवरण पूर्णतया: भिन्न है। कवि चन्द के मतानुसार कन्नौजपति विजयपाल (विजयचन्द) के समय में जब गाहड़वालों ने सम्पूर्ण देश पर दिग्विजय की तभी जयचन्द को तिरहुत पर भी अधिकार प्राप्त हुआ था, किन्तु इतिहासकारों के मतानुसार नान्यदेव ने गोविन्दचन्द के समय में नाम मात्र की आधीनता स्वीकार की थी, विजयचन्द के समय में उसके वंशजों ने वास्तविक आधीनता स्वीकार कर ली थी। इतिहास के अनुसार नान्यदेव का एक पुत्र कन्नौजपति राजा जयचन्द की सेवा में था। रासोकार के मतानुसार पंगराज जयचन्द ने तिरहुत प्रदेश को अधिकृत कर अपना यश प्रसार किया था।[5] संभव है कवि ने कन्नौजेश्वर के यशोगान करते समय ऐतिहासिक तथ्य की अपेक्षा की हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। उसने तिरहुत नरेश का नाम मल्लदेव[6] से केहरिकण्ठ कर दिया है,[7] जो कान्यकुब्जेश्वर के प्रमुख सहयोगियों

---

१. म० म० गौरीशंकर हरीचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४७-४८ तथा राजपूताने का इतिहास, जिल्द पहली, पृ०१९९; वेदिक मंत्रालय अजमेर, द्वितीय संस्करण, १९३७।
२. अमृतलाल शील, सम्राट पृथ्वीराज चौहान की रानी पद्मावती, मरु भारती, भाग १, अंक १, सितम्बर, १९५२ ई०।
३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ७०-७१, स० ७।
४. पृथ्वीराज रासो के मध्यम संस्करण की हस्तलिखित प्रति, छ० २२, स० ४, पृ० २५, रा० ए० सो० लन्दन।
५. 'जस जंपिय सण्ण सो चन्द चंडं, जिनै थप्पिय जाय तिरहूत पिंड।'
६. जयचन्द विद्यालंकार, विहार एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन, पृ० १८९।
७. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, जिल्द ४, स० ६१।

नोट—मल्लदेव नाम रासोकार के अनुसार राजा विजयपाल का उपनाम भी था।
—पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, जिल्द १, स० १।

में से था। संयोगिता अपहरण के समय होने वाले संग्राम में कान्यकुब्जेश्वर ने चौहान पृथ्वीराज की सेना की दृढ़ता देख कर अपनी विशाल चतुरंगिनी को आठ भागों में विभाजित किया, जिनमें से एक भाग का नेतृत्व तिरहुत नरेश को सौंपा गया था। कन्दर्पकुमार के आगे चलने वाला और कोई नहीं, यही तिरहुत का अधीश्वर था।[1] उपर्युक्त विवेचन के अतिरिक्त तिरहुत नरेश के विषय में ग्रन्थकार ने कुछ नहीं लिखा है।

हर्ष के उपरान्त ७४३ ई० तक विहार प्रान्त पर वंगाल के पाल वंशी राजाओं का आधिपत्य रहा। चन्देलों से मिथिला का राजा जो धंग के वाद स्वतंत्र हो चुका था, उदाला के वाद कलचुरियों ने छीना। रामायण की एक हस्तलिखित नैपाली प्रति के अनुसार वि० सं० १०७६ (१०१९ ई०) में तीरमुक्ति (तिरहुत) में एक सोमवंशी गौड़ महाराजाधिराज गांगेयदेव शासन कर रहा था, जिसका कलचुरी राजा गांगेयदेव (१०१५-४१ ई०) होना अनुमान किया जाता है।

पाल राज्य की विपत्ति के समय वगाल तथा विहार के अनेक सामन्त स्वतंत्र हो गये थे। उसी समय विजयसेन या विजयराज ने कुछ काल वाद वंगाल में सेन वंश की स्थापना की। रामपाल के वाद विजयसेन ने शीघ्र ही वंगाल से पाल राज्य समाप्त कर दिया तथा रामपाल के उत्तराधिकारी कुमारपाल तथा मदनपाल को पराजित कर गौड़ छीन लिया। तिरहुत में उसी समय नान्यदेव नामक एक अन्य कर्णाठ सरदार स्थापित हो गया। विजयसेन ने गौड़ छीनने के उपरान्त नान्यदेव को भी कैद कर उसे अपनी आधीनता स्वीकार करने को वाध्य किया।

लगभग सन् १०९० ई० में चन्द्रदेव गाहड़वाल ने कन्नौज में नया राज्य स्थापित किया उसने कलचुरियों के उत्तराधिकारी यश, कर्ण से (१०७३,११२५ ई०) वनारस छीन लिया। नान्यदेव ने भी गाहड़वालों का अवलम्ब पाकर सैन्य का जुआ उतार फेंका (१०९६-९७) उत्तर में नैपाल में इस समय ठकुरी वंश की समाप्ति होकर अराजकता फैली हुई थी। नान्यदेव ने नैपाल पर चढ़ाई कर उसे जीत लिया और स्वतंत्र रूप से तिरहुत की गद्दी पर वैठा (१८ जुलाई १०९७ ई०)।[2] वंगाल के सेनों ने अपनी रक्षा करने के लिए, नान्यदेव, गाहड़वाल से चिर मैत्री सम्वन्ध वनाए रहा। तिरहुत में कर्नाट वंशी राजा नान्यदेव का ५२ वर्ष राज्य करने के उपरान्त लगभग सन् १०५० ई० में देहान्त हुआ।[3]

नान्यदेव की मृत्यु के उपरान्त, उसका पुत्र गंगदेव मिथिला का राजा हुआ जो कन्नौज-

---

१. "ता अग्गं तिरहुत नरिंद"—पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १७२२, स० ६१।

२. जयचन्द विद्यालंकार–विहार एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन, पृ० १८६।

३. वही, पृ० १८९।

पति विजयचन्द (रासो का विजयपाल) का समकालीम था। नान्यदेव का एक दूसरा पुत्र मल्लदेव कन्नौज में विजयचन्द के पुत्र जयचन्द की सेवा में था।[1]

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि तिरहुत प्रदेश कन्नौजपति जयचन्द के आधीन था। रासो में भी कुछ इसी प्रकार का संकेत प्राप्त होता है।

देवराज वग्गरी अथवा वग्गरीराव[2]— 'पृथ्वीराजरासो' के अनुसार देवराज वग्गरी हिन्दुओं के अन्तिम शासक दिल्ली-अजमेर पति महाराज पृथ्वीराज चौहान का सामन्त था। अनुमान है, कि कवि ने देवराज वग्गरी तथा वग्गरीराव एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया है। देवराज आजीवन पृथ्वीराज चौहान के साथ रहा तथा संकट पड़ने पर सहायता करता रहा। 'रेवानट समय २७' के अन्तर्गत शाही सेना से संग्राम होने पर भी वग्गरीराव पृथ्वीराज की ओर उपस्थित था।[3] संयोगिता अपहरण सम्बन्धी युद्ध में आहतों में वग्गरीराव भी था।[4]

अन्त में देखते हैं कि इस पराक्रमी योद्धा ने स्वामि धर्म हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। 'वड़ी लड़ाई रो प्रस्ताव समय ६६' के अन्तर्गत कवि ने उल्लेख किया है कि प्रसंगराव खींची के युद्ध भूमि में गिरते ही वग्गरीराव युद्ध हेतु अग्रसर हुआ तथा इन्होंने अपार वल प्रदर्शन कर पाँच वीरों को पंचतत्व में मिलाकर स्वयं भी स्वामिधर्म की रक्षा करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ—

पर्‍यौ झुम्झि वग्गरिय। वसन झग्गरियं सुंरगिय।
सुरहलोक शिवलोक। लोक जारय्थ कुंरंगिय॥
बालप्पन जोवनहू। बड़े बड़पनहू बड़ाइय।
समर राज प्रथिराज। वाज दस वेर चढ़ाइय॥
दिव विवसु देव जै जै करहि। पुहू पंजरि अच्छै धरनि।
तजि लोक लोकन सघन। पर्‍यौ देव मडलि तरनि॥ छं०१२६८।[5]

ध्रमाइन कायस्थ—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार ध्रमाइन कायस्थ दिल्ली-अजमेर पति महाराज पृथ्वीराज चौहान का एक सभासद था। यह राज्य के समस्त भेद गोरी के गुप्तचरों को दिया करता था, किन्तु रासोकार ने यह संकेत कहीं भी नहीं किया कि यह गोरी से

---

१. जयचन्द्र विद्यालंकार, बिहार एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन, पृ०१८९।
२. अब वग्गरी जाति का बहुत कम पता चलता है। विशेष विवरण के लिए देखिए— एशियाटिक जर्नल, वाल्यूम २५, पृ० १०४।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २४, स० २७।
४. वही, रासो सम्यो ६१।
५. वही, छं०१२६८, स० ६६।

कैसे मिल गया था, तथा ऐसा कौन सा लालच विपक्षी ने दिया था जिससे यह ऐसा नीच कर्म करने के लिए प्रेरित हुआ। माधोभाट के दिल्ली आगमन पर ध्रमाइन ने उसे पृथ्वीराज चौहान के समस्त भेदों से परिचित करा दिया था—

ध्रमाइन कायथ सुरंग। मिल्यौ वर भट्ट प्रमानं।
जू कछुमेद चहुआंन। दियौ निहचै सुरतानं ।।छं० १४ ।।[1]

माधोभाट की सूचना पर गोरी को विश्वास न हुआ। अतः उसने ध्रमाइन कायस्थ के पास दूसरा दूत भेजा। इस बार उसने पृथ्वीराज चौहान के सब मंत्रियों के विषय में सूचना दी तथा अन्य भेद भी कागज पर लिख कर भेज दिए—

विवरि षवरि ध्रमांन। कही चहुआंन सेन वर।
पळ्ळ सत्तराजांन। सुवास कीन पिथ्थपुर।।
पष्ष पंच कैंमास। राव चांवड पष्ष चव।
वसि वित्त दिन अट्ठ। पष्ष लोहांन रसे सव।।
चहुआन कन्ह पष एक हुअ। वसिय वास दिन पच हुअ।
सांवत अवर आगम इछै। सवन वास चहुआंन रय ।।छं०९५।।
लषि करि इह वंधी विवरि। राज ध्रम्म चहुआन।
दिय कग्गर तसु दूत कर। वर कागर ध्रम्मान ।।छं० ९६।[2]

इसीप्रकार से रासो के अन्य समयों के अन्तर्गत भी हम ध्रमाइन कायस्थ को गुप्त सूचनाएं भेजते हुए पाते हैं। रासो के माध्यम संस्करण में भी ध्रमाइन का नाम प्राप्त होता है किन्तु रासो के अन्य रूपान्तर इसके विषम में मौन हैं।

धीर पुण्डीर—धीर पुण्डीर, चन्द पुण्डीर का पुत्र था। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी संग्राम में चन्द पुण्डीर की मृत्यु के उपरान्त महाराज पृथ्वीराज ने धीर पुण्डीर को चंद पुण्डीर वाली जागीर दे कर उसे सम्मानित किया।[3] 'रासो समय ६१' में धीर पुण्डीर की सूचना मात्र प्राप्त होती है किन्तु 'धीर पुण्डीर नाम प्रस्ताव' के अन्तर्गत कवि चन्द ने धीर पुण्डीर की वीरता का विषद वर्णन किया है। महाराज पृथ्वीराज चौहान को कन्नोज से चले आने पर अपार पछतावा हुआ किन्तु उन्होंने सामन्तों के बल परीक्षण हेतु के लिए बलिभद्र के कहने पर अष्टधातु का जैत खम्भ का निर्माण कराया—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४, स० १९।
२. वही, छं० ९५-९६, सं० १९।
३. वोलाय धीर पुंडीर ताम। सन मानि पित्र दीने सु ग्राम।
जिन जिन सु पित्त रिन परेषेत। तेय तेय थपि सामंत हेत ।।[1] छं०२५०२, स०६१।

एक समै प्रथिराज। वत्त जंपिय भर सारनि।
अष्ट घात करि थंभ। सिगि कढ्ढै बल पारन॥
तिहि समान नहि वीर। विजय दसमी इह किज्जै।
अप्प-अप्प बल तोकि। इष्टनिय जप्प जपिज्जै॥
सुनि सूर सजल आनंद मन। पुनित महल राजन उठ्यौ।
सुनि घरि जाइ जालंध दर। प्रसन करन कारन हठ्यौ॥ छं० ११।[1]

चंद पुण्डीर के पुत्र धीर पुण्डीर ने जैत खम्भ को भेदने के लिए जालन्धरी देवी की उपासना करके अपार शक्ति प्राप्त की तथा समय आने पर उसने ही जैत खम्भ को भेद करके अपार शक्ति का परिचय दिया—

हो रावत मंडली। फोरि मच्छर मन मढ्ढु।
सो तुरग तन पिस्यौ। संग वाहिर गहि कढ्ढहु॥
बस कुली छत्तीस। करहु बल जावल भावै॥
संगि न टारी टेर। जंतु विन अद्ध डुलावै॥
अप्पै तुरंग चहुआन तव। विहसि धीर पुण्डीर लिय॥
उप्परिय जैत थंभय सहित। तव पसाव प्रथिराज किय॥ छं० ३९।[2]

महाराज पृथ्वीराज ने उसका अपार साहस एवं बल प्रदर्शन देख कर, प्रसन्न हो, उसे सिरोपाव तथा जागीर देकर सम्मानित किया।[3] इसी अवसर पर धीर पुण्डीर ने गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी को पकड़ कर वन्दी बनाने का संकल्प किया। एक माह पांच दिन में यह समाचार उड़ता हुआ शहाबुद्दीन के कान तक पहुंचा। परिणाम स्वरूप उसने धीर पुण्डीर को वन्दी बनाने के लिए गक्खरों को नियुक्त किया। जालन्धरी देवी के पूजन हेतु जाते समय छद्म वेषधारी योगियों ने धीर पुण्डीर को घेर लिया तथा बन्दी बना कर गोरी के सम्मुख प्रस्तुत किया।[4] धीर का बल, धैर्य एवं साहस की परीक्षा लेने के लिए सुलतान ने एक वृक्ष उखाड़ने के लिए कहा, जिसे धीर पुण्डीर ने एक पल में उखाड़ दिया—

साहिबदी सुरतान। कहत पुंडीर धीर सुनि।
घात थंम में संग। फोरि तैसों बल करि फुनि॥
मुह अग्गै दरखत। यान इहिं वषत हंथ्यिय।
सों नर्षो ऊपारि। जोर दिष्षै सब सथ्यिय॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ११, स० ६४।
२. वही, छं० ३९, स० ६४।
३. वही, छं० ४०, स० ६४।
४. वही, छं० ७९, स० ६४।

हनुमान लंक जिम चन्द सुत । बढ़ि गुमान हिमगिरि सिखर ।
धक धूनि वथ्थ भरि हथ्थ गहि । जर समेत षेजर उषरि ॥ छं० १४५ ।[1]

अपार वल देख कर सुलतान गोरी वाह-वाह कर उठा तथा उसे कुछ मांगने के लिए कहा । इस पर पराक्रमी तथा दृढ़ प्रतिज्ञ धीर पुण्डीर ने पुनः कहा कि मुझे किसी बात की भूख नहीं है, केवल तुझे पकड़ना चाहता हूं—

असपति सेन दल गंजि हौं । धीर नाम ता दिन लहौं ।
वासन पसाव तादिन लहौं । जबहि साहि जीवत गहौं ॥ छ० १४८ ।[2]

धीर पुण्डीर के ऐसे निर्भय वचन सुन कर शाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा उसे मुक्त कर अपना स्वयं का घोड़ा एवं शिरोपाव देकर सम्मानित किया ।[3] धीर पुण्डीर के तुरन्त जाने के उपरान्त ही गोरी ने पृथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया । वचन के पक्के धीर पुण्डीर ने इस संग्राम में अपार साहस एवं वल प्रदर्शन करके शाह गोरी को वन्दी बना लिया—

उड्डिग रेन गय नंग । साहि संमुह गजि पिल्ल्यौ ।
धनिव धीर पुण्डीर । साहि सनमुष असि मिल्ल्यौ ॥
दसन तुड किय दोन । मुंड छंडिय सुडाहल ।
गिरत भूमि सुरतान । पांन कीनौ कोलाहल ॥
झक झोरि तोरि अवझरि उजरि । गहि हमेल हम्मीर लिय ।
हय कंध डारि अड्डो असुर । पैज पुंडीर प्रमान किय ॥ छं० ३३५ ।[4]

अंत में धीर पुण्डीर के खवास वैजल की विनती पर और चामण्डराव के भड़काने पर, कि उसे शाह को बन्दी बनाने के कारण अत्यन्त अभिमान हो गया है, पृथ्वीराज ने पुण्डीर वंश के साथ उसे देश निकाला दे दिया । यह समाचार पाकर शाह ने धीर को समादृत करके, ढिल्ला नामक स्थान दे दिया ।[5] पृथ्वीराज चौहान ने उसे एक पत्र द्वारा पुनः अपने यहां वापिस बुला लिया, मार्ग में घोड़ों के सौदागरों के साथ शाह शहाबुद्दीन गोरी के सैनिकों ने उसका छल पूर्वक वध कर दिया—

तब कालन करि कूर । कह्यौ तुम सरन वयट्ठौ ॥
असि लै कालन उढिढ । आय षिन पुट्ठि निहट्टौ ॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४५, स० ६४ ।
२. वही, छं० १४८, स० ६४ ।
३. वही, छं० १५१, स० ६४ ।
४. वही, छं० ३३५, स० ६४ ।
५. धीर निवेसन साहि । दयौ ढिल्ला पहर तव ।
अरु है ठहा ठाम । कियौ आदर अनंत सब ॥ छं० ४११, स० ६४ ।

कढ़्ढि तेग असि झारि। सीस उठ्यौ धर तुट्यौ॥
उवै तेक असमांन। सीस गय सूर न पुट्यौ॥
निझ्झारि तेक धर ढारि धर। हय कमाल कालन न दुर॥
सयदून सद्दि पट्ठान रन। इह अचिज्ज अप्पै अमर॥ छं० ४४३।[1]

इस प्रकार यह परम पराक्रमी एवं प्रतापी वीर सामन्त छल पूर्वक मारा गया और परम पद का भागी हुआ। इतिहास में धीर पुण्डीर के विषय में विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता है।

नरपाल (नैपाल नरेश)—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार कन्नौजपति कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द का आतंक सुदूर नैपालप्रदेश तक था। नैपाल नरेश नरपाल वीर[2] पंगराज के सहयोगी राजाओं में से था। सयोगिता अपहरण सम्बधी पृथ्वीराज चौहान तथा जयचन्द गाहड़वाल के मध्य होने वाले संग्राम के अंतर्गत नवमी के दिन आहत पंग पक्ष के रावतों में नैपाल नरेश का भी उल्लेख हुआ है। उसी युद्ध में वीर नरपाल अपार पराक्रम प्रदर्शित करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।[3]

आदि काल में नैपाल का सम्बन्ध तिब्बत एवं चीन के साथ था। भारतवर्ष के साथ नैपाल का सर्व प्रथम सम्बंध सम्भवत: सम्राट अशोक के समय तीसरी शती ई० पू० में आरम्भ हुआ। सम्राट अशोक ने नैपाल में कई स्तूप बनवाए थे तथा ललित पट्टन नामक नगर भी स्थापित कराया था। समुद्र गुप्त के समय में नैपाल सीमान्त राज्य था और गुप्त साम्राज्य को कर देता था। हर्ष के शासन काल में आंशुवर्मन नैपाल में राज्य करता था, जिसने ठकुरी वंश की नींव डाली थी तथा कन्नौज और तिब्बत दोनों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया था। आंशु वर्मन पहले लिच्छवी सम्राट का मंत्री था परन्तु बाद में उसने स्वतंत्र शासन स्थापित कर लिया था। लगभग ६४२ ई० में ४५ वर्ष तक राज्य करने के उपरान्त वह दिवंगत हुआ। उसके उपरान्त २०० वर्षों का इतिहास अन्धकारमय है। ग्यारहवीं शताब्दी से राजाओं की क्रमबद्ध नामावली मिलने लगती है, परन्तु ये राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण शासक सिद्ध नहीं हुए। १२वीं शती के पूर्वार्द्ध में तिरहुत के कर्णाट वंश के नान्यदेव ने नैपाल पर अपनी राज्यसत्ता स्थापित की।[4] किन्तु शीघ्र ही नान्यदेव को

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४४३, स० ६४।
२. नरपाल नाम ऐतिहासिक नहीं है, रासो में ही इसका उल्लेख हुआ है।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, जिल्द ४, समय ६१।
४. श्री नेत्र पाण्डेय, भारत का बृहत इतिहास, भाग १, पृ० ४१२। जयचन्द विद्यालंकार, बिहार एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन, पृ० १८६। श्री डी० आर० रेजमी, एंशियन्ट एण्ड मीडिवल नैपाल, पृ० १४६।

नैपाल की राजसत्ता से हाथ धोना पड़ा तथा ठकुरीवंश के आनन्ददेव ने पुनः शासनाधिकार प्राप्त कर लिया। सन् १३१४ ई० तक यही ठकुरी वंश नैपाल की शासन की बागडोर अपने हाथ में लिए रहा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है, कि राजा विजयचन्द (रासो का विजयपाल) गाहड़वाल के शासन काल में नैपाल उसके अधिकार में आ गया था, क्योंकि नान्यदेव भी गाहड़वाल वंश की आधीनता स्वीकार करता था, किन्तु जयचंद के समय में नैपाल पर गाहड़वालों की राजसत्ता का होना विवाद का विषय है। संभव है, रासोकार ने कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द की महानता एवं गौरव बखान के समय ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा की हो, और फिर रासो एक काव्य ग्रन्थ है न की कोई इतिहास ग्रन्थ। ऐसी स्थिति में इस प्रकार की भूल होना स्वाभाविक ही है।

नरसिंह दाहिम—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार नरसिंह दाहिम पृथ्वीराज चौहान का प्रसिद्ध सामन्त था। समय-समय पर इसने पृथ्वीराज के साथ उनके विपक्षियों से होने वाले संग्रामों में भाग लिया था। चन्द कवि के अनुसार नरसिंह दाहिमा नागौर का आधिपति था,[1] तथा इसका जन्म स्थान समियानगढ़ था।[2] 'रेवातट समय' में नरसिंह दाहिम ने पृथ्वीराज तथा शहाबुद्दीन गोरी के मध्य होने वाले संग्राम में विकट पराक्रम तथा रण कुशलता का परिचय दिया था—

षोलि षग्ग नरसिंघ, षीज्झि षल सीसह झारिय।
तुटि धर धरनि परंत, परत संभरि कट्टारिय॥
चरन अन्त उरझंत, वीर कूरंभ करारौ।
तेग थाइ चुक्कंत, झरी झर लोह संमारौ॥
चलि गयो न क्रमन, क्रम्म न चलै, डुल्यौ न डुलत न हय्यवर।
तिन परत वीर दाहर तनौ, चामंडां बज्जी लहर॥ छं० १०६।[3]

'रासो' के सम्पादकों ने उपर्युक्त छन्द के आधार पर नरसिंह दाहिम को 'रेवातट-समय' के युद्ध में वीरगति को प्राप्त होना लिखा है, उन्होंने लिखा है कि 'कूरंभराय के पुत्र नरसिंह ने खांडा खींच कर ख्वाजा की खोपड़ी पर मार उसे एक ही बार में खपाना चाहा परन्तु उसने गिरते-गिरते नरसिह के पेट में कटारी भोंक दी जिससे उसके पेट की अंतभेद मज्जा आदि वाहर निकल पड़ी। वह वीर उसकी कुछ भी परवाह न कर करारे वार करता ही रहा।"[4] किन्तु डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी उपर्युक्त छंद के आधार पर युद्ध करने वाले

१. नरसिंघ एक नागौर पत्ति। रिनधीर राज लीयें जुगत्ति। छं० ६४५, स० ६१।
२. समियांन गढ्ढ नरसिंघ राइ। पित मात छोरि आए सु माइ। छं० ५८७, स० १।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०६, स० २७।
४. रासो सार, पृ० १०२।

को 'नरसिंह' मान कर उसका संबंधी मानते हुए इस प्रकार अर्थ प्रस्तुत करते हैं—"नरसिंह (के सम्बन्धी) ने क्रोध से तलवार खींच ली और खल (शत्रु) के सिर पर वार किया जिससे उसका धड़ कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। परन्तु गिरते-गिरते उसने (नरसिंह के संबंधी के) कटार मार दी। (कटार लगने से इस वीर के) पैर विकट वीर कूरंभ की लोथ की अंतिड़ियों से उलझ गये। उसने तलवार का सहारा लेना चाहा परन्तु चूक गया और (स्वयं अपनी तलवार से घायल हो जाने के कारण उसके) लोहू की धार झर-झर करके वह चली या (झरीझर) गिरते-गिरते उसने तलवार से सहारा लेना चाहा परन्तु चूक गया और बुरी तरह घायल हो गया। वह एक पग भी न चल सका, न वह हिला और न उसके श्रेष्ठ हाथ ही हिले। उसको गिरते देखकर दाहर का पराक्रमी पुत्र चामण्ड दुख से परिपूरित हो गया (या-उसके गिरने पर दाहर का वीर पुत्र चामण्ड युद्ध की लहर में उलझ गया अर्थात् भयंकर युद्ध करने लगा)।'[1]

डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी का अनुमान सत्य प्रतीत होता है क्योंकि 'पृथ्वीराज रासो समय ६१' में पुनः नरसिंह दाहिम को युद्ध करता हुआ पाते हैं। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी संग्राम में वीर लोहाना आजानबाहु तथा गोयंदराय आदि प्रसिद्ध सामन्तों की मृत्यु के उपरान्त वीर नरसिंह युद्ध भूमि की ओर अग्रसर हुआ। पराक्रमी नरसिंह दाहिम ने इस युद्ध में अपना अपूर्व रण कौशल दिखा कर मृत्यु को वरण किया—

लग्यौ दल सिंघ करष्षि सु तीर।
चपे चब सिंघ सु मग्गिय मीर॥
पर्‌यौ नरसिंघ निरम्बर सूर।
तुटे सिर आवघ जाय करूर॥ छं० १४८२।[2]

नरसिंह अत्यन्त पराक्रमी योद्धा था। उसका सिर कट गया किन्तु उसका धड़ बढ़कर युद्ध करता रहा तथा अन्त में मोक्ष पद प्राप्त किया—

दाहिम्मौ नरसिंघ। सिंघ रष्षो रावत पन॥
सिर तुट्टं कर कट्ठि। चढ्ढि धायौ घर हुर घन।
मार मार उचरंत। राव बज्जे धारा हर॥
देव स्तुति करि चार। रंभ अगरी कहिरु वर।
संकरह सीस लीन्यौ जुकर। दई दरिद्रौ ज्यौं गहिय॥
कवि चन्द निरषि सुम्भं सिरह। जुगति उगति कवियन कहिय॥ छं० १४८३।[3]

---

१. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, रेवातट, द्वितीय भाग, पृ० ९५।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४८२, स० ६१।
३. वही, छं० १४८३, स० ६१।

नाहरराय—इतिहास में महाराज पृथ्वीराज तथा नाहरराय के मध्य किसी प्रकार के युद्ध का उल्लेख नहीं हुआ है। नाहरराय की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—"मण्डोवर का राजा नाहरराय दिल्लीश्वर अनंगपाल के आधीन था।[१] एक बार नाहरराय अनंगपाल से भेंट करने के लिए दिल्ली गया तथा वहाँ पर पृथ्वीराज को देखकर प्रसन्न हो अपनी माला पहना दी तथा वचन दिया कि जब यह १६ वर्ष के हो जावेंगे तो मैं अपनी कन्या का विवाह इनसे कर दूंगा।[२] किन्तु सोमेश्वर के दूत भेजने पर नाहरराय ने अपना वचन तोड़ दिया अर्थात् विवाह करने से इन्कार कर दिया तथा पत्रोत्तर में लिख भेजा कि तुम्हारा कुल हमारे कुल के अनुकूल न होने के कारण हमें यह सम्बन्ध स्वीकार नहीं है।[३] कुंवर पृथ्वीराज इस अपमान को सहन न कर सके तथा अपने पिता सोमेश्वर से आज्ञा लेकर नाहरराय पर आक्रमण के लिए प्रस्थान कर दिया।[४] नाहरराय के दूत ने आकर आक्रमण की सूचना दी। नाहरराय ने अपने मन्त्रियों से मन्त्रणा करके कहा कि चौहानों से अब तो बिगड़ ही गई है अतः अब तो आगे से बढ़ कर एक बारगी आक्रमण करने से ही अपनी जीत सम्भव हो सकती है।[५] जब नाहरराय ने यह सूचना पाई कि पृथ्वीराज ने नगर प्रवेशकर लिया है, तब उसने पर्वतराय नामक योद्धा को उसका मार्ग अवरुद्ध करने के लिए भेजा।[६] रण प्रांगण में नाहरराय तथा पृथ्वीराज एक दूसरे के सामने आए, घोर युद्ध के फलस्वरूप नाहरराय का घोड़ा मारा गया। इसी बीच नाहरराय के सामन्त रनवीर सिंह ने पृथ्वीराज का सामना किया जिससे नाहरराय बच गए।[७] घोर युद्ध होने के फलस्वरूप नाहरराय चाचा कन्ह के सम्मुख आ गया किन्तु युद्ध भूमि से नाहरराय के पैर उखड़ गए तथा वह रण भूमि छोड़कर भागा, नाहरराय को भागता देखकर वीर पृथ्वीराज चौहान ने उसका पीछा किया। नाहरराय युद्ध में पूर्णतयः परास्त हुआ तथा पट्टनपुर पर पृथ्वीराज का अधिकार हो गया। अन्त मे नाहरराय ने अपनी हार स्वीकार कर, अपनी कन्या के विवाह का लग्न ब्राह्मणों को बुला कर पृथ्वीराज के पास भेज दिया।[८] महाराज पृथ्वीराज व्याहने के लिए गए, नाहरराय ने अपनी कन्या का विवाह उनसे कर दिया तथा उन्हीं की आधीनता स्वीकार कर ली—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २५, स० ७।
२. वही, छं० २६, स० ७।
३. वही, छं० २८-२९, स० ७।
४. वही, छं० ५३-५४, स० ७।
५. वही, छं० ६४-६७, स० ७।
६. वही, छं० ७५-७७, स० ७।
७. वही, छं० १०२-१०६, स० ७।
८. वही, छं० १७५, स० ७।

नाहरराइ नरयंद कहि, का तुम जोगु जगीस।
और देन तुम जोगु कहा, काम तुम्हें हम सीस ।। छं० ६९।'[1]

इस प्रकार देखते हैं, कि पृथ्वीराज चौहान का प्रथम विवाह ११ वर्ष की आयु में नाहरराय की पुत्री से सम्पन्न हुआ। रासोकार ने पुत्री का नामोल्लेख नहीं किया है। पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, के अनुसार नाहरराय युद्ध भूमि छोड़ कर भाग गया था किन्तु साहित्य संस्थान उदयपुर से, प्रकाशित 'रासो' के अनुसार नाहरराय युद्ध भूमि में ही बन्दी बना लिया गया था। निश्चय ही दोनों 'रासो' में थोड़ा अन्तर है फिर भी मूल कथा में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ता है। रासो की उपर्युक्त कथा की पुष्टि रासो के अप्रकाशित मध्यम संस्करण से भी हो जाती है।

इतिहास पृथ्वीराज तथा नाहरराय के मध्य होने वाले युद्ध के विषय में सर्वथा मौन है। ओझा जी ने एक स्थान पर पृथ्वीराज के विवाह वाली घटना को असत्य सिद्ध करते हुए इस प्रकार लिखा है। 'रासो का कथन है कि पृथ्वीराज का प्रथम विवाह ग्यारह वर्ष की अवस्था में मंडोवर के पडिहार नाहरराय की कन्या से हुआ था। यह कथन भी सत्य नहीं है। मंडोवर का नाहरराय पडिहार पृथ्वीराज से कई सौ वर्ष पूर्व हुआ था, जैसा कि मंडोवर के पडिहारों के वि० सं० ८९४ के शिलालेख से पाया जाता है। वि० स० १२०० से पूर्व मंडोवर पर से पडिहारों का राज्य अस्त हो गया था और नाड़ोल के चौहानों ने उस पर अधिकार कर लिया था। पृथ्वीराज के समय के आसपास तो नाडोल के चौहान रायपाल के पुत्र सहजपाल का मंडोवर पर अधिकार था जैसा कि वहीं से मिले हुए उसके शिलालेखों से पाया जाता है।''[2] किन्तु तत्काल अनुसंधान के आधार पर कविराव मोहनसिंह उपर्युक्त घटना को प्रामाणिक मानते हुए इस प्रकार से तर्क उपस्थित करते हैं—'नाहरराय प्रतिहार जिसका वास्तविक नाम 'मल्ल' 'प्रतिहार या बलराय था और प्राचीन स्थान सूचक रूप में उसे मंडोवर व मंडोवरराय आदि लिखा है, उसका शासन गिरिनार प्रान्त में था और उसके साथ पृथ्वीराज का युद्ध सौराष्ट्र और काठियावाड़ के अन्तर्गत सोजत्री और प्रभाप क्षेत्र (सोमनाथ पट्टन) के निकट हुए थे। बाद में उसी की पुत्री से गिरिनार पर पृथ्वीराज का विवाह हुआ था।'[3] अतः स्पष्ट है कि रासोकार ने जिस नाहरराय का वर्णन किया है उसी की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह भी हुआ था जैसा कि कविराव मोहनसिंह के कथन से स्पष्ट है।

निढ्ढुरराय[4]—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर निढ्ढुरराय महाराज पृथ्वीराज चौहान

---

१ पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ६९।

२. ओझा जी, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, पृ० ५४, कोशोत्सव स्मारक संग्रह।

३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, सम्पादकीय, पृ० १२।

४. 'रासोसार' के अनुसार वीर निढ्ढुरराय का विरद कमधज्जराय था तथा यह कन्नौजपति जयचन्द का भतीजा था। रासोसार, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० २५४।

(तृतीय) का सामन्त था, जिसकी गणना उनके सौ अथवा एक सौ छः श्रेष्ठ सामन्तों में होती थी। यो तो वीर निढ्ढुरराय महाराज पृथ्वीराज के पीछे उनकी छाया के समान रह कर रक्षा करता रहा किन्तु उसका अलौकिक तथा अपूर्व साहस 'कनवज्ज समय ६१' में देखते बनता है। कन्नौज में पंगराज जयचन्द की अस्सी लाख सेना पृथ्वीराज चौहान तथा उनके श्रेष्ठ सामन्तों को घेर कर भीषण युद्ध कर रही थी इसी बीच पृथ्वीराज तथा संयोगिता के मध्य गंधर्व विवाह सम्पन्न हुआ। पृथ्वीराज ने संयोगिता से कहा कि मेरे साथ चलो।[1] संयोगिता ने अपने पिता जयचन्द का पराक्रम एवं असंख्य सेना का विचार करके अपना संकोच प्रदर्शित किया।[2] यह सुनकर अन्य सामान्तों के साथ निढ्ढुरराय ने उत्साह तथा गर्व पूर्ण वाक्यों से प्रबोधा—

तब निढ्ढर उच्चरिय। सब्ब सामंत राज प्रति ।।
पंग सेन निरदरहु। ग्रब्ब बोल्यौ सु देव भ्रित ।।
मन मथी गोविंद चन्द। होइ न कहि कालं ।।
मन पुच्छिरु कहौ जीह। काल घते जिहि जालं ।।
जौ करै ढील ढिल्ली धनी। तौ जुग्गिनिपुर जल हथ्थ दै ।।
सत षंड जीह जपत करौ। पै चल्लि राज इह लल्ल दै ।। छं० १३१३।
मानि मत्तो सव सेन। गरुअ गोयंद कन्ह कहि ।।
सुजै अप्प जो चलै। चलै हम हथ्थ रंभ ग्रहि ।।
जो अप्पन आभंज। सबल बंधी अब बंधी ।।
ढील न करि सुन्दरि। लीह अलंघ कल संघी ।।
ढढोरि ढाल पहुपग दल। तन अरत्त जिमि तोरियै ।।
पहुंचाय सामि दिल्ली धरा। जम्म जजर तन जोरियै ।। छं० १३१४।[3]

योद्धाओं के उत्साह-पूर्ण शब्दों को सुन कर संयोगिता चलने के लिए तैयार हो गई तथा पृथ्वीराज चौहान ने उसे अपने घोड़े पर बैठा लिया।[4] ननकराय बड़गुज्जर के युद्ध-भूमि में मृत्यु को प्राप्त होने के उपरान्त महाराज पृथ्वीराज ने निढ्ढुरराय की ओर देखा—

पट्यौ षेत बड़गुज्जरह। अप्प पंग दह हक्कि ।।
तम्मि सनंमुष नेन करि। दिय आग्या मन तक्कि ।। छं० २१७९।[5]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १२७६-८०, स० ६१।
२. वही, छं० १२८१-८७, स० ६१।
३. वही, छं० १३१३-१४, स० ६१।
४. वही, छं० १३१५-२२, स० ६१।
५. वही, छं० २१७९, स० ६१।

विपक्षी दल की ओर से इसका भाई बलभद्र कमधज्ज इसका सामना करने के लिए प्रस्तुत हुआ। सहोदर भ्रातवर स्वरक्त का मोह त्याग कर स्वामिधर्म हेतु जूझ पड़े तथा दोनों में भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया—

दुअं तोन षुट्टें, पछै पग्ग जुट्टे। हनै तक्कि मद्द परे अद्ध अद्धं॥
झरै अंग अंग, दवं जानि दंगं। गजं सीस पानं परै वीज जानं॥
कमध धपत अरि पंग लिषि। तमकि तमकि वर तेज।
जानिक अगि वन घन चरन। उमडि वाय घन सेज॥ छं० २१९४-९६।[1]

पारस्परिक द्वन्द्व युद्ध के मध्य निढ्ढुरराय तथा बलभद्र दोनों ही ने एक साथ परलोक गमन किया। अपने ही लघुभ्रात को स्वर्ग भेज तथा उसका स्वयं अनुकरण करके निढ्ढुरराय ने स्वामि भक्ति धर्म का अपूर्व आदर्श प्रतिष्ठित किया।[2] पंगराज जयचन्द को निढ्ढुरराय की मृत्यु पर अपार शोक हुआ तथा उसने उसकी लाश पर अपनी कमर से पिछौरा खोलकर ढक दिया—

मुझ्झि षेत निढ्ढुर परयौ। दिष्षि दुहुं दल सथ्य।
कटि पट छोर जै चन्द पहुं। ढंकिय अप्पन हथ्य॥

चन्द भी वीर निढ्ढुरराय का पराक्रम देखकर चुप न रह सका अतः उसने भी उसकी प्रशंसा में निम्नलिखित छन्द लिखा—

अट्ठ कोस अतरिय। पंग सथ्थरिय परिय भर॥
परि निढ्ढुर पथ्थरिय। कंस गज राज दंत धर॥
हय हय है मारथ्थ। धवल वंवरह भिरत हुअ॥
ब्रह्म लोक सिव लोक। लोक ससि छंडि लोक धुअ॥
रन धरिय राव आरति अरुन। तरुन अरुन मंडल विलिय॥
अट्ठाह कोस चहुआन पर। वहुरि पंग पारस झिलिय॥ छं० २२०९।[3]

पंचाइन (चन्देरी नरेश)—'रासो' में चन्देरी नरेश 'पंचाइन' का प्रथम परिचय 'हंसावती विवाह नाम प्रस्ताव ३९' में प्राप्त होता है। रणथम्भौर के राजा भानराय की रूपवती कन्या हंसावती पर कामासक्त होकर शिशुपाल वंशी चन्देरी नरेश पंचाइन, राजकन्या

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २१९४-९६, स० ६१।

२. उभै दिट्ठ दिट्ठी मिलै वाहु वांह। नियं उत्ति नाही अरी राह राहं॥
प्रियं पीत रतगैत पंगं नरिंदं। मिल्यौ षग्ग हुसंक यांह वनिंदं॥ छं० २१९८, स० ६१।
घन घाय घाय वित्तिय घरिय। करिग आन सामंत सह॥
वैकुंठ वट्ट लद्धी विहुन। लरन अप्प अप्पह सु रह॥ छं० २२०४, स० ६१।

३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २२०९, स० ६१।

से विवाह अथवा राज्य हरण का प्रस्ताव तथा घुडकी देता हुआ दृष्टिगोचर होता है।[1] कामलिप्सा के नग्न प्रदर्शन में निहित इस ललकार ने राजा भान के क्षत्रियत्व को जागृत कर दिया तथा उसने पंचाइन को कोरा जवाब दे दिया,[2] जिसके फलस्वरूप चन्देरीपति पंचाइन ने गजनीपति शाह गोरी की सहायता लेकर रणथम्भोर को घेर लिया।[3] इस विपत्ति में फंसा हुआ देखकर भानराय ने दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज से सहायतार्थ याचना की।[4] आर्त की पुकार सुनकर पृथ्वीराज चौहान ने भानराय की सहायतार्थ उसके शत्रुओं से भयंकर युद्ध किया जिसमें पराक्रमी चौहान पृथ्वीराज की विजय हुई,[5] तथा चन्देरी नरेश 'पंचाइन' को पराजित होकर लौट जाना पड़ा।

द्वितीय वार 'कनवज्ज समय ६१' में पंचाइन पंगराज के सहयोगी के रूप में दृष्टिगोचर होता है। कविचन्द के अनुसार कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचन्द ने अपनी दिग्विजय के अन्तर्गत कर्ण ड़ाहल को परास्त कर चन्देरी को प्राप्त किया था।[6] इसी कर्ण ड़ाहल के वंशज जैसिंह सामन्त ने कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द की सेना का नेतृत्व किया था। चन्देरी का तत्कालीन शासक पंचाइन जो राजकुमारी हंसावती को लेकर दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान का घोर विरोधी हो गया था, रासोकार के अनुसार पंगराज का सहयोगी था। संयोगिता अपहरण के सम्बंध में पंगराज तथा पृथ्वीराज के मध्य होने वाले प्रचंड युद्ध में चन्देरीपति पंचाइन ने भी अपनी विशाल सेना लेकर पृथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया।[7] सामन्त दल के जंघारभीम से चन्देरी नरेश पंचाइन का सघर्ष हुआ, जिसमें चन्देरी नरेश ने घोर वीरता का प्रदर्शन किया—

सिल्हदार पंचइनो करि जुहार षग धार।
पंग समुद मझ्झहि परिय वजि घुम्मरि ग्रह पार॥ छं० २४००।[8]

चन्देरी नरेश पंचाइन को हंसावती विवाह को लेकर जो निराशा तथा अपमान सहन करना पड़ा था, सम्भव है उसने पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध पंग पक्ष से युद्ध करने को अवश्य ही प्रोत्साहित किया होगा।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २-५, स० ३६।
२. वही, छं० ६-७, स० ३६।
३. वही, छं० ८-१८, स० ३६।
४. वही, छं० १९-२०, स० ३६।
५. वही, छं० ४०-८५, स० ३६।
६. जिने कर्ण डाहल दुअ वान वेध्यो। वही, छं० ५७४, स० ६१।
७. "चढे चपलं चंपि चंदेर राई, जिने पुब्ववैरं रनथंभ पाई।"
—चन्द वरदायी, पृथ्वीराज रासो, समय ६१।
८. वही, छं० २४००, स० ६१।

पज्जूनराव कूरंभ—इनकी गणना 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पृथ्वीराज चौहान के श्रेष्ठ योद्धाओं से होती थी। इनका विरद नरेश्वर था।[1] यह कछवाहा राजपूतों की एक शाखा कूर्म अथवा कूरंभ वंश का था। अनेक युद्धों में पृथ्वीराज चौहान की सेना के एक भाग का संचालन भी पज्जूनराव कूरभ की ही अध्यक्षता में हुआ था। एक बार पृथ्वीराज चौहान रेवा नदी के तट पर आखेट खेलने गए हुए थे, वहीं पर शाह शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वीराज को आ घेरा। ऐसी विषम स्थिति में पज्जूनराव कूरंम्भ मंत्रणा देता है कि—"शाह ने अत्यन्त विचार पूर्वक दस गुनी चतुरंगिणी सेना तैयार कर ली है। इस अवसर पर शान्ति नीति ग्रहण करना उचित है। इस समय अपना बल घट गया है। पिछले युद्धों के परिणाम पर भी विचार कर लेना चाहिए। अतः ऐसी विषम स्थिति में स्वयं झगड़ा मोल लेना उचित नहीं है।" किन्तु पृथ्वीराज चौहान के अन्य सामन्त प्रसंगराव तथा देव बग्गरी को उक्त मत उचित नहीं लगा तथा व्यंगपूर्ण उक्तियां कही।[2] इस पर पज्जूनराव कूरभ ने क्रोध से भरा उत्तर दिया कि—" मैंने तातारियों से बचाकर तुम्हें निकाला था, दक्षिण के यादवों पर मैंने आक्रमण किया। चामण्डराय के सहयोग से मैंने जंगलियों को परास्त किया था। बंमन वास से मैंने बड़गुजर को निकाल बाहर किया था।" कूरभ के उक्त कथन में उसकी वीरता के तत्व कूट-कूट कर भरे है। पज्जूनराव कुरभ कैमास-भीम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ा था।[3] इसी प्रकार अनेक युद्धों में पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए अन्त में कन्नौज के पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध में भी पृथ्वीराज चौहान की ओर से लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ।[4]

पज्जूनराव कूरभ के विषय में टॉड महोदय ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ राजस्थान में लिखा है कि—"यह अंबर या जयपुर के कछवाह राजपूतों की एक शाखा कूर्म या कूरंभ वंश का था। वीर चौहान ने ख्यातनामा एक सौ आठ सरदार उसके साथ कर दिये थे। अनेक युद्धों में पृथ्वीराज की सेना के एक भाग का संचालन पज्जून की ही अध्यक्षता में हुआ था। भारत के उत्तरी आक्रमणों में दो बार पज्जून अपनी वीरता का परिचय दे चुका था। एक बार उसने शहाबुद्दीन को खैंबर के दर्रे से पराजित किया और गजनी तक खदेड़ा था। चंदेल राज महोबा की विजय ने पज्जून की वीरता की धाक बैठा दी थी। पृथ्वीराज की एक बहिन पज्जून को व्याही थी और चौहान नरेश ने उसे महोबा का शासक बना दिया था।

---

१. नरेश्वर पज्जून राव की पदवी थी, ये पृथ्वीराज चौहान के साले थे—टॉड, राजस्थान, भाग २, पृ० ३५०-३५१।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २३, स० २७।
३ वही, छं० २४, स० २७।
४. वही, छं० २५, स० २७।
५. वही, समय १२।
६. वही, समय ६१।

कन्नौज के संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में चुने हुए चौसठ सरदारों में पज्जून भी था और लौटते समय पाँच दिन के युद्ध में प्रथम दिन वीर गति को प्राप्त हुआ था। यह धूंधर या ढूंडार का अधिपति था।"[1] इसके विपरीत 'पृथ्वीराज रासो समय ६५' में लिखा है कि पृथ्वीराज चौहान ने अठारह वर्ष की आयु में पज्जूनी से विवाह किया था, जो उनकी तेरह रानियों में से आठवीं थी,[2] डॉ विपिनबिहारी त्रिवेदी पज्जूनराव कूरंभ तथा पृथ्वीराज चौहान के सम्बन्धों को संदिग्ध मानते हुए लिखते हैं कि-"यदि ये दोनों पज्जून एक ही है जैसा कि टॉड और ह्योर्नले दोनों महानुभावों का कहना है तो पृथ्वीराज ने अपनी सागी भानजी से विवाह किया। परन्तु ऐसी प्रथा न होने से शंका उत्पन्न होने लगती है, अस्तु इन दोनों पज्जूनों से अवश्य भेद होना चाहिए।"[3]

डॉ० माताप्रसाद गुप्त पज्जूनराव कूरंभ की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए लिखते हैं कि-"इसके (पज्जूनराव कूरंभ) सम्बन्ध में निश्चित ऐतिहासिक साक्ष्य का अभाव है। अजमेर राज्य की वंशावलियों के अनुसार पज्जून वज्रदामा से तेरह पीढ़ियों बाद हुआ, बज्रदामा का एक शिला लेख सं० १०३४ का है, यदि प्रत्येक पीढ़ी का औसत काल बीस वर्षों का लिया जावे तो पज्जून का समय सं० १२९४ के लगभग पड़ना चाहिए, ऐसा ही गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का विचार है। इसके विरुद्ध भी हरिचरण सिंह चौहान का कहना है कि उसी वंशावली के अनुसार बज्रदामा से सात पीढ़ी बाद सोढदेव का समय सं० ११२५ है, और बज्रदामा के समय से ९१ वर्ष बाद पड़ता है। इसलिए प्रत्येक पीढ़ी का औसत समय सोढदेव तक १२ वर्ष ही होता है। यदि बाद की पीढ़ियों के लिए १६-१७ वर्ष का औसत माना जावे तो पज्जून का समय पृथ्वीसाज के समय के साथ ही पड़ता है इन वंशावलियों पर विशेष विश्वास करना बहुत उचित नहीं माना जा सकता है। किन्तु यह स्पष्ट है कि ये 'रासो' में दिए हुए पज्जून के समय का विरोध नहीं करती है। पज्जून के सम्बन्ध में रासो में कही हुई शेष बातों के सम्बन्ध में कोई अन्य साक्ष्य प्राप्त नहीं है।"[4] पज्जूनराव कूरंभ के विषय से वास्तविकता कुछ भी हो, किन्तु रासो के समस्त पात्रों के

---

१. टॉड, राजस्थान, भाग २, पृ० २४९, ३५०-३६१। तथा डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, रेवातट, पृ० २९।

२. अठारमें बरस चहुआन चाहि। कछवाहा वीर पज्जून व्याहि॥
इक मात उदर धनि गरभ सोय। बलिभद्र कुंअर जापै संदोय॥
—पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ९, स० ६५।

३. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, पृ० २९।

४. डॉ माताप्रसाद गुप्त, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और रचना तिथि, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ९५८, सन् १९५९।

विषय में एक बात अवश्य कही जा सकती है कि इनमें ऐतिहासिक तत्व हैं अवश्य, पर कवि-कल्पना मिश्रत होने के कारण वास्तविकता का पता लगाना अत्यन्त कठिन कार्य है।

प्रतापसिंह—पृथ्वीराज रासो के 'कन्हपट्टी समय ५' के अन्तर्गत प्रतापसिंह का परिचय प्राप्त होता है। प्रतापसिंह जाति का चालुक्य था तथा इसके पिता का नाम सारंगदेव था। सारंगदेव की मृत्यु के उपरान्त प्रतापसिंह राजगद्दी पर बैठा। राजमद के कारण इसने गुजरों पर भाँति-भाँति के अत्याचार करना प्रारम्भ किया। परिणाम स्वरूप जनता ने अपने कष्टों की दुहाई गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य के समक्ष दी। भोलाराय भीम ने प्रतापसिंह को उचित पाठ पढ़ाने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया। प्रतापसिंह भोलाराय भीमदेव चालुक्य का सामना न कर सका तथा अपने ६ भाइयों के साथ भाग कर पृथ्वीराज चौहान के राज्य दरबार में शरण ली। महाराज पृथ्वीराज ने सातों भाइयों को जागीरें तथा सिरोपाव देकर अपने आश्रय में रख लिया।[1] एक दिन दुर्भाग्यवश प्रतापसिंह पृथ्वीराज चौहान के राजदरबार में आया तथा चाचा कन्ह के सामने बैठ कर मूँछों पर ताव देने लगा। चाचा कन्ह इस साधारण सी घटना को चुनौती समझ कर क्रोध से भर उठे तथा भरे दरबार में प्रतापसिंह का गला धड़ से अलग कर दिया।[2] इस बात पर भारी विग्रह छिड़ गया तथा युद्ध में प्रतापसिंह के अन्य ६ भाई भी वीरगति को प्राप्त हुए। चाचा कन्ह इस युद्ध में विजयी हुए—

परि भूमि पावार। उररि मञ्जन किवार दुअ॥
तव लगि कन्ह तमकि। आइ पहुंचौ अन्त कलुअ॥
फुंकि रोस असि तमसि। धाई सिर जाई रह्यौ उत॥
मनहुं ससि वल दैन। अंग जनुहन्या अजा सुत॥
तिन हनत सिंघु घुन हनिय सिर। राज ग्रेह मधि समर हुअ॥
हल हलंकि कढ्ढि कोलाहलह। हाय हाय दरवार हुअ॥ ५३।[3]

प्रतापसिंह के विषय में इतिहास सर्वथा मौन है साथ ही 'पृथ्वीराज रासो' के वृहद संस्करण के अतिरिक्त अन्य संस्करण में उपर्युक्त कथा प्राप्त नहीं होती है। प्रतापसिंह के अन्य ६ भाइयों का विवरण प्रथक-प्रथक करना पृष्ठ-पेषण मात्र होगा। अतः यहाँ पर उनके नामोल्लेख किए जा रहे हैं। प्रतापसिंह के अन्य ६ भाइयों के नाम इस प्रकार थे—(१) अरिसिंह, (२) गोकुलदास, (३) गोविन्द, (४) हरसिंह, (५) भगवान (भट) तथा (६) अरेह मुष।[4] यह ६ भाई भी चाचा कन्ह से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। इतिहास तथा 'रासो' के अन्य संस्करण इनके विषय में भी मौन है।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७-३१, स० ५।
२. वही, छं० ४१, स० ५।
३. वही, छं० ५३, स० ५।
४. वही, छं० ३, स० ५।

पर्वतराय–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार यह राजा नाहरराय का सामन्त तथा जाति का मीना था। नाहरराय तथा पृथ्वीराज के मध्य युद्ध होने पर इसने नाहरराय की आज्ञा से घाटी में पृथ्वीराज की विशालवाहनी को रोक कर भीषण संग्राम किया था। किन्तु दुर्भाग्यवश युद्ध करता हुआ चाचा कन्ह चौहान के हाथों वीरगति को प्राप्त हुआ।[1]

प्रसंगराय खीचीं[2]–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार प्रसंगराय खीची दिल्ली अजमेरपति पृथ्वीराज चौहान का एक सामन्त था। इसने अपने अन्त समय तक पृथ्वीराज का साथ दिया। रेवातट पर शाह गोरी से संग्राम होने के समय यह पृथ्वीराज के साथ उपस्थित था।[3] 'कनवज्ज समय ६१' के अन्तर्गत कवि सूचना देता है कि प्रसंगराय खीचीं कन्नौजपति जयचन्द के साथ युद्ध होने पर आहत हुआ था।[4] इतना ही नहीं इसने अपने प्राणों का उत्सर्ग भी

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७६-९२, स० ७।

२. मुहणोत णेणसी की ख्यात में भी खीची वंश के लिए बड़ी मनोरंजक कथा का उल्लेख हुआ है। कथा इस प्रकार है–'एक बार आसराव अपने पुत्र माणकराव से प्रसन्न हुआ और कहा कि तु प्रभात से सन्ध्या समय तक जितनी पृथ्वी में फिर आवे वह भूमि तुझको दे दी जावेगी तब माणकराव दिन निकलते ही चला और सन्ध्या तक बराबर फिरता रहा वह सांभर का चढ़ा, इतनी जगह गया-नागौर पट्टी के ८४ गांव, और सारी मदाण जहाँ इसने गढ़ बांधने का विचार किया। सन्ध्या होते जायल की तरफ निकला, वहाँ गवारे (बैल लादने वाली एक जाति) ठहरे हुए थे, उन्होंने भोजन की मनुहार की, यह भी दिन भर फिरता-फिरता भूखा हो गया था, कहा कोई पका पकाया अन्न हो तो लाओ। उस वक्त उनके खिचड़ी तैयार थी वह कटोरी में ले आये। माणकराव ने ऊँट पर चढ़े-चढ़े ही वह चावल-मूंग की खिचड़ी खाई तथा सन्ध्या होते ही पिता के पास पहुंचा। पिता ने पूछा कि कितनी धरती में फिर आया उसने सब हकीकत कह सुनाई। फिर पूछा कि कहीं गढ़ की ठौठ भी निश्चित की है? कहा मदाणा के पास गढ़ बांधने का विचार किया है। पिता बोला दिन भर में कुछ खाया भी? उत्तर दिया कि गंवारों के यहां खिचड़ी खाई है। पिता ने कहा तूनें खिचड़ी खाई इसलिए तेरी सन्तान खींचीं कहलावेगी।

रामनारायण दूगड़ मुहणोत णेणसी की ख्यात, (प्रथम भाग) पृ० १८४-८६, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, स० १९८२।

अनुवादक महोदय ने खींचीं वंश की उत्पत्ति पर एक टिप्पणी दी है–

'खिचड़ी खाने से खींचीं प्रसिद्ध होना तो भाटों की कल्पना मात्र ही मालूम देती है, सम्भव है कि या तो इनके मूल पुरुष का नाम खीचीराव हो या पहले खींचीं नाम के किसी गांव में बसते हों। वही, पृ० १८४ है।

३. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० स० काशी, छं० २४, स० २७।

४. वही, रासो सम्यो ६१।

स्वामिधर्म हेतु किया था। 'बड़ी लड़ाई रो प्रस्ताव समय ६६' के अन्तर्गत सूचना मिलती है कि, वीर प्रसंगराय खीचीं शाही सेना से भयंकर संग्राम करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ—

परयौ राव परसंग। षग्ग षीची पति पुत्तौ ॥
चोर मोर गज गाहु। मार पारय ज्यों जुत्तौ ॥
से हथ्थे से हथ्थ। गैंन गंध्रव किय गानहु ॥
वरन इच्छ घर मिच्छ। द्राह श्रोनहु किय पानह ॥
संभिरय राव संभरि धरा। सघन घाय संमुह लरिय ॥
जिम जिम सुजुझिय धरनि परिय। तिम तिम इन्द्रासन टरिय ॥ छं० १२५८।[1]

पल्हन कुमार—पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) पज्जूनराय कूरंभ का प्रमुख सामन्त था। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी पृथ्वीराज तथा जयचंद के मध्य होने वाले युद्ध में वीर कूरंभ के गिरने पर पराक्रमी पल्हन कुमार युद्ध भूमि की ओर अग्रसर हुआ[2] तथा अपार पराक्रम तथा रण कौशल दिखाता हुआ पंच तत्व को प्राप्त हुआ—

परे मध्य विप्पहर। पल्ह पज्जून बंध वर ॥
रज रज तन किय हटकि। कटक कमधज्ज कोटि भर ॥
ईस सीस संहरयौ। हथ्थ सों हथ्थ न मुक्कयौ ॥
सूर मुऔ सुख हऔ। बीर बीरा रस तक्कयौ ॥
भारत अरिन कूरंभ झुकि। ते रवि मंडल भेदियौ ॥
डोल्यौ न रथ्थ संमुष चल्यौ। किति कला नह वेदियौ ॥ छं० १४९२।
गंग डोलि ससि डोलि। डोलि ब्रह्मांड सक डुल ॥
अष्ट थान दिगपाल। चाल चंचाल विचक थल ॥
फिरि रक्यौ प्रथिराज। सवर पारस पहु पंगिय ॥
च्यारि च्यारि तरवारि। वीर कूरंभति सज्जिय ॥
नषिय पहुप्प इक चंदने। एक किति जंपत वयन ॥
वे हथ्थ दरिद्री द्रव्य ज्यों। रहे सूर निरषत नयन ॥ छं० १४९३।[3]

पहाड़राय तोमर—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पहाड़राय तोमर पृथ्वीराज का सामन्त था तथा जिसकी गणना उनके श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध सामन्तों में होती थी। यह तोमर वंशी क्षत्री था। 'पहाड़राय समय' के अन्तर्गत पहाड़राय तोमर के अपार साहस एवं पराक्रम का परिचय

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १२५८, स० ६६।
२. वही, छं० ९०-९१, स० ६१।
३. वही, छं० १४९२-९३, स० ६१।

प्राप्त होता है। शाह शहाबुद्दीन गोरी के दिल्ली पर आक्रमण करने पर पहाड़राय ने ही उसे बंदी बनाया था।[1] इसके अतिरिक्त भी हम पहाड़राय को पृथ्वीराज के प्रबल सहयोगियों के अंतर्गत पाते हैं। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी जयचन्द से संग्राम होने पर भी इसने पृथ्वीराज का साथ दिया था। पृथ्वीराज के दल के सलष प्रमार के खेत रहने पर महाराज पृथ्वीराज की आज्ञा पाकर पराक्रमी पहाड़राय युद्ध भूमि की ओर अग्रसर हुआ तथा युद्ध में अपार पराक्रम दिखा कर विपक्षी दल के असोकराय नामक सामन्त को मौत के घाट उतार दिया। असोकराय की मृत्यु के उपरान्त पहाड़राय का सामना करने के लिए सहदेव अग्रसर हुआ। दोनों वीरों ने अपार पराक्रम एवं साहस के साथ युद्ध किया तथा दोनों ही वीर गति को प्राप्त हुए—

तवै राई सहदेव देवंग वीरं। घरे घाइयौ संग से हथ्थ धीरं।
ह्यौ राई पहार सों कंठ मत्री। परे फुट्टि उड्डी उकस्सी सु अन्त्री॥ छं० २३९३।
ग्रह्यौ सेल सगे सहदेवि तामं। चल्यौ बथ्थ हथ्थे उड्यौ हंस धाम।
ढरे दून कल्ले वरकू अचेत। दुनं सूर जूझ्झे उभे स्वामि हेत॥ छं० २३९४।[2]

पावस पुंडीर—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पावस पुंडीर पृथ्वीराज चौहान का सामंत था। 'वड़ी लड़ाई समय ६६' के अंतर्गत पढ़ते हैं कि कांगड़ा के हाहुलीराय हम्मीर को मना कर अपने पक्ष में लाने के लिए चन्दवरदायी के जाने पर तथा छलपूर्वक चन्द को देवी के मन्दिर में वन्दी बनाकर हम्मीर के शाह गोरी के पक्ष में जाने का समाचार पाकर पृथ्वीराज ने धीर पुंडीर के पुत्र पावस पुंडीर को नमक हराम हम्मीर का सिर काटने की आज्ञा दी—

तब राजा प्रथिराज कहि। सुनि पावस पुंडीर।
इतजी परिहस सार तुल। काटहि सिर हम्मीर॥ छं० १०१२।[3]

स्वामि भक्त सामन्त पावस पुंडीर ने पृथ्वीराज की आज्ञा मान कर हम्मीर पर आक्रमण कर दिया। हम्मीर की सहायतार्थ अनेक यवन भी आये किन्तु पावस पुंडीर के समक्ष कोई न रुक सका। अन्त में पावस पुंडीर ने हम्मीर का सर काट लिया तथा महाराज पृथ्वीराज चौहान की सेवा में प्रस्तुत किया—

सीस छेदि लिय सगि कर। मद्धि साह दल मीर।
आय सूर सामन्त पें। धनि धनि जंपत धीर॥ छं० १०३६।[4]

अंत में गजनिपति शाह शहाबुद्दीन गोरी से सामना होने पर भी पराक्रमी पावस पुंडीर

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, समय ३७।
२. वही, छं० २३९३-२३९४, स० ६१।
३. वही, छं० १०१२, स० ६६।
४. वही छं० १०३६, स० ६६।

न पृथ्वीराज की ओर से गोरी की सेना का सामना किया। गोरी दल के सामंत गाजीखाँ से इसने द्वन्द्व युद्ध किया तथा अपनी कीर्ति को अजर-अमर करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ—

परत राइ पुंडीर। मीर वज्जे वहुवज्जे॥
मनहु माद्र पद ऐन। ऐन गेना घन गज्जे॥
अचल चमू चतुरंग। क्रुप्पि कुप्यार अपारह॥
असिनि भरनि तर अतर। षग्ग कर दंड सपोरह॥
जै जै चवत चव रुष्य चर। वरनि वरनि अच्छिर छरनि॥
भव भाव भवन हिम हय तजि। वसि पावस आवस घरनि॥ छं० ११६४।[1]

वखरेत—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर वखरेत पृथ्वीराज चौहान का प्रसिद्ध सामंत था। संयोगिता अपहरण सम्वंधी युद्ध में जव वीर निढ्ढुरराय पराभव को प्राप्त हुआ तथा पंग दल ने महाराज पृथ्वीराज को पकड़ने के लिए चारों ओर से घेर लिया, उस समय वीर वखरेत ने पंगदल का सामना किया तथा विकट युद्ध करता हुआ पंचतत्व को प्राप्त हुआ—

छंछट छल रष्पनह। पवग पट्टन प्रवेस किय॥
तव लगि हय गय भर। भरति चहुआन चपि लिय॥
वलिय वीर वषरेत। षग्ग षोहनि दल रुक्कयौ॥
तव लगि कहँ पटनेस। झारि झझरि झर झुक्कयौ॥
उचित सीस तस अमंरह। समर देषि संपष्षयौ॥
निढ्ढुर निसंक उप्पर पहर। वहुरि पंग पहु उतंयौ॥ छं० २२११।[2]

वलभद्र कमधज्ज—'रासो' के अनुसार सयोगिता अपहरण सम्वन्धी चौहान पृथ्वीराज तथा पगराज जयचन्द के मध्य होने वाले संग्राम में वीर वलभद्र कमधज्ज ने वड़ी वीरता का प्रदशन किया था। अपनी विमाता-जात वीरमराय को रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त होता देख कर पंगराज ने निढ्ढुरराय के अनुज वलभद्र कमधज्ज को शत्रु पर आक्रमण करने की आज्ञा दी।[3] पृथ्वीराज का प्रसिद्ध सामन्त निढ्ढुरराय अपने सहोदर वलभद्र को युद्ध हेतु अग्रसर होता देख स्वरक्त का मोह छोड़, दोनों ही वीर स्वामिधर्म हेतु जूझ पड़े—

दुआं तोन षुट्टं पछं षग्ग जुट्टं हनं तक्कि मंद्ध पेर अद्ध अद्धं।
भरं अवं अज दवं जानि दग गज सीस पांन परं वीज जानं॥ छं० २१९४।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ११६४, स० ६६।
२. वही, छं० २२११, स० ६१।
३. घन सयन अवर पच्छें करै कमिय पंग आदेस लहि।
आवंत देषि वंधव अनुज राव निडर पग मंडि रहि।। छं० २१८०, स० ६१।

कम्मध घपत अरि पंग लिषि, तमकि तमकि वर तेज।
जानिक अगि वन घन, उमडि वाय घन सेज ॥ छं० २१९६।[1]

पारस्परिक घोर द्वन्द्व के मध्य घातक आघात लगने के कारण बलभद्र तथा निढ्ढुरराय दोनों सहोदर स्वामिधर्म की रक्षा करते हुए स्वर्ग लोक को गये। अपने ही अनुज को स्वर्ग लोक भेज कर वीर बलभद्र ने स्वामिधर्म का अपूर्व आदर्श प्रतिष्ठित किया—

उभै दिट्ठ दिट्ठी मिले बाहुवांह, नियं उत्ति नाहि अरी राहराहं।
प्रिय पति रंत गैत्त पंग नरिंद, मिल्यौ षग्ग हसंक बांध वनिदं॥ छं० २१९२।
घन धाय चाय वित्तिय घरिय, करिग आन सामंत सह।
वैकुण्ठ वट्ठ लद्दी विहुन, अइन अप्प अप्पह सुरह॥ छं० २२०४।[2]

वलिभद्र तथा उसका भाई—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार वीर बलिभद्र तथा उसका भाई (जिसका रासोकार ने नाम नहीं दिया है) दोनों ही पृथ्वीराज चौहान के सामन्त थे तथा संयोगिता अपहरण सम्बन्धी युद्ध में अपार पराक्रम करके वीरगति को प्राप्त हुए। एक प्रहर दिन चढ़ आने पर महाराज पृथ्वीराज की ओर से बलिभद्र का सहोदर युद्ध भूमि की ओर अग्रसर हुआ तथा विपक्षी दल के मीरा मर्दा नामक सामत से जा भिड़ा——

वजिग पहर इक अहर। हथ्थ थक्क कमान वहि॥
हैगै नरभर डररि। श्रमिज थक्कए षग्ग सह॥
वीय अरी चित लरत। कोउ मानै नन थक्कै॥
जोगि नींद उग्यौ प्रमान। कूह चतुरग जटक्कै॥
है नषि वंघ वलिभद्र कों। पज्जूनी अग्गै समन॥
उत निक्कर मीर मीरां मरद। ढुंढारी सम्हो वयन॥ छं० २१४३।[3]

किन्तु भीषण संग्राम करता हुआ वलिभद्र का भाई मारा गया।[4] अपने भाई को मरा हुआ देखकर वलिभद्र भी युद्ध भूमि की ओर अग्रसर हुआ तथा दो प्रहर विकट संग्राम करके स्वयं भी अपने भाई का अनुकरण किया—

करि उप्पर वर वीर। वली वलभद्र सु धाइय।
दल दल मुष मुष पंग। भई द्रप्पन मुष छाइय॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २१९४-२१९६, सं० ६१।
२. वही, छं० २१९२, २२०४, स० ६१।
३. वही, छं० २१४३, स० ६१।
४. वही, छं० २१४४, स० ६१।

है अंठुन दल पंग। वीर अवरत्त हलाइय ॥
समर अमर कोतिग्ग। ईस नारद्द रिझाइय ॥
झक झोरि झोरि दल मोरि अरि। विरह चीर उट्ठाय करि।
सामंत पंच पचह मिलिग। टरि न टरै भर विप्प हर ॥ छं० २१४५।[1]

बालराय—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वालराय नाहरराय का सामन्त था। पृथ्वीराज चौहान से विकट संग्राम होने पर बालराय ने भी युद्ध में भाग लिया था तथा अन्त में स्वामि धर्म का पालन करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ।[2] वालराय नामक पात्र की पुष्टि रासो के अप्रकाशित एव हस्तलिखित मध्यम संस्करण से भी हो जाती है। इस संस्करण के अन्तर्गत भी बालराय को युद्ध भूमि में वीर गति प्राप्त होता है।[3]

बालुकाराय कमधज्ज—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द के अनुज भंकेसराय का पुत्र बालुकाराय कमधज्ज खोखद नगर का क्षत्रप था।[4] पंगराज ने अपने इसी भ्रातृज बालुकाराय को राजसूय यज्ञ के शुभावसर पर नगर रक्षा का भार सौंपा था। दिल्ली-अजमेर के अन्तिम हिन्दू शासक महाराज पृथ्वीराज चौहान ने पंगराज के यज्ञ का निमन्त्रण अस्वीकार कर यज्ञ विध्वंस करने का विचार किया। उसी को कार्यरूप में परिणत करने के हेतु पृथ्वीराज चौहान ने खोंखंद नगर पर आक्रमण कर बालुकाराय का वध कर, चन्द के यज्ञ को दूषित करने की योजना बनाई। यज्ञारम्भ की सूचना प्राप्त होने पर पृथ्वीराज चौहान ने खोंखंद नगर पर धावा वोल दिया। आक्रमण के फलस्वरूप चतुर्दिक हाहाकार व्याप्त हो गया। बालुकाराय ने जब यह सुना तो क्रुद्ध हो कर कहने लगा—

किहि रुट्ठ्यौ सुव तरनि, कहे नचरी पति संजम।
अज्ज रज्ज जयचन्द कवन उद्वेग करइ दम ॥

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २१४५, स० ६१।
२. वही, छ० ११६, स० ७।
३. पृथ्वीराज रासो, मध्यम संस्करण, हस्तलिखित एवं अप्रकाशित प्रति, छं० २९, पृ० २६, स० ४; रा० ए० सो० लदन।
४. धाह थाह खोखंद, सुनिय बालुकाराइ रव।
लघु बंधव जयचन्द, राइ भंकेस सु संभव ॥
सोइ संभलि कल कूक, ऊक व्रद्धिय दसदिसि दर।
नह सुनिये श्रुति अवर, नयर सव गज्जि गहम्मर ॥
बालुकाराइ इम उच्चरै, कहौ वत्त कारन सकल।
मम करौ धाइ थिर होइ करि, कवन तेक बंधी सुवल ॥
—पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १८, स० ४६।

तव घाहुनि उच्चगि, सुनहि भंकेस राइ सुअ।
ढिल्लीवै चहुआन तेन उचवारि जारि भुअ॥
सुनि सद्द नद्द निस्सान किय, अप्प वोलि सज्जे सुभर।
सज होई चढ़ौ सज्जौ सिल्ह अनी वंधी आषाढ़वर॥ छं० १७४।[1]

दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज का आक्रमण सुनकर वीर वालुकाराय तत्काल ही अपने साथ वत्तीस हजार की संख्या में सुसज्जित होकर नगर को छोड़ जनता की मदद करने के लिए युद्ध हेतु सन्नद्ध हो गया।[2] यम तुल्य वीर वालुकराय कमधज्ज ने स्वयं सुसज्जित होकर अपनी विशाल सेना को पंक्ति वद्ध किया।[3] दोनों दलों में घोर संग्राम हुआ जिसमें चौहान के दल के प्रसिद्ध सौ सामंत घायल होकर धराशायी हुए तथा केवल छह सामन्त ही कुशल रहे। इस संग्राम में पृथ्वीराज की विजय हुई।[4] घोर पराक्रम प्रदर्शित करता हुआ वीर वालुकाराय इस संग्राम में पराभव को प्राप्त हुआ। स्वामिधर्म का पालन करते हुए इस वीर ने अपने अमूल्य प्राणों की आहुति दे दी। वास्तव में इसके निधन से पंगराज की वड़ी भारी क्षति हुई। कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द गाहड़वाल की यज्ञ अभिलाषा पूर्ण होने के पहले ही विनष्ट कर दी गई। वालुकाराय की मृत्यु के साथ ही साथ चौहान के सैनिकों ने खोखंद नगर को लूट कर उसकी श्री नष्ट कर दी। इस प्रकार चौहान पृथ्वीराज ने कन्नौजपति जयचन्द का यज्ञ विध्वंस कर चक्रवर्तित्व का गौरव प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा को पूर्णरूप से नष्ट कर दिया। अपने पति का निधन सुन कर वीर वालुकाराय की पत्नी उसके शव के साथ सती हो गयी—

हनिग राउ वालुका, भंजि खोखंद महापुर।
लुट्टि रिद्धि वहु निद्धि, कनक पट कूर नग्ग धुर॥
करत सास उद्दास, छोहि जोरी वर दपत्ति।
फिर्यौ राज चहुवान, पान दक्खै हरि सम्पति।
वज्जत नद्द निस्सान रव, धाह प्रकेसे लोटि धर।
भग्गेव जग्य जयचन्द नृप, थान थयट्ठौ कंपि पर॥ छं० २७३।[5]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १७४, स० ४८।
२. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २० स० ४६।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १८२, स० ४८।
४ ढिल्लीईसय सत्त भ्रत, परेसु कटि रन थान।
छह सत्तह सामंत कुसल, जय लद्धी चहुआन॥
—पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २५, स० ४६।
५. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २६, स० ४६, तथा नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २७३, स० ४८।

इस प्रकार से वीर वालुकाराय कमधज्ज अपना पराक्रम एवं वीरता का परिचय देकर वीरगति को प्राप्त हुआ। वालुकाराय का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व प्राप्त न होने के कारण, कुछ अधिक लिखना सम्भव नहीं है। पृथ्वीराज रासो का अप्रकाशित मध्यमय संस्करण वालुकाराय के वध का समर्थन करता है।[1]

विझराज—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार विझराज पृथ्वीराज चौहान के प्रसिद्ध एवं पराक्रमी सामन्तों में से एक था। यह सारंगराय सोलंकी का भाई था।[2] संयोगिता अपहरण सम्बन्धी संग्राम में जब अचलेस चौहान वीरगति को प्राप्त हुआ तब पृथ्वीराज ने परम पराक्रमी बिझराज सोलंकी को युद्ध भूमि में अग्रसर होने की आज्ञा दी।[3] वीर विझराज अपने स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य कर तथा पृथ्वीराज को मस्तक नवा कर विकट संग्राम हेतु युद्ध भूमि की ओर अग्रसर हो गया। इस भीषण संग्राम में विझराय ने पंग दल के छह प्रसिद्ध योद्धाओं को मौत के घाट उतार दिया तथा एक सहस्त्र सिपाहियों को भी स्वर्ग-मार्ग को भेज दिया—

सहस एक परिपंग दल। घन घन जंपै घोर ॥
जै जै सुर वद्दं सयन। धनि धनि विझा वीर ॥ छं० २३४३।[4]

इतना नर संहार करने के उपरान्त वीर विझराय भी पराभव को प्राप्त हुआ। विझराय सोलंकी के पृथ्वी पर गिरते ही कवि चन्द वरदायी ने उसकी कीर्ति एव वीरता के सम्बन्ध में निम्नलिखित दो छन्द प्रस्तुत किये—

परत अचल चहुआन। पच्छ गुज्जर रषि लाजं ।
भ्रित भाग सामंत। सार नृप जल तन माज ॥
रुप रुप रुप्पनह। दंन दट्टी बच्छारं ॥
अरि रुक्की वसि सार। कीव तन भग प्रहारं ॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, माध्यम संस्करण, (अप्रकाशित), रायल ऐशियाटिक सोसाइटी, लन्दन, वालुकाराय समय, ३६।

२. रासो सार, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० २५४।

३. दल आवत पहु पंग। दिष्षि चहुआन सब्ब सजि ॥
वींझराज चालुक्क। दियो आयेस अप्प गजि ॥
अहो धीर चालुक्क। सद्दे अनभग वग्ग धरि ॥
सन मुख सजि पलजूह। तास भर सु भर अन्त करि ॥
उच्चर्यो व्रह्म चालुक्क तह। अहो राज प्रथिराज सुनि ॥
पथ्य धरनि धन सूरभर। करों पंग दल दन्ति रिन ॥ छं० २३२४, स० ६१।

४. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २३४३, स० ६१।

तन तुट्टि सिरह पल चर ग्रस्यौ । वलि विरोह विराधि जिम ।।
इम विटि पि अच्छरि परी । ससि पारस रति सरद जिम ।। छं० २३४४ ।

कलिन कल्यौ असियन मिल्यौ । भरहरि नहि भग्गौ ।।
अजसुन लयौ जसवनि भयौ । अमग्ग न लग्गौ ।।
पहुन लयौ वियन गयौ । अप जप नह सुनयौ ।।
और न ज्यौ दरसि न गयो । गाहत न गह्यौ ।।
गयौ न चलि मदिर दिसाह । मरन जानि झुझ्यो अनिय ।।
विझ दिय दाग तिलकह मिसाह । वह वह वह मग्गल घनिय ।। छं० २३४५ ।[1]

वेनीदत्त ब्राह्मण—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वेनीदत्त ब्राह्मण गजनिपति शाह शहाबुद्दीन का ब्राह्मण था । महाराज पृथ्वीराज को बंदी बना कर गजनी ले जाने के उपरान्त, उनकी खाने-पीने की समस्या आने पर गोरी ने वेनीदत्त नामक ब्राह्मण को पृथ्वीराज चौहान के लिए खाना बनाने के लिए नियुक्त किया तथा शाह ने वेनीदत्त को पृथ्वीराज को भोजन खिलाने के लिए आज्ञा दी ।[2] वेनीदत्त ने पृथ्वीराज चौहान से भोजन करने के लिए आग्रह किया तथा उन्होंने स्नानादि से निर्वित्त होकर भोजन करना स्वीकार कर लिया—

तब वेनीदत्त विप्र कहि । सुनि बंधव सुविहान ।।
अन्न पसाव राजन करौ । आस सांस चहुआन ।। छं० १६६८ ।
तब चिंते चितराज । संभु वर बोल समारिय ।।
मानि कियो आहार । तिने सब परिकर सारिय ।।
दस बंभन रहै पास । त्रिन तर भोम सुधारिय ।।
करे पाक विधि विप्र । विविध व्यञ्जन रस कारिय ।।

जल उस्न राज असनान किय । वर रोहिय धौतह वसन ।।
करि ध्यान संभु जप निति किय । आहारे अन्नह व्यसन ।। छं० १६६९ ।[3]

वेनीदत्त नामक कोई ब्राह्मण गोरी के दरबार में अथवा गजनी में था, अब इस बात

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २३४४-२३४५, स० ६१ ।

२. भौ विहान सुविहान । वोलि हज्जूर हुजावह ।।
वेनीदत्त सुविप्र । आय सानमुख्ख सितावह ।।
दिय आयस साहाव । रहौ तुम राजन पासह ।।
सो उपाय तुम करो । भषे जिम अन्न उदासह ।।
आए सु उभै राजन्नप्रति । वेनीदत्त सुविद्धि कहि ।।
प्रथिराज अहारो अन्न रस । हम जच्चे तुम पास इह ।। छं० १६६७, स० ६६ ।

३ पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी छं० १६६८-६९, स० ६६ ।

का पता लगाना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। इतिहास इस विषय में सर्वथा मौन है। संभव है ग्रन्थकार को पृथ्वीराज चौहान के धर्म रक्षा हेतु वेनीदत्त ब्राह्मण की कल्पना करने की आवश्यकता हुई हो।

मकवाना—गुर्जरेश्वर भोलाराय भीमदेव चालुक्य (द्वितीय) का एक योग्य सभासद था। गुर्जरेश्वर पर, जब चौहान पृथ्वीराज ने आक्रमण किया तब उसने वीर मकवाना को पृथ्वीराज चौहान द्वारा आक्रमण करने की सूचना तथा भेंट लेकर गजनी भेजा।[1] वीर मकवाना ने गजनी पहुंच कर शाह गोरी से साक्षातकार किया तथा भरे दरबार में गुर्जरपति भोलाराय भीमदेव चालुक्क का पत्र पेश कर अपने आने का मूल अभिप्राय कह सुनाया। मकवाना की बात सुनते ही शाहबुद्दीन गोरी का मुख लाल हो गया, ओष्ठ फड़कने लगे। उसने फड़कती हुई भुजाओं से अपना तीर उठा कर कमान पर चढ़ाया तथा प्रतीज्ञा की कि मैं स्वयं ही काफिरों का नाश करूंगा तभी खुरासान में रहूंगा। बादशाह का ऐसा वचन सुनकर तातार खाँ, न्याजी खाँ, पिरोज खाँ, रुस्तम खाँ, उजबक खाँ, निसुरत खाँ आदि सभासदों ने भी हाँ में हाँ मिला दी।[2] बादशाह गोरी ने मकवाना की बात का प्रत्युत्तर दिया कि दान, विद्या तथा सम्पति ये चार वस्तुएं साझे में नहीं होती। रे मूढ़ दूत यह पृथ्वी वीर भोग्या है, तुच्छ भीमदेव चालुक्य मुझसे क्या शेखीमारता है। मैं उसे भी नष्ट-भ्रष्ट करने में समर्थ हूँ। शाह गोरी की आवेशपूर्ण बातें सुनकर मकवाना ने भी कहा कि भीमदेव चालुक्य भी ऐसा दुर्बल नहीं है, वह भी म्लेच्छों को नीचा दिखा सकता है।[3] गोरी ने पुनः मकवाना की बात का प्रत्युत्तर दिया—पहले पृथ्वीराज को नष्ट कर लूं, तब भोलाराय भीमदेव की भी खबर लूंगा। ऐसा सुनकर वीर मकवाना सगर्व बोला—हे शाह ! जिस समय भीमदेव चालुक्य दलबल सहित चलता है, तब पृथ्वी डोलने लगती है तथा काल भी भयभीत हो जाता है। वीर चालुक्यराज के समक्ष जालंधर, वग, तिलंग कोकन, कच्छ परोट मरहट्ट आदि कोई भी ठहर नहीं सकते, सब उससे नवते हैं। यह वही प्रतापी भोलाराय भीमदेव चालुक्य है, जिसने बघेलों को परास्त किया, आबूगढ़ को धराशायी किया, तथा यादवों को हराया। उसे जीतना सहज कार्य नहीं, ब्रह्मा ने स्वयं उस अद्वितीय वीर को अपने कर कमलों से बनाया है।[4] वीर मलवाना का ऐसा गर्व युक्त कथन, शाहबुद्दीन गोरी सहन न कर सका तथा वह उसे मारने के लिए उद्यत हो गया, किन्तु योग्य वजीर ने समझाया कि दूत मारा नहीं जाता, ऐसा करने से बड़ा कलंक तथा अपयश होगा।[5] वजीर की मंत्रणा सुनकर शाह

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ११८, स० १२।
२. वही, छं० ११९, स० १२।
३ वही, छं० १२४-२५, स० १२।
४. वही, छं० १२६, स० १२।
५. वही, छं० १३०-३१, स० १२।
६. वही, छं० १३२ तथा १३४, स० १२।

गोरी निस्तब्ध रह गया किन्तु इतने में ही एक अन्य सभासद बोल उठा कि यद्यपि दूत को मारना नीति-विरुद्ध है किन्तु यह दूत भी तो कैसी असभ्य वाणी बोलता है।[1] सभासद के अपमान सूचक वचन सुनकर वीर मकवाना से न रहा गया तथा उसने उस सभासद को एक ऐसा हाथ मारा कि उसका सिर धड़ से पृथक होकर पृथ्वी पर लोटने लगा।[2] अपने प्रिय सभासद की इस प्रकार मृत्यु देख कर गोरी न रह सका तथा उसने तुरन्त ही वीर मकवाना का हृदय अपने तीक्ष्ण बाण से वेध दिया। वीर मकवाना ने मरते-मरते हैजम तथा हुजाव नामक दो सरदारों को मार गिराया तथा स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुआ—

सुनि साहाव वजीर। वोलि वल की अप्पनां॥
कवकस करते वर। कमान तानी लगि कानां॥
छल छुट्टी छातीह। हनत सारंग सुषानां॥
मार मार उच्चार। तेग कढढी मकवानां॥
हैजम हुजाव सिर उच्छटी। बीजलि कै अवर अरी॥
कमांन भजि बुप्परि पला। मही अग्गि उछटी परी॥ छं० १४८।
हैजम घुकि धर पर्‌यो। पर्‌यौ माझी मकवाना॥
रस रसाल लुट्टीय। अवै लग्गिय सुरताना॥
गयौ साहि औसाफ। साथ मग्गिय दुनियाना॥
बुरे बुरौ सव कोई। कहत सजय सुनियाना।
करतार हथ्थ केती कला। कियो सुलम्मै अप्पना॥
पपग देह मट्टी मिलै। दीदे देषि सु सप्पना॥ छं० १४९।[3]

अस्तु इस प्रकार वीर मकवाना अपने स्वामिधर्म एवं आत्म सम्मान की रक्षा करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। रासो के प्रत्येक पात्र को ऐतिहासिक मानना नितान्त भ्रम है। वीर मकवाना के चरित्र में ऐतिहासिक तथ्य खोजना ऐसा ही है जैसे बालू को पेर कर तेल निकालने का प्रयत्न करना।

मर्लसिह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार यह पृथ्वीराज चौहान के प्रसिद्ध सामन्त पंजूनराय का पुत्र था। संयोगिना अपहरण सम्बन्धी युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के पक्ष से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ था।[4] इनकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १३९, स० १२।
२. वही, छं० १४०-४१, स० १२।
३. वही, छं० १४८-४९, स० १२।
४. तवै देषियं तात पुंत्त चरितं। मनो पिष्षिय वाह आयास मितं॥
घत्यौ हथ्य वथ्यं दुहथ्थत नप्पौ। भिरयौ हथ्थ वथ्थ रस वीर घप्यौ॥ छं० १५०४।
लगे घाव रुट्ठि परे धीर पेतं। उपारयौ सुविप्र भयौ सो अचेतं॥
पर्‌यौ यों पजूनं सु पुतं उच्चार्‌यौ। भयो इत्तने मान अस्तमित चाल्यौ॥ छं०१५०८, स०६१,

महादेव राय—'कनवज्ज समय ६१' के अन्तर्गत कवि चन्द वरदायी कथित कन्नौजपति पंगराज की राज्यसभा में उपस्थित सामन्तों के नाम तथा ग्रामोल्लेख करते हुए, महादेवराय का वर्णन भी प्रस्तुत किया है। कवि चन्द के अनुसार महादेव राय तलवार चलाने में अत्यन्त निपुण एवं दक्ष था।[1] यहाँ तो कवि ने संकेत मात्र प्रस्तुत किया है, कि वीर महादेव राय असि-युद्ध में निपुण था। योद्धा का वास्तविक परिचय तो रण क्षेत्र में ही मिलता है। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी पृथ्वीराज चौहान तथा जयचन्द के मध्य होने वाले भीषण संग्राम में इस वीर ने पंगराज से युद्ध हेतु आज्ञा मांगते हुए निवेदन किया—

आइयौ राइ महादेव तब, नाइ सीस बुल्यौ वचन ॥
सग्रहौ राज पृथ्वीराज को, सद्धौ चहु जग्गिनि सयन ॥ छं० १४०४ ।[2]

चौहान पृथ्वीराज को बन्दी बनाने की प्रतिज्ञा कर वीर महादेव रौद्र रूप धारण कर विकट युद्ध हेतु अग्रसर हुआ, पृथ्वीराज के सामन्त चालुक्य तथा महादेवराय के मध्य घोर द्वन्द्व युद्ध हुआ।[3] युद्धान्तर्गत पराक्रमी महादेवराय का एक भरपूर हाथ चालुक्य योद्धा का काम तमाम करने के लिए पर्याप्त सिद्ध हुआ। किन्तु मरणोन्मुख चालुक्य योद्धा के अचूक वार ने उसके लिए भी मोक्ष द्वार खोल दिये—

धाइयौ ताम महदेव तम्म, चालुक्क हयौ संगी उरम्म ।
युअ लग्गि वीर मिलि विषम घाव आवद्ध तुट्टि दुअ वीर तांव ॥ छं० २४१६ ।[4]

दोनों ही पराक्रमी वीर विमानारूढ़ हो स्वर्ग लोक को गये तथा वहाँ पर उनका स्वागत तथा सम्मान समान रूप से अप्सराओं ने किया।

मुंगल-मेवातपति—मेवातपति राजा मुंगल, अजमेरपति राजा सोमेश्वर के आधीनस्थ शासक था।[5] एक दिन अजमेरपति सोमेश्वर ने अपनी राज्यसीमा की वृद्धि हेतु मुंगल नरेश को एक पत्र लिख भेजा कि यदि तू भूमि की कामना करता है, तो हमारी आधीनता स्वीकार कर, हमें कर देना स्वीकार करो, अन्यथा रण की भीषणता से भयभीत होकर अपना राज्य स्वयं त्याग दो।[6] सोमेश्वर के दूत द्वारा जब मुंगल नरेश को उपर्युक्त सूचना प्राप्त हुई तो उसने भी वीरोचित उत्तर देते हुए सोमेश्वर की चुनौती स्वीकार कर ली।[7] अब युद्ध

---

१. महादेव समह हर सिघ बंक। मेहा नइंदसाद सार कंक ॥ छं० ५३३, स० ६१।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४०४, स० ६१।
३. वही, छं० २४०६, स० ६१।
४. वही, छं० २४१६, स० ६१।
५. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १, स० ७।
६. वही, छं० ३, स० ७।
७. वहीं, छं० ९, स० ७।

अवश्यम्भावी हो गया। जहां-तहां युद्ध भेरियां बजने लगीं। घोड़ों पर जीने कसी जाने लगीं। योद्धागण वीर रस से परिपूर्ण हो गए। दोनों ओर की सेना में भयंकर युद्ध हुआ। योद्धाओं ने अपने-अपने अरमान पूरे किए। वीर पृथ्वीराज ने अपने पिता की अप्रत्यक्ष पुकार पर रात्रि में ही मुंगल सेना पर आक्रमण कर दिया। अतः मंगद नाम के राठौर वीर ने, जो मेवातपति का स्थान रक्षक था, कवच धारण कर स्वामिधर्म का पालन किया। नरनाह चाचा कन्ह ने इसका सामना किया।[1] मुंगल नरेश की सेना का वामपक्षी सेना नायक वाजिन्द खाँ था, जिसके समक्ष कैमास आ डठा।[2] सेना के दक्षणी भाग के सेना नायक कछवाहा के सामने पृथ्वीराज का सामन्त रामराय बड़गुज्जर आ गया।[3] अतः वीरों की मारकाट से मुंगल-सैनिक विचलित हो भागने लगे तथा मुंगल नरेश को बन्दी बना कर हाथी पर डाल दिया गया—

भई जीति सोमेस सुव, लिय मुंगल गज मेलि॥
सोधि खित्त सब दिग्घ लघु, वीर बरंणी केलि॥ ३७।[4]

ग्रन्थकार ने स्पष्ट सूचना नहीं दी कि मुंगल को परास्त कर उसका क्या किया, किन्तु अनुमान लगाया जा सकता है कि, सोमेश्वर ने उसे अपनी आधीनता स्वीकार करा कर मुक्त कर दिया होगा, क्योंकि कवि ने आगे लिखा है कि—कालान्तर में वह फिर स्वतंत्र हो गया तथा उसने दिल्ली की कुछ भूमि पर अपना अधिकार भी कर लिया।[5] सूचना पाकर पृथ्वीराज चौहान ने अपने श्रेष्ठ मंत्रियों से मंत्रणा करके श्रेष्ठ ढग से कूच कर दिया तथा जमुना किनारे औघट घाट पर अपना शिविर डाल दिया। गुप्तचरों ने मेवातपति मुंगल को पृथ्वीराज के आक्रमण की सूचना दी। सूचना पाकर मुंगल ने अपने मंत्रियों को मंत्रणा हेतु एकत्र किया, तथा युद्ध हेतु तैयारियाँ होने लगीं। वीर पृथ्वीराज ने मुंगल की युद्ध की तैयारियां सुन कर कहा—'हे सामन्तों! तुम मुंगल को अपनी समानता का नहीं समझते थे किन्तु वह तो युद्ध हेतु तैयार होकर आ रहा है। इसीलिए कहता हूं कि—शत्रु, सर्प तथा मुग्धा को निर्वल नहीं समझना चाहिए।[6] पृथ्वीराज के आवाहन पर समस्त सामन्तगंण, जिन्हें अपने पराक्रम पर विश्वास था, अपने-अपने अश्वों को छोड़ कर शत्रु सेना में पैदल ही धस गये।[7]

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १८, स० ७।
२. वही, छं० १९, स० ७।
३. वही, छं० २०, स० ७।
४. वहीं, छं० ३७ स० ७।
५. चित मुंगल चितयौ, राज प्रथिराज वैर वर।
मद्धि थानं मेवात, रह्यौ चंपै सु ढिल्ली धर॥ छं० ४, स० १५।
६. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १६, स० १५।
७. वही, छं० २४, स० १५।

सिंह प्रमार, जैत प्रमार, आदि योद्धाओं ने मेवातपति मुंगल के सामन्त कछवाहा को घर दबाया।[1] वीर सोलंकी सारंग के समक्ष शत्रु चित्र लिखित सा रह गया तथा अप्सराएं विभ्रम में पड़ गई कि वे किसको वरण करें क्योंकि–

> असित असित दोई वीर हैं, ताप ढक वर अंत॥
> ज्यों जानौ तन संगुहों, वर मारथ्ये कंत॥ ३०।[2]

युद्ध का अन्त महाराज पृथ्वीराज की विजय में हुआ। मेवातपति मुंगल पृथ्वीराज के हाथों परास्त हुआ तथा वन्दी बना लिया गया। वलवान मुंगल नरेश को वंदी वनाकर, पृथ्वीराज विजय प्राप्त कर अपने स्थान को प्रत्यावर्तित हुआ। देश के अगणित शत्रु उसका पराक्रम देख कर यशगान करने लगे। किसी भी शत्रु का चहुवान नरेश से रणक्षेत्र में सामना करने का साहस न हुआ। अतः युद्ध में यश का सेहरा वांध कर शत्रु को पराजित कर पृथ्वीराज घर आया तथा रानी इच्छनी के रूप सरोवर का हंस वन क्रीडा करने लगा।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता म० म० ओझा सोमेश्वर तथा मुंगल के मध्य होने वाले युद्ध को ऐतिहासिक न मानते हुए लिखते हैं—'रासो में लिखा है कि सोमेश्वर ने मेवात के मुंगल राजा (मुग्दल राय) से अन्य राजाओं के समान कर मांगा। उसके इन्कार करने पर सोमेश्वर ने उस पर चढ़ाई कर दी। पृथ्वीराज भी कुछ समय वाद अजमेर से चला और रातोंरात मुंगल सेना पर उसने आक्रमण कर दिया। युद्ध में मुंगल पराजित हुआ। मुंगल राजा का जेष्ठ पुत्र वाजिद खां मारा गया और वह स्वयं कैद हुआ।

यह कथा कल्पित है। सोमेश्वर के समय में तो मेवात प्रदेश अजमेर राज्य के अन्तर्गत था। वहाँ कोई स्वतंत्र राजा नहीं था और मुगलों का तो क्या, अन्य मुसलमानों तक का उस प्रदेश पर अधिकार नहीं था। सोमेश्वर की, जीवित अवस्था में पृथ्वीराज इतना वड़ा न था कि युद्ध में जा सकता।'[3] ओझा जी के विरुद्ध कविराव मोहनसिंह पृथ्वीराज तथा मुंगल नरेश के युद्धों को ऐतिहासिक मानते हुए लिखते हैं कि–'मेवाती मुंगल क्षत्रिय था। सोमेश्वर तथा पृथ्वीराज के साथ इसके युद्ध होते रहे। बाद में महामंत्री कैमास के दो वहिनें थी, उनमें से एक मुंगल को तथा दूसरी पृथ्वीराज को व्याह दी गई। इस प्रकार सम्भव है उस दक्ष मंत्री कैमास ने आपसी विद्रोह की समाप्ति की'।[4]

कविराव मोहनसिंह ने मुंगल तथा कैमास की वहिन की विवाह की वात 'रासो' के आधार पर ही की है—रासो मे स्पष्ट लिखा है–

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २५, स० १५।
२ वही, छं० ३०, स० १५।
३. ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, पृ० ५७, कोशोत्सव स्मारक संग्रह।
४. कविराव मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो, प्रथम भाग, सम्पादकीय पृ० १२, साहित्य संस्थान उदयपुर, सं० २०१२।

काल भ्रात कैमास, खलन चामंड खग खढ्ढिय।
सूर नूर सम-सत्थ, सकति पूजा सुर सढ्ढिय॥
मेवाती मुंगल सु तथ्य, पुत्रि इक्ककह परनाइय।
विय पुत्री सिरताज, सुतौ पृथिराजह व्याहिय॥
दो जानं मान चहुआन दल, प्रथम कलस सेंभरि धनिय।
उच्छाह वहुत मंगल करहि, गीत गांन अलि सुर वनिय॥ १०।[1]

उपर्युक्त छन्द से स्पष्ट है कि कैमास ने अपनी वहिन का विवाह मुंगल से किया था। सम्भव है ऐसी घटना हुई हो, किन्तु 'रासो' के आधार पर ही उसे प्रमाणिक एवं ऐतिहासिक घटना मान लेना नितान्त भ्रम है। जब-तक कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता तब-तक उपर्युक्त घटना में संदेह ही अधिक रहेगा। अब भी इस विषय पर स्वतंत्र रूप से अनुसंधान की आवश्यकता है। यहाँ पर सामग्री अभाव के कारण इस विषय पर निर्णायक मत देना भूल होगी।

रतनसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चित्तौड़पति रावल समरसिंह के छोटे पुत्र का नाम रतनसिंह था। रावल समरसिंह ने निगमबोध की यात्रा की कामना करते हुए अपने समस्त सामन्तों को एकत्र करके राजकुमार रतनसिंह को चित्तौड़ की गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित किया, जिसे समस्त सरदारों ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया।[2] राजकुमार रतनसिंह के राज्याभिषेक का शुभ दिन शोधा गया। अबूगढ़, जालोर बूंदी, गोरगढ़, धार, उज्जैन तथा रणथम्भोर आदि के राजाओं के नाम निमंत्रण भेजे गये। उन राजाओं की उपस्थिति में राजकुमार रतनसिंह को गद्दी का भार सौंपा गया तथा देवराज को किले की रक्षा का भार सौंप कर रावल जी अपनी पत्नी पृथा सहित दिल्ली की ओर रवाना हो गये।[3] रतनसिंह का इसके अतिरिक्त विवरण प्राप्त नहीं होता है।

रनधीरराय—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार रनधीरराय जुव्वनगढ़ का स्वामि था। जिस समय रावल समरसिंह पृथावाई के साथ निगमबोध की ओर अग्रसर हो रहे थे और मार्ग में उनके डेरे आमेर में पड़े हुए थे। उसी समय रनधीरराय को किसी ने बहकाया कि यदि इस अवसर पर आक्रमण करके रावल समरसिंह के डेरों को लूट लिया जावे तो अपार सम्पत्ति

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १०, स० १६।

२. सभा करी रावर समर। वैठे सूर सवान।
निगम वोध भेटन सुतिय। चलियं दिल्ली थान॥ छं० ४।
चित्र कोट गढ़ पट्ट कज। रावल पुत्र रतनं।
निट्ट सु रष्पिय हट्ठ करि। घन प्रमोधि परिजंन॥ छं० ५, स० ६६।

३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७-१०, स० ६६।

हाथ लगेगी, नाम हो जावेगा तथा आवेर की भूमि भी अपने हाथ आ जावेगी। रनधीरराय को यह शिक्षा प्रिय लगी अतः उसने सेना को साथ लेकर रावल समरसिंह पर आक्रमण कर दिया—

कूच कूच करि पंर, प्रथा डोला दोइ सथ्थह ॥
सत्त केक वाजित्र, चले उमराव समथ्थह ॥
किय डेरा आंमेर, कोस दोई उप्पर कढ्ढिय ॥
सहस तीस दोइ सथ्थ, जुव्वन गढ़ रायां हट्ठिय ॥
किन कही वत्त रावर समर, इह राजा चितौरपति ॥
तव कही वत्त रन धीर भर, इह अलोच किज्जै सुसति ॥ छं० २४ ।[1]

रनधीरराय के आक्रमण की सूचना पाकर रावल समरसिंह ने भी उसका सामना करने के लिए अपनी सेना को व्यूह बद्ध किया। रनधीरराय के साथ बाइस हजार सवार और पैदल तथा एक हजार हाथी थे। उसने अपनी सेना को चक्र व्यूहाकार बनाकर अर्धरात्रि में रावल समरसिंह पर आक्रमण किया।[2] रावल समरसिंह की ओर से कन्हराय ने रनधीर का सामना किया। कन्हराय ने शत्रु के व्यूह को वेधकर रनधीर के समक्ष उपस्थित हो, उसका सामना किया। कन्ह ने सांग के प्रहार से रनधीर के कलेजे को छलनी बना दिया, जिससे वह बेहोस होकर गिर पड़ा तथा उसके अन्य साथी भाग खड़े हुए—

पर्यौ सथ्थ रनधीर। भंजि सेना चालुक्की ॥
तीन सत्त धर परे। जानि लग्गि तन भूकि ॥
सौंथ्यौ रन सी सोढ्। कन्ह पट्टे वधायं ॥
प्रथा कंत हुम जैत। सधी युगतान वंधायं ॥
दै दास सथ्थ अप्पन सुपर। वीस रोज मुक्काम किय।
जिन घाव अंग लग्गे मरन। तिनह सीष चित्रकोट दिय ॥ छं० ४४।[3]

रयसल्लराय कमधज्ज[4]—'रासो' मे अनेक कमधज्ज वंशी योद्धाओं का उल्लेख मिलता

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छ० २५, स० ६६।
२ वही, छं० ३७, स० ६६।
३. वही, छं० ४४, स० ६६।
४. जयचन्द गाहड़वाल को स्थान-स्थान पर रासोकार ने राठौर अथवा कमधज्ज वंशी लिखा है। स्पष्ट है कि, उसके सम्बन्धियों के लिए भी रासोकार ने कमधज्ज शब्द का प्रयोग किया है। 'कमधज्ज' शब्द को डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी ने रेवातट (द्वियीय भाग, पृ० २५) में जयचन्द की वंशक्रम से चली आती पदवी अथवा विशेषण माना है। टॉड ने अपने राजस्थान में लिखा है "कन्नौज वाले राठौर वंशी राजपूत थे और

है। पंगराज की सभा का वर्णन करते हुए उन्हें सभा में उपस्थित बताया गया है। वीर रयसल्लराय, पंगराज के दक्षिण पार्श्व में स्थित था। 'दच्छिनिय अंग रयसल कमंध।'[1] रासोकार के मत से स्पष्ट है कि यह कोई राजवंशी व्यक्ति था किन्तु क्षेपककारों की कल्पना ने उसे कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचन्द का चचेरा भाई बना डाला। यद्यपि उद्धृत पंक्ति से पारस्परिक सम्बंध का कोई संकेत तक प्राप्त नहीं होता। कमंध शब्द से रासोकार का सम्भवतः आशय यही रहा होगा कि वीर रयसल्ल समान वंश का कोई योद्धा था।

संयोगिता अपहरण सम्बंधी पंगराज तथा पृथ्वीराज के मध्य होने वाले संग्राम में नवमी के दिन जब सात घड़ी दिन शेष रह गया तथा पंगसेना छिन्न-भिन्न होने लगी तब इस वीर पराक्रमी योद्धा ने घोर मारकाट मचा कर, पृथ्वीराज चौहान की सेना पर धावा बोल दिया—

घरिय सत रवि सेष, भयो कलहंत ताम भर।
वज्र घात सायंत, अग्गि लग्गी सु षग्ग भर॥
दल हलंत दल पंग, दंग चहुआन जान भय।
तब आयौ रयसल्ल, विरद मंरु सूमूत राय॥
हांकत हक्क वर उच्चरिग, आतुल पान आजन हुअ।
कमधज्ज लग्गि कमधज्ज छल, वीर धीर विजयास सुअ॥ १७५६।[2]

साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर रयसल्लराय का

कामध्वज उनका विशेषण या पदवी थी। कामध्वज का अर्थ है कि जिसकी ध्वजा में कामदेव अंकित हैं और कन्याध्वज का अर्थ है कि जिसकी ध्वजा में कुमारी कन्या अंकित है। सम्वत् ५२६ (४७० ई० पु०) में नयनपाल ने कन्नौज पर अधिकार किया और तभी से राठौरों ने 'कामधुज' पदवी ग्रहण की।' टॉड, राजस्थान, जिल्द २, पृ० ५।

किन्तु प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी उपर्युक्त समाधान से संतुष्ट नहीं हैं, प्रथम तो राठौर-राष्ट्रकूट दो जाति हैं जिनका गाहड़वालों से कोई सम्बंध नहीं पुनः कमधज्ज भी कवि द्वारा प्रयुक्त विशेषण मात्र है उसका ऐतिहासिक चिन्ह कोई नहीं मिलता। डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, हिस्ट्री आव कन्नौज। 'रासो' में अनेक स्थलों पर जयचन्द के लिए 'कमधज्ज' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ८, स० २६। छं० ३९, स० २६। छं० २२, स० ३१। छं० ३०३, स० ६१। छं० ६५८, स० ६१ आदि।

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५३०, स० ६१।
२. वही, छं० १७५६, स० ६१।

विरद 'भेरो भूत' था। 'काम धज्जह रयसल्ल, विरद भेस सुभूत गह।' घोर संग्राम के अनन्तर नवमी की रणचण्डी ने विश्राम लिया—

संम्म सपत्तिय नृप तिरन, विय पारस पर कोट।
एहै सूर सामन्त जकि, देषि नृपति तन चोट॥ १७७०।

संझ सपत्तिय रति मर, फुनि सज्जै दल पंग।
चलिग पति पहुपंग मिली, जुद्ध मरनि किय जंग॥ छं० १७७१।[1]

धीर रयसल्लराय कमधज्ज, इसी घोर संग्राम में, पंग पक्ष की ओर से युद्ध में पराक्रम प्रदर्शित कर पराभव को प्राप्त हुआ।

रावन—रासोकार के मतानुसार कन्नौजपति राजा जयचन्द गाहड़वाल का नगर रक्षक एवं सेनाध्यक्ष का नाम रावन था। सर्वप्रथम रावन का परिचय 'कनवज समय ६१' में प्राप्त होता है। राजा पंगराज ने कवि चन्द वरदायी के काव्य कौशल से सन्तुष्ट होकर रावन को कवि चन्द के रहने की व्यवस्था करने का आदेश दिया था।[2] पंगराज का आदेश पाकर नगर रक्षक रावन कवि चन्द को गन्तव्य स्थान पर ले गया।[3] कवि चन्द को महलों का उपयुक्त निर्देश करते हुए उसने विनम्रता से निवेदन किया—

डेरा सुकवि विरमतम, करि कवि लषो चरित।
राजनीति राज गति चरित, चितगनि कहौ सुचित॥ छं० ७२७।[4]

कवि चन्द का यथा विधि आदर-सत्कार कर तथा रहने का उचित प्रबंध करके रावन पुनः पंगराज की सेवा में आ उपस्थित हुआ।[5] पंगराज को पृथ्वीराज की उपस्थित की शंका होने पर वह कवि के आवास की ओर शंका निवारणार्थ अग्रसर हुआ। स्थिति को देखते हुए व्यवहार कुशल रावन भी अपनी सेना लेकर पंगराज के साथ ही कवि के आवास की

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १७७०-७१, स० ६१।
२. वही, ७२४, स० ६१।
३. आयस रावन सथ्य चलि, अपुत एक भर सथ्य।
अग्ग राह सों संचरै, भरे उचावहिं वथ्थ॥ छं० ७२५।
पच्छिम दिसि पुर चन्द सकवि सों नृपति रुपतो॥
रावन सथ्य · समथ्थ वचन सो कवि रस ततो॥
धवल मझझ सपन्न, कलस कुंदनह वज्र दुति॥
जठित थंभ जगमगहिं कनक दासन विचित्र मत्ति॥ छं० ७२६ स० ६१।
४. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७२७, स० ६१।
५. वही, छं० ७२८, स० ६१।

ओर चल पड़ा।[1] नीति कुशल रावन ने अत्यन्त चतुरता से पंगराज के आगमन की सूचना दी तथा स्वयं ने पृथ्वीराज तथा उसके १०६ सामन्तों की उपस्थिति की पूर्व सूचना के अनुसार कवि चंद वरदायी का निवास स्थान चारों ओर से घेर लिया।[2]

संयोगिता अपहरण के उपरान्त पंगराज तथा पृथ्वीराज के मध्य होने वाले युद्ध में रावन ने अपनी सेना का नेतृत्व करते हुए अपार पराक्रम एवं रणकुशलता का परिचय प्रस्तुत किया–

मोरि हथ्थ विठ्ठारि काल विड्डारि भवन कौ।
तिरस जानि रस मुठ्ठि चल्यौ मोरन्न पवन कौ॥
काम अंध दिष्यौ न कोइ सोच सुद्दित मदपानिय।
राज मद्द राजनिय ग्यान सुद्दिन पुर पानिय॥
करि देषि मंत रावन वलिय, उप्पर हरि धावै करन।
जो पम्मचद चंपै विसल तन्त मत कवहूं करन॥ छं० १०१४।

ज्यौ कलंक पर हरै - हान गगा तिथ्यह वग।
अधृम घृम पर हरै, अवस पर हरै सुजस मग॥
माह थवय ससि तजै देव घृम तजै सूद्र नर।
चंप भवर गुन तजै योज जिम तजै रिष्य गुरु॥
इम मुक्कि करिय रावन वलिय, राज सेन उप्पर परयौ।
जय जाल काल हथ्थी सुवर, तापच्छै क्रम क्रम परयौ॥ छं० १०१५।[3]

वीर रावन की सेना ने पृथ्वीराज के सामन्तों को चारों ओर से घेर लिया, जिससे युद्ध और भी भयंकर एवं विकराल हो उठा।[4] दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज द्वारा पंग पुत्री संयोगिता के अपहरण की सूचना वीर रावन ने अपनी समस्त सेना को पुकार-पुकार कर दी, जिससे सेना के समस्त वीर उत्तेजित हो उठे।[5] वीर रावन पराक्रमी एवं कुशल सेनाध्यक्ष ही नहीं था अपितु वह पंगराज को समय-समय पर मंत्रणा देने में भी अपनी कुशलता का परिचय देता था। युद्ध की भीषणता को देखकर उसने पंगराज के पक्ष से राव वनसिंह तथा केहरि कंठीर वीरों द्वारा सेनापतित्व किए जाने का आदेश प्रदान करने का परामर्श कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द को दिया था–

---

१. अगिमोकलि रावन नृपति, हक्कारयो कवि राज।
भट्ट हट्ट मोकलि सुवर, कंक विसाहन काज॥ छं० ९०९, स० ६१।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ९११-१२, स० ६१।
३. वही, छं० १०१४-१५, स० ६१।
४. वही, छं० १०१२, स० ६१।
५. वही, छं० १३९३-९५, स० ६१।

प्रथम राव बन सिंघ, राव बनवीर जग्गि करि।
हेत सुमन जग्गौत, उनै पहुपंग पूरिपरि ॥
केहरि कंठीर पठौ सुनृप, इन समान छित्री न छिति।
अड्डौ सुधरो बिमझार धन, रावन रिन सिष ईंय पति ॥ १३९७ ।[1]

रावन योद्धा ही नहीं वरन् स्पष्टवादी वक्ता भी था। युद्ध की भीषणता देखकर जब पंगराज स्तब्ध से दीख पड़े, तब रावन ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

तब रावन उच्चरै, नृपति इह मत्ति सुछुट्टी।
दीन होइ रा पंग, सरित डंडी गुर मिट्ठी ॥
इह जोगिनिपुर इंद, गंजि गोरी गज बंधन।
इन सु सत्थ्य सामन्त सूर अति रन मद महन ॥
इह गहन वहन इच्छै नृपति मर समूह मोहन करै।
नव अश्व बाज नवनव नृपति नव सुजोरि जग्गह धरै ॥ छं० १४०० ।[2]

सेनाध्यक्ष रावन के इस प्रकार के वचन सुन कर पंगराज ने मीरजमाम को भी युद्ध हेतु अग्रसर होने का आदेश दिया किन्तु सेनाध्यक्ष इस आदेश से सन्तुष्ट नहीं हुआ उसने पंगराज को स्वयं युद्ध करने के लिए सम्मति दी।[3] किन्तु पंगराज पर उसकी बात का कोई प्रभाव न हुआ। पंगराज का नकारात्मक उत्तर पाकर सेनाध्यक्ष रावन ने पुनः युद्ध करने को कहा—

फिरि रावन उच्चारयौ, जग्य मंडि सकुमत्ति किये।
जैन जग्य आरम्भ प्रथम, चहुआन बंध लिये ॥
बहुत मत्त चुक्कए, अबहि तुम मंत सुमंते।
सदेसै ब्यौहार, कहौ किन होतै मंतै ॥
ब्युहु ववस मंत्रिय मरन, चहुआन गहियन गहिय।
संवेर जाय कन्याखन, जुगति पसरिय रहिय ॥ छं० १४०८ ।[4]

पंगराज पर अपनी बात का कोई प्रभाव न होता देखकर, सेनाध्यक्ष रावन ने उसे धिक्कारा भी।[5] युद्ध के भीषण परिणाम से दूरदर्शी रावन भली-भाँति परिचित था। उसकी विचारधारा से अन्य कमधज्ज-सैनिक सहमत थे—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १३९७, स० ६१।
२. वही, छं० १४००, स० ६१।
३. फिरि रावन नृप सों कह्यौ तात परयौ तुहि काम।
जब लगि अप्पं न नचियौ, काम न होइ सुताम ॥ छं० १४०५, स० ६१।
४. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४०८, स० ६१।
५. के प्रारभन प्रिय मरन, मरन सु अग्गर राइ।
जग्ग बिगारन जूह चढ़ि, लिये सु कन्या जाई ॥ छं० १४१०।

फिरि रावन उच्चरिय सुनौ कमधज्ज इलांवर।
अरि बंधन इछियौ सुतन वंछियँ भरन भर॥
प्रथम मूल दिज्जियौ व्याज आवँ घुरजन्तौ।
इन कज्जँ इलभार देव करयौ छिति लिन्ती॥
छितिग्रीपम बुढ पावसहु वैन पहुजु पंगहु सुनिय।
कायर सु मीर भजे न भर, भर भंजै संभरि धनिय॥ छं० १४२५।[1]

कमधज्ज सेना के स्वामिभक्त सैनिक अपने नृपति को जुहार कर रण में जूझने को चल पड़े। सेनाध्यक्ष एवं नगर रक्षक रावन को सम्मुख कर, कान्यकुब्जेश्वर स्वयं युद्ध हेतु अग्रसर हुआ। युद्ध की भीषणता देखकर पल मात्र के लिए यह आशंका होने लगी कि अब दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज की सेना न टिक सकेगी तथा शीघ्र ही वह बन्दी बना लिया जावेगा।[2] चौहान पृथ्वीराज के दल के पराक्रमी एवं रणकुबेर सामन्त लंगरीराव, लौहाना आजानबाहु, गोविन्दराव गहलौत, नरसिंह राय, पज्जून, चंद पुंडीर तथा कूरम्भराय आदि मोक्ष को प्राप्त हुए। मोरचे पर मध्याह्न के प्रखर सूर्य में वीर पल्हनराय की ज्योति भी सूर्य में तिरोहित हो गई, किन्तु रण बांकुरा रावन अविचल रूप से युद्ध करता हुआ शत्रु-पक्ष की ओर अग्रसर होता रहा।[3] पृथ्वीराज के कुशल एवं पराक्रमी सामन्त सारंगराय सोलंकी का सेनाध्यक्ष रावन से सामना हुआ। दोनों वीरों ने अपार पराक्रम का प्रदर्शन किया जिसमें सारंगराय सोलंकी पराभव को प्राप्त हुआ—

सोलंकी सारंग वीर, रावन आरुद्धिय।
दुम सुहथ्थ उत्तग तेग, लम्बी सां लुद्धिय॥
दो मरदह आरुद्ध, रुद्ध भांन झिल्लोरिय।
टोप फुट्टि सिर फुट्टि, छिछ फुट्टिय कवि लोरिय॥
निल वट्टि फुट्टि पलवन्न, वन कँज्वाल माल पावल पसरि।
तन भंग धाय अरि सग करि, पत्ति पहुर चालुक्क परि॥ छं० १४७१।[4]

मुष अजाव बुल्लो वचन, नयर कध कुटवार।
सुविधि मीर संग्राम भर, तुम रष्षहु हठ वार॥ छं० १४११।
हठ्ठ नाम कुटवार जुनि, परि सामन्तन जंग।
सवन निरष्षत पंग दल, पर पति दीप पतग॥ छं० १४१२, स० ६१।

१ पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४२५, स० ६१।
२. वही छं० १४५३, स० ६१।
३. वही, छं० १४६२, स० ६१।
४. वही, छं० १४७१, स० ६१।

अष्टमी को हुए इस विकराल एवं भीषण युद्ध में पंग-पक्ष के अनेक योद्धा पराभव को प्राप्त हुए। अन्य युद्धों में पंग की सेना का नेतृत्व करते हुए अनेक नामों का उल्लेख मिलता है किन्तु रावन का नामोल्लेख तक नहीं हुआ है। ग्रन्थकार रावन के विषय में सर्वथा मौन है। अतः हमें विवश हो कल्पना करनी पड़ती है कि संभवतः सेनाध्यक्ष एवं नगर रक्षक रावन स्वामिधर्म का पालन करता हुआ संयोगिता अपहरण वाले संग्राम में धराशायी होकर वीरगति को प्राप्त हुआ होगा।

रावल समरसिंह—मेवाड़ाधिपति रावल समरसिंह 'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज चौहान का बहनोई था। 'पृथा विवाह समय २१' में विवाह प्रसंग इस प्रकार प्राप्त होता है—अजमेर-पति राजा सोमेश्वर ने अपनी कन्या मेवाड़ाधिपति रावल समरसिंह को देने का विचार कर एक पत्र लिखा।[१] रावल समरसिंह अपने युग का पराक्रमी वीर था, उसकी वीरता से प्रभावित होकर ही, सम्भवतः राजा सोमेश्वर ने अपनी पुत्री का सम्बन्ध करना निश्चित किया होगा। योग्यवर जान कर, पुरोहित गुरु राम ने चित्तौड़ पहुंच कर बसंत पंचमी को तिलक कर दिया।[२] ग्रन्थकार ने रावलसमर सिंह की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की है। तत्कालीन शासकों में रावल समरसिंह का महत्व कम न था, उत्तरी भारत की प्रबल शक्तियों में से वह एक था—

नर नरिंद जोगिंद पति मुंजी ढाल विरद्द।
उड्गन निकट नरिंद विय, सेवत रहत गिरद्द ॥ छं० २७।

सिंगीरा अवधूत, वीर चित्रंग नरिंद।
कमल पानि सारथ्य अरान तेज कहि चंद ॥
बर कप्पन कालंक, विरद साहन सुरतानं।
वर प्रव्वत वैराज, भोग जोगह वड़दान ॥
सो महन रंभ आरम्भवै, एक रंग रत्तौ रहै।
कलि काल धाम छिप्पै नहीं, झल हंलत दुज्जन दहै ॥ छं० २८।[३]

रासोकार के मतानुसार रावल समरसिंह तथा पृथ्वीराज दोनों समान स्तर के शक्ति-शाली एवं पराक्रमी थे।[४] समय आने पर रावल जी विवाह हेतु आए, उस समय रावल की सुन्दरता देखते ही बनती थी। अति आनन्द तथा उत्सव के साथ पृथा का विवाह समरसिंह के साथ हो गया। पृथ्वीराज ने रावल जी को पाणिग्रहण के सुअवसर पर ऋषि केश वैद्य तथा

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २, स० २१।
२. वही, छं० ३१, स० २१।
३. वही, छं० २७-२८, स० २१।
४. वही, छं० १३२, स० २१।

चन्द के वेटे जल्ह को दिया।[1] साथ ही प्रत्येक भंवरी पर भी कुछ न कुछ देकर अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रक्खा—

एक फिरत मांवरी, साठि मेवात गांम दिय।
दुतीय फिरत मांवरी, दुरद दस एक अग्गरिय॥
त्रितिय फिरत मांवरी, दयौ समरि उदक्क कर।
चौथी मांवरी फिरत, द्रव्य दीनौ अनत वर॥
चहुआन चतुर चावद्दिसा, हिंदवान वर मांन विधि।
गुन रूप सहज लच्छी सुवंर, सहित वीर बंधी जु सिंधि॥ छं० १५९।[2]

इतना ही नहीं गजनीपति शाहबुद्दीन ने भी पृथा के विवाहोपलक्ष में रावल जी को उपहार देकर सम्मानित किया—

सतरि सत तिय अग्ग, वीर गज राज सु अप्पिय।
ते लीनों सुरतान, साहि गेरी गोरी किय॥
सौ दासी चतुरंग, सत ढोलिय अच्छमय।
चतुरग लछ्छि चित्रगदे। वर सोमेश्वर थप्पियौ॥
वुलाई सजन रावर समर, पंच कोस मिलि जंपियौ॥ छं० २१३।[3]

रावल समरसिंह पृथ्वीराज के परम हितैषी थे। 'पृथ्वीराज रासो' इन दोनों के घनिष्ट सम्बन्ध का स्पष्ट प्रमाण है। 'धन कथा २४' में मंत्री कैमास धन निकालने के पूर्व शत्रुओं के ईर्ष्या, आशंका के कारण पृथ्वीराज को समरसिंह को वुला कर फिर धन निकालने की सम्मति देता है।[4] मंत्री कैमास की आशंका निर्मूल न थी। धन निकालने के पूर्व ही शाह गोरी का आक्रमण हो गया जिसमें पृथ्वीराज को रावल जी से अपार सहायता मिली। रावल जी के युद्ध के परिणाम स्वरूप गोरी की सेना परास्त होकर भाग खड़ी हुई। पुन 'रेवातट समय २७' में रावल समरसिंह को पृथ्वीराज की ओर से गोरी के विरुद्ध युद्ध करता हुआ पाते हैं— 'रावल जी अपने वायु वेगवान अश्व पर चढ़ कर शत्रु के वीच कूद पड़े। उनके मुख से मारो-मारो का शब्द उच्चरण हो रहा था। शत्रुओं के मस्तकों को वृक्ष के पत्तों सदृश्य तोड़ने लगे। सैकड़ों के वक्ष विदीर्ण कर दिए, हड्डियों को कंकड़ों के सदृश्य उडा दिया। मेवाड़पति रावल जी ने क्षण मात्र में सुलतान की सेना की धूल उड़ा दी। पृथ्वीराज की सेना के अग्रभाग

---

१. पृथ्वीराज रासो नगरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १५६, स० २१।
२. वही छं० १५९, स० २१।
३. वही छं० २१३, स० २१।
४. अपपास कढ़न नहि जाइराइ, चित्रंगराव लिज्जै वुलाइ।
मिलि सुभट तास कढ्ढो भंडार, तिन विना वंद मच्चै अपार॥ छं० १२, स० २४।

में ऐसे पराक्रमी वीर रावल जी को युद्ध करते हुए देखा गया।[1] 'रेवातट समय' के छन्द मुक्त कण्ठ से घोषणा कर रहे हैं कि पृथ्वीराज चौहान को रावल जी की सहायता की कितनी आवश्यकता थी—

अनी दौड़ घन घोर ज्यों, धाई मिलै कर घाट।
चित्रंगी रावर विना, करै कौम वह॰ बाट॥ छं० ६८।[2]

'घघर नदी युद्ध' में चाचा कन्ह ने शाह गोरी को बन्दी बना लिया। गोरी से अपार धन राशि लेकर उसे मुक्त कर दिया गया। पृथ्वीराज ने कवि चन्द द्वारा गोरी से दण्ड स्वरूप पाया हुआ स्वर्ण रावल जी के पास भेज दिया।[3] चन्देरीपति शिशुपाल वंशी राजा पंचाइन, राजकुमारी हंसावती के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर उस पर आसक्त हो गया। अतः उसने राजा भान को एक पत्र लिख कर दूत द्वारा कहला भेजा कि राजकुमारी हंसावती का विवाह मेरे साथ कर दो या अपना किला छोड़ दो। यह समाचार पाकर भानराय क्रोध से कांप उठा। उसने राजा पंचाइन के प्रस्ताव पर कोई ध्यान न दिया। युद्ध को निकट जानकर उसने महाराज पृथ्वीराज की सरण लेना उचित समझा। पत्र में सब वृतान्त लिखकर एक दूत दिल्ली की ओर रवाना कर दिया गया। पत्र में लिखा कि पचास हजार सेना के साथ चन्देरी पति रणथम्भ को धूल-धूसरित करने हेतु अग्रसर हो रहा है। अतः ऐसे कठिन समय में आप ही का एक मात्र सहारा है। आर्त की पुकार सुन कर वीर पृथ्वीराज ने तुरन्त ही रणथम्भ की ओर प्रस्थान किया तथा चाचा कन्ह को चित्तौड़ भेज कर रावल जी को सहायतार्थ बुला भेजा। दोनों की सम्मिलित वाहनी ने आर्त का कष्ट निवारण किया।[4] द्वारिका यात्रा के समय कवि चन्द रानी पृथा तथा रावल समरसिंह से अपार सम्पत्ति पुरस्कार स्वरूप पाता है।[5] 'द्वितीय हांसी युद्ध समय ५२' में एक बार पुनः रावल जी को पृथ्वीराज की सहायता करता हुआ पाते हैं। इस बार पृथ्वीराज के मंत्री कैमास ने आहुटपति रावल जी को सहायतार्थ बुला भेजा। युद्ध में विजयी होकर कुछ समय दिल्ली में ठहर कर, भेंट स्वरूप २० श्रेष्ठ अश्व तथा ५ हाथी लेकर चित्तौड़ प्रत्यावर्तित हुए।[6]

रावल जी का चरित्र सात्विक वृतियों से परिपूर्ण है। अमरसिंह की बहिन पर हुस्सैन द्वारा बलात्कार होते देखकर उसे उन्होंने मुक्त कराया—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६९, स० २७।
२. वही, छं० ६८, स० २७।
३. वही, छं० ५६-५७, स० ३५।
४. लुट्टि लच्छि चित्रंग। राज रिन थंभ उवारे। छं० ८५, स० ३६।
५. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १८-२५, चन्द्र द्वारिका समय ४२।
६. वही, छं० २०३, स० ५२।

वंधंवर हुस्सैन, वान बल सुवर कु आरिय।
रन जितै दुज्जनह कौह, न मंडै रारिअ।
कोइ न मंडै रारिअ, मेछ सुन्दरी वघेरी।
समर सिंह सुनि कूह, त्रियं वघति फिरि हेरी॥
धीठ पान दै आन, दृढ़ अहस्तन सधं।
धीठ जमन हकार, समर हेतु वर वंधं॥ छं १३५।[1]

रावल जी के कृत्य के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हो वीर अमरसिंह ने अपनी वहिन का परिणय उन्हीं के साथ कर दिया—

अमर वंध रप्पी अमर, अगि दीनौ वरमाल।
जस वेली चतुरंग कौ, वरन घल्लि उरमाल॥ छं० १३६।
जस वेली वरिजौ चतुरगी, चढ़ि चौडोल ग्रेह अनभंजी।
वरन राव रावल सजोगी, सुघर फेरि चालुक्कत भांजी॥ छं० १३७।[2]

रावल जी दार्शनिक एव दूरदर्शी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। युद्ध हेतु पृथ्वीराज चौहान का निमंत्रण पाने पर उन्होंने मंत्री कैमास से स्पष्ट शब्दों में कहा था—

हसि जोगिंद नरिंद, वत्त से मुष उच्चारिय।
एक ग्रघ समूह, भस लद्धौ पल हारिय॥
श्रव्व ग्रिद्ध विटयौ, मस चम्पौ जं करिय।
तव सुमत उप्पनौ, मंस लद्धौ गति डारिय॥
मुग वैनि कोइ गड्डंति कोइ, कोइक पढ़ कोइ लम्भवै।
दैवान वुसकह देवगति, जो निम्मान सु निम्मवै॥ छं० २४।[3]

रावल जी पृथ्वीराज के सम्बंधी एवं सहायक होते हुए भी कोई कार्य ऐसा करने के लिए प्रस्तुत नहीं थे, जो उनके आत्मा सम्मान के विरुद्ध हो। 'धन कथा प्रस्ताव' में पृथ्वीराज चौहान निकाले हुए धन को रावल जी को सहायता के प्रतिदान स्वरूप देना चाहते थे किन्तु रावल जी ने इसका प्रत्यक्ष विरोध किया।[4] रासोकार ने रावल जी को अत्यन्त योग्य व्यक्ति वताया है। युद्ध-प्रयाण समय, रावल जी अपने सैनिकों को संसार की नश्वरता का पाठ पढ़ा

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १३५, स० ३६।
२. वही, छं० १३६-३७. स० ३६।
३. वही. छं० २४, स० २४।
४. वही, छं० ४७२, स० २४।

कर युद्ध हेतु उत्साहित करते थे। ग्रन्थकार ने रावल जी को समुद्र की भांति गहन एवं गम्भीर कहा है।[1]

पृथ्वीराज द्वारा एक बार राजसूय यज्ञ भंग किये जाने पर, पुनः कान्यकुब्जेश्वर के यज्ञ की सफलता हेतु मंत्री सुमंत का कहना मानकर रावल समरसिंह को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की थी। परिणाम स्वरूप कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द ने सौ घोड़े, एक हाथी, एक अनवेधा मोती, दस माणिक तथा अनेक मोती की मालाएं देकर रावल जी के पास मैत्री सम्वंध स्थापन का शन्देस ले कर मंत्री सुमंत को भेजा। साथ ही यह भी प्रस्ताव रखा कि वह तथा रावल मिल कर पृथ्वीराज को परास्त करेंगे तथा इस विजयोपलक्ष में रावल जी को पंजाव का आधा भू-भाग प्राप्त होगा। मंत्री सुमंत ने सब समाचार चित्तौड़ पहुंच कर रावल जी से निवेदन कर दिया किन्तु रावल जी ने तत्कालीन परिस्थिति देखते हुए यज्ञ को अनुचित ठहराया तथा इस प्रकार की मंत्रणा देने के लिए मन्त्री को भी वहुत बुरा भला कहा।[2] एक वार पुनः रावल जी ने अपने त्रिकालदर्शी होने का परिचय देते हुए राजसूययज्ञ को असामयिक वताकर मत्री सुमत का समाधान कर दिया।[3] रावल जी की कटुक्ति सहन न कर सकने के कारण, मन्त्री सुमन्त कुपित हो अपने राजा का राजसी आतंक वर्णन करके रावल जी को चुनौती देकर कन्नौज लौट गया।[4] मन्त्री सुमंत ने राजा जयचन्द को मंत्रणा दी कि पृथ्वीराज को परास्त करने के पूर्व रावल समरसिंह का मद-मर्दन करना नितान्त आवश्यक है। रावल जी एक तो पृथ्वीराज का सहायक होने के कारण यों ही जयचन्द की आंखों में खटकता था दूसरे अपनी योजना का विरोध सुनकर वह क्रोधोन्मत हो उठा। तत्काल ही अपनी सेना सुसज्जित कर पंगराज ने मेवाड़ की ओर प्रस्थान कर दिया।[5] पंगराज का आक्रमण सुनकर रावल समरसिंह भी रण प्रांगण में आ उपस्थित हुआ—

श्रवन सुनिग समरेस, पग आवाज वीर सुर।
अति अनन्द मति चन्द, दह भंजन सु अरिन घर॥
वजि निसान घुम्मरिय, चित्त अंकुरिय वीर रस।
मोह कोह छिति छांह, मुक्कि अड्यो सुअंग जस॥

---

१. सर समुद चित्रंगपति, बुद्धितरा अपार।
तर्क मीन भेदन अमर, ब्रह्म सु मध्य भंडार॥ छं० २०।
षग षारौ लज्जा सुजल, विद्या रवन वखान।
आनि जीव परमातमा, आतम पालन ज्ञान॥ छं० २१, स० ५६।

२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ३६-३७, स० ५५।

३. वही, छं० ५१, स० ५५।

४. वही, छं० ५९, स० ५५।

५. वही, छं० २, स० ५६।

श्रुत सीलतन द्विग चित्त अचल, चले हथ्थ उर विफ्फुरहिं।
चित्रंग राव रावन समर, भिरन सुमत मत्तह करहि ॥ छं० ५।[1]

सामन्तों ने रावल जी को रात्रि के समय धावा बोलने का परामर्श दिया किन्तु रावल जी ने उसका विरोध कर दिवस के प्रकाश में ही सुकीर्ति प्राप्त करने का प्रस्ताव रखा। निदान घोर युद्ध छिड़ गया। रावल जी के सैनिकों ने पंग दल के छक्के छुड़ा दिए। स्वयं पंगराज को गज छोड़कर अश्वारोहण करना पड़ा। सेना का धैर्य जाता रहा।[2] अन्ततोगत्वा घमासान युद्ध के अन्तर्गत पंगराज की असंख्य सेना मारी गई, रावल जी के केवल १६ प्रमुख योद्धाओं ने वीरगति प्राप्त की किन्तु विजय श्री रावल जी को ही प्राप्त हुई। पंग सेना परास्त हो लौट आई। राजा जयचन्द का भतीजा कन्ह भी घायल होकर गिर पड़ा, अतः उसे डोली में लिवा कर जयचन्द ने कन्नौज की ओर प्रस्थान किया तथा मेवाड़ मे जीत के नगाड़े बज उठे।

एक रात रावल समरसिंह ने स्वप्न में दिल्ली की जयश्री को मलिन मुख देखकर[3] अपना राज्यभार छोटे पुत्र रत्नसिंह को सौंप दिया[4] जिससे उनका जेष्ठ पुत्र कुम्भा अप्रसन्न होकर बीदर के बादशाह के पास चला गया।[5] दिल्ली पहुंचने पर वहां की अव्यवस्था तथा पृथ्वीराज को संयोगिता के रूप-जाल में फंसा देखकर उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ।[6] गोरी के आक्रमण का समाचार प्राप्त होने पर पृथ्वीराज चौहान उससे मोर्चा लेने के लिए प्रस्तुत हुआ।[7] चौहान द्वारा घर लौट जाने की अनुनय से क्रुद्ध हो समरसिंह भी सुलतान से युद्ध करने के लिए रुक गया।[8] इसी युद्ध में अपार पराक्रम का उत्कट प्रदर्शन कर चित्रांगी रावल समरसिंह वीरगति को प्राप्त हुआ—

दिष्टि थान पुरसान। गुर वर जमथ्थ उपदिथ ॥
समर सिंघ मुष चहर। हिन्दु मेछन मिलि जुट्टिय ॥
गिद्धिनि पल संग्रहन। जुथ्थ लम्बे रन आइय ॥
श्रोव परत निज्झरत। पत्र जुगिनि लै धाइय ॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५, स० ५६।
२. वही, छं० ६८, स० ५६।
३. वही, छं० १-२, स० ६६।
४. वही, छं० ५, स० ६६।
५. वही, छं० ६, स० ६६।
६. वही, छं० ७-७०, स० ६६।
७ वही, छं० १८० -३३३, स० ६६।
८. वही, छं० ३३९-६५, स० ६६।

पल चरिय मेछ हिन्दू सहर। अच्छरि मल अति जग्ग किय ।।
महदेव सीस ववे गरां। काल अरपि लीनौ नुजिय ।। छं० १३८७ ।[1]

युद्ध का विषम परिणाम सुनकर संयोगिता के प्राण पखेरु उड़ गए। पृथा अपने स्वामी की सहचरी बनने के लिए प्रेम पथ का विधान करने लगी। उसने सोलह श्रृंगार किए, मुक्ताओं का हार धारण किया तथा आभूषणों से अलंकृत, अश्व पर आरूढ़ होकर, वह कमल तथा अक्षत उछालती हुई चली। जगत 'हैहया' शब्द का उच्चारण कर रहा था तथा हर-हर का श्रेष्ठ उच्चारण हो रहा था। रावल समरसिंह की सहगामिनी पृथा अपने हाथों से पृथ्वी पर नारियल तथा फूल चढ़ाती हुई तथा भारतीय परम्परा के आदर्श को अक्षुण रखती हुई सती हो गई—

निरषि निघन संजोगि। प्रिथि सज्जी सु सामि सय ।।
हक्कि हंस तत्तारि। वीर अवरिय प्रेम पय ।।
साजि सकल श्रगार। हार मंडिय मुगता मनि ।।
रंजि भूषन हय रोहि। जलिज अच्छित उच्छारति ।।
हैं हया सद्द जंपत जगत। हरि हर सुर उच्चार वर।
सह गमन सिंघ रावर चले। तजि महि फूल श्रीफल सुकर ।। छं० १६२० ।[2]

'राजप्रशस्ति काव्य' में समरसिंह का विवरण रासो के समान ही है—मेवाड़ एवं राजपूताने में यह प्रसिद्ध है कि अजमेर और दिल्ली के अंतिम हिन्दू शासक चौहान पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़पति रावल समरसिंह से हुआ था, जो पृथ्वीराज की सहायता करता हुआ शहाबुद्दीन गोरी के साथ युद्ध में मारा गया।[3]

रायबहादुरगौरीशंकर हीराचन्द ओझा समरसिंह के पृथ्वीरज रासो वाले विवरण को पूर्ण-

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १३८७, स० ६६।

२. वही छं० १६२०, स० ६६।

३. ततः समर सिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु परिरित्यतिहार्दतः ।। २४ ।।
गोरी साहिब दीनेनगज्जनीशेन समरे।
कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महासामंत शोभितः ।। २५ ।।
दिल्लीश्वरस्य चौहान नाथस्यास्य सहायकृत।
सद्‌वादश सहस्त्रैस्ववीराणा सहितो रणे ।। २६ ।।
वध्वा गोरीपति देवात् स्वर्यातः सूर्यविंवमित।
भाषा रासा पुस्तकेस्य युद्धस्योक्तिरक्त विस्तरः ।। २७ ।।
—राजप्रशस्ति, सर्ग ३।

रूपेण अनैतिहासिक सिद्ध करते हुए लिखते हैं कि–'रासो में लिखा है–पृथ्वीराज की बहिन पृथा का विवाह मेवाड़ के राजा समरसिंह (रावल-तेजसिंह' के पुत्र और रत्नसिंह के पिता) के साथ हुआ था। जो पृथ्वीराज के पक्ष में लड़ता हुआ शहाबुद्दीन के साथ की लड़ाई में मारा गया।

यह कथा विल्कुल कल्पित है, क्योंकि समरसिंह पृथ्वीराज के बहुत समय बाद हुआ। पृथ्वीराज का देहान्त (वि० सं० १३४९, ई० सं० ११९३ में) हो गया था। समरसिंह का दादा जैतसिंह उक्त संवत् के बहुत बाद तक विद्यमान था। उसके समय के दो शिलालेखों में से एकलिंग जी के चौक में और दूसरा नादेसमा' गांव के चारभुजा के मंदिर के निकटवर्ती सूर्य मंदिर के स्तम्भ पर तथा दो हस्तलिखित पुस्तकें मिली हैं। दोनों शिलालेख क्रमशः वि० सं० १२७० और १२७९ के हैं। उसी के समय के पाक्षिक वृति[2] वि० सं० १३०९ में लिखी गई। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि जैतसिंह वि० सं० १३०९ तक विद्यमान था। समरसिंह का पिता तेजसिंह वि० सं० १३२४ तक तो अवश्य विद्यमान था, जैसा कि उसके समय के उक्त संवत् के शिलालेख से जो गभीरी नदी (चित्तौड़ के पास) के पुल के नवे कोठे (महराव) में लगा है, पाया जाता है।[3] समरसिंह के समय के आठ शिलालेख मिले हैं, जिसमें से प्रथम वि० सं० १३३० का है,[4] जो चीरवे के विष्णु मंदिर की दीवार में लगा है और अन्तिम लेख वि० सं० १३५८ का है,[5] जो चित्तौड़ के रामपोल दरवाजे के बाहर पड़ा हुआ पाया गया। इनसे स्पष्ट है कि रावल समरसिंह वि० सं० १३५८ तक अर्थात् पृथ्वीराज की मृत्यु से १०९ वर्ष पीछे तक तो अवश्य जीवित था। ऐसी अवस्था में पृथाबाई के विवाह की कथा भी कपोल कल्पित है। पृथ्वीराज समरसिंह और पृथाबाई के वि० सं० ११४३ और ११४५ (इस संवत् के दो) वि० सं० ११३९ और ११४५, तथा वि० सं० ११४५ और ११५७ के जो पत्र, पट्टे-परवाने नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकों की खोज में फोटो सहित छपे है, वे जाली हैं, जैसा कि हमने नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण) भाग १, पृ० ४३२-५२, में बतलाया है'।[6]

'रासो' की प्रामाणिकता पर विचार करते हुए श्री अमृतलाल शील ने लिखा है कि–'समरसिंह तथा रत्नसिंह के जो कई दान पत्र मिलते हैं, उनसे प्रमाणित होता है कि समरसिंह

---

१ सं० १२७९ वि० का लेख, भावनगर प्राचीन शोध संग्रह।

२. पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट, पृ० १३० के अनुसार सं० १३०९ वि० विरचित।

३. जे० ए० एस० बी०, जिल्द ५५, भाग १, पृ० ४६-४७; सन् १८८६ ई०।

४. वियना ओरियटल जर्नल, जिल्द २१, पृ० १५५-६२।

५. विक्टोरिया हाल, उदयपुर में सुरक्षित।

६. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा; पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ५६।

ईसा की चौदहवीं सताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के समय विद्यमान था। इससे प्रमाणित होता है कि समरसिंह पृथ्वीराज का बहनोई अथवा रत्नसिंह पृथ्वीराज का भानजा नहीं हो सकता। चित्तौड़ के राना वंश में एक से अधिक समरसिंह तथा रत्नसिंह नाम के राना हो चुके हैं'।[१]

श्री जगदीश सिंह गहलोत एक स्थान पर ओझा जी का समर्थन करते हुए लिखते हैं–'पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि पृथ्वीराज चौहान की बहिन पृथाबाई का विवाह इस समरसिंह (सं० १३३०-१३५८) से हुआ था और पृथ्वीराज की तरफ से लड़ता हुआ वह शहाबुद्दीन गोरी के हाथ से युद्ध मे मारा गया परन्तु यह सब कपोल कल्पित है, क्योंकि समरसिंह (समरसी) पृथ्वीराज के बहुत बाद हुआ था और उसका अन्तिम शिलालेख सं० १३५८ की माघ सुदी १० (ई० सन् १३०२ ता० १० जनवरी) का मिला है। इससे पृथ्वीराज के मारे जाने से १०९ वर्ष पीछे तक तो समरसिंह अवश्य जीवित था। अलबत्ता यह घटना सामन्तसिंह के समय की हो सकती है'।[२]

इसी पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि–"सम्भवतः यही सामंतसिंह जिसे ख्यातों में सामन्त भी लिखा है, चौहान नरेश पृथ्वीराज दूसरे (सं० १२२६) सोमेश्वर और पृथ्वीराज तीसरे के समकालीन थे। यह बात शिलालेख से भी सिद्ध होती है। डूंगरपुर राज्य की पुरानी ख्यातों में इस सामन्तसिंह का विवाह सांभर और अजमेर के चौहानों के यहां होना लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि यदि पृथाबाई के विवाह की बात सत्य हो तो उसका विवाह इसी सामन्तसीं के साथ हुआ होगा। पृथाबाई को चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे की बहिन या वीसलदेव (स० १२१०-१२२०) की पुत्री मान लिया जाए तो वह अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान (वि० सं० १२३६-१२४९) की बहिन मानी जा सकती है। सामंतसी व समरसी के नामों में थोड़े से अन्तर से भ्रांत होकर ही पृथ्वीराज रासो के कर्ता ने इन्हें समरसी समझ लिया है। यह भी सम्भव है कि वागड़ राज्य छूट जाने पर ये सामंतसीं अपने साले प्रसिद्ध चौहान पृथ्वीराज तीसरे के पास चले आये हों और वहीं शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध करते हुए सं० १२४९ वि० में मारे गए हों।"[३]

रायबहादुर ओझा जी भी श्री जगदीश सिंह गहलोत के मत से सहमत हैं, वे लिखते हैं कि–'वि० सं० १६०० (ई० सं० १५४३) के आस-पास बने हुए पृथ्वीराज रासो के आधार पर सारे राजपूताने में यह प्रसिद्ध है कि सांभर और अजमेर के चौहान वंशी सुविख्यात

---

१. श्री अमृतलाल शील, चन्दवरदायी का पृथ्वीराज रासो—सरस्वती, भाग २७, संख्या ६, पृ० १९८, जून १९२६।

२. जगदीशसिंह गहलोत, राजपूताना का इतिहास, पृष्ठ १६८।

३. वही, पृ० १९८, फुट नोट–३।

महाराज पृथ्वीराज की वहिन पृथावाई का विवाह मेवाड़ के रावल समरसिंह से हुआ था तथा वह पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के युद्ध में पृथ्वीराज की सहायतार्थ लड़ता हुआ मारा गया, किन्तु रावल समरसिंह के समय के आठ लेख मिले हैं, जिनमें सबसे पहला वि० सं० १३३० (ई० सं० १२७३) और अंतिम वि० सं० १३५८ (ई० सं० १३०१) अर्थात पृथ्वीराज के मारे जाने के १०९ वर्ष पीछे तक वह (रावल समरसिंह) जीवित था। ऐसी दशा में पृथ्वीराज की वहिन पृथावाई का विवाह उसके साथ होना सर्वथा असंभव है। अलवत्ता मेवाड़ और पीछे से वागड़ के राजा सामन्तसिंह का जिसे ख्यातों में समत सी लिखा है, चौहान वंशी राजा पृथ्वीभट (पृथ्वीराज दूसरा वि० सं० १२२६-३४, ई० सं० ११६९-७७) और पृथ्वीराज तीसरा (वि० सं० १२३६-४९, ई० सं० ११७९-९२) का समकालीन होना शिलालेखों से सिद्ध है। डूंगरपुर राज्य के वड़वे की ख्यात में भी सांभर और अजमेर के चौहानों के यहां सामन्तसिंह का विवाह होने का उल्लेख है। तदनुसार यदि पृथ्वीराज रासो में वर्णित पृथावाई के विवाह की घटना में कुछ सत्य हो तो यही मानना पड़ेगा कि सम्भवतः पृथावाई का विवाह मेवाड़ के रावल सामन्तसिंह (समतसी) से हुआ हो। पृथावाई पृथ्वीभट (पृथ्वीराज दूसरे) की वहिन या वीसलदेव (विग्रहराज चौथे वि० सं० १२१०-१२१० ई० सं० ११५३-६३) की पुत्री हो, तो भी वह प्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज (तीसरे) की वहिन ही कही जा सकती है। भाटों की पुस्तकों में सामन्तसिंह के स्थान पर समंतसी और समरसिंह के स्थान पर समरसीं लिखा मिलता है। समतसीं तथा समरसी के नामों में थोड़ा सा ही अन्तर है, इसलिए सम्भव है कि इतिहास के अन्धकार की दशा में पृथ्वीराज रासो के कर्ता ने समतसीं को समरसी मान लिया हो। वागड़ा राज्य छूट जाने के पश्चात सामंतसिंह कहां गया, इसका पता नहीं चलता। यदि वह पृथ्वीराज का वहनोई माना जाय तो वागड़ा का राज्य छूट जाने पर सम्भव है कि वह अपने साले पृथ्वीराज के पास चला गया हो और शहाबुद्दीन गोरी के साथ की पृथ्वीराज की लड़ाई में लड़ता हुआ मारा गया हो।"

डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी भी ओझा जी की भाँति समरसिंह को सामन्तसिंह मानते हुए लिखते हैं कि— पृथ्वीराज की वहिन का विवाह रावल समरसी (समरसिंह) के साथ होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता, क्योंकि पृथ्वीराज का देहान्त वि० सं० १२४९ (ई० सं० ११९१-९२) में हो गया था और रावल समरसी (समरसिंह) वि० सं० १३५८ (ई० सं० १३०२) माघ सुदी १० तक जीवित था, जैसा कि आगे बताया जायगा। सांभर और अजमेर के चौहानों में पृथ्वीराज नामक तीन और वीसलदेव (विग्रह राज) नामधारी चार राजा हुए हैं। परन्तु भाटों की ख्यातों तथा पृथ्वीराज रासो में केवल एक पृथ्वीराज

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास-राजपूताने का इतिहास-जिल्द ३, भाग १, पृ० ५१-५३, वैदिक मंत्रालय, अजमेर, वि० सं० १९९३।

और एक ही वीसलदेव का नाम मिलता है और एक ही नाम वाले इन भिन्न-भिन्न राजाओं की जो कुछ घटनाएँ उनको ज्ञात हुई, उन सबको उन्होंने उसी एक के नाम पर अंकित कर दिया। पृथ्वीराज (दूसरे) के जिसका नाम पृथ्वीभट भी मिलता है, शिलालेख वि० सं० १२२४, १२२५ और १२२६ (ई० सं० ११६७, ११६८ और ११६९) के और मेवाड़ के सामंतसिंह (समतसी) के वि० सं० १२२८ और १२३६ (ई० सं० ११७१ और ११७९) के मिले हैं; ऐसी दशा में उन दोनों का कुछ समय के लिए समकालीन होना सिद्ध है। मेवाड़ की ख्यातों में सामन्तसिंह को समतसी और समरसिंह को समरसी लिखा है। समतसी और 'समरसी' नाम परस्पर बहुत कुछ मिलता जुलता है और समरसी नाम पृथ्वीराज रासो बनने के अन्तर अधिक प्रसिद्धि में आ जाने के कारण-इतिहास के अधकार की दशा में-एक के स्थान पर दूसरे का व्यवहार हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अतएव यदि पृथावाई की ऊपर लिखी हुई कथा किसी वास्तविक घटना से सम्बंध रखती हो तो यही माना जा सकता है कि अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट) की बहिन पृथावाई का विवाह मेवाड़ के रावल समतसी (सामंतसिंह) से हुआ होगा।"[1]

डॉ० त्रिवेदी के कथन को सत्य मानना ही अधिक उचित एवं समीचीन है। रासो का समरसिंह वास्तव में सामन्तसिंह है और फिर पृथ्वीराज रासो में एक स्थान पर समरसिंह के लिए सामन्तसिंह लिखा भी है—

सामंत सिंह रावर चवै, सुगति लम्भैं तुरत ॥[2]

ऐतिहासिक विवाद कुछ भी हो किन्तु इतना निर्विवाद सिद्ध है कि 'रासो' का रावल समरसिंह अथवा सामन्तसिंह एक अद्वितीय योद्धा, रण कुशल तथा राजनीतिक दाव-पेचों में दक्ष था।

लाषन बघेल—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार लाषन बघेल पृथ्वीराज चौहान का सामंत था। लाषन बघेल, सुलष प्रमार का पिता और आवू तथा धार के प्रमारवंशी राजकुमार जैतसिंह का सम्बन्धी था।[3] कन्नौज में संयोगिता अपहरण सम्बन्धी युद्ध में वीर लाषन बघेल ने भी भाग लिया था। सलष प्रमार के मारे जाने के उपरान्त लाषन बघेल ने युद्ध भूमि में अग्रसर होकर शत्रुओं का सामना किया—

दियौ दान पम्मार वलि। अरि सारंग समषेल।
मरन जानि मन मक्ष्म रत। लरि लष्षन वघ्घेल ॥ छं० २३६३।[4]

---

१. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, रेवातट, भाग २, पृ० ६८, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, सन् १९५३ ई०।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी. छं० ९५३. स० ६६।
३. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, द्वितीय भाग पृ० १००।
४. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २३६३, स० ६१।

अपार पराक्रम दिखा कर तथा विपक्षी दल के सामन्त प्रतापसिंह को मार कर वह स्वयं भी वीर गति को प्राप्त हुआ–

जीति समर लष्षन वघेल। अरि हनिग षग्ग झर।
तिधर तुट्टि धरनहि धुंकत। निवंरत अद्ध धर॥
तहं गिद्धाख रुरिग। अत अंतह लग्गिग।
तरनि तेज रस वसह। पवन पवनां धन वज्जिग॥
तिहि नाद ईस मथ्यौ धुन्यौ। अमिय बुंद ससि उल्लस्यौ।
विड्स्यौ धवल सकिय गवरि। टरिय गग संकर हस्यौ॥ छं० २३६४।[1]

लंगा लगरीराय[2]—पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) का सामन्त था। पृथ्वीराज रासो के अनुसार यह प्रसिद्ध सामन्त संजमराय का पुत्र था।[3] लंगरीराय का पिता संजमराय भी कम पराक्रमी न था। महोवा युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की मूर्च्छित अवस्था में एक गिद्धिनी द्वारा उनकी आँखें निकालने का प्रयत्न करते देखकर वीर संजमराय ने अपने शरीर का मांस काट कर गिद्धिनी को देना प्रारम्भ कर दिया जिससे पृथ्वीराज चौहान के प्राण वच गये तथा उसने अपने प्राणों की आहुति स्वामि धर्म हेतु दे दी।[4]

दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज ने वीर संजमराय की वीरता एवं स्वामिधर्म पर प्रसन्न होकर उसके पुत्र लंगरीराय को आधी गद्दी तथा आधे राज्य का अधिकारी बनाया–

संजय राय कुंवर कौ। बोलि हजूर नरेस।
हय गय मनि मानिक वकसि। अध आसन अध देस॥ छं० ८२८।[5]

शशिवृता-हरण में पृथ्वीराज चौहान के साथ गये हुए सामन्तों में लंगरीराय भी देवगिरि गया था–

चढ्यौ लंगरी राय लंगा सुवीरं।
किधौं वाय वढ्यौ वुअ जानि धीरं॥ छं० २१३।[6]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २३६४, स० ६१।

२. 'लंगह, चालुक्य अथवा सोलंकी वश के राजपूतों की एक शाखा विशेष थी। लंगह राजपूत मुलतान के अरीव-करीव रहते थे। इनका अव पता नहीं चलता, इनमें कुछ मार डाले गये, तथा कुछ मुसलमान वना लिये गये हैं।' टॉड, राजस्थान, प्रथम खड, पृ० १००।

३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, २१-२४, स० ५।

४. वही, छं० ८१३, महोवा समय ६९।

५. वही, छं० ८२८, महोवा समय ६९।

६. वही, छं० २१३, स० २५।

'रेवातट समय' में वीर लंगरीराय का पराक्रम देखते ही बनता है। 'लंगा' तलवार उठाये हुए शत्रुओं के मध्य घूम रहा था। तलवार पर तलवार के प्रहार होने से बादलों के किनारे के समान दिखाई पड़ते थे। लंगा तथा सुलतान गोरी से उसी प्रकार युद्ध में लगा, जिस प्रकार दावाग्नि बन में लग जाती है। लंगा उसी प्रकार अग्रसर हुआ, जिस प्रकार वीर हनुमान लंका में आग लगा कर अग्रसर हुए थे। उसने एक वार में विपक्षियों को उछाल दिया तथा दूसरे वार में उसने उन्हें झाड़ कर एक स्थान पर एकत्र कर दिया। उसके एक वार से शत्रु की ऐसी दशा हो गई। अब उसने पुनः तलवार उठाई है अर्थात् अब शत्रु का बचना अत्यन्त कठिन है।[1] डॉ० ह्योनले के मतानुसार वीर लंगरीराय 'रेवातट समय' के युद्ध में पंचतत्वकों प्राप्त हो गया था किन्तु ऐसा अनुमान लगाना भ्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं है क्योंकि 'पृथ्वीराज रासो समय ३१' में पुनः उसकी वीरता तथा पराक्रम का उल्लेख मिलता है–

लग्यो लंगरी लोह लंगा प्रमानं।
षगे षेत षंड्यौ षुरासान षानं॥ छं० १४४।[2]

शहाबुद्दीन से युद्ध होने पर 'समय ४३' में भी लंगरीराय का हाल पढ़ने को पुनः मिलता है।[3] 'भीम वध समय' में वीर लंगरीराय पृथ्वीराज चौहान के साथ था।[4] 'दुर्गाकेदार समय' में दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान के साथ लंगरीराय भी था तथा इसने सुल्तान गोरी से युद्ध भी किया था।[5]

अन्त में 'कनवज समय ६१' में वीर लंगरीराय अन्तिम युद्ध करता हुआ दृष्टि-गोचर होता है। पृथ्वीराज कवि चन्द के साथ भेष बदल कर कन्नौज गये हुए थे। जयचन्द को यह सूचना मिलते ही उसने कवि चन्द के पड़ाव को चारों ओर से घिरवा दिया। ऐसी विषम परिस्थिति में युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न था। योद्धाओं ने अपनी कमर कस ली। संजमराय का पुत्र वीर लंगरीराय सर्वप्रथम अपने ऋण से उऋण होने के लिए उठा तथा विपक्षियों को चीरता-फाड़ता हुआ राजमहल में प्रवेश कर गया—

जुध जुट्य लंग उट्ठ्यौ भीम। मानो कि पथ्थ गो ग्रहन सीम॥
संभरिय राज सों करि जुहार। त्रय सहस सुभट सजि लोह सार॥ छं० ९८३।
मद गंध करी च्यालीस सोह। गज फूल कनक अप्पह अरोह।
भानेज सहस मल सथ्थ व्योम। घुंघरिग मान इह दिग्ग घोम॥ छं० ९८४।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ११५, स० २७।
२. वही, छं० १४४, स० ३१।
३ जू चल्यौ लगरी राइ रन्न जग॥ छं० ३१, स० ४३।
४. लंगरी राव तंह बैठि आइ। जगि जुद्ध समय जनु अगनि वाइ॥ छं० १३, स० ४४।
५. सत तुंग मथन लंगरीराव॥ छं० १७, स० ५८।

हम्मीर कनक राठौर वंस। चाल्यौ कि कृष्ण मारनह कंस ॥
हरि सिंघ जाइ कीनौ प्रनाम। दुअ सहस महुर दुज दिन्न दाम ॥ छं० ९८५।
दरवार जाइ दरवान रुक्कि। सत सहस पौरि दरवान मुक्कि ॥
लष तीन महल चौकीन हल्लि। परधान सुमित्र तव तेग झल्लि ॥ छं० ९८६।
हहकारि सीस हर गयो लग। हल हल्लिय सुभट देषत पंग ॥
उंचे अवास जाली सुमति। दस पंच महल मंडी जु पंत ॥ छं० ९८७।
तिन मद्धि पग देष सु भट्ट। अन्नेक अवर मिलि एक थट्ट ॥
घम घम निसान त्रय लष्य वज्जि। सिघूंर राग करनाल सज्जि ॥ छं० ९८८।
गुजरत्त सद्द जंगी तवल्ल। मानो कि भूम्म करिहै जु मल्ल ॥
अन्नेक गिद्धि परि ठौर ठौर। जबुक कुलाह जिय नद्द सौर ॥ छं० ९८९।[1]

इस विषम युद्ध में वीर लंगरीराय का शरीर बीच से चिर कर दो हो गया। उसके शरीर का एक भाग तो वहीं पड़ा रहा तथा दूसरा भाग महल की पहली चौकी में घुस गया तथा भीषण मार-काट करने लगा—

अद्धा सु अंग इह कहां दिट्ठ। तरवारि झपट पारंत रिट्ठ।
मुह मुह चमक्कि दामिनि झपट्टि। त्रय लष्य घटा घटा लोनी लपट्टि ॥ छं० ९९१।
अन्नेक छिछ आकास उट्ठि। जैचन्द थट्ट रहे निट्ठ निट्ठ ॥
विहयंत तेग वाहत अछेग। उंड्डत सीस धर परत वेग ॥ छं० ९९२।
निरषत सीस धर मद्धि पग। दुअ लष्य सेन करि मान भंग ॥
हल हलै सहर दुनियां अकंप। वाडलिय लग्गि उड्डंत लंप ॥ छं० ९९३।[2]

राजा जयचन्द के रनिवास की रानियां झरोखे से वीर लगरीराय का कौशल देखने लगीं। पंगराज की तीन लाख सेना का सफाया करने के उपरान्त वीर पराक्रमी लंगरीराय मन्त्री सुमन्त के सामने आया तथा अन्त में दोनों युद्ध करते हुए पराभव को प्राप्त हुए—

किलकिला नाल छुट्टी अग्राज।
लै चली लंग पर महल साज ॥
दस कोस परे गोला रनक्कि।
परि महल कोट गज्जी घनक्कि ॥ छं० १००३।
संजमह सुअन लै चली रंभ।
सव लोक मद्धि हुऔ अचंभ ॥ छं० १००४।[3]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ९८३-८९, स० ६१।
२ वही, छं० ९९१-९३ स० ६१।
३. वही छं० १००३-१००४, स० ६१।

कवि चन्द वरदायी ने इसी स्थल पर वीर लंगरीराय की प्रशंसा में निम्न तीन कवित्त कहे–

एह जुद्ध लंगरिय। आय चौकी सम जुट्यौ।
एक अंग लंगरिय। तीन लष्षन हथ पुट्यौ॥
सार सार उछरंत। परी गिद्धा रव भष्षन।
गज वाजिय निहाय। वज्जि उत्तराधि दष्षिन॥

इम भिज्यौ लंग पंगह अनी। हाय हाय मुष फुट्टयौ।
हल हलत सेन असि लष्प दल। चौकी चौरंग जुट्टयौ॥ छं० १००६।
मंत्री राव सुमंत। हथ्थ बिट्यौ सचलंतौ॥
दुज्जाई दिल्लीय कोप। ओप कुंजरनि वढ़ंतौ॥
हालो हल कनवज्ज। मंझ केहरि कूकंदा॥
सजम राव कुमार। लोह लग्गा लू संदा॥

चहुआन महोवैं जुद्ध हुअ। ग्रेहा गिद्ध उडाइयां॥
रन भंग रानवैं वर विरद। लंगै लोह उचाइयां॥ छं० १००७।

एक कहै अप्पान। एक कहि वधि दिवाना।
वंधौ वंधन हार। भार लद्दी सिर कन्हा॥
वावारौ वर तुंग। षग्ग साहै विरुझाना॥
लंगी लंगर राव। अद्ध राजी चहुआना॥
उरतान ढंकि कमधज्ज दल। संजम राव समुद्ध हुअ॥
प्रारम्भ जुद्ध जुद्धे सवल। चलि चलि वीर भुजंग भुअ॥ छं० १००८।[1]

वीर लंगा लंगरीराय की वीरता से प्रभावित होकर वियोगी हरि जी ने भी उसकी प्रसंशा में निम्न तीन दोहे लिखे हैं–

है तेरी ही मूंछ, औ तेरी तरवार।
तुहीं पैंज - रखवार है, सयंमराय कुमार॥ २८॥
किन तुव मरनु सराहियै, संयमराय - कुमार।
जाहि शत्रु जयचंद हूं, दियौ अश्रु-उपहार॥ २९॥
अहैं सूर-सामन्त तुव और हुं, संभरि राय?
पै दूजो नहिं कन्ह, नहिं दूजो लंगरिराय॥ ३०।[2]

---

१. पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १००६-८, स० ६१।
२. वियोगी हरि, वीर सतसई, चौथा शतक, पृ० ५०, साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड, इलाहाबाद, सन् १९६१ ई०।

लापनसिंह—अल्हा खंड की भूमिका भाग में लापनसिंह का पूर्ण परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है—कन्नोज में एक राठौरवंशी क्षत्रिय राजा जयचन्द राजाओं में शिरोमणि हुआ। जिसके नगर में चारों फाटकों पर पाँच-पाँच सहस्त्र सेना शस्त्रों से सुसज्जित खड़ी रहती थी। राजा जयचन्द का छोटा भाई महावीर रतीभान बलवानों में अग्रगन्ता था। जिसके प्रभाव को देखकर शत्रु लोग रणछोड़ कर भाग जाते थे। उसी रतीभान का पुत्र विशाल नेत्रों वाला पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाला नकुल का अवतार लाखनि नाम से इस पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ।[1]

आल्हा खंड की भूमिका से ही यह सूचना भी प्राप्त होती है कि 'लापन सिंह का विवाह वंगदेश की राजधानी कामरु के बूंदी नरेश गंगाधर की कन्या कुसुमा से हुआ था।'[2] पंगराज का यह भ्रातृज अद्‌भुत वीर था। इसकी वीरता के विवरण आल्हा खंड, परमाल-रासो तथा पृथ्वीराज रासो के महोवा समय मे प्राप्त होते हैं।

आल्हा-ऊदल के साथ राजा परिमाल की सहायतार्थ युद्ध में वीर लाषनसिंह भी कन्नोज-पति जयचन्द की आज्ञानुसार अपनी विशाल सेना लेकर महोवा गया था, जिसमें पचास हजार सैनिकों के अतिरित्त, रूपसिंह मोरी, वीरमराय तोमर, कुंवरपाल, पंगुपाल तथा ताल्हन आदि प्रसिद्ध योद्धा भी साथ थे—

> कयरि जराव की दीनिय सोइ, रषौ तुम आल्ह छती ध्रम होई।
> बुलाइव लाषन सी कमधज्ज, धरौधम सीसह छत्र धरज्ज॥ छं० २०५।
> दई सग फौज पचास हजार, दियै दस डील दंतार जुझ्झार।
> दियौ सग मोरिय रुपसि युद्ध, दिये संग चालुक केसव जुद्ध॥ छं० २०६।
> दिये संग तोंवर वोहिय वीर, दियौ संग जादव दृछ गहरि।
> दियौ किरवार सु कुंवर पाल, दियौ संग वैसन पंगु सकाल॥ छं० २०७।

---

१. कान्यकुब्जे नृपश्चै को राजन् राठोर वंशजः।
जयचन्दः समारव्यातो नृभुजां शिरसो मणिः॥ ११॥
पंच पच सहस्त्राणि यस्य द्वार्षु चतुर्षु य।
उद्यतास्त्राणि तिष्ठति सैन्यान्येवमर्हनिशम्॥ १२॥
नृपाऽनुजो महावीरो रतिभानुर्वला प्रणीः॥
यत्प्रभाव समालक्ष्या रयो जग्मुःपराभवम्॥ १३॥
तस्यात्मजो विशालाक्षः पूर्णचन्द्र समाननः।
नकुलस्यावतारोऽभूल्ला रवनेति परिश्रुतः॥ १४॥
खेमराज श्रीकृष्णदास, आल्हा खंड, पृ० ६०-६१, श्री वेंकटेश्वर, स्टीम प्रेस मुंबई।

२. वही, पृ० ६१।

दियौ संग ताल्हन नेज पठाय , दिये सत भाव मतिज्ज ववान ।
हजार पचार दिये असवार , धरै कुल स्वामि धरम्म दुतार ॥ छं० २०८ ।[1]

महोवा तथा दिल्ली की सेना आमने-सामने होने पर, वीर लापनसिंह अपने चाचा निड्डुरराय से जूझ गया । फलतः दोनों पराक्रमी एक दूसरे पर घातक आघात करने लगे–

लाषन सी परिमाल जू , निड्डुर उर चौहान ।
दुय सामंत सु आहरे , कमधुज्ज सैन सुजान ॥ छं० ४२० ।
लाषन जैचन्द बंधव नन्दन , निड्डुरराय भतीजा द्वन्दन ।
दोउन वीर वाहुरे जंगह , दल चन्देल सम्हारी अगंह ॥ छं ४२१ ।
मंडि निड्डुर लाषन सोह नर , चहुआन चन्देल सुनिरषि भंर ।
कमधुज्ज सु दोयउ वार अरे , वहुलाज जंजीरन सो जकरे ॥ छं० ४२२ ।[2]

कमधज्ज वंशी दोनों सम्बन्धियों का घोर संग्राम देखकर चौहान तथा चन्देल की सेनाओं में खलवली मच गई । सम्बन्ध को भूलकर स्वामि धर्म का आदर्श सम्मुख रखकर ये दोनों वीर युद्ध में सलंग्न हो गये ।[3] निकट सम्बंधियों का यह घोर संग्राम अपूर्व था । एक कन्नौज पति जयचन्द का भाई था तथा दूसरा भतीजा, किन्तु इस समय उनके सम्मुख केवल चौहान एवं चन्देल दल थे, उन्होंने अपने वंश सम्बन्ध को पूर्णतया भुला दिया था—

निड्डुर राय कमधज्ज , वंधु जयचन्द सुतन कहु ।
लाषन सी राठौर , अनुज पंगान मान सुह ॥
चहुआन चंदेल , मिले दल मेल पेल सजि ।
भाई भाई विरंचि , वीर निस्सान पान गजि ॥
पिष्षत अनिय दोई धनिय , लखि लेय चढ़ा परिये प्रकट ।
परिमाल और प्रिथिराज ढिल , स्वामिकाज सौपंत घट ॥ छं० ४३१ ।[4]

पृथ्वीराज रासो के महोवा समय के अनुसार वीर लापनसिंह भी अपने चाचा निड्डुरराय के साथ युद्ध करता हुआ पराभव को प्राप्त हुआ–

'भंजे जयचन्द की सेन विराट , कियौ नृप लापन निड्डुर काट ॥'

किन्तु आल्हा खण्ड की भूमिका में लिखा है कि 'लाखनि राना ने पृथ्वीराज चौहान के वाणों के आघात से अपने प्राणों का परित्याग किया–

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २०५-२०८, स० ६९ ।
२. वही, छं० ४२०-२२, स० ६९ ।
३. वही, छं० ४३०, स० ६९ ।
४. वही, छं० ४३१, स० ६९ ।

शराघात हतो वीरो वारणो भट्ट सत्तमः ।
यथा तथव संतस्थौ मृतोऽपि वीर पुंगवः ॥ १५ ॥

वाण लगने पर लाखानि ने प्राण तो छोड़ दिये, परन्तु जिस प्रकार हाथी पर बैठे थे वैसे ही बैठे रह गये किसी ओर को सिर न हिला। जब लाखनि राना की हथिनि ने टक्कर मार कर पृथ्वीराज के हाथी को हटा दिया और पृथ्वीराज ने पीठ फेरी तब लाखिन राना मूर्छित हो गये, वास्तव में लाखनि राना बड़ा वीर था।"[1]

आल्हा खण्ड के भूमिका-लेखक ने निश्चय ही लाषनसिंह का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है। किन्तु इतना निर्विवाद सत्य है कि लाषनसिंह एक पराक्रमी योद्धा था तथा जयचन्द के इस भ्रातृज नें चौहान-चन्देल संग्राम में वीरगति प्राप्त की थी।

लोहाना आजानबाहुः[2]—पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) के १०६ अथवा १०० प्रसिद्ध सामन्तों में से एक था। वीर लोहाना अद्वितीय पराक्रमी था। एक दिन महाराज पृथ्वीराज चौहान सायंकाल बत्तीस हाथ ऊँची चित्रशाला की गवक्ष में अपने प्रसिद्ध सामन्तों के साथ खड़े थे। इसी समय एक चित्रकार ने सुन्दर चित्र पृथ्वीराज की सेवा में प्रस्तुत किया। पृथ्वीराज ने चित्र अभी भली-भांति देखा भी न था, कि वह चित्र हाथ से छूट पड़ा किन्तु लोहाना आजानबाहु ने कपोत की भांति झपट कर बीच ही में पकड़ लिया, वह अचानक इस प्रकार झपटा मानो कोई शाखामृग (बंदर) कूदा हो।[3] लोहाना के इस पराक्रम तथा निर्भीकता से प्रसन्न होकर पृथ्वीराज ने इसे आजनबाहु की उपाधि देकर सम्मानित किया,[4] तथा ओरछा राज्य भी इसे पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया जिसे वीर लोहाना आजानबाहु ने ओड़छा नरेश पर आक्रमण करके प्राप्त किया था—

---

१. खेमराज श्रीकृष्णदास आल्हा खण्ड, पृ० ६१, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई।

२. लोहाना, एक जाति विशेष का नाम है। 'पहले ये राठौर वंशी राजपूत थे जो कन्नौज से सिन्ध प्रदेश में खदेड़ दिये गये थे, तेरहवीं शताब्दी में सिन्ध से कच्छ चले गये थे। उस समय ये मसालियों की भांति जनेऊ पहिनते थे तथा अपने को क्षत्रिय कहते थे। (श्रिग, हिन्दू ट्राइब एण्ड कास्ट्स्स, भाग-२, पृ० २४२) सिन्ध की हिन्दू आबादी में सबसे अधिक ये ही लोग हैं (वही, पृ० ३७१) इनमें से कुछ सिक्ख धर्मावलंबी भी हैं (वही पृ० ३७५)। 'लाहोना जाति घाट और तालपुरा में विस्तार से फैली हुई है। पहले ये राजपूत थे किन्तु व्यापार करने के कारण कुछ समय उपरान्त वैश्य हो गये।' टॉड, राजस्थान, पृ० ३२०।

३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २, स० ४।

४. पृथ्वीराज रासो नगरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५७, स० ३।

खेचर भूचर जल चरह, सूर गए सुर थान।
जुद्ध जुरै जसवंतसी, रन जित्यौ लौहान ॥ छं० ९ ।[1]

पृथ्वीराज चौहान इस पराक्रमी वीर का बड़ा सम्मान करते थे। प्रायः पृथ्वीराज के समस्त युद्धों में वीर लोहाना ने भाग लिया था। 'कनवज्ज समय ६१' मे लोहाना ने अपना अपूर्व युद्ध कौशल दिखाया—

दल समंद पहुपंग। गज्जि लग्गो चावद्दिसि ॥
लोहानौ वर वीर। पारि मंडी अड्डिय असि ॥
लोह लहरि ढिल्लई। फिरिव बज्जै दल वग्गह ॥
हं हं हं आरुहिय। गजति गज्जन नर लग्गह ॥
पारथ्थ वीर वर वार हर। वढ्ढ कूर कढ्ढी विहर ॥
रघुवीर तरंग तुरग जल। कमल जानि नचैति सिर ॥ छं० १४६३।
मित्त रथ्थ रजि व्योम। मद्धि अट्टई असुर गुर ॥
रसह रौद्र विथ्युच्यौ। थिप्ति पिजि लग्गे अमर पुर ॥
संकर मरि लगि लोह। घूरि घुंघरि तिनि सा छवि ॥
हाजुर मीर हमाम। मीर गिरदान सामि नामि ॥
चवदिट्ठ उट्ठि राजन सवद। पारसि गहन गहन्न किय ॥
है छड्डि मडि असिवर दुकर। जपत आतुर जीह लिय ॥ छं० १४६४।[2]

'रासो समय ६१' में लोहाना आजानवाहु की मृत्यु उपयुक्त दोनों छन्दों से स्पष्ट हो जाती है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पराक्रमी लोहाना आजानवाहु इस संग्राम में मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ था, क्योंकि इसी 'रासो' में 'समय ६६' में हम पुनः वीर लोहाना आजानवाहु को युद्ध करता हुआ पाते हैं। सम्भव है वह इस युद्ध में बुरी तरह घायल हो गया होगा। अन्त में अन्तिम युद्ध में आजानवाहु स्वामिधर्म का पालन करता हुआ विपक्षी से भिड़ गया[3] तथा वीरता का अपूर्व कौशल दिखाकर वह पंच तत्व को प्राप्त हुआ। लोहाना आजानवाहु तीन टुकड़े होकर गिरा, उसके गिरने पर सारी सेना के मुंह से जय जय कार निकल पड़ा, इन्द्र धन्य-धन्य कह उठे, नारद ने सुन्दर ध्वनि का उच्चारण किया। उस सूरमा के कौशल पर देवता चकित हो गये तथा इस लोक के योद्धाओं की टकटकी वंध गयी। सारी अप्सराओं

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ९, स० ४।

२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४६३-६४, स० ६१।

३. तवं गज्जियं वीर आजान वाहं। मिल्यौ मीर अड्डो सुरं जुद्ध राहं ॥ छं० १२९२, स० ६६।

को बड़ा ही आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा कि वह पराक्रमी योद्धा सूर्य मंडल को भेद गया है-

परयौ होय आजान। वाह त्रयपंड धरन्नी॥
जं जं जं जंपत। मुष्य सब सेन परन्नी॥
धनि धनि जपि सुरेस। सु धुनि नारद्द उचारं॥
करिग देव सब किति। वुद्धि नभ पुहुप अपारं॥
कौत्तिग्ग सूर थक्यौ सुरह। मइय टगहग भुअ भरनि॥
आसंसी करैं अच्छर सयल। गयो भेदि मण्डल तरनि॥ छं० १३०५।[1]

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोहाना आजानबाहु की मृत्यु 'कमधज्ज समय ६१' में न होकर 'अन्तिम युद्ध समय ६६' के अन्तर्गत हुई थी।

विजयपाल-'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार समस्त गढ़ों में श्रेष्ठ, पूर्व दिशा में समुद्रशिखर नाम का एक अत्यन्त दुर्गम किला था। वहाँ अजय यादव वंशी इन्द्र के समान विजयपाल नामक राजा राज्य करता था।

पूरब दिसि गढ़ गढ़नपति समुद सिषर अति द्रुग्ग।
तहं सु विजय सुर राजपति, जाद्दू कुलह अभग्ग॥ छं० १।[2]

राजा विजयपाल अत्यन्त वैभव शाली था, उसके पास असंख्य हाथी, घोड़े थे तथा उसका राज्य विशाल था। वह सागर पर्यन्त भूमि का स्वामी था। समस्त बलशाली राजा उसकी सेवा करते थे तथा उसके द्वार पर जोर-जोर से नगाड़ों की आवाज हुआ करती थी।[3] उसके पास विशाल कोष एवं सेना थी। दस पुत्र तथा एक पुत्री थी जिसका नाम पद्मावती था।[4] उसकी स्त्री का नाम पद्मसेन था।[5] कुमारी पद्मावती के बड़े होने पर राजा विजयपाल ने उसकी सगाई कुमांऊगढ़ के राजा कुमोदमनि से पक्की कर दी।[6] किन्तु कुमारी पद्मावती ने पृथ्वीराज को पत्र द्वारा अपने अपहरण के लिए आमंत्रित किया तथा समय पर पृथ्वीराज ने पद्मावती का अपहरण कर विजयपाल की इच्छा पूर्ण न होने दी।[7]

राजा विजयपाल के विषय में रासो के अन्य समस्त संस्करण पूर्णरूप से मौन हैं।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं०, १३०५, स० ६६।
२. वही, छं० १, स० २०।
३. वही, छं० २, स० २०।
४. वही, छं० ३, स० २०।
५. वही, छं० ३, स० २०।
६. वही, छं० ३१, स० २०।
७ वही, छं० ७२, स० २०।

इतिहास भी इनके विषय में कुछ प्रकाश नहीं डालता। अतः इनके विषय में विस्तार से कुछ भी कहना असम्भव है।

वीरचन्द कमधज्ज—रासोकार के मतानुसार वीरचन्द कमधज्ज रयसल्लराय का सहोदर अनुज तथा पंगराज जयचन्द का चचेरा भाई था।[1] भानराय यादव के अनुज राजा मुञ्ज की कन्या शशिवृत्ता से इसका विवाह सम्बन्ध स्थिर हुआ था किन्तु गुण-श्रवण के परिणाम स्वरूप राजकुमारी शशिवृता पृथ्वीराज पर पहले से ही अनुरक्त होने के कारण उसने सम्भरेश्वर पृथ्वीराज को अपने अपहरण हेतु सन्देश प्रेषित किया। परिणय हेतु राजकुमार वीरचन्द के देवास पहुंचने पर दिल्ली पति पृथ्वीराज ने यादव कुमारी का अपहरण कर लिया। फलतः चौहान तथा कमधज्ज दोनों की वाहिनी युद्ध में उलझ गई। घोर संग्राम छिड़ गया जिसके अन्तर्गत वीरचन्द ने अपूर्व पराक्रम का परिचय दिया—

सवर वीर कमधज्ज अरध अप्पिय पग मग्ग।
इषु अच्छित उच्छरहि जानि परिनाम न भग्ग॥
सार धार दुखियै वीन मगल उच्चारै।
सवै साथ वदि भट्टि सकल पूजा सभारै॥
वर मुक्कि वरन वरनी सुवर, इह अपुव्व पिष्यौ नयन।
उप्पनौ वीर सिंगार संग, रुद्र वीर चौरी सयन।, छं० १८३।[2]

समस्त विवाहोत्कंठाओं को तिलांजलि देकर वह वीर खड्ग द्वारा रक्त का अर्घ देने लगा। वीर पृथ्वीराज़ शशिवृता को लेकर दिल्ली की ओर चल पड़ा। वीरचन्द ने पृथ्वीराज चौहान के सामन्तों से कस कर लोहा लिया किन्तु फिर भी पराजित हुआ परन्तु वह पराक्रमी वीर कन्नौज को प्रत्यावर्तित नहीं हुआ अपितु उसने यादव राज के दुर्ग को घेर लिया। भयभीत होकर राजा भान ने पृथ्वीराज की शरण ग्रहण की। ग्रन्थकार के अनुसार वीरचन्द का पिता उज्जयनी का शासक था।[3]

वीरमराय—रासोकार के मतानुसार वीरमराय कमधज्ज कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द की विमाता-जात पुत्र था। वीरमराय का परिचय संयोगिता अपहरण सम्बन्धी, चौहान पृथ्वीराज तथा पंगराज के मध्य होने वाले विकट संग्राम में प्राप्त होता है। रासोकार के अनुसार वीरमराय ने कन्नौजपति विजयपाल के समय में ही हिन्दू-मुसलानों पर विजय प्राप्त की थी तथा उसके वाएं पैर में टोडर (एक प्रकार का स्वर्णाभूषण) सम्मान स्वरूप पड़ा रहता था।[4]

---

१. दषिनिय अंग रयसल्ल कमंध। तिन अगंवीर चन्दह सुबंध॥ छ० ५३०, स० ६१।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छ० १८३ स० २५।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, शशिवृत्ता नाम प्रस्ताव, समय २५।
४. वही, छं० २०७९, स० ६१।

ग्रन्थकार ने अन्यत्र इसी वीरमराय को धायपुत्र भी कहा है, किन्तु कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द अपने इस वंशज का आदर सहोदर भाई के समान ही करता था। वीर वीरमराय युद्ध-नीति का ज्ञाता था तथा राज्य-भार उसके कन्धों पर था—

सुअन धाई जैचन्द नाम वीरम वीर वर।
गरुअ लाज गुर भार जुद्ध जुति जान ग्यान गुर।।
बधव सम जैचन्द, प्रीति लिखिवैं प्रेम गुन।
अगि आदर नृप करैं, गात उत्तग अंग रन।।
सहसत्र सत्त सेना ससत्त, वरन रत्त वाना धरैं।।
जह जहं सुराज काजह समय, तह तह परि अगं छरैं।। छं० २१६५।[1]

रासोकार ने वीरमराय का चित्रण 'राम चरित मानस' के पराक्रमी योद्धा कुम्भकरण के समान किया है। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी पृथ्वीराज चौहान तथा पंगराज के मध्य अष्टमी का घोर संग्राम होने पर भी यह वीर वारुणी पी कर निद्रा में मस्त था। नवमी शनिवार का दिन भी घोर युद्ध में व्यतीत हुआ किन्तु वीरमराय की निद्रा भंग न हुई। तृतीय दिवस उसे कहीं जाकर युद्ध की सूचना प्राप्त हो सकी। सूचना पाकर, क्रोध में भर कर उसने अपने सेवक पर पद प्रहार किया तथा युद्ध सूचना न देने के अपराध में उसे पांव पकड़ कर पछाड़ दिया। पुनः युद्ध हेतु निश्चित हो, जमांही लेता हुआ यह पराक्रमी वीरमराय पैदल ही युद्ध क्षेत्र की ओर अग्रसर हुआ। वीरमराय को युद्ध क्षेत्र में आता देखकर चौहान पृथ्वीराज के सामन्त इसी प्रकार उत्साहित हो गये, जैसे समुद्र को देखकर अगस्त ऋषि उत्साह से उसे सोखने को आगे बढ़े थे—

सुक्रवार अष्टमिय निंद जानौ न जुद्ध पुर।
नौमी सनि टरि गइय, सामि संग्राम इन्द्रजुर।।
हय दिप्पत पव्वास, पाइ गहि सत्त पछारिय।
रे सुयुद्ध मुद्धंग्र जग जुरि हो न जगारिय।।
आयो निसंक सामन्त जंह कर कसंत आलसअ सन्न।
तितने सूर साहिग समर जनु अगस्ति दरिया गसन।। छं० ५५६।[2]

शत्रुदल की ओर अग्रसर होता हुआ वीर वीरमराय ऐसा प्रतीत होता था मानो यज्ञान्तर हवि के समय हुंकार करता हुआ माया मार्ग से कोई देव उत्पन्न हुआ हो। पंगराज जयचन्द से किंचित सम्भाषण के उपरान्त, इस वीर वीरमराय ने कटारियां बदल-बदल कर

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २१६५, स० ६१।
२. वही, छं० ५५६, स० ६१।

शत्रु सेना पर प्रहार करना प्रारम्भ किया जिससे शत्रुपक्ष की पर्याप्त हानि हुई।[1] पृथ्वीराज चौहान के प्रसिद्ध सामन्त बड़गुज्जर द्वारा अपने सेवक अली तथा वली मीरों को धराशायी होता देखकर पंगराज ने अत्यन्त कुपित हो, इसी वीरमराय को चौहान के सामन्तों का वध तथा पृथ्वीराज चौहान को जीवित बन्दी बनाने का आदेश दिया–

परे मीर दिक्खे उभै, दिय अग्या तमिपंग।
गहौ जाइ चहुवान कौ, हनो सुयर सब जंग॥ छं० २१६७।[2]

अपने अनुज पंगराज की आज्ञा शिरोधार्य कर, सेना के सम्मुख आकर पराक्रमी योद्धा वीरमराय ने पृथ्वीराज चौहान को ललकारा तथा साथ में ही अपने बंधु जयचन्द के दलबल का भी आतंक पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया।[3] स्वपक्ष के अनेकानेक मीर वन्दों को आहत देखकर, कुपित हो राजा जयचन्द ने पुनः वीरमराय को बड़गुज्जर का सामना करने की आज्ञा प्रदान की। वीरमराय तथा बड़गुज्जर में विकराल युद्ध ठन गया। दोनों योद्धाओं ने अपने-अपने बल एवं पराक्रम का श्रेष्ठ परिचय दिया। पराक्रमी वीरमराय के प्रहारों से एक प्रकार से वीर बड़गुज्जर वैकुण्ठ को सिधार गया—'बड़हथ्थ बडगुज्जर शुक्कि गयो वैकुण्ठ' पारस्परिक घातक आघातों के फल स्वरूप दोनों ही वीर युद्ध करते हुए सूर्य लोक को प्रयाण कर गये–

हयौ अस्सि क्षार सु वीरम्म ताम, कटे बहु दूनौ घर तुहि ठाम।
परे षंड वीरम्म तुट्ठे त्रिमग्गं, घंन घन्न जप्पौ फनवकति सग्गं॥ २१७५।
धंव झारि ऊझ्झारि घायौ समुष्वं, मद मत्त द्रुम्म परे इसुस रुष्वं।
दयौ आइ बड़गुज्जंर पग्ग धांर, कटे टट्ठरं सीस फट्यौ कुठारं॥ छं० २१७६।[4]

वीरमराय का ऐतिहासिक ग्रन्थ में अस्तित्व नहीं मिलता है।

संजमराय–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार संजमराय दिल्ली-अजमेर के अन्तिम हिन्दू शासक पृथ्वीराज चौहान का सामन्त था। इनके पुत्र वीर लंगरीराय की गणना भी श्रेष्ठ १०६ सामन्तों में होती थी। संजमराय भी कम स्वामिभक्त न था। महोवा युद्ध समय के अन्तर्गत महोवापति राजा परमाल तथा पृथ्वीराज के साथ विकट युद्ध होने पर जब पृथ्वीराज चौहान युद्ध क्षेत्र में मूर्छित होकर गिर पड़े तथा एक गिद्धिनी ने उनके सिर पर बैठकर उनकी आंखें निकालने का प्रयास किया, तब वीर पराक्रमी संजमराय ने यह भीषण दृश्य देखकर गिद्धिनी को अपने शरीर का मांस काट-काट कर खिलाना प्रारम्भ किया तथा स्वामि की रक्षा करते हुए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५५२, स० ६१।
२. वही, छं० २१६७ स० ६१।
३. वही, छं० २१७२, स० ६१।
४. वही, छं० २१७५-७६, स० ६१।

लोह लागि चहुवान। परे मूरछा ह्वै धरतिय ॥
उड़ गीधनि बैठि कै। चुंच वाहैति विरत्तय ।,
देष्यो संजम राय। नृपति दृग दाढति पंछिन ॥
अपने तन को मांस। काटि नषु दियौ ततच्छिन ॥

अपनै सु नयन देष्यौ नृपति। अन्त समै भ्रम मल्लियव ॥
आये विवान बैकुण्ठ के। देह सहत धरि चल्लियव ॥ छं० ८१३।

गीधनि कौं पल नषु दियौ। नृप के नैन बचाय।
देह हँसत बैकुठ को। पहुंच्यौ संजमराय ॥ छं० ८१४।[1]

सम्भवतः वीर संजमराय की अपूर्व वीरता एवं स्वामिधर्म से प्रभावित होकर ही वियोगी हरि ने लिखा है–"संजमराज महाराज पृथ्वीराज का एक शूर सामन्त था। एक बार युद्ध स्थल पर महाराज पृथ्वीराज घोड़े से मूर्छित हो गिर पड़े। पास ही संयमराय भी आहत पडा था। यह समझकर कि महाराज मर गये हैं, गीध उन पर मँडराने लगे। एक दो ने चोंच भी चला दी। संयमराय से यह न देखा गया। उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका। उधर जरा भी देर करता है, तो गीध महाराज को खाये जाते हैं। सामन्त ने अपने शरीर से मांस काट-काट कर फेंकना शुरू कर दिया। गीधों को और क्या चाहिए? आनन्द से मांस खाने लगे। थोडी देर वाद महाराज होश में आए। आँख खोलते ही स्वामि भक्त संयमराय की यह बलि-लीला देखी। पर, वहाँ तो सामन्त मरण-प्रायः हो गया था। महाराज उसकी स्वामि भक्ति देखकर गद्गद् हो गए। किसी तरह उठकर गीधों को भगाने लगे, पर सामन्त तो स्वर्ग को सिधार चुका था–

रण-थल मूर्छित स्वामि के लीन्हें प्राण बचाय।
गीधनु निज तनु-मांस दै, धन्य सयमाराय ॥ २५ ॥
फेंकि - फेंकि निज मांस लिय संभरि-राय बचाय।
है तू शिवि तें घटि कहा, सुभट संयमाराय ॥ २६ ॥[2]

पराक्रमी योद्धा एवं स्वामि भक्त संजमराय का त्याग देखकर महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण भी चुप न रह सके–

नट सौ ही पहलां पड़ै, चील्ह विलग्ग चैक।
नैणं बचावै नाहरा, आप कलेजौ फैंक ॥ १६७।[3]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ८१३-१४, स० ६९।
२. वियोगी हरि, वीर सतसई, पहला शतक, छं० २५-२६, पृ० ९-१०।
३. सूर्यमल्ल मिश्रण, वीर सतसई, छं० १६७, पृ० ८६।

पृथ्वीराज ने संजमराय के इस अपूर्व बलिदान पर प्रसन्न होकर उसके पुत्र लंगरीराय को आधी गद्दी तथा आधे राज का पट्टा लिख दिया–

संजमं राय कुंवर को। वोलि हजूर नरेस।
हय गय मनि मानिक वकसि। अध आसन अध देस ॥ छं० ८२८।[1]

सलषरांय प्रमार—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार सलषराय प्रमार आबू का आधिपति था। जिस प्रकार दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान, दिल्ली में अपनी कीर्ति को फैलाये हुए था, उसी प्रकार आबू नरेश की कीर्ति सर्वत्र फैली हुई थी।[2] राजा सलष के एक पुत्र था जिसका नाम जैतराय प्रमार था तथा दो पुत्रियां थी जिनमें से बड़ी का नाम मन्दोदरी तथा छोटी का इंच्छिनी था–

जैत पुत्र सलषेज लघु। इच्छिनी नाम कुमारि।
वर मन्दोदरी सुन्दरि। विमन रूप उनिहार ॥ छ० ४।[3]

बड़ी पुत्री मन्दोदरी का विवाह भोलाराय भीमदेव चालुक्य से हुआ था।[4] गुजरेश्वर भीमदेव चालुक्य ने अपने प्रधान द्वारा पत्र भज कर राजकुमारी इच्छिनी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की किन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ सलषराय ने निश्चय किया कि चाहे प्राण रहे अथवा जाय किन्तु पृथ्वीराज को इच्छिनी का वाग्दान देने पर, वह कभी भी विमुख न होगा।[5] कोरा उत्तर पाकर प्रधान भीमदेव के पास लौट गया। इधर राजा सलषराय ने युद्ध की तैयारी करके एक पत्र महाराज पृथ्वीराज को लिखा जिसमें राजकुमारी इंच्छिनी के साथ विवाह के प्रस्ताव के साथ युद्ध में सहायता करने के लिए आग्रह किया गया था।[6] पृथ्वीराज चौहान राजा सलषराय का प्रस्ताव सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा अनेक सैनिकों तथा सामन्तों को साथ लेकर स्वय आबू की ओर सहायतार्थ चल पड़े। यह सूचना प्राप्त कर भोलाराय भीमदेव के वदन मे आग लग गई।[7] उसने आबू पर आक्रमण कर दिया। सलषराय प्रमार ने भोलाराय भीमदेव का युद्ध में वड़ी वीरता से सामना किया किन्तु अन्त में युद्ध करता हुआ और अपनी कीर्ति को अजर-अमर करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।[8]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ८२८, स० ६९।
२. वही, छं० ३, स० १२।
३. वहीं, छं० ४, स० १२।
४. वही, छं० ५, स० १२।
५. वही, छं० ३२-३३, स० १२।
६. वही, छं० ५२-५३, स० १२।
७. वही, छं० ६७, स० १२।
८ वही, छं० १०९ स० १२।

सारंगदेव जाट—'कनवज्ज समय ६१' के अन्तर्गत कवि चन्द वरदायी कथित कन्नौजपति राजा जयचन्द की सभा में उपस्थित सामन्तगणों के नाम तथा ग्राम का उल्लेख करते हुए वीर सारंगदेव जाट का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

जट्टह सुदेव सारंग सूर, वीरम सवन घाती समूर ।। छं० ५४० ।[1]

संयोगिता-अपहरण सम्बन्धी कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द तथा सम्भरेश्वर चौहान पृथ्वीराज के मध्य होने वाले संग्राम में चौहान के प्रसिद्ध सामन्त विरम्मराय के अन्त के उपरान्त तेजस्वी सारंगदेव युद्ध हेतु आ उपस्थित हुआ, उसके साथ तीन सहस्त्र अश्वारोही सेना भी थी। खड्ग धारण करने में समर्थ तथा स्वामिधर्म के लिए उसका पवित्र स्नेह था। उसका हस्थ-प्रहार, सिंह प्रहार तुल्य था। इस पराक्रमी वीर ने पंगराज के सम्मुख आकर अपना मस्तक नमित किया तथा राजा जयचन्द ने अपना हाथ ऊँचा उठाकर आशीर्वाद दे, उसे युद्ध हेतु विदा किया—

परत विम्म चालुक्क, गहकि रावन सेन सब।
जट्ट राउ सारंग देव, आयौ सु तपि तव ।।
सहस तीनि असवार, धार धारार समथ्थं ।
त्रिमल नेह स्वामित, सिंघ रन वह सु हथ्थं ।।
नाइयौ सीस नमि पंक कहु, दहय सीष पहु ऊँच कर ।
उप्परि वग्ग निज सेन सम, साल प्रससिय अप्प भर ।। छं० २३४७ ।[2]

कन्नौजपति राजा जयचन्द की आज्ञा पाकर जट्टराज सारंगदेव पकड़ो-पकड़ो की ललकार मचाता हुआ, शत्रु सेना से भयकर युद्ध करने लगा।[3] युद्ध क्षेत्र में जट्टराज सारंगदेव का सामना पृथ्वीराज चौहान के प्रसिद्ध एवं अद्वितीय पराक्रमी सामन्त सलपराय प्रमार से हुआ जो अपनी अपार वीरता एवं पराक्रम से सुरों-असुरों को मुग्ध करता हुआ पराभव को प्राप्त हुआ—

तव सुजट्ट सारंग सुमन, समसेर समाहिय ।
विरचि पान करि रीस, सीस सथ्थां पर वाहिय ।
टोप कट्टि विय टूक, फुट्टि तिम विचि सिर फट्यौ ।
सुमन पान कम्मांन, वांन लग्गत सिर घट्यौ ।।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५४०, स० ६१ ।
२. वही, छं० २३४७, स० ६१ ।
३. वही, छं० २३४८, स० ६१ ।

रिझ्यौ सूर सुर असुर हूँ , वर वर कहि करिवर घरयो ॥
हुअ हथ्थ मथ्थ वई जहके , घर विन सर घरती टरयो ॥ छं० २३५९ ।[1]

सारंगदेव सोलंकी–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार सारंगदेव सोलकी, दिल्ली-अजमेरपति पृथ्वीराज चौहान का पराक्रमी सामन्त था तथा इसकी गणना श्रेष्ठ सामन्तों में होती थी। इसका एक भाई विझराय सोलंकी था, जो संयोगिता अपहरण सम्बंधी युद्ध में मारा गया था। सारगदेव ने पृथ्वीराज चौहान के अनेक युद्धों में अपनी वीरता एवं रण-कुशलता का परिचय दिया था। 'रेवातट समय' में मोहम्मद गोरी तथा पृथ्वीराज चौहान के मध्य युद्ध होने पर सारंगदेव सोलकी का युद्ध कौशल दृष्टिव्य है—' सोलकी सारंग यकायक खिलजीखां के सामने आ गया। वह पहले जयचन्द (पग) का भृत्य था, किन्तु इस अवसर पर पृथ्वीराज चौहान की ओर था। सारंग के प्राण संकट में देखकर चाचा कन्ह दो घोड़ों की पीठ पर पैर रखकर खड़े हो गये तथा हाथी के समान चिगघाड़ने तथा गर्जना करने लगे, जिससे पृथ्वी, पर्वत तथा कन्दरायें गुंजायमान हो उठो, जिससे वीर सारगदेव के प्राण बच गये। देवताओं ने जय-जय का घोष किया तथा युद्ध की पूजा में पुष्पांजलि दी। सारगदेव सोलकी सारा युद्ध क्षेत्र खोजता रहा तथा कन्ह चिल्लाने की धुन बांधे रहा।"

सोलकी सारंग , षांन खिलची मुष लग्गा ।
वह पंगां नौ भ्रत्त , इतें चहुआन बिलग्गा ॥
है कंधन दिय पाय , कन्ह उत्तर विय वाजिय ।
गज गूंजार हुंकार , घरा गिर कदर गाजिय ॥
जय जय ति देव जय जय करहि , पहु पजलि पूजत रिनह ॥
इक परयौ षेत सोधं सकल , इक्क रह्यौ बधे धुनह ॥ छं० १०४ ।[2]

वीर सारंगदेव के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि यह यहीं पर मारा गया था किन्तु उनकी ऐसी धारण निर्मुल है क्योंकि आगे भी हम उसे पुनः युद्ध करते हुए पाते हैं। संयोगिता अपहरण सम्बन्धी युद्ध में वह पृथ्वीराज चौहान की ओर से पंगराज के नगर-रक्षक रावण से वड़ी वीरता पूर्वक युद्ध करता हुआ मारा गया था—

सोलंकी सारंग । वीर रावन आरुद्धिय ।
दुअ सु हथ्थ उत्तंग । तेग लंबी सा जुद्धिय ॥
दो मरवह आरुद्ध । रुद्ध भानं झिल्लारिय ॥
टोप फुट्टि सिर फुट्टि । छिछ फुट्टय कचि लोरिय ।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २३५९, स० ६१ ।
२. वही, छं० १०४, स० २७ ।

तिल वट्टि फुट्टि पलवन्न वन। कै ज्वाल माल पावक पसरि।
तन भंग धाय अरि सग करि। पति पहुर चालुक्क परि ॥ छं० १५२३।

ब्रह्म चालुक ब्रह चार। ब्रह्म विद्या वर रप्पिय।
केस डान अरि करिय। रुधिर पन पत्र विसिष्षिय॥
पग्ग गहिय अजुलिय। नाग गहि नासिक तामं।
धरनि अपर दुहुं श्रवन। जाप जापं मुष रामं॥
सिर फेरि पग्ग सम्हौ धर्यौ। दुअन तार मन उल्हसिय॥
अष्टमी जुद्ध सुरूह अथमि। सुर पुर जा सारंग वसिय॥ छं० १५२४।[1]

सिंहप्रमार—पृथ्वीराज रासो के अनुसार इस पराक्रमी वीर ने 'वड़ी लड़ाई प्रस्ताव समय ६६' के अन्तर्गत दिल्ली-अजमेर के अन्तिम हिन्दू शासक पृथ्वीराज चौहान की ओर से शहाबुद्दीन गोरी की सेना से, वग्गरीराव के वीरगति प्राप्त होने के उपरान्त युद्ध क्षेत्र में अग्रसर होकर शाही सेना में कुहराम मचा दिया था। इन्होंने अपार पराक्रम दिखाकर शाही सेना के १५ झुंड सरदारों का सफाया कर दिया तथा अन्त में स्वयं भी युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इनका विशद वर्णन अन्यत्र प्रायः नहीं मिलता है।

ढर्यौ अप्प सुम्भाय तच्चे परन्न। सुतं निरभयं निरभयं अप्प मन्नं॥
पर्यौ सिंघ पाभर सामार वच्चै। पलं पेत ज्यों भूत भैरू सुनच्चै॥ छं० १२८८।[2]

सुग्रीव (गौड़ नरेश)—पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचन्द को गौड़ प्रदेश का आधिपति भी बताया गया है। ग्रन्थकार ने राजा जयचन्द को गुंडदेश (गौड़) को बांध कर मुक्त कर देने वाला अर्थात अधीनस्थ बना कर रखने वाला विजेता कहा है—

जिनै छंड्यौ वन्धि इक गुंड गौरा।
ग्रहे लिद्ध वेरागॅर सव्व हीरा॥ छं० ५७५।[3]

गुंडदेश का शासक सुग्रीव राजा जयचन्द का सहयोगी था। संयोगिता अपहरण सम्बंधी पृथ्वीराज चौहान तथा पंगराज के मध्य होने वाले युद्ध के अन्तर्गत नवमी को कान्यकुब्जेश्वर के पक्ष से लड़ता हुआ यह वीर पचत्व को प्राप्त हुआ। युद्धोपरान्त गिनाए गये पंग-पक्ष के आहत वीरों में उसका नामोल्लेख हुआ है। 'सुपहु गुंड सुग्रीव।'

गौड़ नरेश सुग्रीव कवि कल्पना प्रसून पात्र ही प्रतीत होता है। इतिहास तो राजा

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छ० १५२३-२४, स० ६१।
२. वही, छं० १२८८, स० ६६।
३. वही, छ० ५७५, स० ६१।

जयचन्द की गौड़ प्रदेश पर सत्ता को भी स्वीकार नहीं करता है। तत्कालीन इतिहास को देखने पर ज्ञात होता है कि गौड़ प्रदेश (बंगाल) पर राजा हर्ष की मृत्यु के बाद आसाम के शासक भास्कर वर्मन ने शंशाक को पराभूत कर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। आठवीं शती में कन्नौज नरेश यशोवर्मन, काश्मीर के आधिपति लालितादित्य तथा कामरूप के राजा श्री हर्ष ने बंगाल पर आक्रमण किये थे तथा देश में अराजकता का ताण्डव नृत्य हो रहा था। ऐसी स्थिति में जनता ने गोपाल नामक व्यक्ति को राजा निर्वाचित किया तथा बंगाल पर पाल वंश का शासन स्थापित हो गया। पालवंश का अन्तिम शासक रामपाल हुआ, इसके उपरान्त बंगाल पर सेन वंश का शासन प्रारम्भ हुआ। इस वंश का संस्थापक सामन्त सेन था। कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द के समकालीन सेन वंशी शासक बल्लाल सेन (११५२-११७९ ई०) तथा लक्ष्मण सेन (११७९-१२०५) थे। सेनवंशी उपरोक्त दोनों शासक निश्चय ही कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द के आधीनस्त न होकर स्वतंत्र शासक थे। श्री नेत्र पाण्डे का अनुमान है कि लक्ष्मण सेन को सम्भवतः गाहड़वाल वंश के विरुद्ध सफलता भी प्राप्त हुई थी।[१] इसके उपरान्त विश्वरूप सेन तथा केशवसेन नामक इसके पुत्र क्रमशः शासक हुए तथा मुसलमानों से युद्ध करते रहे। लगभग सन् १२६० ई० में सेन वंश के राजा का मुसलमान आक्रमण कारियों ने आमूल उन्मूलन कर दिया।

स्पष्ट है कि रासो का वर्णन कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द की महानता एव गौरव बखान करने के फलस्वरूप ही हुआ है। रासो के उपर्युक्त विवेचन में सत्यता एवं ऐतिहासिकता का पूर्ण अभाव है।

सुमत—पृथ्वीराज रासो के अनुसार कन्नौजपति राजा जयचन्द के प्रधानमत्री का नाम सुमन्त था। मंत्री सुमन्त मृत्युपर्यंन्त जयचन्द का सहयोगी तथा सहायक रहा, जिसके निधन से पंगराज को भयंकर हानि उठानी पड़ी। सर्वप्रथम 'बालुकाराय समय' के अन्तर्गत पंगराज तथा मंत्री सुमन्त विचार-विनिमय करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। पंगराज ने राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने की कामना को कार्य रूप में परिणित करने की योजना को मन्त्री के सम्मुख प्रस्तुत किया—

मत मंडत छंड़त कलह, बल दीरघ प्रतिवाम।
कहै पंग नृप ऊँच मति, रहै तो रक्खै नाम॥
के के न गया महि मडला, बज्जाये दीह दिवहाई।
विप्फुरै जासु कित्ती ते गया, नहं गया हुंती॥

मन्त्री ने अपना कर्तव्य पालन करते हुए उचित मंत्रण दी कि सामयिक स्थिति पर

---

१. श्रीनेत्र पाण्डेय, भारत का वृहत इतिहास, जि० १, पृ० ४१८।

के अनुकूल नहीं। पगराज द्वारा दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान से दिल्ली प्रदेश का आधा भू-भाग मांगने पर सुमन्त ने पंगराज को अपनी सम्मति पर पुनः विचार करने के लिए निवेदन किया—'महाराज न तो अब वह समय है तथा न अर्जुन और भीम जैसे प्रतापी महापुरुष, कलिकाल में इस यज्ञ का सम्पादन असम्भव है।' मंत्रणा को विफल होते देखकर मन्त्री सुमन्त ने अपने राजा की आज्ञा का पालन किया।

स्वामी पंगराज का शुभ चिन्तक मन्त्री सुमन्त उनका अन्तरंग भी था। जयचन्द द्वारा प्रेषित पत्र चौहानराज पृथ्वीराज के सम्मुख रखकर उसने युक्ति पूर्वक निवेदन किया—'राजन् जैसे हिरणयाक्ष और दक्ष प्रजापति के यज्ञ में कुवेर पर्यन्त सब यक्ष और किन्नर उपस्थित थे, वैसे ही इस समम मनुष्य मात्र राजा जयचन्द की सेवा में अपना सौभाग्य मानते हैं, अस्तु इस समय मेरी प्रार्थना है कि जिस इन्द्रप्रस्थ के लिए पहले वड़े-वड़े गन्धर्व जूझ-मरे तथा दुर्योधन का विनाश हुआ, उस इन्द्रप्रस्थ का आधा भू-भाग मातुल बन्धु कन्नौजपति को दीजिए।' मन्त्री का वाक चातुर्य दृष्टव्य है। भले ही मन्त्री को अपने उद्देश्य में सफलता न मिली हो किन्तु उसने एक वार पृथ्वीराज जैसे शासक को भी असमन्जस में डाल दिया था।

कन्नौज लौटने पर एक वार पुनः सुमन्त ने पंगराज को समझाया कि—'कलियुग में यज्ञ कार्य सम्पन्न होना नितान्त कठिन है किन्तु स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य है। आज्ञाकारी मन्त्री ने सर्वप्रथम राज्य सुरक्षा का भार वालुकाराय तथा मुसलमान सेना प्रधान खुरासान खां को सौंप कर यज्ञारम्भ की मन्त्रणा दी। पंगराज ने मन्त्री की मन्त्रणा मानकर यज्ञ-तिथि शोध कर तथा साथ ही कन्या संयोगिता के स्वयवर का आयोजन कर, द्विजवर को आमन्त्रित किया। पंगराज का परम हितैषी होने के साथ ही साथ विदेश नीति में भी वह सक्रीय भाग लेता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यज्ञ विध्वस होने पर जहाँ एक ओर समस्त सेना को युद्ध हेतु तैयार किया वहीं दूसरी ओर पगराज को संघर्षारम्भ के पूर्व कन्या सयोगिता के स्वयंवर कार्य को सम्पादित करने का परामर्श भी उसने दिया। उसने उस समय उक्त परामर्श देकर, दूरागत राजाओं की उपस्थिति से लाभ उठाकर अपनी कुशाग्र बुद्धि का भी परिचय दिया।

'सामन्त पंग युद्ध' के अन्तर्गत चौहान पृथ्वीराज को दिल्ली में न पाकर प्रत्यावर्तित होने पर पंगराज ने रावल समरसिंह को वलपूर्वक दवाने की इच्छा हुई। फलतः मन्त्री को बुलाया गया तथा पुनः राजसूय यज्ञ की व्यवस्था की आज्ञा दी गई किन्तु मन्त्री होने के नाते उसने पुनः पंगराज से निवेदन किय—

ताराकृत सघरिय, चित्त रावर उनमनिय।
विधि मत्र जंत्र अशक्ति करि, साम दास भेदह सवल ॥

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छ० ४१-४२, स० ४८।

जानो सुवीर सो उच्चरहु, काम क्रोध साधन प्रबल ॥ छं० २३ ।[1]

कन्नौजपति पर मन्त्री के कथन का विपरीत प्रभाव हुआ। उसने मन्त्री को इस प्रकार से व्यवस्था करने का आदेश दिया जिससे यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो सके। नीति कुशल मन्त्री ने पंगराज की यज्ञ के प्रति उत्कठ अभिलाषा देखकर रावल समरसिंह से संधि करने का प्रस्ताव रखा, क्योंकि चौहान पृथ्वीराज के एक महान सहायक को स्वपक्ष में कर लेने से सभी कार्यों के सुगम हो जाने की सम्भावना थी–

तव सुमंत्र मंत्रिय प्रधान, उच्चरिय राजवर।
चाहुआन बंधन सुमन्त, मंडन जग्य घर॥
नर उत्तिम चित्रगं, राज उत्तिम चित्रंगी।
कर अव्रग्ग दग्गन, जगत्त रप्पन गज अंगी॥
कालंक अछिय कट्टन सुछिप्र, परसु वार तिन तिन करय॥
चित्रंग सबर समर, मिलि सु नग्य फिरि दिन धरय॥ छं० २४।[2]

कुशल मंत्री सुमन्त के उचित प्रस्ताव से सहमत होकर पंगराज ने तुरन्त ही श्रेष्ठ भेंट आदि देकर मत्री को चित्तौड़पति रावल समरसिंह से संधि करने के लिए भेजा। मंत्री अत्यन्त ही नीति कुशल तथा बहुज्ञ था–

मुक्कलै पंग वर मन्त्र वीर, जानै सुगति राजन सरीर।
मन पंग होइ सों कले वत्त, विन बुलत बोले सु वत्त॥
जानै सु चित्त नर नरनि वत्त, अनिरत्त ते लपहि गत्त।
कीटी सुभ्रंग ज्यों मिलहि स्याम, डर ग्रहै रहै जामित्त जाम॥ छं० २२।[3]

चित्तौड़पति चित्रंगी रावल समरसिंह द्वारा आगमन का अभिप्राय पूछे जाने पर मंत्री सुमन्त ने अत्यन्त कुशलता से राजसूय यज्ञ की सूचना दी।[4] मन्त्री सुमन्त के मुख से यज्ञ की बात सुन कर रावल समरसिंह ने यज्ञ को असामयिक बताकर मन्त्री को भी बहुत कुछ भला-बुरा कहा[5] किन्तु प्रधानमंत्री चित्रांगी रावल समरसिंह के सम्मुख पंगराज के यज्ञ को अनुचित न मान कर पुनः कहता है–'पूर्वकाल में अपनी त्रुटियों के कारण ही राजा लोग यज्ञ न कर सके, राम ने दिग्विजय काल में राजनीति की चाल चली तथा राजा वलि ने क्षत्रिय धर्म का

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २३, स० ५५।
२. वही, छं० २४, स० ५५।
३. वही, छं० २२, स० ५५।
४. वही, छं० ३३, स० ५५।
५ वही, छं० ३६-३७, स० ५५।

विचार नहीं किया। यज्ञ करना पंगराज का धर्म है, क्योंकि सभी राजा जयचन्द की आन मानते हैं। किन्तु इस वार भी रावल जी ने यज्ञ को असामयिक ही वताया:—

कहि मोकलि परधान कर, इह सुकथ्य चित्रंग।
तो तुम अव जज अंज से, कहा करहु पहुपंग॥

अश्व मेघ जगछ से करि, विश्व मित्र तप जोर।
कहा करे नृप मन्दमति, अहंकार मन जोर॥ छं० ५१।[1]

रावल समरसिंह की कटुक्ति सहन न कर सकने के फलस्वरूप मन्त्री ने आवेश में आकर योगेन्द्र नरेन्द्र रावल समरसिंह को पंगराज की सेना का आतंक वर्णन करके, चुनौती दे दी और कन्नोज लौट आया।[2] चित्तौड़ से लौटने पर मन्त्री सुमन्त ने सर्वप्रथम रावल समरसिंह का मान मर्दन करने की पंगराज को सलाह दी।

कमधज्ज समय में कवि चन्द के स्वागत करने के विषय में पंगराज ने मन्त्री से परामर्श लिया। प्रधान मन्त्री के द्वारा ही भेंटादि कवि चन्द के पास भेजी गई। वहाँ से लौटने पर तीक्ष्ण दृष्टि वाले मन्त्री ने कवि चन्द के पानधर के विलक्षण तेजधारी पुरुष होने की सूचना पंगराज को दी, साथ ही अपना सन्देह भी प्रकट किया—

कहे मन्त्रिय विप्रसुराज सुनै, कवि मनिय गत्ति न चित्त गुनै।
रजरीति अनुप अदव्व लही, भ्रित देषि अनुप न जाय कही॥
भ्रित रूपहि इन्द्र समान लजं, वल तेजिअ जेज सुराज सज॥ छं० ७४०।[3]

कविचन्द की विदाई के अवसर पर पंगराज को मन्त्री सुमन्त से परामर्श करने के उपरान्त ही कार्य करता हुआ देखते हैं।[4] कुशल नीतिज्ञ मन्त्री सुमन्त को पृथ्वीराज चौहान द्वारा चन्द के खवास का वेष धारण करने की वात पर विश्वास नहीं होता तथा यही उसकी प्रथम एवं अन्तिम भूल थी। पंगराज ने कवि चन्द वरदायी से स्पष्ट पूछा तथा भ्रम का निराकरण होते ही पंग पक्ष के रण वाद्य निनादित हो उठे। समरांगण में युद्ध के साथ ही साथ मन्त्री सुमन्त का मंत्रणा कार्य भी चलता रहा। संयोगिता अपहरण के उपरान्त उसने पंगराज को वनसिंह और केहरि कंठीर को युद्ध में अग्रसर होने की आज्ञा देने का परामर्श दिया था—

प्रथम राव वन सिंह, राव वनवीर अग्गि करि।
हेतु सुमत जग्गोत, उन्नै पहुपंग पूरि परि॥

---

१ पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५१, स० ५५।
२. दल सज्जि करहि नृप सत्रुभेद, पहुपंग राइ राजसू वेद॥ छं० ५९, स० ५५।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७४०, स० ६१।
४. वही, छं० ८२९, स० ६१।

केहरि कंठीर पठौ सुनृप , इन समान छित्री न छिति ।
अड्डौ सुधेरा विम्भार घन , रावन रिज सिप ईय पति ।। १३९७ ।[1]

अपार वीरता प्रदर्शन के उपरान्त राजा पंगराज के इस स्वामिभक्त एवं अनन्य सहयोगी मन्त्री ने एक वार में पृथ्वीराज के प्रसिद्ध सामन्त लंगरीराय का मस्तक विच्छिन्न कर दिया तथा विपक्षी के घातक आघात के फलस्वरूप सुमन्त ने सूर्य लोक को प्रस्थान किया ।

रासोकार के मतानुसार सुमन्त कन्नौजपति जयचन्द का प्रधान मन्त्री था । इतिहास इसके विषय में मौन है । असंभव नहीं यदि राजा जयचन्द के यहाँ सुमन्त जैसा योग्य एवं नीति कुशल मन्त्री रहा हो । मन्त्री सुमन्त की पुष्टि रासो के अन्य समस्त संस्करण भी करते हैं ।

सुलष पवांर—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार सुलप पवांर पृथ्वीराज का सामन्त तथा आबू के जैत प्रमार का कोई सम्बन्धी था । सुलप, लपन का पुत्र था तथा लपन प्रमार वंशी क्षत्रि था ।[2] अतएव सुलप भी प्रमारवंशी क्षत्री हुआ । सुलप प्रमार की वीरता एवं पराक्रम का चित्रण कवि ने अनेक स्थानों पर किया है । संयोगिता अपहरण में पृथ्वीराज चौहान की सहायतार्थ यह वीर भी गया था—

परमार सलष जालौर राह । जिन वंधि लिद्ध गजनेस साह । छं० ९४५ ।[3]

पंगराज की अस्सी लाख सेना पृथ्वीराज के समस्त सामन्तों को घेर कर युद्ध कर रही थी । इसी बीच पृथ्वीराज संयोगिता का अपहरण कर लाये । पृथ्वीराज ने संयोगिता से चलने का आग्रह किया, किन्तु संयोगिता अपने पिता के वल एवं पराक्रम का ध्यान कर पृथ्वीराज चौहान के साथ चलने में संकोच करने लगी । यह देख कर गोविन्द राय, हाहुलीराय, चंदपुंडीर, कन्ह, बड़गुज्जर, अल्हनकुमार के साथ ही सुलप प्रमार ने उसे उत्साह तथा गर्व पूर्ण वाक्यों से प्रबोधा—

सुबर वीर पामार । सलप वुल्ल्यौ प्रति धारं ।।
जग्गि जलनि कमधज । जोग जीवन जुग तारं ।।
ए अमन्त सामन्त । मज्जि जानै न अभंग अपु ।।
बज्र सार क्षल्लै प्रहार । निश्चलित सार वपु ।।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १३९७, स० ६१ ।

२. पर्‍यौ जैत वंध सु पावार भानं ।
जिने भेजियं मीर वांनेति वान ।। छं० १२१, स० २७ ।
—चन्द वरदायी, पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।

३. वही, छं० ९४५, स० ६१ ।

जं करं गहर संजोगि सुनि । भुगति गहर वित्तिय धरिय ॥
जग्गाय पंग दिव्वं दलं । रपित कुअंर के अरि फिरिय ॥ छं० १३०८ ।[1]

फलस्वरूप संयोगिता पृथ्वीराज के साथ चलने को प्रस्तुत हो गई तथा पृथ्वीराज ने उसे अपने घोड़े की पीठ पर बैठा लिया । भयंकर संग्राम के मध्य पृथ्वीराज के प्रसिद्ध सामन्त बिझराय के खेत रहने पर वीर एवं पराक्रमी सुलप प्रमार ने विपक्षियों का सामना किया तथा विपक्षी दल के जैसिंह से अपार पराक्रम के साथ युद्ध करके पंचतत्व को प्राप्त हुआ:—

राह रुप कमधज्ज । गज्जि लग्यौ आकासाह ॥
धार तिथ्य उर जांनि । न्हान पम्मार फिरयौ तह ॥
रुधिर मद्ध जव करिय । जीव तनु तिलनि पंडअय ॥
जुरित सीस अरि गहिय । पांनि सो मिमहि कंस कुय ॥
करि नृपति सार नृप पग दल । अब्बुअ पति जप सब्ब किय ॥
उग्रह्यौ ग्रहनु प्रथिराज रवि । सलप अलप भुज दान दिय । छं० २३६२ ।[2]

डॉ० ह्योर्नले का मत है कि सुलप 'रेवातट समय २७' में शाह गोरी की सेना से युद्ध करता हुआ मारा गया, किन्तु उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह बात सर्वथा अमान्य है। वास्तव में इस संग्राम में सुलप का पिता लपन मारा गया था ।[3] जिसके लिए ह्योर्नले महोदय ने रासो समय ६१ के प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि लपन जीवित रहा तथा सुलप मर गया किन्तु ये प्रमाण उनके मत का समर्थन करने के स्थान पर खण्डन करते हैं, क्योंकि ६१ वें समय में लखन प्रमार वंश का नहीं था, वरन् बघेल वंश का था ।[4] अत: उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट है कि वीर सुलप प्रमार संयोगिता अपहरण के समय ही वीर गति को प्राप्त हुआ था । रेवातट समय के अन्तर्गत पृथ्वीराज तथा शाह गोरी के संग्राम में नहीं ।

हरिसिंह—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार हरिसिंह सम्भरेश पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) का प्रसिद्ध सामन्त था जिसकी गणना उनके श्रेष्ठ सामन्तों में होती थी । संयोगिता अपहरण सम्बन्धी युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की ओर से बलिभद्र के मारे जाने के उपरान्त हरिसिंह युद्ध भूमि की ओर अग्रसर हुआ । हरिसिंह के हाथ में तलवार लेते ही, पंग सेना छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर भागने लगी–

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १३०८, स० ६१ ।
२. वही छं० २३६२. स० ६१ ।
३. जैत वध दहि परयो , सुलप लप्पन को जायो ॥ छं० १०९, स० २७ ।
—चन्द वरदायी, पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।
४. दिया दान पम्मार वलि । अरि सारंग सम पेल ॥
मरन जानि मन मझ्झरत । लरि लप्पन वघेल ॥ छं० २३६३, स० ६१ ।

चंपे चाइ चौहान हरसिंघ नायौ । जिसे सेन में सिंघ गज जूथ पायौ ॥
करै कूह गज जूह सन मुष्प घायौ । तबै पग दल समटि चिहुं कोह छायौ ॥ छं० २१४६ ।[1]

पंगराज ने अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होते देख कर अपने मुसलमान सरदार अली-बली मीरों को युद्ध में अग्रसर होने की आज्ञा प्रदान की । यही मीर बंधु पांच हजार सैनिक लेकर युद्ध भूमि में हरिसिंह का सामना करने के लिए आ उपस्थित हुए । हरिसिंह ने इस मीर मंडली का सामना बड़ी वीरता एवं पराक्रम के साथ किया किन्तु दुर्भाग्यवश घातक चोट लगने के कारण, वह पंचतत्व को प्राप्त हुआ—

घंन घाइ अग्घाय पर्‌यौ सु पानं । पर्‌यौ सिंघ हरि सिंघ करि जीति पांनं ॥ छं० २१६० ।[2]

हाड़ाहम्मीर—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार हाड़ा हम्मीर सम्भरेश्वर पृथ्वीराज चौहान का प्रसिद्ध सामन्त था तथा इसकी गणना उनके श्रेष्ठ सौ सामन्तों में होती थी । कवि चन्द के मतानुसार हाड़ा हम्मीर ने एक बार शाह शहाबुद्दीन गोरी को युद्ध में परास्त करके वन्दी बनाया था ।[3] हाड़ा हम्मीर अत्यन्त पराक्रमी एवं वीर योद्धा था । संयोगिता अपहरण सम्बन्धी युद्ध में इसका सामना विपक्षी दल के काशी नरेश से हुआ । अन्त में यह वीर काशी नरेश के साथ द्वन्द्व युद्ध करता हुआ पराभव को प्राप्त हुआ—

हाड़ा राय हलकि उत । कासिराजह कर वर कसि ॥
जोगिनि पुर सामन्त । वहत कनवज्ज वीर रस ॥
वियों वीर आहुरिय । धरिय दतढर आवध ॥
उड़ि हस मंस नसह मुहर । फुहरति सा वज्जिय सुहर ॥
जग्गयौ नाग तब नागपुर । होम दुरग धामकधर ॥ छं० २०४२ ॥
हाड़ा राय सु हथ्थ धरि । गंभीरा रस वीर ॥
कासिराज दछ सम जुरिग । कुल उच्चारिय नीर ॥ छं० २०४३ ॥
नृप अलसिग अलसिग सुमर । अलसिय पंग नरिंद ॥
विलसित काल करक किय । सह सति तीस गनिंद ॥ छं० २०४४ ॥[4]

हाहुलीराय—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार कन्नोज-युद्ध में पृथ्वीराज के श्रेष्ठ ६४ सामन्तों की मृत्यु हो चुकी थी । पृथ्वीराज चौहान को विलासिता के कारण राज्य कार्य शिथिल हो चुका था । सामन्तों मे परस्पर एकता न रह गई थी । जालधरगढ़ का राजा हाहुलीराय हमीर अन्य सामन्तों से अपमानित होकर पृथ्वीराज चौहान से रुष्ट होकर बैठ गया

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २१४६, स० ६१ ।
२. वही, छं० २१६०, स० ६१ ।
३. हाडौ हम्मीर सथ्थे कृलाह । बंधयौ जेन गिरि पानिसाह । छं० ९५५, स० ६१ ।
४. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २०४२-४४, स० ६१ ।

था। 'बड़ी लड़ाई को प्रस्ताव ६६' में जब गजानिपति शाह गोरी के आक्रमण का समाचार दिल्ली पहुंचा तब पृथ्वीराज ने भी अपनी सेना के साथ पानीपत से बढ़कर सतलज नदी पार की। अपने ऊपर आपत्ति आई देखकर पृथ्वीराज ने कवि चन्द को हमीर हाहुलीराय को मना लाने के लिए भेजा—

सूनर उतरि सतनंज, चन्द पट्टी कंगूरह।
लै आयो जालध, राइ हाहुलि हंमीरह॥
अरु जाल पाप रसि परस, परस दरसत इह अप्यौ।
आदि जुद्ध दय दीन, सिंध पष्षरि किन दिष्यौ॥
हम नमस्कार करि पुच्छ्यौ, अरु पुछ्यौ पछली विगति।
हुं कहों सु तुम जानहु सकल, चलहु चन्द अग्गे निरति॥ छं० ६७०।[1]

और भी—'मार्ग में विश्राम न करना, समय अत्यन्त कम है। श्रेष्ठ सामन्तों ने भी चन्द से कहा, नृप कार्य हेतु शीघ्र जालधर जाओ तथा ऐसे भीषण समय में पृथ्वीराज की रक्षा करो।'[2] कवि चन्द ने हाहुलीराय के पास पहुंच कर पृथ्वीराज पर आई हुई विपत्ति का विस्तार से वर्णन करके, सहायता की याचना की। और कहा—नरेन्द्र हाहुलीराय अब आप अपने मन का रोप मिटा कर तथा मुख पर प्रसन्नता लाकर पृथ्वीराज की जय-जयकार करिए—

मुप मिट्टी रुट्ठो सुजी, हाहुलिराव नरिंद।
बोल वक सो कक करि, जंपि सु मुप जै चन्द॥ छं० ६७५।[3]

इतना ही नहीं चन्द ने भांति-भांति की वार्तें करके राव हमीर को पृथ्वीराज के पक्ष में होकर युद्ध करने के लिए आग्रह किया। हमीर ने चन्द के वचन सुनकर कहा कि, चन्द! पृथ्वीराज से कहो कि गोरी से सन्धि करके और राज्य को आधा बांट कर सुख से राज्य करें। क्यों नाहक दप के कारण युद्ध करते हो।[4] चन्द ने ऐसे निराशा भरे वचन सुनकर सांसारिक सुखों को धिक्कारा तथा युद्ध भूमि में ही प्राण त्याग ने के लिए कहा—चन्द के उत्साह पूर्ण शब्द सुनकर हमीर ने पुनः कहा—चन्द सुनो, तुम दिल्ली पति पृथ्वीराज को मंत्रणा दो कि युद्ध हेतु अग्रसर न हो, राजनीति पर भी विचार करें, शाह का दल तुमने देखा नहीं है, न ही तुम्हें अपने दल का अनुमान है। यदि केवल यश के लिए प्राण दोगे तो संसार में ख्याति

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६७०, स० ६१।

२. मग्गह चंलत नहि करि विरम्भ, सामन्त सूर मुभर मुदित तम्भ॥
जालंध जाहु नृप पति सुकाज. रापहु त राज प्रथिराज आज॥ छं० ६७१, स० ६६।

३. पृथ्वीराज रासो. नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६७५ स० ६६।

४. वही छं० ६८०, स० ६६।

५. वही, छं० ६८१, स० ६६।

चाहे भले ही पा जावो। सूर्य और चन्द्र दोनों ही अन्धकार विनाश में लगे रहें तो भी चौहान के जीवन में अंधकारपूर्ण दिन अब नष्ट नहीं हो सकते–

कहि हमीर सुनि चन्द, नाम तुम चन्द न्यायवरि।
कहौ मन्त्र कुल वद्द, कवहुं उत्तरै न संभरि॥
रजनीति जानहु न, साहि दिष्यौ दल अप्पन।
गल्हां करि मरिहौ जु, विरद लम्भै उर कंपद॥
जद्यपि सुभान उत्तर तपै, जदपि संझ चपिय गहन।
चहुआन अग ते दिन नहीं, गहन राज ते रिपुरहन॥ छं० ६८२।[1]

कवि चन्द ने पुनः यश प्राप्ति हेतु प्राणों का उत्सर्ग कर देना ही श्रेष्ठ बताया। उसने कहा यश स्थिर है तथा मानव शरीर नाशवान है, अतः यश की प्राप्ति ही श्रेष्ठ है।[2] हमीर ने पुनः नाना प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत कर तर्क किया कि अब पृथ्वीराज के अच्छे दिन बुरे दिनों में परिवर्तित हो गए हैं। अतः उसे हट त्याग देना ही उचित है–

कहि हमीर सुनि चन्द, हुअै दिन आदिन विचारो।
जब रावण हरि सीत, कियौ गढ लंक संधारो॥
अदिन काज पंडवनि, जूअ सों हेतु विचारो।
अदिन काज परिछत्त, रिव्व गल अप्प हकारो।।
इह अदिन बुद्धि सामन्त सब, कलह केलि अति वल सरिय।
हरि हरा देवि इन्द्रादि सुर, वरजि गये अति गति बुरिय॥ छं० ६८४।[3]

हमीर के ऐसे वचन सुन कर चन्द ने कहा कि आप ऐसा क्यों सोचते हैं? पृथ्वीराज तथा आपका सम्बन्ध मिटने वाला नहीं है। सामन्त जैतराव तथा वीर बलभद्र शाह ही गोरी को बन्दी बना लेंगे। सारांश यह कि तुम्हें किसी प्रकार का भय न मान कर चौहान की सहायता करना ही उचित है।[4] हाहुलीराय ने पृथ्वीराज चौहान की राज्य व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जैतराय आदि सामन्त अप्रगट रूप में गोरी के साथ है, दिखावे में वह कुछ भी कहें। वास्तविकता यह है कि आज कल दिल्ली में झूठों का राज्य है तथा पृथ्वीराज भी उन्हीं के हाथ में है–

काली वल विष धरै, डंक वीछी उच्छारै।
नील कन्ठ शिववरै, मोर महोरग निहारै॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६८२, स० ६६।
२. वही, छं० ६८३, स० ६६।
३. वही, छं० ६८४, स० ६६।
४. वही, छं० ६८५, स० ६६।

काल अवं दूरि जाहि, जीह पप्पीह पुकारै।
घप्पं वहे गयन्द, चढं शिक्कार सिआरै॥
सुरतान काम सद्धं सलष, जैत राइ विरदां वहै।
हाहुल्लि राइ भट्ट कहै, को अनप दूतै सहै॥ छं० ६८७।
दावानल पांवार, अनल चहुआन सहाई।
घट जनया रिपिराज, समद सोपै घरताई॥
जैतराव कन्ठीर, हथ्थ सामन्त राज सिर।
पहु पहार पांवार, घडे भंजै गोरी घर॥
अन्बुआ राव अग्गं पहर, बिन न जोर जम्बू रहै।
चुंगलिय वाज जोगिनि पुरिय, जजं भावं तं कहै॥ छं० ६८८।[1]

हमीर ने और भी कहा कि—मरण काल में बुद्धि विपरीत हो जाती है। अर्थात् जब जिसका काल आ जाता है उसे कितना भी समझाया अथवा धिक्कारा जावे उसकी बुद्धि में कुछ नहीं आता।[2] अन्त में हमीर ने कहा कि मुझे शाह गोरी तथा पृथ्वीराज दोनों से ही निमन्त्रण प्राप्त हुआ है। अतः दोनों पत्रों को जालंधरी देवी के समक्ष रख कर सम्मति लेना चाहता हूं। देवी जी जैसी आज्ञा देंगी, वैसा ही करूंगा। तुम स्वयं भी श्रेष्ठ वीर हो, तुम भी इसका औचित्य बतलाओ—

सुनो भट्ट कवि चन्द, रहसि बुल्यौ जम्बूपत।
मों जिय हुय अन्देस मत पुच्छौ जालंध गति॥
उभै लिखै कागद प्रमान, राज राजन सुलितानं।
धीय अग्गं मुक्कियं, सोई अप्पं फुरमान॥
वत्ती विवेक द्रुग्गा सुपत, हुय समप्पि हम्मीर कर।
आरम्भ होई इह वत्त गति, सुवर वीर जंपौ सुवर॥ छं० ६९०।[3]

कविचन्द ने उपर्युक्त बात सुनकर हमीर से कहा कि स्वामिधर्म का पालन करते हुए युद्ध में प्राण त्यागना ही श्रेष्ठ है।[4] हमीर ने पुनः कहा कि आबू का जैत प्रमार हाहुलि कह कर पुकारता था, कन्ह चौहान कहता था कि पृथ्वीराज ऐसे कुत्तों को नहीं पालता, चामण्डराय से अब क्यों नहीं पूछते कि लाहौर तथा असंख्य हाथी-घोड़े दण्ड स्वरूप मांगे जा रहे हैं, अब क्या किया जावे—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६८७-८८, स० ६६।
२. वही, छं० ६८९, स० ६६।
३. वही, छं० ६९०, स० ६६।
४. वही, छं० ६९३, स० ६६।

अव्वूरा पांवार, जैत हाहुलि कहि वुल्लै।
सुनि क्रन्नां चहुआन, वाहि प्रथिराज न पल्लै॥
पूछानी चामण्ड, दंड मगं लाहोरी।
जिम रवाना गन्धान, कोल लद्धौ कारोरी।
उच्चार मार वोलै हरै, राज उलग्यौ साहनी।
उपरै जाम जद्धौ लगर, सुभर उमारै वाहनी॥ छं० ६९४।[1]

कवि चन्द ने पुनः समझाया कि हे हमीर! यह समय ऐसी बातें सोचने का नहीं है। हे सामन्त राज, ऐसे वचन बोल कर टाल-मटोल करने का प्रयत्न न करो अर्थात् पृथ्वीराज की सहायता करने के लिए तत्पर हो जाइए।[2] हमीर ने अपने अपमान को स्मरण कर कहा कि एक समय था जब सामन्तों की कीर्ति चारों ओर फैली हुइ थी, किन्तु उन्हें तो कन्नौज में जुझा डाला गया। शाहबुद्दीन गोरी अब पहले जैसा नहीं रहा, उसका दल हाथी-घोड़े तथा देश पहले से दस गुने हैं। अतः युद्ध में कलंक लेना मूर्खता है। हे भट्ट, इस प्रकार से उत्साहित कर व्यर्थ ही दिल्लीश्वर को नष्ट मत करो—

चहुआना रै रजधान, सामन्त वड़ाई।
ते वोला वर लागि, जाइ कनवज्ज झुझाई॥
ऐ गोरी साहाव, दीन जानै पहिलो ना।
हसम हयग्गय देस, देह दष्यौ दह गोना॥
कै काम कलह कदल चढौ, कम्मा मंता गढौ।
वे काम भट्ट गल्हां पढ़ै, जिन भंजौ दिल्ली सढौ॥ छं० ७००।[3]

चन्द कवि ने भांति-भांति के तर्क उपस्थित कर हाहुलीराय को समझाने को प्रयत्न किया किन्तु हाहुलीराय अपने अपमान को न भूल सका तथा अन्त में उसने कहा—तुम सब बातों से परिचित हो, किन्तु मैं तो महामाया की इच्छा पर निर्भर हूं। अस्तु पान, नारियल, फूल, कपूर आदि लेकर दोनों ही जालंधरी देवी के मंदिर की ओर चले—

तत्त वत्त जानौ सबै, हम माया इच्छांमि।
चलि जालंधर देहरा, मिलि जालय पुच्छांमि॥ छं० ७१२।
नालिकेर फलदल सुफल, कर कपूर तंमोर।
उभै सुवर पूजन चलै, दै सब सथ्य वहोरि॥ छं० ७१३।[4]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छ० ६९४, स० ६६।
२. वही, छं० ६९५, स० ६६।
३. वही छं० ७००, स० ६६।
४. वही, छं० ७१२-१३, स० ६६।

अन्त में देशद्रोही हाहुलीराय ने अपने मन में पृथ्वीराज का अन्त निश्चित कर चन्द को मन्दिर में बन्दी बना दिया तथा स्वयं शाह शहाबुद्दीन गोरी की सेना से जा मिला—

एह पत्तर दीह, चन्द जन्यौ चहुआंन।
जिन भुजानि धर नार, मोमतीय अंधर मांन॥
हसम हयग्गय देस, दीह घट्टं बल घट्टं।
धन्न मरन तिन जानि, महल सिर सारे पट्टं॥
अावृत वात जोगिनि पुरह भव नवस्य इह निरमयौ।
कवि चन्द रुक्कि वच्चौ जियन, ग्रिह गोरी हाहुलि गयौ॥ छं० ७२६।[1]

उपर्युक्त सूचना पाते ही पृथ्वीराज चौहान के हृदय में आग लग गई। साथ ही यह भी सूचना प्राप्त हुई कि कवि चन्द को बन्दी बना कर हाहुलीराय स्वयं शत्रु-पक्ष की ओर दसहजार श्रेष्ठ घुड़सवारों तथा एक लाख सैनिकों को साथ लेकर शाह गोरी से मिलने जा रहा है—

रोकि कविदहि अप्प मिलि, मो सुरतान अबुज्झ।
सुनत राज प्रथिराज कै, हवि लागी उर मज्झ॥
हवि लागी उर मज्झ, सज्ञ आई गुर गल्हां।
नट्ट वसीठह रोकि, अप्प है वै दिसि हल्लां॥
दस हजार है वरनि, लप्प पयदल भ्रम वृन्दा।
मिल्यौ जाइ सुलितान, रोकि देवले कविंदा॥ छं० ७२८।[2]

कहने की आवश्यकता नहीं कि देशद्रोही राजा हाहुलीराय, गोरी तथा पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में युद्ध करता हुआ पराभव को प्राप्त हुआ।

इतिहास हाहुलीराय के विषय में मौन है। रासो की उपर्युक्त घटना का इतिहास में कहीं भी उल्लेख नहीं है। ऐसी-ऐसी घटनाओं को देखकर ही विद्वानों ने इस ग्रन्थ को अनैतिहासिक तथा काल्पनिक कह दिया है। सम्भव है काव्य ग्रन्थ होने के कारण इसमे कल्पना का भी योग हो किन्तु ग्रन्थ को पूर्ण रूपेण अनैतिहासिक मानना भ्रम है। सम्भव है ग्रन्थ की पूर्ण जांच करने से कुछ सत्य घटनाएं प्रमाणिक सिद्ध हो सकें। हाहुलीराय ऐसा ही पात्र है। डॉ० दशरथ शर्मा ने हाहुलीराय को एक ऐतिहासिक पात्र मानते हुए लिखा है कि—'पर्वतराज हाहुलीराय हमीर के विद्रोह के प्रमाण भी अनुपलब्ध नहीं हैं। हाहुलीराय पंजाब आदि का शासक माना गया है। उसका असली नाम सम्भवतः विजयदेव था। तबकाते-नासिरी के अनुवाद के टिप्पणी में रेवर्टी ने जम्मू राजाओं की तवारीख से अनेक अवतरण दिए है। उनसे स्पष्ट है कि जम्मू के राजा ने शहाबुद्दीन गोरी का साथ दिया था। पञ्चनद मुसलमानों के हाथ में था, इसलिए हाहुलीराय से इस राजा का ही निर्देश हो सकता है। जम्मू की तवारीख में लिखा है कि तरावड़ी की दूसरी लड़ाई में पृथ्वीराज का मुख्य सेनापति

---

१ पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७२६, स० ६६।

२. वही, छं० ७२८, स० ६६।

गोविन्दराय विजयदेव के पुत्र नरसिंहदेव के हाथ से मारा गया। यह कहना कठिन है कि इस तवारीख की सब बातें ठीक हैं। परन्तु इतना तो अवश्य निश्चित है कि जम्मू में एक ऐसा परम्परागत ऐतिह्य है कि जम्मू के राजाओं ने पृथ्वीराज के विरुद्ध शहाबुद्दीन का साथ दिया था। मेरी धारणा है कि यही स्वदेश विरोधी राजपूत राजा 'रासो' का हाहुलीराय है।"[1]

हैजमकुमार प्रतिहार—पृथ्वीराज रासो में सर्व प्रथम हैजमकुमार प्रतिहार का परिचय पंगराज की राजसभा के द्वार पर ही कवि चन्द वरदायी एव छद्मवेश धारी पृथ्वीराज चौहान के साक्षातकार के समय हुआ था। हैजमकुमार प्रतिहार पगराज के राज्यद्वार का द्वारपालध्यक्ष था। कविचन्द ने उसका परिचय इस प्रकार दिया है—

करनि कनक मय दण्ड, परम उद्दंड चड वल।
विध्ध देह सुन्दर समत्थ, जाति सुमति सुन्निमल॥
प्रतिनर प्रीति प्रसन्न, परम सपन्न सव्व जग।
अवर भूप पिष्यत नयन्न, परसाद लग्गि नग।
सुकलम्म कलपतरु वग्ग जिम, पुन्य पुन्ज पुज्जिय सुभुअ।
प्रतिहार राज दरवार सहि, दिषि वरदाय नमित हुअ॥ छं० ४६५॥[2]

कवि चन्द को द्वार पर उपस्थित पाकर उसने उसके परिचय, नाम, ग्राम तथा आगमन का कारण जानने की इच्छा प्रकट की—

एकि कविंद हेजम बुल्लिय हसि, कौन थान वर चलिय कौन दिस।
को नृप सेव देव को नाम, किहि दिसि चित करयौ परिनाम॥ छं० ४६६।[3]

कवि चन्द वरदायी का पूर्ण परिचय प्राप्त होने के उपरान्त हैजमकुमार प्रतिहार ने पुनः मार्मिक व्यंग कर उससे कहा—

मगिवान विवारता कवि ने, संधिवान की विग्रहात्।
जुद्धवान पंग राएन्, ना भूत्ती न भविष्यति॥ छं० ४६९।[4]

स्वामी पंगराज के गौरव शाली व्यक्तित्व से वह अपने को भी गौरवान्वित अनुभव करता था।[5] पारस्परिक परिचय तथा अपने स्वामी कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द गाहड़वाल का

---

१ डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, राजस्थानी भाग ३, अंक ३, जनवरी १९४०, कलकत्ता।

२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छ० ४६५, स० ६१।

३. वही, छं० ४६६, स० ६१।

४ वही, छं० ४६९, स० ६१।

५. वैरी काटन राज वय, डंड भरन परधान।
सेवा मानन भेदियन, हिन्दू मुसलमान॥ छं० ४६९, स० ६१।

गौरव गान करने के उपरान्त चतुर एवं नीति कुशल द्वारपालाध्यक्ष हैजमकुमार ने कवि चन्द वरदायी से उसके आने का वास्तविक कारण जानने का प्रयत्न किया—

पंग दरस जंच्चन मिसह, कं मोकलिग वसीठ।
के मिलि पट्ट मंडल नृपति, राजं राग सुदीठ॥ छं० ४७२।[1]

हैजमकुमार वास्तव में एक कुशल द्वारपालाध्यक्ष था। वह दरबार में किसी को ऐसे ही प्रवेश नहीं करने देता, वह पूर्णरूप से सन्तुष्ट होने के बाद ही दरबार में प्रवेश की अनुमति देता है। कविचन्द वरदायी द्वारा 'मण्डली मोहि जांचन नियम' जैसे कृत्रिम दीन शब्द के उच्चारण पर भी वह उसे राज दरबार में प्रवेश नहीं करने देता। चन्द के साथ छद्मवेशी तेजस्वी चौहान पृथ्वीराज को देखकर, उसकी ओर संकेत कर अपनी शंका निवारण करने की चेष्टा की–

तू मंगन कविचन्द, सथ्थ मंगन नत होइय।
तो देषत तिय थान, इन्द्र भुल्लिय द्रग जोइय॥ छं० ४७४।[2]

कवि की बातों से उसे पूर्ण सन्तुष्टि न हो सकी। संदिग्ध होने पर भी उसने शिष्टाचारवश अतिथियों को आदर सहित बैठने को कहा तथा उन्हें राजनीति के विभिन्न भेदों को बताकर हैजमकुमार ने सामन्तों से घिरे हुए कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचन्द को दिल्ली के कवि चन्द वरदायी के आगमन की सूचना दी।[3] प्रतिहार हैजमकुमार ने कवि चन्द की पंगराज से नाना प्रकार की प्रसंशा कर उसके हृदय में कवि की प्रतिभा के प्रति औत्सुक्य जागृत किया। फलस्वरूप राजा जयचन्द गाहड़वाल ने कवि की काव्य परीक्षा के लिए एक दसौंधी को नियुक्त किया। परीक्षा में सफल होने के उपरान्त ही कवि चन्द वरदायी को दरबार–प्रवेश की आज्ञा मिल सकी।[4] छद्मवेशधारी खवास चौहान पृथ्वीराज तथा चन्द वरदायी को साथ ले जाकर प्रतिहार हैजमकुमार ने उन्हें पंगराज के सम्मुख जा उपस्थित किया। ग्रन्थकार ने इसके उपरान्त प्रतिहार हैजमकुमार का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। अतः विवश हो हमें भी उसके इतने से ही परिचय से सन्तुष्ट हो जाना पड़ता है। ऐतिहासिक तथ्य भी इनके विषय में सुलभ नहीं होते।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४७२, स० ६१।
२. वही, छं० ४७४, स० ६१।
३. कवि जो जुग्गिनपुर कहै, संपत्तौ द्वारेस। छं० ४८२, स० ६१।
४. हक्कार्यौ हेजम कवि निकट बोलि नृप ईस। छं० ५६०, स० ६१।



मुसलमान-पात्र

'रासो' में प्रयुक्त सैकड़ों मुसलमानों के नाम देखकर आश्चर्य होता है कि क्या वास्तव में रासोकार चन्दवरदायी मुसलमान पक्ष के इतने अधिक सैनिक नामों से परिचित था ? परिचित ही नहीं वरन् यदि 'पृथ्वीराज रासो' वर्णित समस्त घटनाओं को सत्य एवं ऐतिहासिक मान लिया जाय तो वह गजनी दरवार की अनेक घटनाओं से भी अनभिज्ञ न था। लगभग तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारों ने तवकाते-नासिरी, ताजुल-म-आसिर आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों में बहुत ही थोड़े हिन्दू नाम लिये हैं तथा वह भी प्रसिद्ध हिन्दू शासक वर्ग के ही। यह माना जा सकता है कि गुप्तचर विभाग से उभय पक्षों को परस्पर भेद मिलता रहता होगा, जिससे विपक्षी दल के सामन्त वर्ग के नामों के विषय में भी ज्ञान मिलता रहता था, किन्तु चन्द की तथाकथित जानकारी की वातें किंचित कठिनाई से ही समझ में आती है। सम्भव है मुसलमानों के इतने नाम किसी प्रक्षेपकर्ता के कौशल का परिणाम हो। इतना ही नहीं रासो में 'मुगल' नाम कई स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन इतिहास का अवलोकन करने से स्पष्ट विदित हो जाता है कि सन् १२२१ ई० के पूर्व मुगलों का नाम तक सुनाई नहीं पड़ता है। 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया' में स्पष्ट लिखा है कि '१२२१ में विधर्मी मुगलों के आक्रमणों का प्रभाव प्रथम वार भारत पर पड़ा जो वाद में दिल्ली के सुलतान के लिए निरन्तर चिन्ता का स्रोत वन गये थे। इन जंगलियों ने क्रूर चंगेजखां के नेतृत्व में अलाउद्दीन मुहम्मद ख्वारजम शाह को उसके सिंहासन से उतार, वाहर किया। उसके पुत्र जलालुद्दीन मंगवरनी ने लाहौर में शरण ली तथा अल्तमश के पास अपने साम्राज्य में शरण देने के लिए दूत भेजा'।[1]

---

१. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया, भाग ३, पृ० ५२, सन् १९२८ ई०।

किन्तु इतिहास का उपर्युक्त विवेचन कल्पना को इतना आधार तो दे ही सकता है कि सम्भवतः सन् १२२१ ई० के २५ वर्ष पूर्व गजनीपति गोरी की सेना में मुगल सैनिक भी रहे हों। सम्भव है चन्द वरदायी ने मुगल शब्द का प्रयोग ठीक ही किया हो।

'मेवाती मुगल कथा' के अन्तर्गत अजमेर पति सोमेश्वर तथा मेवात के शासक मुगल के युद्ध का वर्णन 'रासो' में प्राप्त होता है। इस प्रसंग को क्षेपक तथा अनैतिहासिक मानते हुए म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने लिखा है कि—'पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि सोमेश्वर ने मेवात के मुगल राजा (मुग्दलराय) से अन्य राजाओं के समान कर मांगा। उसके इन्कार करने पर सोमेश्वर ने उस पर चढाई कर दी। पृथ्वीराज भी कुछ समय बाद अजमेर से चला और रातों रात मुगल सेना पर उसने आक्रमण कर दिया। युद्ध में मुगल पराजित हुए। मुगल राजा का ज्येष्ठ पुत्र बाजिद खां मारा गया और वह स्वयं कैदी हुआ। (पृथ्वीराज रासो, मेवाती मुगल कथा, आठवां समय, रासो सार, पृष्ठ ३८) यह कथा भी कल्पित है। सोमेश्वर के समय में तो मेवात प्रदेश अजमेर के राज्य के अन्तर्गत था। वहां कोई स्वतंत्र राजा नहीं था और मुगलों का तो क्या, अन्य मुसलमान तक का उस प्रदेश पर अधिकार नहीं था। सोमेश्वर की जीवित अवस्था में पृथ्वीराज इतना बडा न था कि युद्ध मे जा सकता है।"[1]

इसी प्रकार से रासो में अनेक स्थानों पर तेमूरलंग का भी नाम आया है। जो अप्रमाणिक प्रतीत होता है। इतिहास में प्रसिद्ध है कि सन् १३९८ ई० में उसने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था। 'दिल्ली की यह परिस्थिति थी। जब सन् १३९८ में समाचार मिला कि समरकन्द का अमीर, ईरान, अफगानिस्तान तथा मेसोपोटामियां का विजेता लंगड़ा तैमूर इन्डस, रावी तथा चेनाव को पार कर तालंवा लेकर अपने पौत्र द्वारा विजित मुलतान का अधिकारी हो चुका है। तैमूर को अपनी लूट-खसोट के लिए प्रेरणा या बहाना बहुत कम ढूंढना पड़ता था परन्तु भारतवर्ष ने दोनों की पूर्ति कर दी। बहाना यह था कि दिल्ली के मुसलमान शासक मूर्ति पूजा के प्रति सहिष्णु थे और प्रेरणा यह थी कि पिछले समय में विपरीत राज्य विभाजित था। आक्रमणकारी का उद्देश्य लूट था और यदि भारत की स्थायी विजय का कोई भाव उसके मन में रहा भी हो तो दिल्ली पहुंचने के पूर्व ही वह समाप्त हो चुका था।[2] अस्तु रासो के तेमूरलंग विपयक छन्दों एवं स्वयं तेमूरलंग पात्र को अप्रामाणिक होने में कौन सन्देह करेगा।

रासो प्रायः युद्ध प्रधान प्रबन्ध काव्य है। युद्ध प्रसंग में कवि ने तुपक, तोप, गोला,

---

१. म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल पृ० ५६-५७, सन् १९२८ ई०।

२. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इन्डिया, भाग ३, पृ० १९५ सन् १९२८ ई०। तथा चन्द वरदायी और उनका काव्य, पृ० ३४९-५०।

बन्दूक आदि शब्दों का प्रयोग किया है किन्तु इन छन्दों को प्रक्षिप्त अंश मानना ही अधिक समीचीन जान पड़ता है क्योंकि भारतवर्ष में बाबर से पूर्व युद्ध क्षेत्र में तोपों के प्रयोग का प्रमाण इतिहास में अभी तक प्राप्त नहीं होता है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस प्रकार के छन्दों में प्रयुक्त पात्र भी प्रायः काल्पनिक ही हैं जिन्हें बाद में किसी प्रक्षिप्तकार ने अज्ञानतावश जोड़ दिया है। तुपक, तोप, गोला तथा बन्दूक आदि के विषय में इतिहास में लिखा है कि—तैमूर के उत्तराधिकार स्वरूप जब बाबर को खोकन प्रदेश तथा वक्षु के उत्तर में कुछ भूमि मिली, उस समय युद्ध कला सादी थी। तलवार और धनुष ही प्रधान अस्त्र-शस्त्र थे। अपनी स्मृतियों में उसने शशपर या छः फलवाली गदा, बरछी और फरशा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक बार में केवल इन्हीं पर विश्वास किया जा सकता है। इन सेनाओं में तोड़ेदार बन्दूक का प्रवेश प्रारम्भ हो गया था परन्तु काबुल और कधार की सीमा पर बाजौर के निवासियों ने तोड़ेदार बन्दूक देखी तक न थी (१५१९)। बड़ी तोपें फेरिंगिहा कहलाती थी और छोटी जखुजन जिसे आज कल मशीनगन कहते हैं। तुर्कों ने थोड़े दिन पूर्व ही कुस्तुनतुनियां पर अधिकार पाया था और उस पर बड़ी तोपों का प्रयोग किया था परन्तु फेरिंगी या फ्रैंक शब्द से स्पष्ट है कि उन्हें यूरोपीय आविष्कार माना जाता था। एशिया में तोपों की कला में निष्णात व्यक्ति रूमी या ओसमानली तुर्क थे और एशिया निवासियों द्वारा बन्दूक, तोप, बारूदखाना आदि प्रयोग में लाये जाने वाले प्रायः सभी शब्द तुर्की भाषा के हैं। बाबर पहले तोपखाने से परिचित नहीं था परन्तु जब वह आगरा में जम गया तब उसने उस्ताद अली कुली को एक बड़ा तोप ढालने का आदेश दिया।

ऐसा प्रतीत होता है कि बाबर ने अपनी सेना में अनुशासन और सैनिक कौशल की वृद्धि की थी जो तब तक भारतवर्ष में प्रचलित नहीं थी। बन्दूकधारी सैनिकों का एक नियम बद्ध दल और तोपखाने का एक जत्था उसकी प्रधान शक्ति थे।"

कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया में लिखा है—'१६ मार्च सन् १५२७ ई० में खनुआ का युद्ध हुआ। बाबर ने पुनः अरावा व्यूह का प्रयोग किया। वह स्वयं केन्द्र में था, चीन तीमूर और खुसरा कुक्लिताश दाहिनी ओर थे। (पूर्व के युद्ध से सफलता प्राप्त कर लौटा हुआ) हुमायूं, दिलावर, खानखाना तथा अन्य भारतीय अमीर भी दाहिने पक्ष में थे, सय्यद महदी ख्वाजा बाईं ओर था और दाहिनी तथा बाईं तरफ बगलों रक्षा करने वाली टुकड़ियां भी तथा निजामुद्दीन अली खलीफा तोपखाने का नायकत्व कर रहा था। राणा के वामपार्श्व ने बाबर के दक्षिण पार्श्व पर आक्रमण करके युद्ध प्रारम्भ किया परन्तु चीन तीमूर ने उन्हें पीछे

---

१. ए डिसक्रिप्सन आव इन्डियन एण्ड ओरियन्टल आर्मर, लार्ड ईगर्टन एम० ए०, पृ० २१-२२ सन् १८९६ (नया संस्करण) लन्दन।

नोट—इस विषय में मेम्वायर्स आव बाबर, लीडेन और एर्सकाइन, पृ० ३५३-६७ १८२६, तथा मेम्वायर्स आव बाबर, बेवरिज, भाग-२, पृ० ५६८-७०; १९२१ भी द्रष्टव्य है।

खदेड़ दिया । इसी बीच में तुर्की तोपची मुस्तफा सफी हुमायूं के विभाग के केन्द्र से गाड़ियां और तोपें आगे बढ़ा लाया तथा शत्रुओं का मोर्चा तोड़ दिया ।'[1]

विलियम इरविन महोदय ने लिखा है कि तोप शब्द का प्रयोग बाबर ने भी नहीं किया है–'फारसी कोषों में 'तोप' शब्द तुर्की बताया जाता है परन्तु बाबर ने 'जर्ब-जन' शब्द प्रयोग किया है । भारतीय साहित्य में तोप शब्द का व्यवहार कब से प्रारम्भ हुआ मैंने नहीं खोजा परन्तु संभवत: प्रथम यह दक्षिण में प्रयोग में आया जिसे लाने वाले रूम या तुर्की से लाये तोपखाने में काम करने वाले अधिकारी थे । तोप शब्द का प्रयोग बहुधा बड़ी या घेरा डालने वाली तोपों के लिए किया जाता है और कभी-कभी हर प्रकार की छोटी-बड़ी सभी तोपों के लिए व्यवहृत होता है, जैसे तोप-खुर्द और तोप कला ।'[2]

विलियम इरविन महोदय ने ही एक स्थान पर और लिखा है– 'यह (तोड़ेदार बन्दूक) थी, तुफग (स्टीन्गास ३५४) या बन्दूक (वही, २०२) मद्रास मैनुअल के तीसरे परिशिष्ट, पृ० ९१५, पर तुपक शब्द है जिसका अर्थ छोटी तोप या बन्दूक होता है । आइने अकबरी, भाग १, पृ० ११३ पर अकबर को तोड़ेदार बन्दूकों के निर्माण में सुधार करने का श्रेय दिया जाता है । इतना सब होने पर भी १८ वीं शताब्दी के मध्यकाल तक इस अस्त्र को धनुष और बाण की अपेक्षा कम महत्व दिया जाता था । तोड़ेदार बन्दूक प्रधानतः पैदल सैनिकों के पास रहती थी जो मुगल सेना नायकों की सम्मति से अश्वारोही सैनिकों की तुलना में अति घटिया दर्जे के समझे जाते थे । १८वीं शताब्दी के मध्य काल से फ्रांसीसियों और अंग्रजों ने मार्ग प्रदर्शन से पैदल सिपाही के अस्त्र-शस्त्रों और अनुशासन में उन्नति के प्रयत्न प्रारम्भ हुए ।'[3] योरोप में भी तोपों और बारूद का आविष्कार ईसवी १४वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे हुआ था ।[4]

इन अनेक प्रमाणों के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' में प्रयुक्त तोप, तुपक बन्दूक आदि के प्रयोग वाले छन्द अविश्वासनीय ठहरते हैं । साथ ही इनसे सम्बन्धित सैनिक अथवा सामन्त भी सन्देह का विषय बन जाते हैं । वास्तव में 'रासो के मुसलमान पात्र' के नाम से स्वतंत्र खोज होनी चाहिए किन्तु फिर भी यहां पर रासो में मुसलमान पात्रों की स्थिति पर अति संक्षेप में संकेतमात्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है ।

अरबखां–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पराक्रमी वीर अरबखां गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का दूत था । अरबखां गोरी की आज्ञा पाकर तीन सौ सवार तथा रथ लेकर मीर

---

१. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इन्डिया, भाग ४, पृ० १७, सन् १९३७ ।

२ दि आर्मी आव दि इन्डियन मुगल्स, विलियम इरविन, पृ० ११३, १९०३ लन्दन ।

३ वही, पृ० १०३ ।

4. Encyclopaedia Britannica, 14th edition, Vol 11 see-Gunpowder, P. 3-4. तथा चदबरदायी और उनका काव्य, पृ० ३५०-५१ ।

हुसैन खां से गोरी की परमप्रिय चित्ररेखा नामक वेश्या को लेने दिल्ली दरवार में गया किन्तु जब हुसैन ने चित्ररेखा को लौटाने से इन्कार कर दिया तो उसने दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान से हुसैनशाह को अपने आश्रय से निकाल देने के लिए कहा।[1] किन्तु अभयदान दिए हुए व्यक्ति को निकालने का प्रस्ताव सुनकर पृथ्वीराज क्रोधावेश से भर गया—

संभलिय वत्त प्रथिराज मंत, भ्रिकुटी करूर द्रिग रत्त जंत।
आरत्त मुष्प स्त्रुत श्रोन वुंद, कल्ल मलिय कोप रोमंत जिंद॥ छं० ४५।[2]

अपना निरादर होता देखकर अरवखाँ दरवार से उठकर चला गया तथा गजनी की ओर प्रस्थान किया।[3] तात्तार खां के व्यंग करने पर अरव खां ने पृथ्वीराज चौहान की वीरता का उल्लेख करते हुए कहा कि तुम इसीलिए ऐसी वातें कर रहे हो, क्योंकि तुम पृथ्वीराज चौहान के पराक्रम से परिचित नहीं हो।[4] अरव खाँ शकुनशास्त्र का ज्ञाता प्रतीत होता है क्योंकि गजनी से युद्ध हेतु सेना के कूच करने पर तथा अपशकुन होने पर अरव खां कूच करने से रोकता है।[5]

आलम खाँ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार आलमखाँ नाम का सरदार गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सेना नायक था। रासोकार के मतानुसार यह विश्व अभिमानी था। रेवातट पर पृथ्वीराज तथा गोरी के मध्य होने वाले संग्राम में इसने गोरी की एक सेना का नेतृत्व किया था। सेना को चार भागों में विभाजित कर शाह ने तीस सरदारों को नियुक्त किया जिनके साथ विश्व में अभिमानी आलमखाँ, निर्वासित उजववकखाँ, उपनायक छोटा मारुफ तथा पहलवान दुस्तनखाँ थे। शाह ने इन सरदारों को साथ लेकर हिन्दुओं के दल पर आक्रमण कर दिया। शोर मचाते हुए इन सरदारों ने अपनी-अपनी सेना लेकर नदी पार की। पृथ्वीराज उपर्युक्त सूचना पाकर क्रोध से भर गया—

करि तमा इ चौ साहि, तीस तहँ रष्पि फिरस्ते।
आलम षां आलम गुमांन, षांन उजववक निरस्ते॥
लहु मारुफ गुमस्त, षांन दुस्तम वजरंगी।
हिन्दु सेन उप्परे, साहि वज्जै रन जंगी॥
सह सेन टारि सोरा रच्यौ, साहि चिन्हाव सु उत्तर्यौ।
समले सूर सामन्त नृप, रोस वीर वीर छुर्यौ॥ छं० ४५।[6]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ३२-३८, स० ९।
२. वही, छं० ४५, स० ९।
३. वही छं० ५२-५५, स० ९।
४ वही, छं० ६२, स० ९।
५. वही, छं० ७१, स० ९।
६. वही छं० ४५, स० २७।

उजबकखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार वीर उजवक खाँ गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सामन्त था। नर्मदा के तट पर पृथ्वीराज से युद्ध के लिए अग्रसर होने पर शाह गोरी ने एक सेना के नेतृत्व का भार उजवक खाँ को दिया था।[1] पराक्रमी उजवक खाँ ने हिन्दू दल से घोर संग्राम करके अपनी वीरता का पर्याप्त परिचय दिया। हुसेनखाँ हिन्दू सेना पर आक्रमण हेतु अग्रसर हुआ और घुड़सवार सेना ने उसका अनुकरण किया। संग्राम में भागे हुए सैनिकों को पुनः रोकने के लिए उजवकखां रण क्षेत्र में रोक लगाये खड़ा रहा। तातारखाँ तथा अन्य सरदार एक साथ अग्रसर हुए तथा गोरी भी शीघ्रता से आगे बढ़ कर शत्रु सेना के समक्ष झूमने लगा। शाह ने अपनी तलवार घुमाकर प्रतीक्षा की, कि यदि संध्या तक युद्ध में शत्रु को भली-भाँति पराजित न कर दूं, तो शाह न कहलाऊँगा—

पां हुसेन ढरि परयौ, अस्व फुनि परयौ सार वहि।
झुज्झ फेरि सत सीव, पांन उजवक्क पेत्त रहि॥
पां ततार मारुफ, पांन पांन घट घुम्मैं।
तब गोरी सुविहांन, आइ दुज्जन मुष झुंम्मैं॥
कर तेग झलिल मुट्ठिय सुवर, नहि सुरतानह पन करी।
आवि हार दीह पलटे सुवर, तबहि साहि फिर पुक्करी॥ छ० १४६।[2]

केलीखाँ कुंजरी—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार केलीखाँ कुंजरी गजनीपति शाह गोरी का सरदार था। इसने रेवातट पर पृथ्वीराज से होने वाले संग्राम में गोरी की ओर से शाह की जिरह-वख्तर से सुसज्जित सेना का संचालन किया था—

केली पां कुंजरी, साह सारी दल पप्पर॥ छ० ४४।[3]

खाँपैदामहमूद—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार खाँपैदामहमूद गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का शहजादा था जिसने पृथ्वीराज तथा गोरी के मध्य युद्ध होने पर रेवातट पर एक सेना का सेनापतित्व किया था—

रचि हरवल सुरतानं, साहिजादा सुरतान॥ छं० ४४।[4]

इस संग्राम में महमूद का सामना पृथ्वीराज के प्रसिद्ध सामन्त लोहाना से हुआ। पराक्रमी लोहाना ने महमूद पर एक बड़ा भारी वाण चलाया जो उसका वक्षस्थल फोड़ कर घुस गया तथा ऊपर पीठ में आ निकला मानो द्वारवन्द देखकर उसने पीठे में खिड़की खोल

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४५, स० २७।
२. वही, छं० १४६, स० २७।
३. वही, छं० ४४, स० २७।
४. वही, छं० ४४, स० २७।

दी। लोहाना ने फिर कटार निकाल ली तथा उसका अन्त करने के लिए संभला ही था कि मीर ने एक वार से उछाल कर उसे गिरा दिया तथा लोहाना सुमेर की परिक्रमा करने चला गया। रणक्षेत्र में गोरी के चौसठ खान मारे गये तथा पृथ्वीराज के तेरह राव-राजे वीरगति को प्राप्त हुए—

(तब) लोहांनौ महमुंद, बानं मुक्के बहुभारी।
फुट्टि सु ढढ्ढर वहि जु बान, पिट्ठ ऊरद्ध निकारी॥
मनों किवारी लागि, पुट्ठि पिरकी उघ्घारिय॥
कट्टारी वर कड्ढि, वीर अवसान सँभारिय॥
एक झार मीर उज्झारि झर, करि सुमेर परिअरि सुफिरि॥
चवसट्ठि षांन गोरी परे, तीन राइ इक राज परि॥ छं० ११७।[1]

इतना अधिक घायल होने पर भी महमूद खाँ पुनः युद्ध करता हुआ दिखाई देता है। हुंकारने तथा नाद करने वाले वीर वानैत ने शहजदा महमूद का सामना किया तथा वह युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ—

परयौ वीर वानेंत नादंत नाद।
जिने साहि गोरी मिल्यौ साहिजांद॥ छं० १२३।[2]

अतः उपर्युक्तः विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि खाँपैदामहवूद वास्तव में एक पराक्रमी तथा रण कुशल योद्धा था।

खानखाना—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार खानखाना गजनिपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का भानजा था। 'वड़ी लड़ाई को प्रस्ताव समय ६६' के अन्तर्गत गोरी तथा पृथ्वीराज चौहान के मध्य होने वाले संग्राम में, इसने भाग लिया था और इन्होंने अपूर्व साहस एवं पराक्रम का परिचय दिया था—

तब तज्जयौ पान षानं करूर। सुरत्तान भानेज जुद्धं जरूर।
सहस्संच पंच वरं वघि फौजं। वचै वाच दीनं सुदीन सरोज॥ छं० १३७१।[3]

पराक्रमी खानखाना का सामना विपक्षी दल के योद्धा रावल समरसिंह से हुआ। दोनों पक्षों का घोर संग्राम हुआ जिसमें वीर रावल समरसिंह, खानखाना के प्रसिद्ध चौदह मीरों को स्वर्ग भेज कर अन्त में स्वयं भी युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं०११७, स० २७।
२. वही, छं० १२३, स० २७।
३. वही, छं० १३७१, स० ६६।

समर सिंध के तें फतें। जहं तहं कट्टे मार।
गनें कौन हय गय झरें। परे षान दस च्यार ॥ छं० १३८४।

+ + + +

सिरदारह दस च्यार गिरि। समर सिंघ घन घाई।
सुविहान उत्तरि परे। चट्टे पील मंगाय ॥ छं० १३८६।

दिष्षि षान षुरसान। गुर वर जंमथ्य उपदिय ॥
समर सिंघ नृप चहर। हिन्दु मेछन मिलि जुट्टिय ॥
गिद्धिन पल संग्रहन। जुथ्थ लंबे रन आइय ॥
श्रोन परत निज्झरत। पत्र जुग्गिनि लैं धाइय ॥
पलचरिय मेछ हिन्दु सहर। अच्छरि मल अति जग्ग किय।
महदेव सास वधे गरा। काल झरपि लीनो नृजिय ॥ छं० १३८७।[1]

अन्त में जब महाराज पृथ्वीराज यवन सेना के मध्य बुरी तरह से घिर गये तब उन्होंने प्रोहित गुरुराम को बुलाकर अपने कुण्डल दान किए, और स्वयं घोर युद्ध में प्रवित्त हो गये। इसी बीच गोरी के वहुवल नामक सामन्त ने गुरु राम का सिर काट दिया किन्तु गुरु राम ने भी मरते-मरते शाह के भानजे खानखाना पर ऐसा वार किया कि वह बच न सका तथा वीरगति को प्राप्त हुआ—

गुर ढिग कुंडलि देपि। पेषि वहवल्ल षान धपि ॥
द्रोपद सुत जिमि तेग। वेग झारी झनग झपि ॥
राम सीस लिय ईस। कमल विन पजर कढ्ढयौ ॥
हथ्य छेदि उर षान। पीठि पच्छं दल वढ्ढयौ ॥
वामंग हथ्य अचरिय सुनहु। अरि कठि तें असिवार लियौ ॥
भानेज साहि साहावदी। हय समेज चव षंड कियौ ॥ छं० १४२७।[2]

इस प्रकार शाह के भानजे खानखाना का गुरु राम के हाथों धोके से वध हो गया तथा वह वीरगति को प्राप्त हुआ।

खानखाना हजरत्तखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार खानाखाना हजरत्तखाँ शाह शहाबुद्दीन गोरी का सरदार था। नर्मदा नदी के तट पर पृथ्वीराज तथा गोरी के मध्य होने वाले संग्राम में खानखाना हजरत्तखाँ ने एक सेना का सेनापतित्व ग्रहण किया था। मालूम होता है 'खानखाना' इनका विरद था।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १३८४, १३८६ तथा १३८७, स० ६६।
२. वही, छं० १४२७, स० ६६।

वज्जीर षांन गोरी सुमर, षांन षांन हजरत्ति षां।
विय सेन सज्जि हरवल करिय, तहाँ उभौ सजिरत्ति खां॥ छं० ४२।[1]

खिलचीखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर खिलचीखाँ गजनीपति शाह गोरी का सरदार था। लाहौर से आये हुए दूत ने जो सूचना पृथ्वीराज को दी उसके अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि खिलचीखाँ गोरी का सेनापति था क्योंकि उसने अपने सिर पर छत्र धारण कर रखा था–

षां मारुफ तत्तार, षांन खिलची वर गट्ठे।
चामर छत्र मुजक्क, गोल सेना रचि गट्ठे॥ छं० ४२।[2]

पराक्रमी वीर खिलची खाँ ने रेवातट पर पृथ्वीराज के साथ होने वाले संग्राम में अपार वीरता का परिचय दिया था। रणक्षेत्र में पृथ्वीराज के दल के सामन्त सोलकी माधवराय का खिलचीखाँ से सामना हुआ। दोनों पराक्रमी वीर थे। वीररस से परिपूर्ण हो गये। युद्ध में प्रवल, दोनों वीरों ने दोनों हाथों में तलवारें उठा ली। युद्ध-मध्य वीर सोलकी (चालुक्य) की तलवार टूट गई तथा उसने कमर से कटार खींच ली। किन्तु शत्रुओं ने उसे चारों ओर से घेर लिया तथा अधर्म युद्ध करने लगे। सारंग के बंधु के अनेक घाव लगे जिससे वह आहत होकर गिर पड़ा तथा गोरी ने उस पर घातक प्रहार कर मार डाला–

सोलकी माधव नरिंद, (षांन) षिलची मुष लग्गा।
सुवर वीर रस बीर, वीर बीरा रस पग्गा॥
दुअन बुद्ध जुध तेग, दुहूँ हथ्थन उप्पारिय।
तेग तुट्टि चालुक्क, वथ्थ परि कढ्ढि कटारिय॥
अग अग्ग रुक्कि ठिल्ले वलन, अधम जुद्ध लग्गे लरन।
सारंग वध घन घाव परि, गोरी वै दिन्नौ मरन॥ छं० ९९।[3]

अपने बंधु का शव ढूंढते हुए सारंग सोलकी अचानक वीर खिलचीखाँ के सम्मुख आ गया। वह पहले पंगराज का भृत्य था, किन्तु इस युद्ध में चौहान पृथ्वीराज की ओर से युद्ध कर रहा था। कन्ह, सारंग को संकट में देखकर दो घोड़ो के कन्धों पर पैर रख खड़े हो गये तथा हाथी के समान गर्जना करने लगे जिससे पृथ्वी तथा कन्दरायें गूंज उठी। देवताओं ने जय-जय कार किया तथा पुष्प वृष्टि की। वह भूमि ढूंढता तथा कन्ह चिल्लाने की धुन बांधे रहा–

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४२, स० २७।
२. वही, छं० ४२, स० २७।
३. वही, छं० ९९, २७।

सोलंकी सारंग, पंन खिलची मुष लग्गा।
वह पंगा नौ अंत, इतें चहुआन बिलग्गा॥
हँ कंधन दिय पाय, कन्ह उत्तर बिय वाजिय।
गज गुंजार हुँकार, धरा गिर कंदर गाजिय॥
जय जयति देव जय जय करहि, पहु पंजलि पूजत रिनह।
इक परयौ षेत सोधं सकल, इक्क रह्यौ बंधे धुनह॥ छं० १०४।[1]

उपर्युक्त छन्द को रासो में देखकर उसके सम्पादकों ने इसी छन्द के अन्तर्गत खिलची खाँ को मरा हुआ जान कर 'रासोसार' में इसका अर्थ इस प्रकार दिया हैं–'इधर जब खिलची खाँ के मुकाबिले में दो तीन अच्छे-अच्छे वीर काम आये तब सारंगदेव ने उस पर आक्रमण किया, सारंगदेव ने अपने घोड़े को एड देकर खिलचीखाँ के हाथी के मस्तक पर जा टपकारा। इस अद्भुत कौशल से इधर तो हाथी चिक्कार उठा उधर सारंगदेव ने खिलची खाँ को मार कर दो कर दिया।'[2]

उपर्युक्त छन्द को देखते हुए सम्पादक मण्डल का इस प्रकार से लिखना उचित नहीं जान पड़ता। सत्य से वह कोसों दूर हैं। वास्तव में खिलची खाँ इस संग्राम में मारा नहीं गया था। अन्य युद्धों में भी वह सहज ही देखा जा सकता है।

खुरासानखाँ–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार खुरासान खाँ गोरी का सरदार था।[3] हुसैन कथा के अन्तर्गत पाते है कि खुरासान खाँ ने पृथ्वीराज चौहान की सेना से अपार पराक्रम के साथ युद्ध किया किन्तु परास्त होकर भाग गया तथा गोरी की सेना से जा मिला।[4]

गाजीखाँ–'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर गाजीखाँ गोरी का सामन्त था। 'वड़ी लड़ाई को प्रस्ताव' के अन्तर्गत गोरी तथा पृथ्वीराज के मध्य होने वाली लड़ाई में इसने भाग लिया था। गोरी के साथ एक लाख सवार, नौ लाख पैदल और दस हजार हाथी थे। जब गोरी ने राजपूत सेना के आक्रमण के विषय में सुना तो उसने अपने मंत्री को भी अपनी समस्त सेना को तैयार होकर, व्यूहबद्ध होने की आज्ञा दी। तदनुसार मुसलमान सेना भी सज धज कर मैदान में जम गई तथा इस प्रकार से व्यूह बद्ध हुई, दो लाख सिपाही, दो हजार हाथी, तथा चिमनखाँ, समीरखाँ, शाह का भाई उसमानखाँ, महमूद खाँ, रुस्तमखाँ, मुरेसखाँ, हाजीखाँ, तथा गाजीखाँ आदि सामन्त तथा पाँच सौ गक्खरों के साथ महामन्त्री

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०४, स० २७।
२. रासोसार, नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ० १०२।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५९, स० ९।
४. वही, छं० १५८-१६७, स० ९।

तातारखाँ दाहिनी वाजू पर था।[1] दोनों दलों में विकट संग्राम हुआ। विपक्षी दल के बलिभद्र की मृत्यु के उपरान्त पावस पुण्डीर अग्रसर हुआ जिसका सामना वीर एवं पराक्रमी गाजीखाँ ने किया। दोनों योद्धाओं में विकट संग्राम हुआ किन्तु अन्त में पावस पुण्डीर वीरगति को प्राप्त हुआ तथा गाजी खाँ की विजय हुई—

मुष्क्किय जु संगि उन्हें उनाह। लग्गिय कुउअर फुट्टिय पराह॥
चल्ले सुसंग वर वीर इन। असिझाक सीस तुट्टे सऊन। ११५८॥
सिर परे इन लग्गे सुवथ्थ। चंपयो पान गाजी सुहथ्थ॥
नष्षयो धरनि गाजी सुषांन। संमुहो सूर घायो परान॥ छं० ११५९।[2]

जलाल जलूस—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार जलाल जलूस गोरी का सामन्त था, जिसने 'वड़ी लड़ाई को प्रस्ताव समय ६६' के अन्तर्गत पृथ्वीराज चौहान तथा शाह शहाबुद्दीन गोरी के मध्य होने वाले अन्तिम संग्राम में भाग लिया था। विपक्षी दल के वीर एवं पराक्रमी योद्धा वलिभद्र को अग्रसर होता देखकर जलाल जलूस उसके आड़े आ गया—

समैं तिन सथ्थ वलीभद्र वीर। लगे अरि सों असि तेग तरीरं॥
सन मुंष आय जलाल जलूस। ततारह वंघ जरे तन जूस॥ छं० ११३९।[3]

पराक्रमी जलाल जलूस तथा विपक्षी दल के योद्धा वलिभद्र के मध्य विकट संग्राम हुआ। दोनों ने ही अपने-अपने कौशल का खुलकर प्रदर्शन किया किन्तु वीर जलाल जलूस ने अपनी तलवार का एक ऐसा वार किया जिससे वीर वलिभद्र का सिर धड़ से अलग जा गिरा किन्तु जलाल जलूस भी उसके वार से न वच सका और वीरगति को प्राप्त हुआ—

हहविकय धविकय धामिय ताहि। पर्यौ विपि वधव लग्गिय दाह।
सनमुष सारिय झारिय पग्ग। पर्यौ वलिभद्रह सीस अलग्ग॥ छं० ११४८।
हयो विन सीस असीवर झाक। पर्यौ सिर सथ्थह तुट्टिय साक।
विना सिर धष्पिय धामिय वीर। परे सय दून सुहथ्थिह मीर॥ छं० ११४९।[4]

इस प्रकार जलाल जलूस अपना अपूर्व रण कौशल दिखाकर इस लोक से सर्वदा के लिए विदा हो गया। इतिहास से इनके विषय में कोई उल्लेखनीय प्रमाण नहीं मिलता।

जहाँगीरखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार जहाँगीर खाँ गजनीपति गोरी का सरदार था। गोरी की सेना ने पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए चिनाव नदी पार की, उस

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ११५५ स० ६६।
२. वही, छं० ११५९, स० ६६।
३. वही, छं० ११३९, स० ६६।
४. वही, छं० ११४८-४९, स० ६६।

समय एक दूत ने पृथ्वीराज को गोरी की सेना के विषय में सूचना दी। दूत के द्वारा ही जहाँगीरखां के विषय में भी मालूम होता है, "अन्य योद्धाओं के साथ विजयी जहाँगीर खां, दगाबाज हिन्दूखां, पश्चिमी खां तथा पठान हरावल रचकर उपस्थित हुए—

जहांगीर पान जहगीर वर, षां हिन्दू वर बर विहर।
पच्छिमी पांन पट्ठान सह, रचि उप्मौ हरवल गहर ॥ छ० ४३ ।[1]

अतः स्पष्ट है कि नर्मदा नदी के तट पर होने वाले संग्राम में गोरी की ओर से जहाँगीर खां नामक, किसी सरदार ने युद्ध में भाग लिया था। रासोकार ने इसका विस्तृत वर्णन इस समय के अन्तर्गत नहीं दिया है। इतिहास भी इस नाम के किसी योद्धा का प्रमाण प्रस्तुत नहीं करता।

तातारखां—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार वीर तातारखां गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का प्रधान सेनापति एवं मंत्री था। 'रासो' में स्थान-स्थान पर गोरी को, इससे सलाह लेता हुआ पाते हैं। चन्द ने कहीं-कहीं पर तातारखां के लिए 'खां तातार मारुफ खां' नाम का प्रयोग किया है। ऐसा मालूम होता है कि इसका पूरा नाम 'तातार मारुफ खां' रहा होगा जिसे चन्द ने संक्षेप्ता के कारण कहीं-कहीं पर तातार खां लिख दिया है—

खां ततार मारुफ षां, लिये पांन कर साहि।
धर चहुआंनी उप्परें, वज्जा बज्जन वाई ॥ छं० १४ ।[2]

डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी भी तातार मारुफ खां को दो व्यक्ति नहीं मानते, उन्होंने लिखा है कि 'यह इस (रेवातट समय) युद्ध में शहाबुद्दीन गोरी का प्रधान सेनापति समझ पड़ता है, क्योंकि इस सम्पूर्ण सम्यों में हम उसे एक प्रतिष्ठित पद और मुख्य-सैन्य-सचालन में पाते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा (पृथ्वीराज रासो) में इस छन्द के ऊपर के नोट में एक नाम 'तातार-मारुफखां' के स्थान पर तातारखां और मारुफखां दो नाम पाये जाते हैं जो उचित नहीं समझ पड़ते। दोहे का अर्थ है कि खां तातार मारुफ खां ने शाह के हाथ से पान का बीड़ा उठाया (प्राचीन समय में यह नियम था कि जब कोई कठिन कार्य आ उपस्थित होता था तो दरबार में पान का बीड़ा रखकर अपेक्षित कार्य की सूचना दी जाती थी अतएव जो सरदार अपने को उस काम के करने के योग्य देखता वह बीड़ा उठा लेता)—जो प्रथानुसार भी ठीक है अतएव तातार-मारुफखां एक व्यक्ति है। डॉ० ह्योर्नले भी एक ही व्यक्ति मानते हैं। दो व्यक्तियों का भ्रम इस शब्द (खां तातार-मारुफ खां) के दोनों ओर खां

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छ० ४३, स० २७।
२. वहीं, छ० १४, स० २७।

लगाने से ही हो गया है परन्तु चन्द ने रासो के अनेक स्थलों पर एक ही व्यक्ति के लिए इनके अनुरूप प्रयोग किये हैं।"[1]

'रेवातट समय' के अन्तर्गत तातारखाँ की वीरता देखते ही बनती है। गोरी की सेना को पृथ्वीराज की सेना ने बुरी तरह घेर लिया। सुभट गोरी का तेज छूट गया किन्तु ऐसी स्थिति में तातारखाँ ने धैर्य नहीं खोया तथा गोरी का प्रबोधते हुए कहा—कि मेरे रहते हुए आप पर अर्थात् सुल्तान पर कष्ट नहीं पड़ सकता :—

तेज छुट्टि गोरी सुवर, दिय धीरज तत्तार।
मो उपभं सुरतान को, मीर परीइ न वार ॥ छं० ८०।[2]

इसके उपरान्त तातारखाँ ने जो घोर संग्राम किया उसकी प्रसंशा किए बिना नहीं रहा जा सकता। विपक्षी दल की ओर से वीर विड्डुरराय युद्ध भूमि में अग्रसर हुए जिन्हें वीर तातारखाँ ने कुछ ही क्षणों में परास्त कर वीरगति को प्राप्त कराया—'विड्डुरराय अपनी तलवार चलाने की योग्यता पर विश्वास करके तातार मारुफखाँ की ओर अग्रसर हुआ। वीर तातारखाँ ने एक प्रहार ऐसा किया जिससे वीर विड्डुरराय का सिरस्त्राण टूट कर बिखर गया तथा उसका शरीर पंचतत्व को प्राप्त हुआ—

मंनि लोह मारुफ, रोस विड्ंडर गाहक्के।
मनो पंचानन वाहि, सद्द सिरसद्द हहक्के ॥
दुहूं मीर वर तेज, सीस इक सिघट्ट वाही ॥
टोप टुट्टिवर करी, चद उप्पमा सुपाई ॥

मनुसीस वीय श्रंग विज्जुलह, रही हेत तुटि भाम न हृति।
उतमग दुहै विव टुक ह्वै, मनु उडगन नृप तेजमति ॥ छं० ११८।[3]

इस प्रकार, प्रायः समस्त रासो में गोरी के वर्णन के साथ-साथ ततारखाँ का भी वर्णन मिलता है।

बड़ी लड़ाई को प्रस्ताव समय ६६ के अन्तर्गत वीर तातारखाँ को पुनः युद्ध करता हुआ देखते हैं। पृथ्वीराज चौहान तथा गोरी के मध्य निर्णायक संग्राम होने वाला है। दोपहर के समय रावल समरसिंह युद्ध भूमि में अग्रसर हुए। तातारखाँ इनका सामना करने के लिए अपनी विशाल सेना लेकर आगे बढ़ा—

---

१. डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, द्वितीय भाग, पृ० २०, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, सन् १९५३ ई०।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ८०, स० २७।
३. वही, छं० ११८, स० २७।

समर सिंघ मारव्य मिलि। उत मिलि षान ततार।
अप्प अप्प भीरम्म करि। ज्यों वद्दल घन सार ॥ छं० १०६६।[1]

दोनों दलों में घोर संग्राम हुआ, योद्धागण कट-कट कर गिरने लगे। समस्त पृथ्वी खून से लाल हो उठी।[2] घोर संग्राम के मध्य वीर तातारखाँ की पराजय हुई तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो के सम्पादकों के मतानुसार तातारखाँ की मृत्यु भी हो गई,[3] तथा उसके स्थान पर वीर निसुरत्तिखाँ ने अपनी सेना को अग्रसर किया—

मुरत्त षान तत्तार। ताम निसुरति षान लपि ॥ छं० १०७४।[4]

किन्तु रासो में स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं लिखा है कि वीर तातारखाँ वीरगति को प्राप्त हुआ। दूसरे, अगले समय 'वान वेध प्रस्ताव समय ६७' के अन्तर्गत पुनः उसे जीवित अवस्था में देखते हैं। इससे स्पष्ट है कि सम्पादकों का कथन उचित नहीं।

अन्तिम संग्राम में पृथ्वीराज की पराजय हुई, गोरी, पृथ्वीराज चौहान को बन्दी बनाकर गजनी ले गया तथा नेत्र विहीन करके कारागार में डाल दिया। पृथ्वीराज का दरबारी कवि उन्हें छुड़ाने के उद्देश्य से गजनी गया। कवि ने अपने वाक चातुर्य एवं कुशल व्यवहार से शाह को, नेत्र विहीन महाराज पृथ्वीराज चौहान का शब्द वेधी वाण चलाने का कौशल देखने के लिए प्रसन्न कर लिया। चन्द ने शाह से यह भी वचन लिया कि फरमान यदि आप स्वयं देंगे, तभी चौहान अपना कौशल दिखावेगा। चन्द की बात का कोई मर्म न समझ सका, तथा मंत्री तातारखाँ ने भी चन्द की बात को लक्ष न किया और उसे डपटा कि क्या निरर्थक बात करता है—

तब तत्तार झुकि उठ्यौ। भट्ट जीवन पर रूठौ ॥
पात साहि गोरी नरिंद। अग्गं भयौ झूठौ ॥
सत्त सुभर घरियार। अग्र विन इक्क न विद्धिय ॥
मरद सुभुष उच्चरहि। होई अग्गं जो सिद्धिय ॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०६६, स० ६६।

२. गिरें उतमग उठे श्रोन लल्लै। सुभे दग लग्गे सुपावक्क प्रल्लै ॥
नचें कंध हीनं कवंधं कलापं। जगी जोगनी जोग जांप अलापं ॥ छं० १०६९।
रंगी रंग भूमी वितांल उसद्दं। घरें कंध उद्ध विरद्ध विरद्दं ॥
गयंनंति गिद्ध सुसिद्ध विमानं। वरं रंभ रथ्यं सुरं तंत थोनं ॥ छं० १०७०, स० ६६।

३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० २२८५।

४. वही, छं० १०७४, स० ६६।

फुरमान साहि तुहि तो नहीं। जिय चहुआन न होइ कल ॥
इह बाह एह सिंगिन धरिय। ए घरियार न विद्धि बल ॥ छं० ४३६ ।[1]

कवि चन्द ने विश्वास दिलाते हुए कहा कि यदि शाह वचन दें तो प्रत्यक्ष तमाशा देख लें; शाह आज्ञा देने के लिए राजी हो गया तथा पृथ्वीराज का शब्द वेधी बाण चलाने का कौशल देखने के लिए रंगभूमि में घडियाल सजाये गये, उनका कौशल देखने के लिए दर्शकों का अपार समुदाय एकत्र हो गया। मन्त्री तातारखाँ ने शाह को समझाया कि आज जुमेरात का दिन है तथा रात्रि में मैंने बहुत अशुभ स्वप्न देखा है। अतः आज यह तमाशा न देखिए—

देषि भूप नक पून वर। षां ततार कहि भांति ॥
आज रष्षि साहाब वर। भरयो दिवस जमांरत्ति ॥ छं० ४४७।
बोलि षान तत्तार। साहि सपनंतर जबकहि ॥
अद्भुत चरित मैं दिट्ठ। सीस दिट्ठो न षोज लहि ॥
ग्रद्धसार संसार। पीर पैगम्बर रुट्ठं ॥
बिन बद्दर उम्मरी। मेघ आफूत सु वुट्ठं ॥
वर स्वान सिघ जबुक सयन। हरसिद्ध बीबी झग्गरी ॥
एजरत वार भट्टन सकल। अफल किंत्ति सम्हो लरी ॥ छं० ४४८।

और भी—

कहै षांन तत्तार। साहि दुल्लभ मनुच्छ जम ॥
वार वार पावै न। बहुरि अवतार राज क्रम ॥
छिन मे देह भजत। प्रान धरिजे इह घत्ते ॥
वर कोटर घरियार। उत न वट्टे जुध तत्ते ॥
इह देह जतन करि पारियै। कहै पीर पैगवरह ॥
पल भट्ट तदिन निधि अब्ब वह। सुनो साहि कहि उम्मरह ॥ छं० ४५०।[2]

मंत्री ततारखाँ ने नाना प्रकार से शाह को समझाने का प्रयत्न किया किन्तु शाह ने उत्तर दिया कि मैं दिया हुआ वचन नहीं पलट सकता। यह सुनकर ततारखाँ खीझ कर दरबार से उठ कर चला गया—

झुकि तत्तर षां उट्ठि। हाथ सिर झारि सीस धुनि ॥
वर मुक्कं दरबार। गई सुरतान मत्ति फुनि ॥
विधि विधान नृम्मान। मत्ति षट्टी पैगम्बर ॥
बोलि षान षुरसान। दिष्षि तत्तार भिस्ति घर ॥

---

१. पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४३६, स० ६७।
२ वही, छं० ४४७-४४८ तथा ४५०, स० ६७।

कविचन्द राज चहुआन पै। सर अद्भुत उच्चार पिय ॥
घरियार एक सत सर इकै। वर वर वद मारे सरिय ॥ छं० ४५३।[1]

रंगभूमि में सब साज सामान ठीक करने के उपरान्त, पृथ्वीराज को बुलाया गया। योग्य एवं दूरदर्शी मंत्री ने शाह से एक बार पुनः अनुरोध किया कि ऐसा भीषण तमाशा मत देखिए—

अहो साहि साहाव। सुनो अरदास हित्त हर॥
अरि मू इहै आरिप्ट। दिप्पि अनमूत तेज नर॥
इह कमान उत्तान। जोर जुत्तान समान॥
नन दीजै या हथ्थ। चिंति प्राक्रम्म पुमाग॥
कम्मान याहि संगह सजै। सु जनु नाग लिट्टिय मनी॥
सय पयं चिल्ह संगह मिलै। चिंति काल क्रत अप्पनी॥ छं० ४७१।

और भी—

काल व्याल वसा कराल। समपंथ कोप सम।
ता आनन अगुरी। कीइ मेलै सुमत क्रम॥
आय अभुत्त उम्मारा। सीम पप्पलि सव सज्जै॥
क्रोध सज्जि करिवान। मत्त मारहि विन कज्जै॥
वच्चै सुसाहि तत्तार तुअ। मम करि चित ततार जुअं॥
विन नयन वान इच्छे गुनै। सो नन विद्धं घात तुअ॥ छं० ४७२।[2]

इतना स्पष्ट रूप से समझाने पर भी शाह की समझ में कुछ न आया, तथा उसने अपने मुख से आज्ञा प्रदान की। पृथ्वीराज ने गोरी के शब्दों को लक्ष कर वाण चलाया जिससे गोरी को योग्य मंत्री तत्तारखाँ की बात न मानने का परिणाम भोगना पड़ा, अर्थात् गोरी महाराज पृथ्वीराज चौहान का वाण खा कर भूमि पर आ गिरा तथा उसका प्राणान्त हो गया। इस कथा में सत्य का अंश कितना भी हो किन्तु तातारखाँ की योग्यता पर अवश्य ही अच्छा प्रकाश पड़ता है।

महाराज पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु के उपरान्त दिल्ली पर उनका एक मात्र पुत्र रयनसी राज्यगद्दी पर बैठा। गजनी के उत्तराधिकारी ने एक बार पुनः दिल्ली पर आक्रमण किया। दिल्ली को चारों ओर से घेर लिया गया। इस संग्राम में भी वीर तातारखाँ ने भाग लिया था। सात माह तक मुसलमान सेना दिल्ली का किला घेरे पड़ी रही किन्तु

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४५३, स० ७७।
२. वही, छं० ४७१-७२, स० ७७।

किला उनके हाथ न आ सका। अन्त में तातारखाँ ने किले की एक दीवार को मुरंग लगा कर उड़ा दिया–

सपत मास दिन उभय वर। ढोहन मंड्यौ बीर॥
वजे असप्पति साम दह। गज्जि सुगोरी बीर॥ छं० ८८।
तव तत्तारहि कसति। सार सीघङ्‌ मुप भारिय॥
करि सुरंग संचार। मद्धि दर मंझ सुधारिय॥
करिय सज्ज सव सेन। आनि आतस संचारिय॥
लगि कृसान पाषान। उड़िय असमान अँगारिय॥
आघात सोर सोराँ सुवजि। लेहु लेहु मुप मेछ कहि।
हिंदवान प्रान अव तुच्छ हैं। फते नाम सुविहान लहि॥ छ० ८९।'

तातारखाँ' की दूरदर्शिता के परिणाम स्वरूप ही दिल्ली का राज्य गजनी की सल्तनत में मिल सका।

तातार निसुरत्तखाँ'—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर निसुरत्तखाँ, गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सेना नायक तथा प्रमुख सामन्त था। 'रेवातट समय २७' के अन्तर्गत पृथ्वीराज चौहान तथा मुहम्मद गोरी के मध्य रेवा नदी के तट पर भीषण संग्राम होने पर वीर निसरत्तखाँ ने गोरी की ओर से भाग लिया था। इस युद्ध में गोरी को वन्दी वना लिया गया था। साथ ही निसुरत्तखाँ भी न वच सका–'सुल्तान गोरी को वन्दी वना लिया, हुसेनखाँ को नष्ट कर दिया गया तथा तातार निसुरत्तखाँ को झोली वना कर बांध लिया गया। गोरी के चमर-छत्र रखने का समय व्यतीत हो गया। समरांगण में चौहानों की जय-जय कार गूंज उठी। दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान गोरी को हाथी पर बांध कर दिल्ली की ओर ले चले। नर-नाग तथा देवता स्तुति करने लगे कि महाराज पृथ्वीराज पृथ्वी पर इन्द्र के समान यशस्वी हों—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ८८-८९, स० ६८।

२. तातारखाँ का नाम प्रायः रासो के समस्त संस्करणों में प्राप्त होता है। सभी संस्करणों को देखने से स्पष्ट होता है कि तातारखाँ ने गोरी की ओर से ही पृथ्वीराज से युद्ध किया था, १–पृथ्वीराज रासो–साहित्य संस्थान उदयपुर। २–पृथ्वीराज रासो–रॉयल ऐशियाटिक सोसाइटी, लन्दन (अप्रकाशित), ३–पृथ्वीराज रासो–धारणोज की प्रति (अप्रकाशित)।

३. प्रतीत होता है कि निसुरत्तखाँ तातार देश का निवासी था। तभी कवि चन्द ने उसे तातार निसुरत्तखाँ लिखा है। तातार तुर्क जाति के थे। तुर्क जाति की दो मुख्य शाखाएँ होती हैं–(१) तातार तथा (२) मंगोल। रासो के समस्त संस्करणों में इस नाम का योद्धा गोरी की ओर से युद्ध करता हुआ दिखाई देता है।

गहि गोरी सुरतान, षान हुस्सेन उपारयौ ।।
षां ततार निसुरत्ति, साहि ग़ोरी करि डारयौ ।। छं० १४८ ।[1]

सक्षेप में वीर निसुरत्तखाँ के दर्शन गोरी के साथ प्रायः सभी युद्धों में होते हैं। बड़ी लड़ाई को प्रस्ताव समय ६६' के अन्तर्गत हम पुनः पराक्रमी वीर निसुरत्तखाँ को युद्ध करता हुआ देखते हैं। पृथ्वीराज चौहान तथा गोरी के मध्य निर्णायक युद्ध हो रहा है। वीर निरसुत्तखाँ भी अपने एक हजार श्रेष्ठ योद्धाओं को लिए हुए संग्राम कर रहा है किन्तु दुर्भाग्य, उसके एक हजार सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए। निसुरत्तखाँ को हारता देखकर स्वय शाह उसकी सहायतार्थ अग्रसर हुआ–

दल आसुर दह पिंड, लोह झर भर आहुट्टिय ।।
सहस एक निज सेन, देष निसुरत्ति सु घट्टिय ।।
तव आवरतन वीर, सेप सेना आभासिय ।।
मम मज्जों घरो लाज, करों कंदल असि रासिय ।।

परसंसि सहस सेना सकल। वल वधयौ साहाव गजि ।।
तजि मोह पिंड सजि भिरति मन, भाय दीन महमुंद भजि ।। छं० १०८० ।[2]

शाह को अपनी सहायतार्थ वढ़ता देखकर वीर निसुरत्तखाँ का हौसला और वढ़ा तथा वह विपक्षी दल के योद्धा कन्हराय से विकट संग्राम करने लगा। दोनों योद्धाओं ने अपने-अपने घात-प्रतिघात किये किन्तु अन्त में वीर निसुरत्तखाँ पचतत्व को प्राप्त हुआ–

इसो जुद्ध कन्हं महावीर कीनं। महा जोति में जोति संयान लीनं ।।
महाजोग घयानं सुग्यानं जुमत्ती। जुरं जुद्ध पार्वतिका सार वृत्ती ।। छं० १०९५ ।
जिके कन्ह चित्रंग सों वोलवोले। तिके षग्ग मग्गं दरवार षोले ।।
इसी जुद्ध सेनापती राउ कीनी। जिने षान निसुरत्ति कों भिस्त दीनीं ।। छं० १०९६ ।[3]

किन्तु आश्चर्य तव होता है जव पुनः निसुरत्तखाँ को जीवित अवस्था में देखते हैं। अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज को वन्दी वना लिया गया तथा गोरी उन्हें अपने साथ गजनी ले गया। वहाँ पर पृथ्वीराज को नेत्र विहीन कर दिया गया। पृथ्वीराज चौहान का मित्र एवं कवि चन्द वरदायी गजनी पहुंचा तथा गोरी को पृथ्वीराज का शब्दवेधी वाण का कौशल देखने के लिए तैयार कर लिया। अव पृथ्वीराज रगभूमि में चमत्कार दिखाने के लिए उपस्थित किया गया। हुजावखाँ ने पृथ्वीराज को कई कमानें दी, जिन्हें उन्होने खींचकर तोड़

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४८, स० २७।
२. वही, छं० १०८०, स० ६६।
३. वही, छं० १०९५-९६ स० ६६।

डाला। तब मीरा शाह की कमान प्रस्तुत की गई, उनका खींचना देखकर बिलन्दीखाँ ने कहा यदि घड़ियाल फोड़ दिए तो शाह बहुत कुछ देगा।[1] इस पर चन्द ने कहा कि राजा को स्वयं की कमान दिलाई जाय, फिर हुजावखाँ ने वही धनुष दिया।[2] महाराज पृथ्वीराज अपना धनुष प्राप्त कर प्रसन्न हो उठे। इसी बीच मिसुरत्तखाँ ने उनके हाथ में तरकस भी दे दिया—

तब साहि ताम बच्चयो अमीर। निसुरत्ति देहु तरकस तीर॥
निसुरत्ति आनि दिय साहि हथ्य। तरकस्स तीर गोरी गुरथ्य॥ छं० ४८४।[3]

वास्तविकता यह है कि रासो में इस प्रकार की असंगत बातें अनेकानेक स्थानों पर देखने को मिलती हैं। असम्भव नहीं, यदि यह सब क्षेपककर्ताओं की कृपा का फल हो। जब तक कि रासो के समस्त संस्करणों का वैज्ञानिक अध्ययन करके उसका सम्पादन नहीं हो जाता, तब तक ऐसी असंगत बातों को देखकर रासो में विद्वानों की आस्था का अडिग रहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। विद्वानों ने ऐसी असंगत तथा तर्क हीन बातें देखकर ही रासो को अप्रामाणिक तथा अनैतिहासिक होने का नारा लगाया। उसके बाद जो विवाद युद्ध हुआ है, वह सर्व विदित है ही।

दुस्तमखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर दुस्तमखाँ गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सेना नायक था। गोरी ने लाहौर पर आक्रमण करके चिनाव नदी को किस प्रकार पार किया, इसका विवरण प्रस्तुत करता हुआ एक दूत पृथ्वीराज चौहान से कहता है कि—'सेना को चार भागों में विभाजित करके शाह ने तीस पदाधिकारी नियुक्त किये जिनके साथ विश्व में अभिमानी आलमखाँ, निर्वासित उजबक्कखाँ, उपनायक छोटा मारूफ तथा पहलवान दुस्तमखाँ थे। शाह ने इन सरदारों के साथ हिन्दुओं पर आक्रमण कर दिया है। शोर मचाते हुए अपनी सेना को अग्रसर किया तथा चिनाव नदी पार की।' दूत की बात सुन कर सम्भल के शूर, सामन्तों ने स्वामी और श्रेष्ठ वीर पृथ्वीराज का क्रोध फूट पड़ा—

करि तमा इचौ साहि, तीस तहँ रष्पि फिरस्ते।
आलम षां आलम गुमान, षान उजब्बक निरस्ते॥
लहु मारुफ गुमस्त षांन दुस्तम बजरंगी।
हिन्दु सेन उप्परे, साहि वज्जै रन जंगी॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४६३-६८ स० ६७।
२. वही, छं० ४६९-७३, स० ६७।
३. वही, छं० ३८४, स० ६७।

सह सेन टारि सोरा रुयौ, साहि चिन्हाव सु उत्तरयौ।
संनले सूर सामत नृप, रोस वीर वीर ढुरयौ॥ छं० ४५।[1]

उपर्युक्त छन्द से स्पष्ट है कि दुस्तमखाँ पहलवानी अर्थात् मल्ल युद्ध के लिए प्रसिद्ध रहा होगा तभी उसे कवि ने पहलवान शब्द से सम्बोधित किया है।

घरिखाँ—ग्रन्थकार ने घरिखाँ का परिचय 'कनवज्ज खण्ड' के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। घरिखाँ पंग राज की सेना का सेनापति था। संयोगिता अपहरण के उपरान्त पृथ्वीराज तथा जयचन्द के मध्य होने वाले संग्राम में इसने सेना का नेतृत्व किया था। पंग सेना को युद्ध हेतु आठ भागों में विभाजित किया गया, जिसमें से एक भाग का नेतृत्व मुसलमान योद्धा घरिखाँ को प्रदान किया गया—

अप्ट फौज पहुपंग परिस यहु आनह फेरिय।
मीर धीर घरवान पान असमानह केरिय॥ छं० १७२१।[2]

स्वामी के आदेश पर समरागण में प्राणों को उत्सर्ग कर देने वाले यह मुसलमान वीर पंगराज की सेना के एक प्रमुख अंग थे। प्रायः पृथ्वीराज पर प्रत्यक्ष आक्रमण का आदेश जयचन्द द्वारा गाह्लडवाल इन्हीं को प्राप्त होता था—

अप्प अप्प दल विपफुरे, दिल्ली गहन नरिंद।
मीर जमाम हमाम कौ, दिये आयस जय चन्द॥ छं० १३८६।
दिसि दिसि अग्ग सज्जिवर, चतुरगिनी पंग जाइ।
चक्की चक्क वियोगिनी, अनंद कमोद कदाइ॥ छं० १३८७।[3]

निसुरत्तखाँ[4]—कवि चन्द वरदायी द्वारा पंगराज की सभा का अदृश्य वर्णन के अन्तगंत कुछ मुसलमान सामान्तों का नामोल्लेख हुआ है। 'कनवज्ज खण्ड ६१' में भी कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द की ओर से अनेक मुसलमान सैनिकों द्वारा सेनापतित्व का कार्य सम्पादित हुआ था। यहाँ पर हम उनमें से कुछ प्रमुख यवनों के विषय में उल्लेख करेगें।

ग्रन्थकार ने पंगराज का वैभव तथा प्रताप वर्णन करते हुए लिखा है कि वीर निसुरत्त खाँ गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी की ओर से पारस्परिक सम्बंधों को ठीक रखने के प्रतीक रूप में पंग दरवार में रहता था। 'जिन गज्जनै सूर साहव साही, तिने मोक्लयौ सेव निसुरति याही।' कवि द्वारा पंगराज के दरवार का अदृश्य वर्णन करने के समय भी निसुरत्त खाँ राज्य सभा में उपस्थित था—

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं०४५, स० २७।
२. वही, छ० १७२१, स० ६१।
३. वही, छं० १३८६-१३८७, स० ६१।
४. सम्पूर्ण रासो में अनेक निसुरत्तखाँ नामक योद्धाओं का उल्लेख हुआ है किन्तु इसे सर्वथा उनसे विपरीत समझना चाहिए।

हर सिंघ राइ रजि पास वान। निसुरति वीर म्मरेज पान ।। छं० ५४२।'

'रेवातट समय २७' के अन्तर्गत गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी की ओर से निसुरत्तखाँ नामक एक सेनापति के आहत होने का उल्लेख प्राप्त होता है—

गहि गोरी सुरतान पान हुस्सेन उपार्‌यो।
पां ततार निसुरत्ति, साहि छोरी करि डार्‌यो ।। छं० १४८।'

वीर निसुरत्तखाँ अपनी विशाल मुसलमान सेना लेकर समय-समय पर पंगराज की सहायता करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। देवास तथा पीपा युद्ध समयों में भी वीर निसुरत्तखाँ का उल्लेख हुआ है।

नूरमुहम्मद—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार नूरमुहम्मद गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का एक प्रसिद्ध सरदार था। एक दूत ने आकर शाह गोरी के आक्रमण तथा चिनाव नदी को पार करने की वात पर प्रकाश डालते हुए पृथ्वीराज चौहान से यह भी बताया कि उसने किस प्रकार चिनाव नदी पार करके अपनी समस्त सेना को एकत्र कर, पुनः सरदारों को किस-किस विभाग का दायित्व सौंपा है। दूत ने कहा—'चिनाव नदी पार करने के उपरान्त तातार मारुफखाँ तथा खिलचीखाँ मिल गये। सेना को व्यूह बद्ध किये वे खड़े थे, उनके ऊपर चंवर और छत्र था जिसके द्वारा वे पहिचाने जा सकते थे। हुजाव नूरीखाँ तथा नूरमुहम्मद को बड़ी तोपों, गोलों, छोटी तोपों और हाथियों के विभाग का उत्तरदायित्व सौंपा गया। गोरी के वीर योद्धा वजीरखाँ ने और खानखाना हजरत्तिखाँ ने दूसरी सेना का हरावल सजा दिया। वहीं सजरत्तीखाँ भी उपस्थित था—

पां मारुफ ततार, पान खिलची वर गट्ठे।
चामर छत्र मुजक्क, गोल सेना रचि गट्ठे ।।
नारि गोरि जंबूर, सुवर कीना गज सार।
नूरी पां हुज्जाव, नूर महमूद सिर मार ।।
वज्जीर पांन गोरी सुभर, पांन पांन हजरत्ति पां।
बिय सेन सज्जि हरवल करिय, तहाँ उभौ सजिरत्ति पां ।। छं० ४२।'

उपर्युक्त छन्द से स्पष्ट है कि वीर नूरमुहम्मद गोरी की गोला-बारूद तथा हाथियों का अध्यक्ष था।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५४२, स० ६१।
२. वही, छं० १४८, स० २७।
३. वही, छं० ४२, स० २७।

पश्चिमीखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के मतानुसार पश्चिमीखाँ गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सेनापति था। एक दूत ने महाराज पृथ्वीराज चौहान से आकर बताया कि गोरी ने किस प्रकार चिनाव नदी पार की तथा उसकी सेना के प्रधान सैनिक अथवा सरदार कौन है–दूत कहता है कि–अन्य सामंतों के साथ ही वीर पश्चिमीखाँ तथा पठान हरावल रचकर उपस्थित हुए—

पश्चिमी षां पट्ठान सह, रचि उपभे हरवल गहर ॥ छं० ४३ ।[१]

पहाड़खाँ गोरी—'कनवज्ज खण्ड समय ६१' में पृथ्वीराज तथा जयचन्द कमधज्ज के मध्य संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में अष्टमी के दिवस पंगराज की सेना का सेनाध्यक्ष पहाड़खाँ गोरी था। युद्ध में असंख्य सैनिकों को पराभव को प्राप्त होते देखकर कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द गाहड़वाल ने साठ हजार सैनिकों को लेकर पृथ्वीराज की सेना पर आक्रमण करने का आदेश पहाड़खाँ गोरी को दिया—

अग्गे सुपंग वज्जीर वीर, फरमान अप्पि अरि गहन भीर।
वधि सिलह कन्ह उम्भौ केरूर, मनु धाइ छुट्टि मद्दव तिरुर ॥ छं० १०३४।
सन्नाह सज्जि गोरी पहार, जानिये सूर सायर अपार।
हज्जार सित्त सजि सुभर मीर, मिली पंग वर वीर तीर ॥ छं० १०३५।[२]

पहाड़खाँ गोरी की अध्यक्षता में इस यवन सेना में राज्यसभा में उपस्थित अन्य मुसलमान सरदार भी सम्मलित थे। जिनमें से प्रमुख ये हैं—ममरेजखाँ, मीर महबलखाँ, पीरोजखाँ का बन्धु आरासखाँ, कम्मोदखाँ, अल्लीखाँ, महमूदखाँ, अब्दुल्लाखाँ, सलीमखाँ तथा इस्तमखाँ आदि।

वलीखाँ एवं अलीखाँ—रासोकार के मतानुसार वलीखाँ एवं अलीखाँ दोनों सहोदर भाई थे। दोनों मल्ल विद्या में निपुण तथा कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द के अंग रक्षक थे। मल्ल युद्ध के अतिरिक्त शस्त्र युद्ध में भी इनकी गति अगम्य थी। स्वामिधर्म में लीन रहना ही उनका मनवांछित मार्ग था। जयचन्द की सेना के मध्य यह दोनों सूर्य के समान तेजस्वी थे—

वली अली द्वै उभै वंधव वर वीरह।
छत्तीय हथ्य दुसल्ल, मल्ल विद्या एक श्री रह ॥
खग्ग मग्ग विन रेह, जुद्ध जाने निरगम गम।
हक हलाल प्रिच्छवन, करग वदिगि व्रतीय सम ॥

---

१. इसके नाम से ऐसा ज्ञात होता है कि सम्भव है यह पश्चिमी दिशा का खां हो तथा इसमें भी आश्चर्य नहीं कि इसका नाम ही यही हो।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४३, स० २७।
३. वही, छं० १०३४-३५, स० ६१।

भुज कहे कोरि उम्मय अमय, स्वामि धम्मस्ते सुरह।
आनहि सु पंग लज्जी अदव, दल पंगर विय उदित गह॥ छं० २१४७।[1]

रासोकार ने इन दोनों सहोदरों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। युद्ध की भीषणता देखकर बली एवं अली ने पंगराज से युद्ध में भाग लेने की आज्ञा मांगी तथा जयचन्द की दुहाई देकर दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज को बंदी बनाने के लिए ललकार मचा दी—

भग्यो आइस नमि सिर, कहै पंग करि आन।
जीयसु छडं पत्त पहु, गहो गहो चहुवान॥ छं० २१४९।[2]

कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचन्द गाहड़वाल ने इन दोनों पराक्रमी योद्धाओं को पांच सहस्त्र मुसलमान सेना का नेतृत्व प्रदान किया जिसमें समस्त योद्धा श्रेष्ठ, निर्भीक एवं युद्ध में पीठ न दिखाने वाले थे। श्याम वर्ण की पताका लेकर और पंगराज का आदेशप्राप्त कर सूर्योदय के समय, रविवार के युद्ध में दोनों भाई अपनी विशाल वाहनी सजा कर उपस्थित हो गए—

करिय कृपा पहुपंग, सहस पंचह दिय मीरह।
कुल विपत्त जुधे जुत्त, लहइ वर लज्जि अमीरह॥
स्याल चमर पप्परसु, स्याम्र गजगाह सु नेतह।
झंडे स्याम सुभाग, पच्छ पय पुत्रै न पेत्तह॥
अग्या सु मगि पहुपंग पहि, आए पीर पठान पुर।
आदित जुद्ध हरि उग्गमनि, आए आतुर सज्जि अरि॥ छं० २१४८।[3]

युद्ध भूमि में अली एवं बली मीरों का सामना पृथ्वीराज चौहान के प्रसिद्ध एवं प्रमुख सामन्त नृसिंह ने किया, जिसमें अपने अनेकानेक सहयोगियों सहित दोनों यवन सहोदरों ने वीरगति प्राप्त की तथा अपनी कीर्ति को अजर-अमर किया।

वहवलखाँ— पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वहवलखाँ गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सामन्त था तथा 'बड़ी लड़ाई को प्रस्ताव समय ६६' के अन्तर्गत इसने पृथ्वीराज चौहान तथा गोरी के मध्य अन्तिम युद्ध में भाग लिया था।

पृथ्वीराज चौहान को यवन सेना ने चारों ओर से घेर लिया। ऐसी विषम [redacted] देख तथा अपना अन्त निश्चित जान कर पृथ्वीराज ने अपने गुरु एवं राज्य पुरो[redacted] राम को अपने निकट बुलाकर अपने कुण्डल दान दे दिये तथा स्वयं विकट युद्ध क[redacted]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २१४७, स० ६१।
२. वही, छं० २१४९, स० ६१।
३. वही, छं० २१४८, स० ६१।

सेना को व्याकुल करने लगे। गुरु राम के पास पृथ्वीराज चौहान के कुण्डल देखकर गोरी के सामन्त वहबलखाँ ने लपक कर गुरु राम पर अपनी तलवार से ऐसा वार किया कि उसका सिर धड़ से अलग हो गया। इस प्रकार वहबलखाँ ने अपनी वीरता एवं रण कुशलता का परिचय दिया—

गुर ढिग कुंडलि देषि। देषि वहवल्ल षान षपि॥
द्रोपद सुत जिमि तेग। वेग झारी झनंग झपि॥
राय सीस लिय ईस। कमल विन पंजर कढ्ढयौ॥
हय्य छेदि उर षान। पीठि पच्छै दल वढ्ढयौ॥
वामंग हय्य अचरिज सुनहु। अरि कटि तें असि वर लियौ॥
भानेज साहि साहाबदी। हय समेत चव षंड कियौ॥ छं० १४२७।[1]

वहबल का इसके अतिरिक्त अन्य कहीं पर विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं होता है।

वावसू—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वावसू, दिल्ली-अजमेरपति पृथ्वीराज चौहान का सामन्त था जिसने गजनीपति गोरी द्वारा चिनाव नदी पार करने की सूचना पृथ्वीराज को सर्व प्रथम आकर दी थी—

वावस्सू नृप मुक्कतें, दूत आइ तिहिं वार।
सजी सेन गोरी सुवर, उत्तरयौ नदि पार॥ छं० ४०।[2]

टॉड महोदय ने लिखा है कि 'सामन्त चार भागों में विभाजित थे उनमें से एक भाग का नाम ववस (पैदल) था और ववस चौहान वंश की प्रशाखा की एक शाखा के राजपूत हैं।'[3]

यह भी असम्भव नहीं है कि वावसू नामक व्यक्ति चन्द पुण्डीर द्वारा भेजे हुए दूत का नाम हो। वावसू का विस्तृत विवेचन प्राप्त नहीं होता है।

भट्टी महनंगखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार यह गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सामन्त अथवा सेनाध्यक्ष था। यह जाति का भट्टी राजपूत था, किन्तु गोरी की ओर से युद्ध करने के कारण ही सम्भवतः महाकवि चन्द वरदायी ने इसके नाम के पूर्व खाँ शब्द जोड़ दिया है। 'रेवातट समय' में इनके विषय में लिखा है—'इसमानखाँ के पठानों और गप्परों के हरावल रचते ही केलीखाँ कुजरी ने शाह की जिरह-बख्तर से सुसज्जित सेना का संचालन किया। खाँ भट्टी महनंग, खाँ खुरासानी, बब्बर और संसार में सबसे अभिमानी

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४२७, स० ६६।
२. वही, छं० ४०, स० २७।
३. टॉड, राजपूताना—भाग १, पृ० १४२।

हवशियों का सरदार हवशखाँ वहाँ थे। उनके आगे आठ श्रेष्ठ गजराज थे जिनकी कनपटियों से मद जल श्रवित हो रहा था–

रचि हरवल पट्ठान, षांन इसमांन रु गष्पर।
केली षां कंजरो, साह सारी दल पाषर॥
षां भट्टी महनंग, षान षुरसानी ब्ब्बर।
हबसषांन हवसी हुजाब, ग्रब्व आलम्म जास घर॥
तिन अग्ग अट्ठ गजराज वर, मद सरक्क पट्टे तिनां।
पंच षिन पिंड जो उप्पजे, (तौ) जुद्ध होइ लज्जो विनां॥ छं० ४४।[1]

एक स्थान पर डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी ने भट्टी महनग खाँ के विषय में लिखा है कि–'भट्टी राजपूतों की एक जाति जो ई० सन् १५ मे गजनी से आई और पजाव मे बसी तथा वहाँ से पश्चिमी राजपूताना पहुंच कर सन् ७३१ ई० में तनोट बसाया। कुछ समय तक लोडोरवा उनकी, राजधानी थी। सन् ११५७ ई० में जेसल ने अपने भतीजे भट्टी (रावल) का राज्य गोरी की सहायता से छीन लिया और नई राजधानी जैसलमेर की नींव डाली (राजस्थान, टॉड, वाल्यूम २, पृ० २१९, २३२, २३८, २४२-४३)। वर्तमान रेवातट सम्यो वाले युद्ध काल में जैसल का पुत्र सालवाहन राज्य कर रहा था और उसका भाई अचिलेस पृथ्वीराज का मुख्य सामन्त था। भट्टी महनंग सालवाहन का दूसरा सम्बंधी था जिसका वर्णन प्राय: पृथ्वीराज की ओर मिलता है–

परि भट्टी महनग। छत्र नष्पो अरि सक्किय॥ रासो सम्या ३२, छं० ७७।

इसका पिता गोरी का सामन्त था। गोरी के पक्ष का होने के कारण ही चन्द ने भट्टी महनंग के पहिले षाँ लगा दिया है।'[2]

मंगोल लल्लरी–पृथ्वीराज रासो के अनुसार मंगोल लल्लरी नामक व्यक्ति गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सामन्त था। यह खंजर चलाने में अत्यन्त निपुण था। इसके लिए प्रसिद्ध था कि यह एक समय में बीस खंजरों को खींच सकता था।[3] 'रेवातट' पर पृथ्वीराज चौहान तथा गोरी के मध्य संग्राम होने पर इसने गोरी के पुत्र पैदा महमूद खाँ की अध्यक्षता में अपार संग्राम किया था।

'रासोसार' में एक स्थान पर इसे सेनानायक लिखा है–'महमूदखाँ, मगोल लल्लरी, सहवाजखाँ, जहाँगीरखाँ, आदि सेना नायकों और निज पुत्र सहित एक सेना को लेकर सुल्तान

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४४, स० २७।
२. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, रेवातट (पृथ्वीराज रासो) द्वितीय भाग, पृ० ८५, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ १९५३।
३. षां मगोल महमूद वीर बंध्यो सु विहान॥ छं० ४३, स० २७।

ने तो चिनाव पार करने की तैयारी की और आलमखाँ, मारुफ खाँ, उजबक खाँ आदि तीस यवन वीरों को कुछ सेना सहित उस पार अपनी सहायता के लिए रखा।"[1]

मंगोल लल्लरी वास्तव में गोरी का प्रसिद्ध एवं पराक्रमी योद्धा एवं सेना नायक ही रहा होगा तभी चन्द बरदायी ने इसका नामोल्लेख करने की आवश्यकता समझी। यदि यह साधारण सा सिपाही होता तो इसका उल्लेख संभव न था। प्राय: रासो के समस्त मुसलमान पात्र सन्देह की दृष्टि से देखे जाते हैं। मंगोल लल्लरी भी ऐसा ही पात्र है।

महमूदखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार महमूदखाँ गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का एक सामन्त था जिसने 'बड़ी लड़ाई को प्रस्ताव सम्यो ६६' वर्णित पृथ्वीराज तथा गोरी के मध्य होने वाले संग्राम में भाग लिया था। महाराज पृथ्वीराज यवन सेना के मध्य बुरी तरह से घिर गये थे। अपना अंत निकट समझ कर उन्होंने यवन सेना को बड़ी भीषणता से काटना प्रारम्भ कर दिया। जब पृथ्वीराज चौहान उग्र रूप धारण करके यवन सेना का संहार कर रहे थे, उसी बीच उनका सामना महमूदखाँ नामक सामन्त से हो गया। पृथ्वीराज चौहान ने अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करके महमूदखाँ को धराशायी कर दिया—

निरषि राज प्रथिराज। दिट्ठ महमुंद करारिय।
मुट्ठि वान मंड्यौ। तक्कि नाजी उप्फारिय॥
वथ्थ तथ्थ चित्तिय समथ्थ। चहुआन मनि मन।
धरिय झलक सिंगिनिय। सुलल विपझाल कालफन॥
नपयौ तानि हिन्दू विहद। आवं तो सर मार मनि।
पचेवि हयौ केवर कहर। तुट्टं मद्धि निरुद्ध उन॥ छं० १५२१।

और भी—

पंचु भाग परि अग्र। उड्डि आयास पोनि पर॥
लागि वान सपंच। मनो मि हंस धरा ढरि॥
अग्रवान लगि उरनि। भयौ महमूंद सुरेसं॥
बड़ौ अग विहंग। मनो वलि उरग प्रवेसं॥
महमूंद विकल तनपरि अवनि। जानि कि नट्टह लाग सजि॥
धन धन्य सयल जपिय सकल। विकल चित्त विभ्रम्म रजि॥ छं० १५२२।[2]

मियाँ मनसूर रुहिल्ला—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार मियाँ मनसूर रुहिल्ला गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सामन्त था, जिसने 'बड़ी लड़ाई को प्रस्ताव सम्यो ६६' के अन्तर्गत वर्णित

---

१. रासोसार, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० १००-१०१।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १५२१-२२, स० ६६।

गोरी तथा पृथ्वीराज चौहान के मध्य होने वाले संग्राम में भाग लिया था। विपक्षी दल के पावस पुंडीर आदि योद्धाओं के काम आने पर पराक्रमी जैतराव प्रमार हरावल में आया तथा वीर चामण्डराय ने युद्ध भूमि में घुसकर विकट मार-धाड़ प्रारम्भ कर दी। यवन सेना को विचिलित होता हुआ देखकर मियां मनसूर रुहिल्ला, वीर चामंडराय का सामना करने के लिए युद्ध भूमि में अग्रसर हुआ। मियाँ मनसूर रुहिल्ला द्वन्द्व युद्ध के लिए प्रसिद्ध था। अतः दोनों रण बाकुंरे आपस में गुथ गये। नाना प्रकार के युद्ध कौशल दिखाने के उपरान्त दोनों ही वीर अपने-अपने स्वामिधर्म का अनुसरण करते हुए वीर गति को प्राप्त हुए—

च्यारि सहस असवार। मद्धि चामंड दहिम्मों॥
चौदह से मफरद्द। मियाँ मनसूर रुहिल्लौ॥
हूह हक्क किल्कार। सीस तुट्टहि धर धावहि॥
आनंदित अपछरा। आज इच्छा वर पावहि॥
चांवडराइ दाहर तनय। हर हारावलि रुट्ट्यौ॥
मफरद्द पान पीरोज सुअ। तेजवत भित्तिहि गयौ॥ छं० १२३३।[1]

मियाँ मुस्तफा—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार मियाँ मुस्तफा गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सामन्त था। 'बड़ी लड़ाई को प्रस्ताव सम्यो ६६' में मियाँ मुस्तफा निसुरत्तखाँ की मृत्यु के उपरान्त शाह की आज्ञा मान कर अपने भाई सहित पृथ्वीराज चौहान की सेना से युद्ध हेतु अग्रसर हुआ—

मियाँ मान मुस्तफा। उभै बंधव असि उम्मर॥
धरा रोम उद्धरन। धरा स्वामित्त समुद्धर॥
सोय निरषि साहाब। दई अग्या तमि ताम॥
तुम लष्यौ तत्तार। मार मडे सिर कम॥
निसुरत्ति हयौ रावर भरन। हल हलत तत्तार दल॥
तुम जाय जुरौ उप्पर करौ। परौ बुध बधेन नर॥ छं० १११०।[2]

समरांगण में मियाँ मुस्तफा का रावल समरसिंह से सामना हुआ। विकट मारधा के उपरान्त दुर्भाग्य से मुस्तफाबंधु वीरगति को प्राप्त हुए—

जुटे मुस्तफा सीह सामंत धग्गै, दुअं वृत्तधारी क्रित स्वामि अग्गै।
उभै धारि उम्भारि संगी दुहथ्थं, जपै आनईस जपै इष्ट तथ्य॥ छं० १११२

+ + +

परयौ मान मुस्तफा, इष्षि धर रोम समुद्धर॥ १११६।[3]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १२३३, स० ६६।
२. वही, छं० १११०, स० ६६।
३. वही, छं० १११२ तथा १११६, स० ६६।

मियाँ मुस्तफा की युद्ध कुशलता देखकर इसकी वीरता में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता है। किन्तु प्रमाणों के अभाव में मियाँ मुस्तफा को प्रामाणिक मानने में संदेह होता है।

मीर कम्मोद खाँ–ग्रन्थकार कवि चन्द वरदायी ने पंगराज सभा का अदृश्य वर्णन में उपस्थित सरदारों में मीर कम्मोद खाँ का भी उल्लेख किया है–'कम्मोद षान जहान मार'।[1] यहीं पर हमें मीर कम्मोद खाँ का प्रथम परिचय प्राप्त होता है। कान्यकुब्जेश्वर के इस वीर सभासद ने संयोगिता अपहरण सम्बंधी पृथ्वीराज चौहान तथा जयचन्द के मध्य होने वाले युद्ध में अपूर्व पराक्रम एवं रण कुशलता का प्रदर्शन किया था। पृथ्वीराज के प्रसिद्ध सामन्त चन्दपुण्डीर तथा मीर कम्मोद खाँ का सामना होने पर वीर पराक्रमी चन्द पुण्डीर पराभव को प्राप्त हुआ–

वीर मीर कामोद आय, जव पुंडीर उप्पर।
विहय नेज उज्झारि, वाहि निझ्झाहि चदउर॥
सेल सेल समुहिय, हड्ड भजिय हिय दंपिय।
सुधर ढार निझ्झार, वाहि असुराइन कंपिय॥
पुंडीर राइ आसर सयन, भूत जिम नचिय समर।
दल मति पंग पुंडीर परि, जं जय सुर सद्दं अमर॥ छं० १४८७।[2]

चन्द पुण्डीर के पराभव के वाद पृथ्वीराज के सामन्त कूरम्भराय तथा पाल्हनराय भी मीर कम्मोदखाँ के हाथों वीरगति को प्राप्त हुए। अपार पराक्रम एवं रण कुशलता का परिचय देता हुआ मीर कम्मोद खाँ ने भी अष्टमी के युद्ध में वीर मार्ग का अनुशरण किया।

रूमीखाँ तथा वहरामखाँ—रूमीखाँ तथा वहरामखाँ यह दोनों वीर संयोगिता अपहरण सम्वंधी पृथ्वीराज तथा जयचन्द के मध्य होने वाले संग्राम में पांच लाख सेना का विषम दल लेकर इन यवन योद्धाओं ने पृथ्वीराज चौहान को जीवित पकड़ लाने का उद्योग किया था। इन दोनों योद्धाओं का नामोल्लेख गोरी के सहयोगी सरदारों के रूप में भी 'रेवातट समय २७' में वर्णित है किन्तु यहां पर यह कहना नितान्त असम्भव है कि उपर्युक्त योद्धा गोरी के सहयोगी हैं अथवा कवि कल्पना प्रसूत नवीन चरित्र—

षां मारुफ नवरत्ति खाँ, रूपमी षा वहराम।
षान मडि लीनी सुकर, सामि सपते काम॥ छं० १४४५।
पंच लष तिन सथ्थ किय, अनी वधि नृपराज।
गुन गोरी नन जानई, सामि ध्रम्म सौं काज॥ छं० १४४६।[3]

---

१. पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छ० ५४३, स० ६१।
२ वही छ० १४८७, स० ६१।
३. वही, छं० १४४५-४६, स० ६१।

यवन सेना का प्रचंड आक्रमण होने पर चौहान पृथ्वीराज के प्रसिद्ध सामन्त वीर पज्जूनराय ने दीर्घकाल तक उन दोनों योद्धाओं का सामना किया–

पंग हुकुम परमान, अग्र चौकी पुरसानिय।
प्रथम जुद्ध किय मीर, हाति किनही नहमानिय॥
परे मीर पथ्थार धार, असिवर सिर झारं।
सामंतनि लंमरिय, धाइ उट्ठी ग्रह सारं॥
समसथ्थ बाघ बघ्घेल नृप, जंग जोट कोटह अकल।
टारै न मुष्ष साइस छल, लोह लहरि बाजंत झल॥ छं० १४८४।[1]

ग्रन्थकार ने इन दोनों योद्धाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। अतः उपर्युक्त सूचना के अतिरिक्त तथा सामग्री अभाव के कारण इन्हें ऐसी स्थिति में विवश हो छोड़ना पड़ता है।

शाह शहाबुद्दीन मुईजुद्दीन सुल्तान गोरी–'पृथ्वीराज रासो' के धनकथा समय के अतर्गत गजनाधिपति शहाबुद्दीन गोरी के प्रारम्भिक जीवन पर कवि चन्द वरदायी ने प्रकाश डाला है। गोरी को पराजित कर पृथ्वीराज द्वारा वन्दी बना लेने के उपरान्त गजनी से उसे मुक्त कराने के अभिप्राय से एक प्रार्थना पत्र लेकर गोरी का सेवक लोरक आया। राज्यसभा के मध्य पृथ्वीराज चौहान ने दूत लोरक से गोरी का नाम का कारण जानने की जिज्ञासा की, जिसके उत्तर में सेवक लोरक ने सम्राट को गोरी के प्रारम्भिक जीवन की सूचना दी–असुरों के राज्य पर शाह जलालुद्दीन सिंहासनारूढ़ हुआ जो भयंकर कामुक था। उसके 'हेरम' में पांच सौ दस वेगमें थी किन्तु फिर भी भाग्य वश वह निःसन्तान था। निराश होकर वह शाह पीर निजाम की कृपा का आकांक्षी होकर उनकी सेवा में निरन्तर रत रहने लगा। अपनी निरन्तर सेवा से प्रसन्न होकर, शाह पीर ने शाह को श्रेष्ठ एवं प्रतापी पुत्र रत्न प्राप्ति की शुभाशीष दी, साथ ही यह भी कहा कि यह पुत्र चतुर्दिक असुर साम्राज्य को प्रसारित कर हिन्दुओं को भी विजित तथा निस्तेज करके दिल्ली साम्राज्य पर सूर्य की भांति तपेगा।

चिरकामना की फल प्राप्ति कर शाह जलालुद्दीन घर लौट तो आया किन्तु उसे पुनः चिन्ता ने घेर लिया, वह सोचने लगा, कहीं यह प्रतापी पुत्र मुझे ही मार कर राज्य का अधिकारी न बन जावे, तुरन्त ही एक वेगम के गर्भ धारण करने की सूचना पाकर शाह जलालुद्दीन ने माथा ठोक लिया तथा क्रोधावेश मे उसने उस वेगम को हरम से निकाल दिया। उक्त घटना को पाँच वर्ष ही व्यतीत हुए थे कि शाह का देहावसान हो गया। जलालुद्दीन की मृत्यु होने पर मंत्रियों को अपने शाह के लिए चिन्ता हुई। शाह जलालुद्दीन निःसन्तान ही मर गया, अब प्रश्न यह हुआ कि राजगद्दी का अधिकारी कौन हो? इस समस्या का समाधान शेख द्वारा हुआ, जिन्होंने गोर में रहने वाले एक अत्यन्त सुन्दर तेजस्वी बालक को सिंहासनारूढ़ करने का आदेश दिया–

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४८४, स० ६१।

गौरि दिखाई पान तिहि, ततपिन भंजीपांज।
निकरयौ सूरति सरास कौ, ज्योति मान महाराज॥ छं० ३२३।[1]

बालक का जन्म-पत्र बनवाने पर ज्ञात हुआ कि भविष्य में यही बालक शाह जलालुद्दीन से भी अधिक पराक्रमी होगा, इसकी जाति गोरी है तथा यह हिन्दोस्तान पर भी राज्य करेगा—

जोति रूप महाराज, साह ते प्रगट सवायौ।
षांना षांन जिहान, वेगि निज्जूमि बुलायौ॥
लिषिय जनम तिय लेष, सेष ततषिन इम मष्षौ।
नाम साह साहाव जाति, गोरी तिहि वष्षौ॥
बहुतेज तपत तप जग्गि है, धरा हिन्द सम लग्गिहै।
दसदिषा साह दौही फिरै, धन वीरारस भुग्गि है॥ छं० ३२५।[2]

रासो के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं होता कि शाह गोरी, शाह जलालुद्दीन द्वारा निकाली हुई गर्भवती बेगम के गर्भ से उत्पन्न था अथवा कोई अन्य बालक। इस विवेचन से इतनी सूचना अवश्य प्राप्त होती है कि शाह शहाबुद्दीन गोरी वंश क्रम से गद्दी पर नहीं बैठा था।[3]

रासो की उपर्युक्त कथा का ऐतिहासिक प्रमाण कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। श्री बृजविलास श्रीवास्तव गोरी को राज्य मिलने की कथा का राजा का देवी चुनाव नामक कथानक रूढ़ि के अन्तर्गत रखते हुए लिखते हैं कि—'प्रथम अध्याय में कथानक रुढ़ियों पर किए गए कार्य पर विचार करते समय 'पंच दिव्याधिवास' अर्थात दैवी शक्तियों द्वारा राजा के चुनावपर विचार किया गया है। शाहबुद्दीन का चुनाव भी बिल्कुल देवी तो नहीं पर इसी से मिलता जुलता है। + + + + पंच दिव्याधिवास द्वारा राजा के चुनाव में भी जो व्यक्ति राजा चुना जाता है वह प्रायः कहीं न कहीं का राजा अथवा राजपुत्र रहता है। होता यह है कि किसी विपत्ति के कारण विपन्नावस्था में वह इधर-उधर घूमता हुआ किसी ऐसे राजा के राज्य में पहुंच जाता है जिसकी ठीक उसी समय निःसंतान मृत्यु हो जाती है और मंत्रियों के सामने यह समस्या उपस्थित हो जाती है कि किसको राजा बनाया जाय। अधिवासित दिव्य पंचक (हाथी, अश्व, चामर, छत्र और कुम्भ या कभी कभी केवल हाथी) भी प्रायः किसी वृक्ष के नीचे सोये या ऐसे ही किसी स्थान पर पड़े व्यक्ति को राजा चुनते हैं।'[4]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ३२३, स० २४।
२ वही, छं० ३२५, स० २४।
३. साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित रासो में यह कथा नहीं है। धारणोज की अप्रकाशित प्रति भी इस विषय में सर्वथा मौन है।
४. बृजविलास श्रीवास्तव, पृथ्वीराज रासो की कथानक रूढ़ियाँ, पृ० ११५-११६।

इतना निर्विवाद सत्य है कि रासो की उपर्युक्त कथा में कल्पना का योग अवश्य है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार गोरी को राज्य प्राप्त होने की घटना का इस प्रकार वर्णन करते हैं—"गजनी के उत्तर में एक छोटे से राज्य का शासन अफगान सरदारों के हाथ में था जिसे 'गोर' कहते थे। तुर्क सुलतानों की निर्वलता से लाभ उठाकर सन्-११५० ई० में गोरी के सरदार अलाउद्दीन ने अपने को स्वतंत्र कर लिया तथा अवसर पाकर गजनी को भी जीत लिया। गजनी के शासन के लिए उसने अपने भाई शहाबुद्दीन गोरी को नियुक्त किया जो आगे चलकर गजनी का स्वतंत्र सुलतान बन गया।"[1] इसी प्रकार के विचार डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने भी व्यक्त किए हैं—उन्होंने लिखा है कि 'गोर' का पहाड़ी जिला गजनी तथा हिरात के बीच पहाड़ों में स्थित है। दसवीं शताब्दी में वह स्वतंत्र राज्य था। एक ताजिक दरबार के लोग जिनके पूर्वज ईसान से आए थे, वहाँ शासन करते थे। इतिहास में वे शसवनी वंश के नाम से विख्यात हैं। सन् १००९ ई० में महमूद गजनवी ने गोर के शासक मुहम्मद बिनसूर को परास्त किया और उसे अपना करद सामन्त बना लिया उस समय से गोर के शासक को गजनी की आधीनता में रहना पड़ा किन्तु महमूद की मृत्यु के बाद गजनी का पतन आरम्भ हो गया। 'गोर' राज्य ने इस स्थिति से लाभ उठाया। दोनों राज्यों के शासक वंशों में संघर्ष आरम्भ हो गया। गजनी के सुलतान बहराम ने गोर के राजकुमार मलिक कुतुबुद्दीन हसन का बध कर दिया। इससे कुपित होकर हसन के भाई सैफुद्दीन सूरी ने गजनी पर आक्रमण किया और बहराम को पराजित किया। झगड़ा बढ़ता गया और उसने एक पारिवारिक कलह का रूप धारण कर लिया। सैफुद्दीन के छोटे भाई अलाउद्दीन हुसेन ने गजनी को पूर्णतया जलाकर खाक कर दिया और जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, जहाँसोज के नाम से विख्यात हुआ। अलाउद्दीन ने सुल्जुक वंश के अन्तिम सम्राट संजर से भी युद्ध किया। संजर उस समय अनेक कठिनाइयों से घिरा हुआ था, इसलिए अलाउद्दीन नष्ट होने से बच गया। उसने बरमैन, तुर्किस्तान, जसम वुस्त तथा मुरगाँव नदी की घाटी के स्थित गरजिस्तान को जीत लिया। अपने शासन के अन्तिम दिनों में बलख, तुर्किस्तान और हिरात से उसे हाथ धोने पड़े। किन्तु राज्य के अन्य भागों पर उसका अधिकार कायम रहा। सन् ११६१ ई० में अलाउद्दीन की मृत्यु हो गई। उसका एक अन्य भाई सैयुद्दीन उत्तराधिकारी हुआ। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका चचेरा भाई गियासुद्दीन गोर की गद्दी पर बैठा। उसने गजनी पर जो उसके पूर्वजों के हाथों से निकल गई थी, पुनः अधिकार कर लिया और कुछ नए प्रदेशों को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। अपनी महत्वाकाक्षांओं के कारण वह ख्वारिज्म के शाह के विरुद्ध युद्ध में फंस गया। आरम्भ में गियासुद्दीन को कुछ सफलता मिली और खुरासान के पड़ोस के अनेक जिलों को भी उसने जीत लिया, किन्तु अन्त में अन्धखुद के युद्ध में उसकी जय हुई। उत्तर पश्चिम में उसने जो अनेक प्रदेश जीते थे, उनमें से केवल हिरात और बलख उसके अधिकार में रह गये।

---

१. डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ४१६।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोर के शासकों को उत्तर पश्चिम में अपनी आक्रमणकारी नीति से अधिक लाभ नहीं हुआ। इसीलिए उन्होंने भारत की ओर ध्यान दिया। गोर के मुहम्मद को गजनी का सूबेदार नियुक्त किया। मुहम्मद ने अपने बड़े भाई के साथ अच्छा सम्बंध कायम रक्खा और पूर्णरूप से उसके प्रति वफादार रहा। यद्यपि गजनी में वह स्वतंत्र शासक की हैसियत से राज्य करता था फिर भी उसने सिक्कों पर अपने भाई का नाम उत्कीर्ण कराया और उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा कि एक अधीनस्थ राजा को अपने प्रभु के प्रति करना चाहिए। यही मुहम्मद गोरी भारत पर आक्रमण करने वाला तीसरा मुसलमान नेता था।"[1] इन इतिहासवेत्ताओं का समर्थन करते हुए डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी ने भी ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं—'अलाउद्दीन गोर गजनी पर चढ़ आया और बहराम शाह को भगाकर उसने नगर को जलाने और निवासियों को तलवार के घाट उतारने की आज्ञा दी। इस क्रूरता के कारण अलाउद्दीन गोर का नाम 'जहांशोज' पड़ गया और वरबाद गजनी फिर न पनप सका। अलाउद्दीन गोर के जाते ही वहराम ने पुनः गजनी पर अधिकार कर लिया। सन् ११५७ ई० में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र खुसरोशाह गद्दी पर बैठा परन्तु उसके राजत्व काल में गज्ज (Ghazz) नामक तुर्की जाति ने गजनी को हथिया लिया। बादशाह लाहौर भाग गया और उसके पुत्र के बाद गजनवी वंश का नाम लेवा-पानी देवा कोई न रह गया। सन् ११७३ ई० में अलाउद्दीन गोर जहांशोज' के भतीजे गयासुद्दीन ने घज्जी (या गज्जों) से गजनी छीन कर अपने भाई मुईजुद्दीन को दे दी जिसे इतिहासकार मुहम्मद गोरी भी कहते हैं। सन् ११७४-७५ ई० में मुहम्मद गोरी ने भारत वर्ष पर आक्रमण करके खुसरो मलिक गजनवी से लाहौर तक का प्रदेश छीन लिया, सन् ११९२ ई० में थानेश्वर के युद्ध में दिल्ली-अजमेर के राजा को पराजित कर हिमालय से अजमेर तक का प्रदेश हस्तगत कर लिया। गयासुद्दीन के बाद मुहम्मद गोरी, गोर और गजनी का सुलतान हो गया। सन् १२०६ ई० में गोरी की हत्या हो जाने पर ख्वारजम के सुलतान मुहम्मद शाह ने गजनी को अपने राज्य में मिला कर उसका शासन प्रवन्ध अपने पुत्र जलालुद्दीन के हाथ में दे दिया।"[2]

यह तो हुआ गजनी एवं गोरी के प्रारम्भिक जीवन के विषय में, अब किंचित गोरी तथा पृथ्वीराज चौहान के मध्य हुए युद्धों की परिस्थिति पर भी विचार कर लिया जावे—ऐतिहासिक तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए सर्व प्रथम 'शाह शहाबुद्दीन गोरी ने अपने राज्य विकास की अभिलाषा से सन् ११७५ ई० में मुलतान पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की, सन् ११७६ ई० में ऊँचे फतह किया तथा सन् ११७८ ई० में पेशावर को जीत लिया। इस प्रकार शाह धीरे-

---

१. डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत पृ० ८४-८५, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० प्रा० लि०, आगरा, तृतीय संस्करण।

२. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, रेवातट, भौगोलिक प्रसंग, परिशिष्ट, पृ० ५८।

धीरे आगे बढ़ कर चौहान पृथ्वीराज की राज्यसीमा छूने लगा। पृथ्वीराज रासो के अनुसार शाह शहाबुद्दीन गोरी तथा पृथ्वीराज के मध्य इक्कीस बार युद्ध हुए जिनमें से वह पन्द्रह बार बन्दी बना कर मुक्त कर दिया गया तथा शेष पाँच बार परास्त होकर लौट गया। अन्तिम युद्ध में शाह गोरी की विजय हुई तथा उसने पृथ्वीराज चौहान को सदा के लिए अपने मार्ग से हटा दिया।

पृथ्वीराज रासो के अनुसार सुलतान का प्रथम युद्ध 'माधो भट्ट कथा' के अन्तर्गत वर्णित है। युद्ध का कारण कोई भयंकर कारण नहीं है। गोरी ने सुना कि पृथ्वीराज चौहान को दिल्ली का शासन प्राप्त हो गया है। शाहबुद्दीन को यह अच्छा न लगा। उसने दो लाख सेना लेकर पृथ्वीराज की राज्य सीमा का अतिक्रमण करने के लिए सिन्धु नदी पार की।[१]

युद्ध की कामना करने वाले चौहान पृथ्वीराज ने भी आक्रमण कर दिया। चौहान ने अपनी सेना शकट व्यूह मे खड़ी की। दाहिने भाग का भार, मंत्री कैमास तथा सेनानायक चामुण्डराय ने ग्रहण किया। इनकी अध्यक्षता में अन्य ४,००० सैनिक नीलवर्ण पताकाएं लिए हुए खड़े थे। शकट के ढांचे पर मारु महनसी तथा दोनों पहियों के स्थान पर मालदेव चन्देल तथा भोंहा क्रमशः खड़े थे।[२] वाम पार्श्व की सुरक्षा का भार नरनाह काका कन्ह को प्रदान किया गया तथा साथ में हरिसिंह, वरसिंह, हाड़ा हम्मीर, गम्भीर, मंडलीक मल्हन, भानराय भट्टी, उद्दिगपगार, तथा सारंगराय सोलंकी ये आठ प्रधान सामन्त तीन सहस्त्र अन्य सैनिकों के साथ आकर डट गए।[३] अग्रभाग में महाबली जैत्र प्रमार, लोहाना आजानबहु, सिंह प्रमार, सामला सूर. संजमराय चहुआन, ठंठरीराय. चांटा टाक तथा लोहाना का पुत्र जशधवल और उसका भाई केशवीसिंह था। इन सब सामन्तों का साथ देने के लिए अन्य पाँच सशस्त्र सैनिक और थे।[४] सेना के पृष्ठ भाग में जामदेव यादव, जिनका चामर, घोड़ा, पाखर, हाथी ढालें आदि सब श्माम वर्ण की थी, सुसज्जित होकर खड़े हुए तथा साथ में लंघरीराय, अल्हन प्रतिहार, अचलदास, वारडराय, जघारा भीम आदि भी थे।[५]

शाह शहाबुद्दीन गोरी की ओर से सेना में भाग लेने वाले प्रमुख योद्धा, धनुर्धर मीरशेखखाँ, मारुफखाँ, जम्मनखाँ, गजनीखाँ, महमूदखाँ, फतहजगखाँ हसमखाँ, कालेखाँ,

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २७-२८, स० १०।
२ वही, छं० ३१, स० १०।
३. वही, छं० ३३, स० १०।
४. वही, छं० ३४, स० १०।
५. वही, छं० ३५, स० १०।

अमानखाँ, धराशाही हुए तथा चामण्डराय ने शाह को वन्दी वना लिया।[१] युद्ध के अन्त में शाह गोरी आठ सहस्त्र घोड़े दण्ड स्वरुप देकर गजनी लौट गया।[२]

युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की सेना के चाचा कन्ह के तीन पुत्र भीमसिंह, मारवरदास, तथा श्यामदास, लोहाना का पुत्र जसधवल तथा भाई केशवीसिंह, विक्षराय का पुत्र रणवीर सोलंकी, प्रसगराय खींची का पुत्र सागर, पृथ्वीराज का भाई हरिराज सिंह, वीरसिंह प्रमार तथा उसका पुत्र नीलध्वज, लक्खन बघेल का पुत्र भीम तथा एक हजार अन्य हिन्दू और अट्ठारह हजार मुसलमान धराशायी हुए।[३]

द्वितीय युद्ध 'हुस्सैन कथा' समय में वर्णित है। कवि के अनुसार इस युद्ध का मूल कारण शाह शहाबुद्दीन गोरी का भाई हुस्सैन शाह था। हुस्सैनशाह, शाह गोरी की परम प्रिय चित्ररेखा को लेकर पृथ्वीराज के दरवार में आ रहा। अतः गोरी ने पृथ्वीराज पर कुपित होकर आक्रमण कर दिया।[४] सारुंडे के मैदान में दोनों दल आ उपस्थित हुए। पृथ्वीराज की ओर से समीखाँ, कम्माखाँ, हुस्सैनवेग, दलेलखाँ, कासिमखाँ, करीमखाँ, तथा खोजा कासिम आदि वीरों ने भाग लिया।[५] इन वीरों के अतिरिक्त जामराय यादव, मोहनसी प्रतिहार, रामराय वड़गुज्जर, टीकमराय, नारेनराय, देवराय वग्गरी का पुत्र तथा प्रसंगराय खीची का पुत्र मंडलीक भी सेना के वाम पक्ष में उपस्थित थे।[६] सेना के दक्षिण भाग पर वीर कैमास की अध्यक्षता में चामण्डराय, चन्दसेन पुण्डीर, सिंघ प्रमार गोविन्दराय, पहाड़राय तोंवर तथा चार हजार अन्य सैनिक उपस्थित हुए।[७] हरावल में गोविन्द चहुआन, बड़गुज्जर तथा पाँच सहस्त्र सेना खड़ी हुई।[८] दोनों दलों में घोर संग्राम हुवा। शाह गोरी को वीर चामण्डराय ने मत्री कैमास की सहायता से वन्दी वना लिया। युद्ध में शाह के सामन्त गाजीखाँ, नाजीखाँ तलवार के घाट उतार दिए गए तथा मीर मामखाँ, कम्मानखाँ, आरवखाँ, आदि भाग निकले।[९] युद्ध भूमि में पृथ्वीराज के सामन्त मंडलीक खीचीं, टीकमराय अपने युवा भाई के

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ५२-५३, स० १०।
२. वही छं० ५८, स० १०।
३. वही छं० ५४-५६, स० १०।
४. वही, हुस्सैन कथा समय, ११।
५. वही, छं० ५०, स० ११।
६ वही छं० ५३, स० ११।
७. वही, छं० ५४ स० ११।
८. वही छं० ५५, स० ११।
९ वही, छं० ६६-६७, स० ११।

साथ मारा गया। शाह गोरी को पाँच दिन वन्दी बना कर हुस्सैन के पुत्र गाजी हुस्सैन को देकर विदा किया।[1]

शाह शहाबुद्दीन गोरी तथा पृथ्वीराज का तृतीय युद्ध 'आखेट चूक समय' के अन्तर्गत वर्णित है। दो बार परास्त हो चुकने के उपरान्त शाह ने भेद नीति से शत्रु पर विजय प्राप्त करने के अभिप्राय: से रावखमी से सूचना पाकर कि पृथ्वीराज चौहान खट्टू वन में मृगया में मस्त है, शाह ने खट्टू वन को घेर लिया। खट्टू वन में पृथ्वीराज के साथ केवल उनके विश्वास पात्र पाँच सामन्त-सलख प्रमार, कन्ह चहुआन, रघुवंशी रामराय, कनकराय वड़गुज्जर तथा वीर नृसिंह चालुक्य थे। शाह की सेना इन पाँच सामन्तों के प्रखर प्रहारों के समक्ष न ठहर सकी, इतने में ही पृथ्वीराज के अन्य सैनिक जो शिविर में थे, आ गए जिससे शाह गोरी को प्रत्यावर्तित होना पड़ा। इस युद्ध में शाह का मीर वाजिन्दखाँ को वीर लघरीराय द्वारा बन्दी बना लिया गया तथा पृथ्वीराज का सामन्त नृसिंह चालुक्य वीरगति को प्राप्त हुआ।[2]

शाह गोरी ने एक बार पुन: छिप कर पृथ्वीराज चौहान को परास्त करने के लिए आक्रमण किया। 'पद्मावती समय' के अन्तर्गत पृथ्वीराज चौहान समुद्र शिखर गढ़ की राजकुमारी पद्मावती का अपहरण कर दिल्ली की ओर जा रहे थे कि इतने में ही शाह गोरी ने पृथ्वीराज का मार्ग अवरुद्ध कर लिया। युद्धोपरान्त पृथ्वीराज की विजय हुई तथा शाह को वन्दी बना कर पुनः छोड़ दिया गया।[3]

गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का पांचवाँ युद्ध 'सलषयुद्ध समय' में वर्णित है। यह युद्ध सारुंड़े के रणक्षेत्र में आनन्द संवत् ११४४ के कुछ समयोपरान्त हुआ था।[4] इस युद्ध का मूल कारण भोलाराय भीमदेव चालुक्य है, उसने सलष प्रमार के किसी दुर्ग पर अपना अधिकार करके शाह गोरी को अपने दूत सारंगदेव मकवाना को भेज कर युद्ध हेतु पृथ्वीराज के विरुद्ध आमंत्रित किया किन्तु सुलतान ने यह निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया।[5] दिल्लीपति पर इस बार दो पक्षों से आक्रमण हुए। गुर्जरेश्वर भोलाराय भीमदेव अपनी सेना लिए हुए युद्ध हेतु प्रस्तुत था ही। शाह गोरी भी अपनी पन्द्रह हजार सैनिकों की विशाल वाहिनी लेकर आ डटा। इतने में ही रामराय बड़गुज्जर अचानक ८,००० सैनिकों को लेकर आ

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ७२, स० ११।
२. वही, आखेट समय १२।
३. वही, छं० २५, स० १७।
४. वही, छं० १, समय २१।
५. वही, छं० ३५-३७, स० २१।

उपस्थित हुआ।[१] इतने में ही पाँच सौ लोहाने योद्धाओं के साथ आजानवाहु द्रोणाचार्य के सदृश्य गुरु राम तथा काका कन्ह भी आकर सम्मिलित हो गए।[२] तीन घड़ी रात्रि व्यतीत होने पर पज्जूनराय भी सेना में आ मिला।[३] दोनों दलों में घोर संग्राम हुआ। शाह की सेना परास्त हो गई तथा सुल्तान गोरी वीर सलषराज द्वारा वन्दी बना लिया गया। इस भीषण नर संहार यज्ञ में भटनेर के राजवंशी सिंह ने अपने प्राणों की आहुति दी।[४] शाह का प्रसिद्ध सामन्त अहमदखाँ वीरगति को प्राप्त हुआ।[५] मंत्री तातारखाँ खुरासानखाँ, रुस्तम खाँ आदि योद्धा घायल हुए तथा शाह को वन्दी देखकर रणक्षेत्र छोड़कर भाग गए। शाह ने भी दंड देकर मुक्ति पाई तथा गजनी चला गया।[६]

छटी बार सुलतान गोरी तथा पृथ्वीराज की सेना 'खट्टू वन' में एक दूसरे के समक्ष युद्ध करती हुई दृष्टिगोचर होती है। नागौर से दो कोस पर रावल समरसिंह अपनी सेना लिए हुए पड़े थे।[७] शाह गोरी, पृथ्वीराज को छोड़कर रावल समरसिंह से जा भिड़ा। दूसरे दिन पृथ्वीराज को ज्यों ही सूचना मिली त्यों ही उसने शाह की सेना को घेर लिया। विषम युद्ध प्रारम्भ हो गया। पुंज पहाड़ ने वीर गति प्राप्त की। पुंज पहाड़ के गिरते ही लक्खर पुण्डीर ने जो चन्द पुण्डीर का भाई था, ने मोर्चा सम्भाला।[८] जब यह वीर भी वीर-गति को प्राप्त हो गया तो रावल समरसिंह स्वयं उसके स्थान पर आकर युद्ध करने लगे।[९] रावल समरसिंह के विकट युद्ध के परिणाम स्वरूप गोरी के प्रसिद्ध सेना नायक याकूबखाँ, कलीखाँ, कुन्जरखाँ, कुलहखाँ आदि वीर पराभव को प्राप्त हुए।

द्वितीय दिवस प्रातः काल गोरी का सेना नायक अरबखाँ, रावल समरसिंह के सामने आया। अरबखाँ के गिरते ही खुरासान खाँ ने आकर सामना किया। किन्तु वह भी शीघ्र ही पीछे हट गया। रावल समरसिंह तथा पृथ्वीराज ने शीघ्र ही गोरी को जा घेरा। पृथ्वीराज ने अलीखाँ, आलमखाँ, असदखाँ, शरीफखाँ तथा सलीमखाँ, इन पाँच योद्धाओं का कल्याण किया। इन वीरों के गिरते ही सेना में खलबली मच गई। तातारखाँ भी घायल हो गया।

---

१. पुनि गुज्जर वलि वड, लौह अनडड निडंडन।
अट्ठ सहस हसवार सार पाहार प्रव्रतिय॥ छं० १८, स० २१।
२. वही, छं० ४१, स० २१।
३. वही, छं० २३, स० २१।
४. वही, छं० ७६, स० २१।
५. वही, छं० ५०, स० २१।
६. वही, छं० ७६ स० २१।
७. वही, छं० २५, स० २२।
८. वही, छं० ३८, स० २२।
९ वही, छं० ४८ स० २२।

युद्ध में पृथ्वीराज तथा शाह गोरी का मुकाबला हुआ जिसमें गोरी के अंगों में अनेक घाव आए। इतने में ही रावल समरसिंह ने गोरी को वन्दी वना लिया।[1]

सुल्तान एवं चौहान का सातवां युद्ध रेवा नदी के तट पर हुआ। वीर पृथ्वीराज मृगया हेतु वनों में भटक रहा था। गोरी ने दिल्ली को खाली जानकर चिनाव नदी पार कर पृथ्वीराज की सीमा का अतिक्रमण किया किन्तु शाह का उचित स्वागत करने के लिए चन्द पुण्डीर पहले से ही वहां डटा खड़ा था। अतः गोरी को प्रथम चन्द पुण्डीर का ही सामना करना पड़ा। इस युद्ध में चन्द पुण्डीर की पराजय हुई तथा उसके पांच भाई स्वामिधर्म की रक्षा करते हुए सदा के लिए सो गए।[2] अब शाह की सेना ने अग्रसर होकर पृथ्वीराज चौहान का सामना किया। युद्ध भूमि में कछवाहा नृसिंह तथा जैत प्रमार का छोटा भाई वीरगति को प्राप्त हुआ।[3] विषम संग्राम के उपरान्त शाह गोरी वन्दी वना लिया गया तथा शरणागत वत्सल पृथ्वीराज चौहान ने पुनः उसके अपराध को क्षमा करके मामूली सा दण्ड लेकर मुक्त कर दिया।[4]

सुल्तान तथा पृथ्वीराज चौहान का आठवां संग्राम सोनपुर के रणक्षेत्र में सम्पन्न हुआ। इस वार सुल्तान को पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल ने युद्ध हेतु आमंत्रित किया था। अनंगपाल ने शाह का स्वागत किया तथा दोनों की सम्मिलित वाहनी रणक्षेत्र में आ उपस्थित हुई। सेना के अग्र भाग में तातारखां, बांई दिशा में मारुफखां, दाहिनी ओर खुरासानखां अपनी-अपनी सेनाए लेकर खड़े हो गए तथा मध्य भाग में राजा अनगपाल तथा पृष्ट भाग में स्वयं गोरी खड़ा हुआ।[5] शाह की विशाल वाहनी को इस प्रकार व्यूह में खड़ा देखकर चौहान पृथ्वीराज ने अपनी सेना सर्प व्यूह में खड़ी की, जिसके अग्र भाग पर मंत्री कैमास तथा पृष्ट भाग पर सेना नायक चामण्डराय खड़े हुए।[6] निदान दोनों सम्मिलित वाहिनियों की भी कुछ न चली। शाह तथा राजा अनंगपाल दोनों ही वन्दी वना लिए गए। वीस हाथी, सौ घोड़े तथा एक लाख स्वर्ण मुद्राएं दण्ड स्वरूप देकर, शाह गोरी ने गजनी का मार्ग ग्रहण किया।[7]

सुल्तान मुहम्मद गोरी का नवां युद्ध पंजाब में पेशावर के पास सोन नदी के तट पर

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ९२-९३, स० २२।
२. वही, छं० ३१, स० २५।
३. वही, छं० ५५, स० २५।
४. वही, छं० ७२, स० २५।
५. वही, छं० ५८, स० २६।
६. वही, छं० ५९, स० २६।
७. वही, छं० ७१, स० २६।

हुआ था। 'रासो' में यह युद्ध घघर की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है। वीर पृथ्वीराज ने साठ हजार अश्वरोहियों को साथ लेकर टीला नामक पहाड़ की भूमि को जा दबाया।[1] सीमा का अतिक्रमण देखकर शाह गोरी भी पाँच लाख सैनिकों को साथ लेकर युद्ध हेतु आ उपस्थित हुआ।[2] शाह ने अपनी सेना को 'हथ पान' व्यूह में खड़ा किया। तातारखाँ, खुरासानखाँ, निसुरत्तखाँ तथा स्वयं शाह ने सेना के प्रमुख भागों की सुरक्षा का भार सम्भाला।[3]

चौहान पृथ्वीराज ने जैत प्रमार को सेनापति का उत्तरदायित्व पूर्ण भार सौंप कर अपनी समस्त सेना को 'गरुड़ व्यूह' में खड़ा किया। गरुड़ के पंख स्थान पर पृथ्वीराज, चोंच स्थान पर वीर चामुण्डराय, ग्रीवा स्थान पर वीर अत्ताताई, पैरों के स्थान पर गोविन्दराज, पूंछ भाग पर कन्ह चौहान तथा उदर स्थान पर जैत प्रमार यम सदृश्य कर्तव्य निष्ट होकर खड़े हुए।[4] नरनाह चाचा कन्ह की आँखों की पट्टी खोल दी गई। नरनाह ने ऐसा भीषण युद्ध किया कि देखने वाले दंग रह गए। अन्ततोगत्वा शाह चाचा कन्ह द्वारा बंदी बना लिया गया।[5] शाह को पुनः मुक्त कर दिया गया, लोहाना स्वयं शाह को गजनी तक छोड़ने गया। शाह ने एक-एक हाथी तथा एक-एक घोड़ा पृथ्वीराज के सामन्तों को भी प्रदान किया।[6]

दसवीं बार सुल्तान गोरी तथा पृथ्वीराज का मुकाबला 'देवास कथा (पीपायुद्ध) समय २९' में पृथ्वीराज से हुआ। जब पृथ्वीराज सेना को सुसज्जित कर देवास की ओर व्याह-विनोद की कामना से अग्रसर हुआ ही था कि जयचन्द की सहायता से गोरी ने मार्ग अवरुद्ध कर लिया।[7] फिर क्या था, हिन्दू वीरों में उत्साह भर गया। पृथ्वीराज की सेना के अग्रभाग में चाचा कन्ह, वायीं ओर गोविन्दराय, दाहिनी ओर जैतप्रमार, पृष्ट भाग में जामराय यादव, तथा मध्य भाग में स्वयं पृथ्वीराज व्यूह बना कर खड़े हुए।[8] इस संग्राम में वीर पीपा ने विशेष पराक्रम का प्रदर्शन किया। पीपा का उपद्रव देखकर शाह ने अपने सेना नायक तातारखाँ, खुरासानखाँ, मारुफखाँ तथा हसमखाँ भोरी को प्रचारा। निदान वीर तातारखाँ मतवाले हाथी के सदृश्य रण प्रांगण में कूद पड़ा। भयंकर युद्ध करते हुए

---

१. पृथ्वीराज रासो साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १, स० २७।
२. वही, छं० ९, सं० २७।
३. वही छं० १५, स० २७।
४ वही, छं० १३-१७, स० २७।
५. वही, छं० २६, स० २७।
६. वही, छं० ३३ तथा ४३, स० २७।
७ वही, छं० ७, स० २९।
८. वही, छं० १४, स० २९।

पीपा प्रतिहार ने शाह को बन्दी बना लिया।[1] दण्ड में आठ सहस्त्र घोड़े लिए गये जिनमें एक हजार चाचा कन्ह को, एक हजार चन्द पुण्डीर को, एक हजार जैतराय को, एक हजार गोविन्दराय को, एक हजार जामराय यादव को, एक हजार चन्द वरदायी को तथा दो हजार पीपा प्रतिहार को दिए तथा स्वयं पृथ्वीराज चौहान ने अपने लिए कीर्ति ही सुरक्षित रखी।[2]

ग्यारहवीं बार 'जैतप्रमार समय ३२' में सुल्तान गोरी तथा पृथ्वीराज का मुकाबला हुआ। युद्ध का कारण, शाह ने पृथ्वीराज से, अपना दूत भेजकर पंजाब का भू-भाग तथा गाजी हुसैन को मांगना था। पृथ्वीराज के मना करने पर युद्ध असम्भावी हो गया।

आजानबाहु ने मारुफखां तथा उसमानखां को धराशायी किया। सारंगदेव सांखला, युवक वीर पंचामन अजमेरपति केसरी गौड़, घायल होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।[3] द्वितीय दिवस शाह मुहम्मद गोरी वंदी बना लिया गया।[4] बारहवां युद्ध सुलतान मुहम्मद गोरी तथा पृथ्वीराज के मध्य पज्जून चालुक्य समय ३७' में वर्णित है। ग्रन्थकार ने इस युद्ध में भीमदेव तथा पृथ्वीराज के युद्ध का वर्णन किया है।[5] किन्तु कवि ने संकेत किया है कि वीर चालुक्य, कमधज्ज तथा गोरी तीनों की सम्मिलित वाहिनी से पृथ्वीराज के सामन्त पज्जून कछवाही को टक्कर लेनी पड़ी—

काल-व्याल सुरतान दल, कमध सु पंखय कूट।
हरि वाहन पज्जून दल, ते सजि धाए ऊठ॥ छं० ७।[6]

इस समय के अन्तर्गत अन्य विस्तृत सूचना प्राप्त नहीं होती है।

तेरहवां संग्राम 'कैमास युद्ध समय ४०' के अन्तर्गत वर्णित है। एक दिन शाह ने अपने मंत्री तातारखां से मंत्रणा की, कि पृथ्वीराज पर आक्रमण करना चाहिए। अतः शाह ने तीन लाख अश्वारोहियों के साथ पृथ्वीराज को खट्टू वन में आ घेरा। सुल्तान ने अपनी सेना को पाँच भागों में विभाजित कर आनन्द सम्वत् ११४० में चौहान पृथ्वीराज का मुकाबला किया।[7] भयंकर संग्राम के मध्य मंत्री कैमास तथा चामुण्डराय दोनों वीर भाइयों ने शाह को घेर लिया। चामुण्डराय ने सुलतान का हाथी मार गिराया तथा कैमास ने लपक कर

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३५, स० २९।
२. वही, छं० ४०, स० २९।
३. वही, छं० १९, स० ३२।
४. वही, छं० २३, स० ३२।
५. वही, छं० २-३, स० ३७।
६. वही. छं० ७, स० ३७।
७. वही, छं० २७, स० ४०।

सुल्तान को पकड़ लिया और बन्दी बना लिया।[१] बारह हाथी तथा आठ हजार अश्व दण्ड स्वरुप लेकर शाह को पुनः मुक्त कर दिया गया तथा सुल्तान गजनी लौट गया।[२]

चौदहवाँ युद्ध 'पहाड़राय समय ४२' में वर्णित है। शाह ने अपने मंत्रियों से मंत्रणा कर धर्मायन कायस्थ को एक पत्र लिखा कि वह अपने राजा पृथ्वीराज चौहान को आक्रमण की सूचना दे दे। इस युद्ध में स्वयं पृथ्वीराज चौहान ने नेतृत्व ग्रहण किया। वीर चामुण्डराय, जैत प्रमार, पज्जूनराय तथा कनकराय वड़गुज्जर ने शाह के पाँच मुख्य मीरों को धराशायी किया।[३] अन्ततोगत्वा पहाड़राय ने सुलतान की सेना को विचलित कर दिया तथा शाह को बन्दी बना लिया।[४] शाह को बन्दी बना कर दिल्ली ले जाया गया, जहाँ पर छः हाथी, सात हजार अश्व तथा एक लाख स्वर्ण मुद्राएं दण्ड स्वरूप देने पर शाह को पुनः मुक्त कर दिया गया।[५]

गजनीपति शाह गोरी तथा पृथ्वीराज चौहान के मध्य पन्द्रहवाँ युद्ध 'हाँसी प्रथम युद्ध' तथा 'हाँसी द्वितीय युद्ध' नाम के समयों में वर्णित है। महाराज पृथ्वीराज चौहान बालुकाराय कमधज्ज को मार कर मृगया हेतु वनों में विचरण करने लगे। पृथ्वीराज के बहुत से सामन्त हाँसी दुर्ग में रहते थे।[६] अतः चौहान पृथ्वीराज की शक्ति बिखरी हुई थी, इस उचित अवसर का लाभ उठा कर शाह ने एक चाल चली कि हम अपनी बेगमों को उसी मार्ग से निकालेंगे, यदि सामन्तों ने कुछ कहा तो उन्हें सरलता से मार लिया जावेगा।[७] किन्तु शाह की योजना सफलीभूत न हो सकी। सामन्तों ने उनकी बेगमों को लूट लिया जिसके परिणाम स्वरुप शाह क्रोधित हो असंख्य सेना लेकर हाँसी दुर्ग पर टूट पड़ा।[८] शाह ने दस मील की दूरी पर अपना शिविर लगा लिया। शाह की विशाल सेना देखकर पृथ्वीराज के समस्त सामन्तों के होश उड़ गये। किन्तु फिर भी सामन्तों ने तिरछे होकर खड्ग चलाना प्रारम्भ किया।[९] अन्ततोगत्वा हमेशा की भाँति इस बार भी शाह गोरी को पराजित होकर लौटना पड़ा तथा सामन्तों की विजय हुई—

१, पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ५७, स० ४०।
२. वही, छं० ५९, स० ४०।
३. वही, छं० ४०, स० ४२।
४. वही, छं० ४८, स० ४२।
५. वही, छं० ४९, स० ४२।
६. वही, छं० २, स० ४९।
७. वही, छं० ८, स० ४९।
८. वही, छं० १३ तथा २९, स० ४९।
९. वही, छं० ४८, स० ४९।

मट्टय जित्ति सामंत, सेन भग्गी सुरतानह।
अप्प सूर सब कुसल, खित्ति रक्खी चहुआनह॥
उभै सहस परि मीर, सहस दस बाज प्रमान।
परिय दंति सत एक, करिय अच्छरि वर गानं॥

जै जया सद्द आयास हुअ, धाव सूर श्रोरी धरिय।
वित्तयौ कलह भारत्य जिम, कही चन्द छंदह करिय॥ छं० ४९।[1]

युद्ध में शाह की सेना की रसद एवं अन्य सम्पत्ति लूट ली गई जिससे शाह को तातारी एवं खुरासानी सेना से विश्वास उठ गया।[2]

शाह गोरी अपनी इस पराजय को न भूल सका। अतः उसने एक विशाल सेना को आठ भागों में विभाजित कर हाँसी दुर्ग पर पुनः आक्रमण किया। पृथ्वीराज के प्रसिद्ध १०६ सामन्तों में से निड्डुरराय, हरिसिंह, वीर मौहा, नरसिंह, बड़ा गोविन्दराय, रामराय बडगुज्जर, ब्राह्मराय, नरसिंह दाहिम, सगर गौड़ तथा सारंगदेव आदि योद्धाओं ने शाह की सेना का सामना किया।[3] प्रमार देव अपार रण कौशल दिखाता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ किन्तु उसके कमंध ने उठकर शाह की सेना को विचलित कर दिया।[4] वीर अलीखां ने कमंध के गिरते ही दुर्ग को घेर लिया जिससे सभी सामन्त दुर्ग में बन्दी हो गए। इतने में ही रावल समरसिंह की सहायता प्राप्त कर पृथ्वीराज भी हाँसी सहायतार्थ आ पहुंचा। घोर संग्राम के उपरान्त शाह गोरी को परास्त होना पड़ा तथा विवश होकर हाँसी दुर्ग का घेरा छोड़ कर पीछे हटना पड़ा।

सोलहवाँ युद्ध शाह गोरी तथा पृथ्वीराज चौहान की सेना के मध्य महोवा में हुआ था। पिछली बार कछवाहों की मार खा कर सुल्तान को युद्ध भूमि से पीछे हटना पड़ा था। अतः महोबा पर पज्जून कछवाहा का अधिकार सुनकर शाह ने आक्रमण हेतु तातारखाँ, निसुरत्तखाँ, मौजदीन की अध्यक्षता में भेजे।[5] शाह के आक्रमण की सूचना पाकर पज्जून ने पृथ्वीराज से सहायता की याचना की किन्तु सहायता आने के पूर्व ही पज्जूनराय को शाह की सेना से मुकाबला करना पड़ा। पज्जूनराय के पुत्र मलयसिंह तथा बलिभद्र ने शाह की सेना को विचलित कर दिया।[6] इसी बीच मौहिल के सभापतित्व में दिल्ली से सहायता आ गई।

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ४९, स० ४९।
२. वही, छं० १, स० ५०।
३. वही छं० ९, स० ५०।
४. वही, छं० २३, स० ५०।
५. वही, छं० ३, स० ५१।
६, वही, छं० २०, स० ५१।

चाचा कन्ह तथा वीर कल्हन आदि के विकट संग्राम को देखकर शाह की सेना को विवश होकर महोबा का मोर्चा छोड़कर भागना पड़ा।[1]

मुहम्मद गोरी तथा चौहान पृथ्वीराज का सत्रहवाँ युद्ध 'पज्जून-पातशाह समय ५२' के अन्तर्गत वर्णित है। पृथ्वीराज ने सीमा के नागौर दुर्ग का प्रबन्ध सामन्त पज्जूनराय को सौंप दिया था। शाह को सूचना प्राप्त होने पर, उसने पज्जूनराय से आत्म समर्पण करने के लिए कहा।[2] किन्तु पज्जून ने विरोचित उत्तर दिया कि 'पज्जून से इस प्रकार की आशा करना व्यर्थ है।' निदान युद्ध-वाद्य बज उठे। सामन्त वीरम्मराय तथा वलिभद्र ने शाह की सेना को भयकर संग्राम कर विचलित कर दिया। मंत्री तातारखाँ तथा मारुफखाँ घायल होकर खून में डूब गए, अन्त में शाह, मलयसिंह नामक सामन्त के हाथो बन्दी बना लिया गया।[3] पृथ्वीराज ने शाह से एक सहस्त्र अश्व, पन्द्रह शक्ति शाली हाथी दण्ड स्वरूप लेकर उसे मुक्त कर दिया।[4]

सुल्तान गोरी तथा पृथ्वीराज का अठारहवाँ युद्ध 'दुर्गा केदार समय ५६' में वर्णित है। पृथ्वीराज चौहान ने अपने मंत्री कैमास का वध करनाटी वेश्या के कारण कर दिया था। अतः वह अपने सुयोग्य मंत्री के अभाव के कारण प्रायः दुःखी रहा करता था। सामन्तों ने मिलकर मन वहलाव हेतु, मृगया का प्रस्ताव रक्खा। प्रस्ताव को स्वीकार कर दिल्लीपति चौहाद पृथ्वीराज ने पानीपत में अपना शिविर लगाया।[5] शाहबुद्दीन को सूचना मिलने पर उसने भी पानीपत के दस कोस पहले ही अपने शिविर लगवा लिए। रात्रि में सब मीर उमरावों से मंत्रणा कर प्रातः गोरी ने युद्ध वाद्य बजवा दिए। पृथ्वीराज ने भी रण वाद्यों में फूंक भरी। पृथ्वीराज के वीर सामन्त लोहाना आजानबाहु ने शाह गोरी के हाथी को घायल कर दिया, अतः शाह के गिरते ही पहाड़राय ने उसे वन्दी बना लिया।[6] उदार हृदय पृथ्वीराज ने दण्ड लेकर इस बार भी शाह को मुक्त कर दिया तथा दण्ड में लिए गये सामान का आधा भाग पहाड़राय को तथा शेष अन्य पाँच सामन्तों, जामराव यादव, भोहा चन्देला, लोहाना आजानबाहु, उद्दिगपगार तथा विझा चालुक्य को बाँट दिया।[7]

उन्नीसवाँ संग्राम शाह शहाबुद्दीन गोरी तथा पृथ्वीराज के मध्य 'धीर पुण्डीर समय ६०'

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २४, स० ५१।
२. वही, छं० ११, स० ५२।
३ वही, छं० १९, स० ५२।
४. वही छं० २७, स० ५२।
५. वही, छं० २९, स० ५६।
६. वही, छं० १०३ स० ५६।
७ वही, छं० १०७, स० ५६।

में वर्णित है। अब तक पृथ्वीराज के प्रधान सामन्त कन्नौज युद्ध में धराशायी हो चुके थे। सामन्तों में मन-मुटाव भी हो गया था। इस प्रकार से पृथ्वीराज की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। अतः इस अवसर का लाभ उठाकर शाह ने पृथ्वीराज पर पुनः आक्रमण कर दिया। युद्ध के प्रथम दिवस ही पुण्डीर ने शाह के हाथी की सूंड़ काट डाली जिससे शाह अपने हाथी से नीचे गिर पड़ा तथा पुण्डीर ने उसे बन्दी बना लिया।[१] सुल्तान की शेष सेना जान बचा कर भाग गई।[२] उदार हृदय पृथ्वीराज चौहान ने इस बार भी उदारता दिखाकर शाह से दस हजार अश्व लेकर मुक्त कर दिया।[३]

पृथ्वीराज शाह शहाबुद्दीन गोरी के निरन्तर आक्रमणों से परेशान हो गया था। कन्नौज युद्ध में उसके अनेक प्रसिद्ध एवं पराक्रमी योद्धा वीरगति प्राप्त कर चुके थे। धीर पुण्डीर को लेकर सामन्त वर्ग में असन्तोष की लहर दौड़ रही थी। पृथ्वीराज चौहान संयोगिता के प्रेम में इतना मस्त था कि उसे राज्य कार्य का भी ध्यान शेष न रह गया था। ऐसा अनुकूल वातावरण देखकर एक बार पुनः शाह ने अपनी किस्मत आजमाने का प्रयत्न किया। फिर सामन्त वर्ग शक्ति क्षीण होने के कारण पृथ्वीराज को संधि करने के लिए बाध्य कर कर रहे थे किन्तु रावल समरसिंह से मंत्रणा करने पर उन्होंने युद्ध करने का ही परामर्श दिया।[४] रावल को दृढ़ प्रतिज्ञ जानकर पृथ्वीराज ने चामुण्डराय की बेड़ियाँ काट दी तथा मृत्यु प्राप्त सामन्तों के पुत्रादि भी युद्ध हेतु पृथ्वीराज के झण्डे के नीचे एकत्र हो गए।[५] मंत्री कैमास का पुत्र प्रतापसिंह भी पृथ्वीराज से आ मिला।[६] बचे-खुचे सामन्तों ने भी मंत्रणा करके युद्ध हेतु प्रस्थान किया। कवि चन्द सहायतार्थ जालंधर के सामन्त हाहुली हम्मीर को लेने गया था।[७] किन्तु हम्मीर ने कवि चन्द को छल करके जालधरी देवी के मंदिर में बन्द कर दिया तथा स्वयं सुल्तान से जा मिला। शाह ने प्रसन्न होकर उसे मुल्तान का राज्य देने का वचन दिया।[८] शाह सुल्तान गोरी दस हजार अपनी स्वयं की सेना तथा पच्चीस हजार सेना जो अन्य सामन्तों द्वारा सहायतार्थ आई थी, उनको कई भागों में विभाजित करके झेलम नदी पार कर, सोन नदी के निकट पहुंचा।[९] इधर पृथ्वीराज चौहान की सेना

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ८१-८२, स० ६०।
२. वही, छं० ८६, स० ६०।
३. वही, छं० ९५, स० ६०।
४. वही, छं० ७८, स० ६१।
५. वही, छं० ८२, स० ६१।
६. वही, छं० १०५, स० ६१।
७. वही, छं० १८४, स० ६१।
८. वही, छं० २०२, स० ६१।
९. वही, छं० २३०-३५, स० ६१।

भी युद्ध भूमि में सामना करने के लिए आ उपस्थित हुई। सेना का दक्षिणी भाग रावल समरसिंह के अधिकार में था।[1] जैत प्रमार इस संग्राम में सेनापतित्व का उत्तरदायित्व पूर्ण भार संभाले हुए था।[2] शनिवार के दिन युद्ध भेरी बज उठी। रावल समरसिंह ने अपनी सेना को गिद्ध व्यूह में खड़ा करके, पक्ष भाग पर बलिभद्र कछवाहा तथा जामराय यादव, चंचु तथा ग्रीवा भाग पर पावस पुण्डीर, पैर तथा पिंड पर स्वयं रावल समरसिंह. पुच्छ भाग पर मोहनसी भारु तथा पृथ्वीराज बाएँ अंग पर रहे।[3] शाह की सेना अर्ध चन्द्राकार व्यूह बना कर खड़ी हुई। सेना के अग्र भाग में मंत्री तातारखाँ, खनिखाँ, मारुफखाँ, खुरेशखाँ, रुस्तमखाँ आदि योद्धा थे तथा इन्हीं वीरों के पीछे देश द्रोही हाहुलीराय हम्मीर खड़ा था। हम्मीर ने युद्धारम्भ किया। पराक्रमी पावस पुण्डीर ने लपक कर अन्य सामन्तों की सहायता से हम्मीर का सिर अपनी बर्छी से छेद दिया।[4] हम्मीर को गिरता देखकर तातारखाँ ने अपनी सेना आगे बढ़ाई तथा इतनी भयंकर मार-काट की कि हिन्दू योद्धा व्याकुल हो उठे। सेनानायक कन्ह ने उसको विदीर्ण कर दिया किन्तु निसुरत्तखाँ ने मरते-मरते अपनी सेना में अपार जोश भर दिया जिससे दोनों दलों में लोहा बज उठा। युद्ध में जामराव यादव पचतत्व को प्राप्त हुआ।[5] वीर बलभद्र के साथ रावल समरसिंह के अन्य नौ वीर सिंघराव, सांखला, पूरनराव प्रतिहार, पहाड़ी प्रदेश का स्वामी सारंगदेव, भारी वीर वैनराय बघेल, सामर्थ्य वान सारंगदेव देवड़ा, सुभट हरदेव खीचीं, वीरसिंह चालुक्य, रत्नसिंह डोड तथा जिसकी तलवार सदा रक्त से तर रहती थी ऐसा सारंगराय तोमर, उसके साथ आ मिला।[6] किन्तु दुर्भाग्य वश यह सभी योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए।[7] पृथ्वीराज चौहान की सेना का बाम पक्ष टूट गया। पावस पुण्डीर ने वह स्थान आकर सम्भालने का प्रयत्न किया किन्तु युद्ध करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ।[8]

तृतीय दिन प्रातःकाल ही वीर चामुण्डराय जो सेना के दाहिने भाग का सेनापतित्व ग्रहण किए हुआ था, अपने साथियों सहित सूर्य मंडल में प्रवेश कर गया, अर्थात् पंचतत्व को प्राप्त हुआ।[9] जैत प्रमार भी अपार बल प्रदर्शन करता हुआ वीरगति को प्राप्त

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २४०, स० ६१।
२. वही, छं० २४२, स० ६१।
३. वही, छं० २६५ स० ६१।
४ वही छं० २६५, स० ६१।
५. वही, छं० २८५, स० ६१।
६. वही, छ० २८६, स० ६१।
७. वही, छं० २८८, स० ६१।
८. वही, छं० २९१, स० ६१।
९. वही. छं० ३००, स० ६१।

हुआ।[1] प्रसंगराय खीचीं ने भी अपने सात सौ सथियों सहित स्वर्गारोहण किया।[2] चतुर्थ दिवस देवराज बग्गरी तथा दौलतखाँ दोनों ही योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए।[3] पृथ्वीराज की सेना के सामन्तों को गिरता देखकर शाह की सेना उत्साहित होकर आगे बढ़ चली। शाह के परम पराक्रमी योद्धा मोनदीन तथा सम्मान मीर पृथ्वीराज को बन्दी बनाने के लिए अग्रसर हुए।[4] किन्तु लोहाना आजानबाहु ने पृथ्वीराज की रक्षा की तथा स्वयं वीरगति को प्राप्त हुआ।[5] अरजराय भी युद्ध में काम आया। मदनसिंह वल्लार, सारंगराय खींची, महनंग मारु प्रतिहार आदि सामन्तों ने भी स्वर्ग का मार्ग ग्रहण किया। अब रावल समरसिंह सेना को साथ लेकर शत्रु की ओर अग्रसर हो रहे थे किन्तु दुर्भाग्य वश उनका मस्तक कट कर गिर गया। परन्तु उनका रुंड निरन्तर युद्ध करता रहा।[6] रावल समरसिंह के गिरते ही हिन्दुओं को अपनी पराजय दिखाई देने लगी, तथा अब तक मोहिल भी वीरगति को प्राप्त हो चुका था।[7] पृथ्वीराज चौहान भाग्य को विपरीत देखकर अपने कुण्डलों को गुरु राम को दान देकर पाँच हजार सैनिकों को साथ लेकर शाह पर टूट पड़े।[8] शाह सुल्तान के सैनिकों ने चौहान पृथ्वीराज को चारों ओर से घेर लिया तथा सारंग देव धराशायी हुआ। बहबलखाँ ने गुरु राम को मार गिराया।[9] दुर्भाग्यवश पृथ्वीराज अपने बाणों से असंख्य वीरों को घायल करता हुआ पकडा गया–

जिहि करिवर अरि झरिय, झरिय करि वर अरि वढ्ढत।
जिहि सकत्ति मुख सकति, सकति विद्धिय सक कढ्ढत॥
जिहि बानावलि वान, प्रान कपहि मद सिंधुर।
तिन मद स्यधुर सुंडि, डड सिर छत्र नृपति पर॥
जिहि मुख सहाव संमुह संहि न, तिहि मुह जंपइ गह गहन।
प्रथिराज देव दुअननि ग्रह्यो, रे छत्री गुर ग्रव्व रह॥ छं० ३९२।[10]

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३०३, स० ६१।
२. वही, छं० ३०८, स० ६१।
३. वही, छं० ३१२, स० ६१।
४. वही, छं० ३१४, स० ६१।
५. वही, छं० ३१७, स० ६१।
६. वही, छं० ३३४, स० ६१।
७. वही, छं० ३४१, स० ६१।
८ वही, छं० ३४२-४३, स० ६१।
९. वही, छं० ३४४, स० ६१।
१०. वही, छं० ३९२, स० ६१।

उपर्युक्त कथन का रासो के प्रायः सभी संस्करणों में समर्थन मिलता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित 'रासो' के अनुसार भी पृथ्वीराज युद्ध करता हुआ अन्त में पकड़ा गया—

एक वान कम्मान। साहि चहुआन कोप गहि।
यां ततार लहु बंध। कट्टे सुरंग वहि॥
ओड़न नंषि नरिंद। वार कट्टिय कट्टारिय।
दिन पलट्यौ चहुआन। हथ्थ छुट्टै नह तारिय॥
भावी विगति भंजन घडन। दइ दुवाह इह निर्म्मयौ।
पृथ्वीराज गहन सुरतान कैं। मुष जंपत्त वर सुम्भयौ॥ छं० १५३३।[1]

मुहम्मद गोरी के अन्य युद्ध—सुल्तान मुहम्मद गोरी ने अरब तथा सिन्ध के अधिपति अरबखाँ की ओर अपनी वक्र दृष्टि की। अपने प्रसिद्ध सामन्त खुरासानखाँ, तातारखाँ तथा अन्य खानों में श्रेष्ठ वलवान शेरनखाँ आदि को एकत्र किया।[2] तथा रण-मंत्रणा करके अरबखाँ पर आक्रमण कर दिया।[3] बारह सहस्त्र अश्वारोहियों को साथ लेकर चित्ररेखा की कामना से शाह ने यह आक्रमण किया था।[4] अरबखाँ ने शाह गोरी के आक्रमण का कारण जानकर संधि स्वरूप मुग्धा चित्ररेखा को अर्पण कर विग्रह का अन्त किया।[5] शाह गोरी प्रसन्नता पूर्वक वेश्या चित्ररेखा को लेकर गजनी लौट आया।

मुहम्मदगोरी तथा जयचन्द गाहड़वाल—पृथ्वीराज चौहान को परास्त कर भारतवर्ष में एक छत्र राज्य स्थापित करने के लिए कन्नौजपति जयचन्द गाहड़वाल को परास्त करना अत्यन्त आवश्यक था। पंगराज जयचन्द पर गोरी के आक्रमण का कारण स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता सत्यकेतु विद्यालंकार लिखते हैं—"शहाबुद्दीन गोरी केवल गजनी के राज्य सिंहासन से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ, उसने पहले उत्तरी पश्चिमी भारत से तुर्कों के शासन का अन्त कर दिया। फिर पंजाब से आगे बढ़ कर दिल्ली और कन्नौज के चौहान तथा गाहड़वाल राजाओं के साथ युद्ध किए। अनेक युद्धों में परास्त होकर भी अन्ततः वह दिल्ली तथा शाकम्भरी के चौहान राजा पृथ्वीराज (तृतीय) को परास्त करने में समर्थ हुआ

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १५३३, स० ६६।
२. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३, स० १३।
३. वही, छं० ४, स० १३।
४. वही, छं० ६, स० १३।
५. वही, छं० ८, स० १३।

(११९२ ई०) और दो ही साल बाद गाहड़वाल राजा जयचन्द को हराकर कन्नौज के राज्य पर उसने अपना अधिकार कर लिया।"[1]

स्पष्ट है कन्नौज विजय का मूल कारण शाह मुहम्मद गोरी की विशाल साम्राज्यकांक्षा ही थी। सौभाग्य की बात है कि गोरी को भारत में हिन्दुओं की सम्मिलित शक्ति का सामना न करना पड़ा अन्यथा उसकी राज्य विस्तार की कामना कल्पना मात्र बनकर रह जाती। दिल्ली पर आक्रमण हुआ, कन्नौजपति तटस्थ होकर तमाशा देखता रहा। दिल्ली गई। अब कन्नौज की वारी आई, वह भी युद्धाग्नि से किसी प्रकार न बच सका-

उभय दिवस सौरम, राज्य जयचन्द प्रपत्तौ।
इत गज्जन वैसेन, धाइ चर पवरि नियत्तौ॥
उभय चातिय दिन प्रात, मात कालिंदी तट्टह।
मिले पंग पतिशाह वहै, घर श्रोन उपढ्ठह॥
जुद्धत जोध दिन सतमय, हर रम रंडरिय।
हर रुण्ड माला गुंथत गहर, रंक जेम रक्षन सरिय॥ छं० २१५।

\+ + + +

कहि न ईस कहि दंद, कह न ब्राह्मा सावित्री।
गन गन्धर्व अपछरा, वत्त नारद निरत्ती॥
कहि न मरे मह मट्टन, मनिष मनँष को गिलियौ।
कहौ उडियन आकास, जलनि कँते जै लिलियौ॥
संग्राम मिलँ सुर नर असुर, अनल पषं दिट्ठौ अरनि।
जयचन्द राव किहि परि हुऔ, किहि निसंक सच्चौ घरनि॥ छं० २१७

गजनी की विशाल वाहिनी तथा कान्यकुब्ज साम्राज्य की चतुरंगनि सेना के म संग्राम करता हुआ कन्नौजपति जयचन्द पराभव को प्राप्त हुआ-

इंद्र पथ्य घर लिङ्घ। रयन सध्यौ असुरायन।
दिसि कनवज आवत। सुन्यौ जैचन्द पराइन॥
सयन सनम्मुख आय। जुद्ध भारथ भर मच्चौ।
जित्यौ विनय सहाव। परस घर सिर वर नच्चौ॥

---

१. डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० ४१६।
२. पृथ्वीराज रासो, नगरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २१४ तथा २१७, स० ६८

नर्म्मान पान भावी विगति। असिय लज्ज जित्ते असुर ॥
जयचन्द कमध सत्रह सहस। हनिय लग्गि गय धार घुर ॥ छं० २१८।[1]

और भी—

सु सिर पर्यौ रिन भुअन। तेह गिर धरनि उचायौ।।
गिरधन अपछर लेत। राव चाहत न पायौ ॥
गिरिधनि कर हवि छुट्टि। पर्यो गंगा जल भीतर ॥
गंगह लियो उछंग। लैन चाहे सिर सकर ॥
गंगा सुपास लिय चय नयन। हर उछास किय आप को ॥
गल रुंड माल लै संठ्यौ। वह सुसीस जय चन्द को ॥ छं० २१९।[2]

रासो के युद्धों की ऐतिहासिकता—

(१) पृथ्वीराज तथा गोरी के युद्ध:—शाहबुद्दीन गोरी तथा पृथ्वीराज के मध्य रासो में कुल २१ युद्धों का विवरण दिया गया है। हाँसी प्रथम तथा द्वितीय युद्धों का विवरण एकही साथ प्रस्तुत करने के कारण युद्धों की संख्या २० रह गई है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वास्तव में पृथ्वीराज चौहान तथा गोरी के मध्य २१ संग्राम हुए थे? जिनमें १६ वार गोरी वन्दी वना कर मुक्त किया गया। फारसी इतिहासकार केवल दो युद्धों का ही उल्लेख करते हैं। अतः यहां पर विभिन्न साहित्यिक ग्रन्थों की सहायता से पृथ्वीराज चौहान तथा गोरी के मध्य हुए युद्धों पर विचार किया जावेगा—

डॉ० शम्भूनाथ सिंह ने रासो—वर्णित युद्धों के विषय में लिखा है कि—'रासो को पढ़ने पर इतिहास के ये सभी भाव सत्य आँखों के सामने मूर्त हो जाते हैं। उसके युद्धों में अधिकांश व्यसन युद्ध ही हैं। पृथ्वीराज विवाह के लिए या यों भी अकारण किसी पर आक्रमण कर देता था। उस पर भी किसी वात का वदला लेने के लिए आक्रमण होते थे। शाहबुद्दीन के आक्रमणों का तांता कभी टूटता ही नहीं है तथा आश्चर्य यह कि वह वार-वार पकड़ कर छोड़ दिया जाता था। उसके आक्रकण के समय पृथ्वीराज के किसी न किसी सामन्त को जो उसे पकड़ने का वीड़ा उठाता था, पकड़ने का अवसर दिया जाता था। परन्तु पकड़ा जाने पर भी हर वार संभवतः उसे इसलिए छोड़ भी दिया जाता था कि गोरी को आक्रमण करने और पृथ्वीराज के सामन्तों को उसे फिर पकड़ने का अवसर मिले। इस प्रकार रासो में युद्ध आवश्यकता ही नहीं, सामन्तों, राजाओं के व्यसन के रूप में भी वर्णित हुआ है। उसमें

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २१८, स० ६८।
२. वही, छं० २१९, स० ६८।

इतने युद्धों का वर्णन हुआ है कि सबों को एक साथ स्मरण भी नहीं रखा जा सकता। अतः कवि के लिए भी असम्भव था कि किसी युद्ध का वर्णन पीछे जिस प्रकार हो चुका है उसकी शब्दावली और ढंग की पुनरावृत्ति को वह आगे न कर सके।"[1]

फारसी इतिहासकार पृथ्वीराज चौहान तथा गोरी के मध्य केवल दो युद्धों का उल्लेख करते हैं। पंजाब की सीमा से आगे बढ़ कर पृथ्वीराज की राज्य सीमा प्रारम्भ होती थी। सन् ११९१ ई० में गोरी को भारत में प्रवेश लेने पर सर्वप्रथम पृथ्वीराज चौहान से ही मोर्चा लेना पड़ा। इतिहासवेत्ताओं के मतानुसार गोरी इस युद्ध में परास्त होकर गजनी लौट गया। उसका एक स्वामिभक्त खिलजी सेवक युद्ध भूमि से उसे निकाल ले गया अन्यथा गजनीपति का अन्त वहीं हो गया होता। सुल्तान की सेना तितर-बितर हो गई। मुसलमानों की इसके पूर्व ऐसी हार नहीं हुई थी। श्री के० एम० मुंशी ने भी इस संग्राम में सुल्तान की पराजय की चर्चा की है।[2]

पुनः सन् ११९२ ई० में गोरी ने पृथ्वीराज चौहान पर एक लाख बीस हजार सवार लेकर आक्रमण किया। पृथ्वीराज चौहान अपने समस्त सामन्तों को एकत्र कर एक विशाल वाहिनी बनाकर युद्ध हेतु अग्रसर हुआ। शाह गोरी की भेद नीति के कारण विजय हुई, पृथ्वीराज चौहान परास्त हुआ तथा वहीं युद्ध में मारा गया। श्री के० एम० मुंशी भी उपर्युक्त मत के समर्थक हैं।[3]

---

१. डॉ० शम्भूनाथसिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २९८-२९९।

2. In 1191 A. C. Ghuri organised his forces and took the fortress of Taharu Hind, modern Bhatinda. Prithviraja, at the head of a confederate force, fell up on him. On the field of Taraori a severe encounte followed. The Muslims were beaten; Ghuri, the Hinder of his times and a second Rustom narrowly escaped. His army broke and fled till it reached, Ghazna. Prthiraja did not follow up the victory by swift action. He paused to invest Bhatinda, which fell in to his hands after thirteen months. (The Glory that was Gurjaradea. Pt. III. Page 205. The Imperial Gurjara. By K. M. Munshi, Bhartiya Vidya Bhawan Bombay. I st edition, 1944.)

3. In the next year 1192 A. C. Ghuri collected a large army including 1,20,000 horses and marched on Prithviraja. Neither caution nor humility were part of the young hero's make up. It never so much as entered his head to seek aid from, Bhima II or from Jai Chandra. Prondy he asked Ghuri 'to retire to his own country.' Ghuri was consummate diplomat, he sent word that he was there only at the bidding of his brother

रासमाला में पृथ्वीराज तथा गोरी के युद्ध का विवरण इस प्रकार दिया गया है– 'मोहम्मद गोरी का पहला हमला सन् ११९१ ई० में हुआ था। उस अवसर पर थानेश्वर और कर्नाल के बीच में तिरौरी नामक स्थान पर पृथ्वीराज ने उससे करारी टक्कर ली थी और दिल्ली के राज प्रतिनिधि चामुण्डराज की सहायता से मुसलमानों को पूर्णत: पराजित किया था। इसके दो वर्ष बाद (सन् ११९३ ई० में) फिर युद्ध हुआ। उस समय देव ने दृष्टि फेर ली। दोनों सेनाए सरस्वती के किनारे मिली और बहुत समय तक लड़ाई होती रही परन्तु अन्त में शत्रु की कुशल व्यूह रचना से टक्कर लेते, सूर्यास्त के समय राजपूत सेना थक गई और तभी स्वयं मोहम्मद की अध्यक्षता में मुसलमानों के बारह हजार चुने हुए कवच धारी घुड़सवारों ने हल्ला बोल दिया जिससे हिन्दुओं की सेना का कच्चरघाण (नाश) हो गया। चामुण्डराय मारा गया और चौहान की विशाल सेना एक बार नींव हिलने पर किसी बड़ी भारी इमारत के समान एक दम धसक गई और अपने ही खंडहरों में विलीन हो गई। शूर वीर पृथ्वीराज पकड़ लिया गया और वहीं उसका वध कर दिया गया। इसके बाद मोहम्मद स्वय अजमेर गया और निर्दयता से उसने कत्ले-आम जारी कराया। फिर शहरों को लूटता-पाटता वह गजनी को रवाना हुआ'।[1]

इतिहासवेत्ता मूलत: शाह गोरी तथा पृथ्वीराज चौहान के दो ही युद्धों का समर्थन करते हैं जबकि संस्कृत के ग्रन्थ अनेक युद्धों की पुष्टि करते हैं। सं० १३६१ में प्रणीत मेरुतुंग के प्रवंध चिन्तामणि में तुंग सुभट प्रवध में शहाबुद्दीन तथा पृथ्वीराज के मध्य २२ बार युद्ध होने की बात कही गई है। सं० १४०५ में राजशेखर सूरि द्वारा प्रणीत प्रवंधकोश के वस्तुपाल प्रबन्ध में शाह सुल्तान को पृथ्वीराज चौहान द्वारा २० बार बन्दी बनाने एवं मुक्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है। सम्वत् १६२४ वि० में प्रणीत सुर्जनचरित महाकाव्य में शाह को पृथ्वीराज चौहान द्वारा २१ बार बन्दी बना कर मुक्त करने की बात का उल्लेख किया गया है। महाकवि सूदन कृत 'सुजान चरित' काव्य में गोरी को पृथ्वीराज द्वारा ७ बार बन्दी बनाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

---

and master. If Prithiraja gave him time he would get instructions from his master and enter in to a treaty. He asked for atruce and the confiding Prithviraja gave it. Then the Hindu army fell in to remissness. Ghuri took advantage of the truce and fell up on Prthviraja. The young Cahamana fled from the field, was taken prisoner and killed, (The Glory that was Gurjaradesa pt. III, (The Imperial Gurjaras) page 206, By K. M. Munshi, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay Ist edition 1944)

१. फार्वस, अनुवादक श्री गोपालनारायण बहुरा, रासमाला, पृ० २६७-६८, मगल प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण, नवम्बर, १९५८।

अतः उपर्युक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि सं० १४०५ तक पृथ्वीराज चौहान तथा शहाबुद्दीन गोरी के बीच २०-२२ युद्धों की अनुश्रुति प्रचलित हो गई थी।

मूलतः रासो के चार संस्करण उपलब्ध होते हैं। लघुतम, लघु, मध्यम तथा वृहत। इन समस्त संस्करणों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि गोरी तथा पृथ्वीराज के बीचग्रंथ के आकार के साथ ही साथ युद्ध संख्या में भी अभिवृद्धि होती गई है। ऐसी स्थिति में निर्णायक मत देना नितान्त असंभव है। लखनऊ विश्वविद्यालय रासो के विभिन्न संस्करणों की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'रासो' का वैज्ञानिक तथा संशोधित संस्करण संपादित करने जा रहा है। जब तक 'रासो' का वैज्ञानिक संस्करण सामने नहीं आता तब तक इस पर निर्णायक मत देना संगत न होगा।

(२) गोरी तथा जयचन्द गाहड़वाल—दिल्ली अजमेर पति पृथ्वीराज चौहान को परास्त करने के उपरान्त भारतवर्ष पर एकछत्र राज्य स्थापित करने के लिए कन्नौजपति जयचन्द गाहड़वाल को परास्त करना भी गोरी के लिए नितान्त आवश्यक था। अतः दूसरे ही वर्ष सन् ११९४ ई० में मोहम्मद गोरी फिर हिन्दुतान आया और यमुना नदी के किनारे पर जयचन्द को हराकर उसने कन्नौज एवं काशी को अपने अधिकार में कर लिया, तथा वहाँ पर एक हजार से भी अधिक देवालयों की मूर्तियों को तुड़वा कर उनको परमात्मा की सच्ची उपासना (नमाज) के स्थान (मसजिद) में बदल दिया। राठौर राजा ने पवित्र नदी में प्राण त्याग करके हिन्दुओं के मतानुसार अभीष्ट मृत्यु का वरण किया। कन्नौज का विशाल और विचित्र नगर उस समय हिन्दू नगर नहीं रह गया था, परन्तु थोड़े ही वर्षों बाद इस अभागे राजा के पौत्रों ने इस नगर पर फिर राठौड़ों की ध्वजा फहरा दी। कालान्तर में वही ध्वजा यहाँ से मरु देश में जोधपुर के किले पर जा फहराई जहाँ से इसने निर्भय होकर कुतुबुद्दीन के राज्य नाश के दृश्य का अपनी आँखों से साक्षात्कार किया।"[1] शाह गोरी की इस विजय को प्रसिद्ध लेखक श्री के० एम० मुंशी भी ऐतिहासिक मानते हैं तथा रासमाला द्वारा प्रस्तुत विवरण का समर्थन करते हैं।[2] अतः शाह गोरी तथा कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द के मध्य होने वाले संग्राम में किसी को भी संदेह नहीं है।

---

१. फार्वस, अनुवादक श्री गोपालनारायण बहुरा, रासमाला, प्रथम भाग पृ० २६८, मंगल प्रकाशन जयपुर, सन् १९५८।

2. With in a year of the fateful battle of Taraori Ghuri with lightning speed marched against Jay Ghandra who fell fighting on the field of Chandwar. Ghuri proceeded with total destructiveness. Men were massacred. Towns were looted. Smiling Madhyadesa was charred ruin. The conquerors then proceeded to the capital of Jay Chandra. India looked on terror struck varanasi, the intellectual and spritual centre of India, from

गोरी का अवसान–साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' इस विषय में सर्वथा मौन है किन्तु नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में लिखा है कि 'शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज चौहान को अन्तिम युद्ध में वन्दी बनाकर गजनी ले गया। वहाँ उसने पराक्रमी एवं उदार सम्राट की आँखें निकलवा लीं। युद्ध परिणाम ज्ञात होने पर कविचन्द वरदायी योगी का भेष धारण कर गजनी गया तथा शाह गोरी को नेत्र विहीन पृथ्वीराज चौहान का शब्द वेधी बाण चलाने की कला देखने के लिए उत्सुक किया। कवि ने कहा कि यदि आप आज्ञा देना स्वीकार करें तो राजा का कौशल देख सकते है। शाह, कवि की बात का मर्म न समझ सका तथा आज्ञा देने के लिए सहमत हो गया। मंत्री तातारखाँ ने बहुत मना किया कि ऐसा प्रदर्शन देखना ठीक नहीं है किन्तु शाह ने उसकी एक न सुनी। चन्द वरदायी, पृथ्वीराज को रगभूमि में लेकर उपस्थित हो गया। उस समय निम्न सम्वत् मास, पक्ष तथा घड़ी थी—

संवत अट्ठावन माघ मास, अनसित पष्ष दसमी सुमास।
दिन घटिय अंत पल आदि जात, तारक्क मूल त्रिव तिथ्य पात॥ छं० ४६१।'[1]

रंग भूमि में हुजावखाँ ने पृथ्वीराज चौहान को कई कमानें दी जो उसके खींचते ही टूट गई। अन्त में पृथ्वीराज को उसकी स्वयं की कमान दी गई। कवि के गूढ़ संकेत के द्वारा महाराज पृथ्वीराज चौहान ने सुल्तान के सम्मुख अपना मुख कर लिया—

गिरनारा लगि गौढ़, देस जीता जंगल थल।
लका गढ़ जित्तयौ, समद जित्तौ उर सलियल॥
हथिनावर जित्तयौ, सीम कंधारा बंधिय।
मयूरापुर जित्तयौ, एक मुष धार न संधिय॥
प्रथिराज सुनवि संभरिधनी, सुहिनैही मम जानि सुष।
इमि जपै चन्द वरद्दिया, सजि जालधर देस मुष॥ छं० ५२५।'[2]

वीर पृथ्वीराज चौहान सन्नद्ध होकर खड़ा हो गया, कवि ने डमरू बजाकर शाह से

---

where for centuries had flown inspiration and knowledge, fell into the hands of the foreign invader. A thousand temples were laid low. Mospues rose in their places. Jaya Chandra's son Hari Chandra, a boy of eighteen retired to a distant place and kept up his independence. (The Glory that was Gurjaradesa, (The Imperial Gnrjaras) pt. III. Page 206, By. K. M. Munshi, Bhartiya Vidya Bhawan Bombay I st edition. 1944)

१. पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं०४६१, स० ६७।

२. वही, छ० ५२५, स० ६७।

फरमान देने की प्रार्थना की तथा महाराज पृथ्वीराज की विरुदावली पढ़नी प्रारम्भ की। प्रथम आज्ञा पर चौहान ने वाण संधाना, द्वितीय पर उसे लक्ष पर दृढ़ किया, तृतीय आज्ञा पर राजा का शब्द वेधी वाण सुल्तान के दांत, जीभ, तालू तोड़ता-फोड़ता हुआ सिर के टुकड़े-टुकड़े करके पार हो गया तथा उसका धड़ नीचे गिर पड़ा—

भयौ एक फुरमान, वान जोगिनिपुर संध्यौ।
सोइ सबद अरु वान, अग्र अविचल करिवध्यौ॥
भयौ वियौ फुरमान, तानि रध्यौ श्रवनंतरि।
तियौ भयौ अन भयौ, पर्‌यौ पाति साहि धरंतरि॥
लं दसन रसन तालू सघन, सीस फट्टि वट्ट दिसि गवन।
सुरतान पर्‌यौ घां पुक्करं, भयौ चन्द राजन मरन॥ छं० ५४९।[1]

सुल्तान के प्राणान्त होते ही कवि चन्द ने अपने जूड़े में से छिपी हुई छुरी निकाल कर अपना पेट फाड़ लिया तथा वही छुरी पृथ्वीराज चौहान को दे दी, जिससे उसने भी अपना पेट फाड़ कर इहलीला समाप्त की। इस प्रकार तीनों की मृत्यु हो गई। किन्तु इतिहासवेत्ता 'रासो' के उपर्युक्त कथन का समर्थन नहीं करते। उनके विचार से रासो का वर्णन भट्ट-भडंत के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इतिहासवेत्ताओं ने लिखा है कि—'कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत के विजित प्रदेशों का शासनभार सौंप कर मुहम्मद गजनी लौट गया, क्योंकि मध्य एशिया में ख्वारिज्म का शाह उसका मुख्य शत्रु था। उसके विरुद्ध उसे कुछ सफलता मिली किन्तु स्थायी सिद्ध नहीं हुई। कराखिताइस (Qara-Khitais) की सहायता से ख्वारिज्म की सेना ने सन् १२०४ ई० में अन्धखुद के युद्ध में मुहम्मद को भयकर पराजय दी। वह स्वयं बड़ी कठिनाई से अपने प्राण बचाकर अपनी राजधानी गोर पहुंच सका। ख्वारिज्म के शाह अलाउद्दीन के साथ उसे एक रक्षा संधि करने पर वाध्य होना पड़ा जिसके अनुसार उसे हिरात और वलख को छोड़कर मध्य एशिया के अपने सभी विजित प्रदेश त्याग देने पड़े। मुहम्मद की अन्धखुद की पराजय का समाचार वनाग्नि की भांति चारों ओर फैल गया और युद्ध में स्वयं उसके भी मारे जाने की अफवाह उड़ा दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि पंजाव की दुर्दम्य जनता ने उसके विरुद्ध आम विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। मुहम्मद के एक अफसर ऐबक-वक ने सुल्तान के सूवेदार को मार डाला और स्वयं वहाँ का शासक वन वैठा। उसके इस द्रोह तथा विश्वासघात ने स्थिति और भी अधिक खराब कर दी। खोक्खर तथा अन्य उच्छखल जातियों ने जो लाहौर और गजनी के वीच में निवास करती थी, खुले रूप से विद्रोह कर दिया और चिनाव तथा झेलम के दो आव को लूटने लगी। उन्होंने लाहौर को भी जीतने का प्रयत्न किया। सड़कों पर विद्रोही छा गये और पंजाव से ग़जनी का राजस्व भेजना कठिन हो गया। विद्रोहियों का दमन करने के लिए

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५४९, स० ६७।

मुहम्मद को फिर पंजाब आना पड़ा। उसने कुतुबुद्दीन को आज्ञा भेजी कि तुरन्त ही झेलम के पास आकर उससे मिले। मार्ग में विद्रोहियों ने ऐबक को घेर लिया किन्तु वह उन्हें हराता और खदेड़ता हुआ अपने स्वामी के पास जा पहुंचा। ऐबक को साथ लेकर मुहम्मद लाहौर आया और स्थिति को ठीक करके गजनी के लिए प्रस्थान कर गया। मार्ग में जब वह दमयक नामक स्थान पर डेरा डाल १५ मार्च, १२०६ ई० के दिन सन्ध्या की नमाज पढ़ रहा था, कुछ शिया तथा हिन्दू खोखर विद्रोहियों ने उसका वध कर दिया।"[1]

प्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने भी रासो के विवरण को अनैतिहासिक मानते हुए लिखा है कि 'यह सम्पूर्ण कथन भी ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं है क्योंकि शाहबुद्दीन की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथ से वि० सं० १२४९ में नहीं हुई किन्तु वि० सं० १२६३ चैत सुदी ३ को गक्खरों के हाथ से हुई थी। जब गक्खरों को परास्त कर लाहौर से गजनी जा रहा था उस समय धमेन्द के पास नदी के किनारे बाग में नमाज पढ़ता हुआ, वह मारा गया।"[2]

रासो का उपर्युक्त वर्णन वास्तव में अनैतिहासिकता की पराकाष्टा है किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि 'पृथ्वीराज रासो' मूलतः इतिहास नहीं वरन् चरित्र काव्य है। कवि ने नायक पृथ्वीराज चौहान की प्रतिष्ठा एवं आत्म सम्मान को ठेस न लगने देने के कारण ही उपर्युक्त कथा की कल्पना की है, फिर भी इससे यह न समझ लेना चाहिए कि 'पृथ्वीराज रासो' की सम्पूर्ण घटनाएं ही अनैतिहासिक तथा अप्रमाणिक हैं।

सहबाजखाँ—'सहबाजखाँ अथवा सब्बाज गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का सेना नायक था जिसने पृथ्वीराज तथा गोरी के मध्य रेवातट पर होने वाल संग्राम में भाग लिया था। सब्बाजखाँ चार तलवारों को बांधने तथा बाण द्वारा शत्रुओं के प्राण खींचने के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था। चौतेगी सब्बाज धानं अरि प्रांन सु ऊंचै। छं० ४४।[3]

इनके विषय में निश्चित रूप से विस्तृत विवरण देना कठिन है। प्रमाणों के अभाव में हमें विवश होकर इतने से ही सन्तोष करना पड़ता है।

सुमानखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर सुमानखाँ, शाह शहाबुद्दीन गोरी का सामन्त था तथा 'बड़ी लड़ाई को प्रस्ताव' के अन्तर्गत उसने पृथ्वीराज तथा गोरी के अन्तिम

---

१. डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० ९७-९८, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० प्रा० लि० आगरा, तृतीय संस्करण।
२. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, पृ० ६०, कोसोत्सव स्मारक संग्रह, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, १९८५।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४४, स० २७।

युद्ध में भाग लिया था। गोरी के पक्ष के मियाँ मुस्तफा तथा अन्य ग्यारह सरदारों के युद्ध में खेत रहने के उपरान्त गोरी पक्ष से सुभानखाँ युद्ध करने के लिए युद्ध भूमि की ओर अग्रसर हुआ। कवि के अनुसार सुभानखाँ 'निसानपति' था अथात् झण्डों का आधिपति अथवा नगाड़ों का स्वामी था। उसके आक्रमण करते ही हिन्दू सेना में खलबली मच गई–

अग्गै वघ्घ वि आय। पच्छि जद्दव दल लग्गिय॥
हय गय नर आरुरिय। भर्रि गोरी घर भग्गिय॥
पग छुट्टत पतिसाह। षान षाना षुरसानी॥
हिन्दवान की हद्द। बोलि अग्गे सुरतानी।।
सिरदार सिवान निसानपति। सुबिहान असमान मति॥
हों हाल गहों चहुआन को। तों पठान अगिवानपति॥ छ० ११२९।[1]

युद्ध भूमि में अग्रसर होते ही सुभानखाँ का विपक्षी दल के सामन्त जामराय जादव से सामना हो गया। दोनों वीरों ने अपने-अपने जौहर दिखाए, किन्तु विपक्षी दल का जामराव जादव, सुभानखाँ के समक्ष न ठहर सका तथा वीरगति को प्राप्त हुआ।[2]

हबशखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीर हबशखाँ गोरी का सेना नायक था। यह अत्यन्त अभिमानी तथा हबशियों की सेना का सेना नायक था। रेवातट पर पृथ्वीराज चौहान तथा शाह गोरी के मध्य होने वाले विकट संग्राम में इसके भाग लेने का उल्लेख मिलता है।

हवसषांन हवसी हुजाव, ग्रव्व आलम्म जास वर॥ छं० ४४।[3]

प्रमाणों के अभाव में इसके विषय में कुछ अधिक लिखना अनधिकार चेष्टा करना होगा।

हिन्दूखाँ– पृथ्वीराज रासो' के अनुसार हिन्दूखाँ गोरी की सेना का सेनानायक था। रेवातट समय में गोरी तथा पृथ्वीराज चौहान के मध्य संग्राम होने पर इसने भी अन्य अगणित सैनिकों के साथ भाग लिया था। कवि ने इसके नाम के पूर्व दगावाज शब्द का प्रयोग किया है–

जहगीर षांन जहगीर वर, षां हिन्दू वर वर बिहर॥ छं० ४३।[4]

'हिन्दूखाँ-ख्वारजम तथा खुरासान के सुल्तान तकिश का पोता तथा मलिक शाह का जेष्ठ पुत्र था। उसने अपने चाचा सुल्तान महमूद से खुरासान का सूबा लेना चाहा किन्तु

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ११२९, स० ६६।
२. वही, छं० ११३०-३६, स० ६६।
३. वही, छं० ४४, स० २७।
४. वही, छं० ४३, स० २७।

असफल रहा। अन्त में अपने देश के शत्रु सुल्तान गोरी के यहाँ उसने नौकरी कर ली। संभव है कवि ने इसी कारण इसके नाम के पूर्व देशद्रोही अथवा दगाबाज जैसे शब्द का प्रयोग किया हो तथा शहाबुद्दीन के अन्य अधिकारी वर्ग के साथ उसके नाम का भी उल्लेख किया हो, तबकाते नासिरी में उसकी अत्यन्त प्रशंसा की गई है।"[1]

हुजावनूरीखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार हुजावनूरी खाँ, गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का एक प्रसिद्ध सरदार था। एक दूत ने आकर शाह गोरी के आक्रमण तथा चिनाव नदी को पार करके पुनः समस्त सेना को एकत्र करने की बात पर प्रकाश डालते हुए पृथ्वीराज से कहा कि गोरी ने हुजावनूरी खाँ तथा नूरमुहम्मद को बड़ी तोपों, गोलों, छोटी तोपों तथा हाथियों के विभाग का उत्तरदायित्व सौंपा है। अतः स्पष्ट है कि हुजावनूरी खाँ शाह गोरी के तोप विभाग का उच्च कर्मचारी था—

मारि गोरि जंबूर, सुबर कीना गज सारं।
नूरी खाँ हुज्जाव, नूर महमुव सिर भारं॥ छं० ४२।[2]

हुसैनखाँ—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार, हुसैनखाँ ने रेवातट पर शाह गोरी तथा पृथ्वीराज के मध्य होने वाले संग्राम में पृथ्वीराज चौहान के पक्ष में रह कर गोरी की सेना से भीषण युद्ध किया था—

रावर उप्पर धाइ पर्यो, पाँवार जैत षिज्झि।
तिहि उप्पर चामंड, कर्यो हुस्सेन षांन सजि॥
धवकाई धवकाई, दोउ हरवल वल मंज्झे।
पच्छ सेन आहुट्टि, अनी वंधी आलुज्झे॥
गजराज विय सु सुरतांन दल, दह चतुरग वर वीर बर।
धनि धार धार धारह धनी, वर भट्टी उप्पारि करि॥ छं० ७०।[3]

हुस्सैनखाँ, मीर हुसैन का पुत्र मालूम होता है तथा यह भी सम्भव है कि यह उसका कोई निकट का सम्बंधी हो। 'रासो समय ९' में लिखा है कि मीर हुसैन गोरी के भारत पर निरन्तर आक्रमणों का मुख्य कारण था। मीर हुसैन, शाह हुसैन अथवा हुसैनखाँ एक पराक्रमी योद्धा था, जो गोरी का चचेरा भाई था तथा उसी के दरबार में रहता था। चित्ररेखा[4] नामक एक परम सुन्दरी वेश्या थी जिसे सुल्तान बहुत चाहता था। हुसैनखाँ भी चित्ररेखा से प्रेम करने लगा तथा वह भी हुसैन को चाहने लगी। शाह को ज्ञात होने पर उसने हुसैन से बहुत बुरा-भला कहा किन्तु उसका चित्ररेखा के प्रति प्रेम कम न हुआ। अन्त में हुसैनखाँ

---

१. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी; रेवातट समय, पृ० ४३-४४।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४२, सं० २७।
३ वही छं० ७०, स० २७।
४. देखिए; पृथ्वीराज रासो, ग्यारहवाँ समय, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

को गजनी शहर छोड़ना पड़ा। वह धन आदि के साथ ही चित्ररेखा को भी लाना न भूला तथा पृथ्वीराज चौहान की शरण में आ रहा। गोरी यह सुनकर क्रोध से पागल हो उठा तथा चौहान पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में अपार पराक्रम का प्रदर्शन कर हुसैनखाँ वीर गति को प्राप्त हुआ। गोरी युद्ध में बन्दी बना लिया गया। चित्ररेखा मीर हुसैनखाँ की कब्र में जिन्दा दफन हो गई। पाँच दिन बन्दी रहने के उपरान्त गोरी, हुसैनखाँ के पुत्र गाजी को लेकर और कभी भविष्य में युद्ध न करने का वचन देकर गजनी वापस लौट गया, गाजी हुसैन को गोरी ने गजनी जाकर कैद में डलवा दिया। एक माह पाँच दिन के बाद हुसैनखाँ (गाजी) कैद खाने से भाग निकला तथा पृथ्वीराज के पास पुनः आ गया—

मास एक दिन पंच रहि बद्धि धाइ हुसैन।
पग लग्गौ चौहान कं राज प्रसन्निय बैन॥ छं० २।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि मीर हुसैनखाँ के पुत्र का नाम गाजी हुसैन रहा होगा जिसे कवि ने कहीं-कहीं पर केवल गाजी तथा कहीं पर हुसैन लिख दिया है।

रासो सार में एक स्थान पर हुसैनखाँ के सम्बन्ध में लिखा है कि 'दूसरे दिन मीर हुसैन के पुत्र हुसेनखाँ ने मारुफखाँ का मुकाबिला किया और उसे घायल करके गिरा दिया, यह देखकर उजबकखाँ उसके मुकाबिले पर आया। दोनों में बड़ी देर तक बड़ी नोक-झोक होती रही। अन्त में उजबक ने एक ऐसा हाथ मारा कि जिससे हुसेनखाँ के भी गहरी चोट लगी और उसका घोड़ा कट कर जमीन पर लोट गया। इस युद्ध में शहाबुद्दीन विकट व्यूह से रक्षित तलवार लिए मरने-मारने पर उद्यत था।'[2]

रेवातट समय को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि हुसेनखाँ गोरी के पक्ष का कोई सामन्त था क्योंकि उसमें लिखा है कि—गहि गोरी सुरतान, षान हुस्सैन उपार्‌यौ।'[3] यदि यह बात सत्य मान ली जाय तब रासोसार का उपर्युक्त कथन ठीक नहीं बैठता क्योंकि यदि हुसैन पृथ्वीराज के पक्ष में होता तो सुल्तान को बन्दी बनाने के उपरान्त उसे क्यों 'उपार' देता अथवा नष्ट करता। 'पृथ्वीराज रासो' इसी प्रकार की अनेक विवादास्पद बातों का समूह जाल है; जिसके विषय में निश्चित रूप से लिखना अथवा निश्चित मत व्यक्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

वैसे एक हुसैनखाँ नामक व्यक्ति तातार मारुफखाँ का भाई भी था। संभव है रेवातट के छन्द संख्या १४८ का हुस्सैन, मीर हुसैन का लड़का अथवा कोई निकट का सम्बंधी न होकर तातार मारुफखाँ का भाई ही रहा हो।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २, स० १०।
२. रासोसार, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, रेवातट समय।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४८, स० २७।

आपूव तम्मि आयंति वार।
सम लाल षान हुस्सन हकार ॥ छं० १९ ।[1]

जो भी हो हुसैन, मीर हुसैन, हुसैनखाँ आदि कई नाम रासो में प्राप्त होते हैं, उनके विषय में निश्चित रूप से लिखना अत्यन्त कठिन है। जब-तक 'पृथ्वीराज रासो' का वैज्ञानिक संस्करण प्रस्तुत नहीं किया जाता तब-तक इस प्रकार के भ्रमों को दूर करना नितान्त दुःसाध्य कार्य है।

हुस्सैन—वीर हुस्सैन गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का भाई था। ग्रन्थकार इसके पराक्रम की प्रशंसा इस प्रकार करता है—'शाहाबुद्दीन के भाइयों में धनुर्धर मीर हुस्सैन अपनी प्रतिज्ञा का भली-भाँति पालन करने वाला, शब्द भेदी बाण चलाने वाला, संगीतादि विषयों में प्रवीण, लम्बी भुजा वाला, श्रेष्ठ वक्ता, भेद नीति को परखने वाला और जानने वाला, यश धारियों में उच्च स्थान वाला, युद्ध वीर, उदार चित्त और विशेष दान देने वाला, एक विषम तेग का बांधने वाला था जिससे शहाबुद्दीन भी आशंकित रहता था। ऐसा था हुस्सैन जो सदैव विजित गर्व से मतवाला रहता था—

बंधव साहि सहाब, मीर हुस्सैन बानधर।
निज्ज बान सु प्रमान, बान नीसान वेधसुर ॥
गान तान सुज्जान, बाहु अज्जान बान वर।
भेव जान परमान, उंच जस थान जुझ्झ भर ॥
उद्दार चित्त दातार अति, तेग एक बंदै विसव।
संकंत साहि साहाब तिन, तेज अजै जयमंत ग्रव ॥ छं० २।[2]

इतना ही नहीं वीर हुस्सैन की बुद्धि तथा शुभाचरण देखकर दरबार के अन्य सब मीर तथा सामन्त उसकी प्रशंसा करते थे। गजनीपति शाहबुद्दीन गोरी के एक चित्ररेखा नामक वेश्या थी। उसका रूप-रंग तथा अंग-रति जैसी थी वैसी ही विलक्षण वह गान विद्या में भी थी। वह वीणा बजाने में प्रवीण तथा बत्तीसों शुभ लक्षणों से सुशोभित थी। उसकी आयु केवल पन्द्रह वर्ष की थी। वह सत्य प्रिय तथा मधुर भाषिणी थी। वह शाहबुद्दीन की अत्यन्त प्रिय थी। उस चित्ररेखा नामक वेश्या पर मीर हुस्सैन मुग्ध हो गया तथा दोनों में परस्पर प्रेम, दो देह तथा एक प्राण के समान हो गया—

इक्खि वुद्धि आचार, मीर उमराव जंपि जस।
इक्क पात्र साहाब, चित्ररेखा सु नाम तस ॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १९, स० ४३।
२. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २, स० ११।

रूप रंग रति अंग, गान परिमान विचख्खन।
चीन जान वज्जान, आनि वत्तीसह अच्छन।
दस पंच वरष वाचा सुवय, सु प्रिय साहि साहाव अति।
आसिक्क तास हुस्सैन हुअ, प्रति परसपर प्रान गति॥ छं० ३।[1]

हुस्सैन तथा चित्ररेखा की प्रेम चर्चा शाहवुद्दीन गोरी को भी ज्ञात हो गई। गोरी सुन कर अत्यन्त कुपित हुआ तथा हुस्सैन से कहला भेजा कि यह स्त्री तेरे लिए निश्चय ही काल रूप है अतः तुझे इससे दूर ही रहना चाहिए किन्तु हुस्सैन ने एक न सुनी। अत में शाह ने हुस्सैन से कहला भेजा कि यदि वह अपने कृत्य से बाज नहीं आता तो मैं मार डालूंगा अन्यथा शीघ्र ही गजनी प्रदेश को छोड़कर चला जा—

सुनिग वेन साहाब तउ, प्रीतिन छंडिय वाम।
कुप्पि कह्यौ सुरतान तव, हनौ कि छंडिव गाम॥ छं० ५।[2]

शाह गोरी की आज्ञा सुनकर मीर हुस्सैन ने अपनी सेना को तैयार किया तथा गोरी की मन में शंका रखते हुए भी उसने गजनी निःसंकोच छोड़ दी। अगली प्रहर रात गए उस परम गुणवती वेश्या चित्ररेखा को एव अपने परिवार को लेकर, अंग रक्षकों तथा साथियों सहित कवच धारण कर शाह के साथ ईर्ष्या की गाँठ मजबूत वाँधकर उसने अपनी मातृभूमि को त्याग, नागौर की ओर प्रस्थान किया—

सुनि सु वत्त हुस्सैन, सेन अप्पन साधारिय।
छडिय नयर निस्सक, सक म न साहु नासारिय॥
निसा जाम इक आदि, लई सो पात्र परम गुन।
तरुनि पुत्र परिवार, साज्ज सब साज सु अप्पन।
परिगह सु अप्प अग्गे करिय, खान ज्वान बंधिय सिलह।
सचर्‌यौ नैर नागौर रह, तजिय देस निज गंठि गह॥ छं ६।[3]

मीर हुस्सैन अपने साथियों को साथ लेकर पृथ्वीराज चौहान की ओर गया। र पृथ्वीराज चौहान अपने शिकारियों के साथ खट्टू वन में शिकार खेल रहे थे। इतन सूचना प्राप्त हुई कि मीर हुस्सैन आया है। पृथ्वीराज ने सुन्दरदास खत्री को बुलाकर, म हुस्सैन के आने का कारण पुछवाया। सुन्दरदास ने पृथ्वीराज से आकर मीर हुस्सैन से बातें विस्तार से वता दीं तथा यह भी बताया कि वास्तव में हुस्सैन गोरी के विरुद्ध

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३, स० ११।
२. वही, छं० ५, स० ११।
३. वही, छं० ६, स० ११।

विरोध का कारण स्पष्ट करते हुए सुन्दरदास खत्री ने कहा 'शहाबुद्दीन के पास रहने वाली एक वेश्या जिनका नूर, गुण और गाना परी के समान है, उस वेश्या को हुस्सैन लेकर आपकी शरण चाहता है—

पात्र एक साहाव सँग, हूर नूर गुन गान।
लै आयौ हुस्सैन इत, सरन तक्कि चहुआंन ॥ छं० १६ ।[1]

महाराज पृथ्वीराज ने अपने मंत्रियों से मंत्रणा करने के उपरान्त मीर हुस्सैन को आदर पूर्वक बुला लिया। उसे अपने साथ लेकर नागौर की ओर प्रस्थान किया तथा वहाँ पर एक सभा का आयोजन किया। सभा का अधिकारी जो कायस्थों में श्रेष्ठ धर्मायन था उसने राजाज्ञा से हुस्सैन को दक्षिण पंक्ति में बैठाया—

लिये सथ्थ प्रथिराज पहु, गयौ सु पुर नागौर।
ध्रमाइन काइथ धवल, दिसि दच्छिन दिय ठौर ॥ १८ ।[2]

इतना ही नहीं—विविध प्रकार के उत्तम खाने योग्य श्रेष्ठ व्यजनों को भेजकर मीर हुस्सैन का भली भाँति सत्कार किया गया तथा उसे वीरों में विशेष उत्तम योद्धा मान कर राजा पृथ्वीराज चौहान ने प्रेम पूर्वक दो घोड़े प्रदान किए—

भोजन भक्ख विविध्ध वर, बहु आदर विधि कीन।
मान महुत्तम रक्खि रस, राज उभय हय दीन ॥ छ० १९ ।[3]

मीर हुस्सैन ने भी दूसरे दिन राजा पृथ्वीराज चौहान को प्रसन्नता पूर्वक पाँच भारी तरकस, प्रत्येक तरकस में तीन सौ तीर तथा खुरासनी कुल पाँच कमाने दी। तदुपरान्त जिसके कपोलों पर भौरे गुन्जार करते थे, और जिसकी मदगंध से दूसरे हाथी भाग जाते थे ऐसा एक मदमस्त श्वेत वर्ण सिंघली जाति का हाथी तथा रत्न जटित साज से सुसज्जित उच्च एराकी कुल के पाँच घोड़े तथा एक बहुमूल्य हीरा और दो लाल नजर किएं।[4]

शाहबुद्दीन गोरी ने जब यह सूचना प्राप्त की, कि हुस्सैन दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज से जा मिला तो उसने पृथ्वीराज के पास अपना दूत आरवखाँ भेजकर कहलाया कि हुस्सैन मेरा शत्रु है, अतः आप इसे आश्रय न दें तथा अपने दरबार से निकाल दें। किन्तु पृथ्वीराज ने, शरणागत वत्सल्य होने के कारण मीर हुस्सैन को नहीं निकाला। गोरी को आरवखाँ से ज्ञात होने पर उसने पृथ्वीराज पर अपने मंत्रियों से मंत्रणा कर आक्रमण कर दिया—

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १६, स० ११।
२. वही, छं० १८, स० ११।
३. वही, छं० १९, स० ११।
४. वही, छं० २१, स० ११।

गयौ साहि चहुआन थर, दिए मिलान मिलान।
गए सु घर नागौर पुर, कही खवरि सुरतान ॥ छं० ३६ ।[1]

गुप्तचरों ने पृथ्वीराज को नागौर मे आकर सूचना दी कि गोरी ने आक्रमण कर दिया है। अतः पृथ्वीराज ने भी मंत्रियों की मंत्रणा लेकर रण वाद्य बजवा दिए। दोनो सेना आकर आमने-सामने खड़ी हो गई। इतने में हुस्सैन ने पृथ्वीराज से कहा 'हे पृथ्वीराज ! युद्ध की बात सुनो। आज यह सिर आपके लिए है। शहाबुद्दीन की सेना को काट कर नष्ट कर दूंगा। मेरे कारण जो आपने साहस कर शरणागत धर्म का पालन किया है, मैं आज उस उपकार को सार्थक कर दूंगा। तब पृथ्वीराज ने कहा—यह क्या कह रहे हो। मैं सेना को बढ़ा कर शाह को बन्दी बना लूंगा तथा तुम्हारे सिर पर गजनी का छत्र सुशोभित करूंगा—

कहै साह हुस्सैन, सुनौ चहुआंन जुद्धह वत।
आज सीस तुम कज्ज, सेन साहाब खंडौ खत॥
मो कज्जै साहस्स, करिग प्रथिराज सरन ध्रम।
हौं उजऊ सू अज्ज, करौं राजन्न अकथ क्रम॥
जपैसु राज पृथ्वीराज तव, कहा अचिज्ज जंपौ तुमह।
अप्पों सु छत्र गज्जन पुरह, सद्धि सेन साहाव गह॥ छं० ५१।[2]

हुस्सैन ने इतना कहकर पृथ्वीराज को प्रणाम किया तथा अपनी सेना को वाम पार्श्व पर रखा। उसने अपने गले में सजरा (वंश सूच पत्र) बांध लिया तथा रण-स्थल में एक सहस्त्र सगोत्रीय वीरों को लेकर डट गया—

करि सलाम हुस्सैन, अनी बंधी दिसि वाई।
संजरा बंधे कंठ, सहस सज्जे थन थाई॥ छं० ५२।[3]

युद्ध भूमि में हुस्सैन ने अपार साहस का प्रदर्शन किया तथा अन्त में युद्ध करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ—

सहस पंच रन मीर परि, सत्थिजु खांन ततार।
परे हुसेनह तीन सै, सै दो हिन्दू सार॥ छं० ५७।[4]

अन्त में शाह गोरी को बन्दी बना लिया गया तथा पृथ्वीराज ने रणक्षेत्र को खोजा

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३६, स० ११।
२. वही, छं० ५१, स० ११।
३. वही, छं० ५२, स० ११।
४. वही, छं० ५७, स० ११।

तथा जीत के रणतूर्य बजाए गए। शरीर पर अपार घाव लगे हुए श्रेष्ठ वीर हुस्सैन को भी उठवाया गया—

> खेत ढ्ढि पृथ्वीराज नृप, बजे जीत रनतूर।
> खां हुसैन घन घाय घट, उप्पारिग वरसूर॥ छं० ७०।[१]

अन्त में हुस्सैन की मृत्यु की सूचना पाकर चित्ररेखा वेश्या भी अपने धर्म का चिन्तन करती हुई हुस्सैन के साथ स्वयं कब्र में पड़ गई—

> पर्‌यो हुसैन सु पात्र सुनि, चिंतिय चित्त इमांन।
> सज्यो घोर हुस्सैन सथ, कर्‌यो प्रवेस अपांन॥ छं० ७१।[२]

प्रश्न यह है कि क्या मीर हुस्सैन वास्तव में शाहबुद्दीन का भाई था? क्या वास्तव में चित्ररेखा वाली घटना सत्य है? कविराज मोहनसिंह ने हुस्सैन के विषय में लिखा है कि 'हुस्सैन कथा वाला हुस्सैन नासिरुद्दीन हुस्सैन था जो 'तवकाते नासिरी' के लेखानुसार कामी था तथा रासो भी उसके अन्य गुणों के साथ-साथ कामी होने के अवगुण पर प्रकाश डालता है। चित्ररेखा पहले बादशाह की और फिर उसकी प्रेमिका बनी थी, जो बादशाह के अरब और सिंध के आक्रमण में उसे संधि रूप में प्राप्त हुई थी।[३]

मुसलमान इतिहासकारों ने अपना इतिहास बड़ा ही पक्षपात पूर्ण लिखा है जिससे सत्यता पर प्रकाश पड़ने के स्थान पर भ्रम की ही अधिक सम्भावना रहती है। हुस्सैन के विषय में भी मुसलमान तारीखकार कुछ विशेष सूचना नहीं देते हैं किन्तु यूरोपियन विद्वानों ने उसका पता लगाने में बड़ा परिश्रम किया है। डॉ० होर्नले ने चन्द चित्रित हुस्सैन के विषय मे निम्न सूचना दी है–

"195, Hussena Khana (Husaina khan) appears to have been a son of the Mir Husain, who as related in Canto 8, was the primary cause of the invasions of India by Shahabuddin Mir Husain or as he is variously called Shah Hussain or Husain Khan, is there said to have been a cousion (bandhava) of Shahabuddin, a distinguished warrior, living at the Shah's court at Ghazni. The shah had a beautiful mistress, named Chitrarekha, to the story of whom the 10th Canto is devoted. She was fifteen years old and very skilful in music and was greatly beloved by the shah. Hussain fell in love with her and

१. पृथ्वीराज रासो साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ७०, स० ११।
२. वही, छं० ७१, स० ११।
३. कविराज मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो, प्रथम खण्ड, साहित्य संस्थान उदयपुर, सम्पादकीय, पृ० १२।

she with him. One morning the shah sent for him and up braided him on his conduct. But Hussain continued to intrigue with chitrarekha and was forced to leave the city. He carried off his family and property and Chitrarekha, and fled to Prithviraj to Nagor. Prithiviraj, af er some hesitation wellcomed him and gave him asylum. Hearing of this Shahabuddin was furious and sent messengers to demand chitrarekha from Husain failing in which they were to demand the expulsion of Husain from prithiviraj. Husain refused to send the woman back, and Prithiviraj replied, he could not give up the man who came to him for refuge. Shahabuddin receiving this answer, at once prepared to invade India, Prithiviraj, on his part also prepared for war. In the battle that ensued Hussin distinguished himself greatly, but lost his life. Chamand Rai succeeded in capturing the shah, and thus the battle was decided in favour of prithviraj. After five days the shah was released and allowed to return to Ghazni taking Ghazi Hussain's son with him. and pledging himself n. more to make was upon the Hindus. The pledge, it need hardly be said, was not kept by the shah, and the implacable hatred, which these events had created in him mind was never appeared till it was slacked in the blood of Prithiraj and the destruction of his Empire. The capture of the shah, here related is the first of the seven times, he is said to have become the captive of Prithiraj. The next occasion of his capture is referred to in note 187, once more he is made captive as related in the present Canto. Chitrarekha is said to have buried herself with the corpse of husain. If the Husain khan mentioned here is the son of the elder Husain, who was taken to Ghazni by Shahabuddin, he must have made his escape after wards and returned to Prithiraj. The elder Husain is undoubtedly the same as Nairuddin Hussain, who is repeated by mentioned in the Tabguat-i-Nasiri (Major Raverty's Translation pp 344, 361, 364, 365). He was the older of the two sons of Malik Shahabuddin Muhammad, a younger brother of Sultan Baha-uddin Sam, the father of ultan Shahabuddin. The elder husain, therefore, was as chand orrec-

tly states, a cousin (bandhava) of the latter. In the Tabagat-it is true, it is said that Nasir uddin Husain usurped the throne of his uncle Alauddin during the latter's temporary captivity at the court of Sultan Sanjar of khorasan, and that he was murdered by his uncles's partisans on the letter's return from captivity (p 364) But firstly, this story in contradicted by all other Muhammadan historians, who pass at once fram Alauddin to his son (see Majar Raverty's foot note pp 364) secondly it is more probable that if there was any unurpation at all, it was made by Nasiruddin's father Muhammad, the younger brother of Alauddin. The three brothers Saifuddin Suri, Bahauddin sam and Alauddin Hussain, succeeded each other on the throne of Ghor, it is natural therefore, that during Alauddin's captivity, the fourth brother Shihabuddin Muhammad should have occupied or attemped to occupy the throne. The writer of the Tahaj-uat must have confused father and son, as he has done also on other occasions (e. g. with regard to Ziya uddin Muhammad) Thirdly the description of Nasir-uddin Hussain's character. "he had a great passion for women and virgins and had taken a humber of the hand maids and slave girls of the Snltan's harem." (Tabagat p. 364), agree with chand's story about his intrigue with Chitrarekha and has evidently a confused recollection of it. There can, therefore, be little doubt that chand gives snbstantially the true account of Hussain's fortunes. It may be added that both the Tabagat and other Muhammadan histories give a rather confused ralation of an ancesstor of this Husain (and of the Ghori royal family generally) who also bore the name of Husain or Hassan, having fled to India, and having lived some time at Delhi, (see Tabaguat pp. 322, 323, 332). There is perhapes in this a confused recollection of the fight of Hussain to Prithiraj related by chand."[1]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, नवें समय की उपसंहारणी टिप्पणी, पृ ४२३-४२४ ।

उपर्युक्त विवेचन से इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि मीर हुस्सैन शाहबुद्दीन गोरी का सगा भाई नहीं ही सही किन्तु बान्धव अवश्य था। रासोकार ने भी मीर हुस्सैन को 'बान्धव' ही लिखा है। तबकाते नासरी के अनुसार हुस्सैन कामी था अतः चित्ररेखा वाली घटना भी सत्य के अधिक निकट प्रतीत होती है।

५

काल्पनिक-पात्र

अधिक से अधिक ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक समझे जाने वाले महाकाव्यों में भी कथाओं को अभीष्ट दिशा में मोढ़ने के लिए तथा कथा में रोचकता एवं चमत्कार उत्पन्न करने की दृष्टि से कवि अथवा ग्रन्थकार नाना प्रकार की कल्पना करके नये-नये पात्रों को प्रस्तुत करता है, किन्तु अनेकानेक विद्वान ठीक-ठीक न समझने के कारण ऐसी काल्पनिक घटनाओं में भी ऐतिहासिक तथ्य खोजने का असफल प्रयत्न करते है। परवर्ती काल के ऐतिहासिक काव्यों का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें ऐतिहासिक तथ्य तो बिल्कुल गौण हो गए तथा काल्पनिक तथ्य ही प्रमुख हो उठे हैं। 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'पद्मावत' इसी युग की रचनाएँ हैं तथा अन्य ऐतिहासिक कहे जाने वाले काव्यों की भाँति इनमें भी कवि ने कल्पना को योग देकर कथा को रोचक बनाने के लिए नाना प्रकार की निजन्धरी कथाओं को प्रस्तुत किया है।

महाकवि चन्द बरदायी का 'पृथ्वीराज रासो' युद्ध और प्रेम बद्ध कथा काव्य है, जिसकी कथा वस्तु इतिहास तथा कल्पना के योग से प्रस्तुत की गई है। 'पृथ्वीराज रासो' में कुल ६९ प्रस्ताव अथवा समय हैं उनमें से दस का नाम कवि ने 'कथा' लिखा है, यथा—दिल्ली-किल्ली कथा, नाहरराय कथा, मेवाती मुगल कथा, हुस्सैन कथा, इंच्छिनी व्याह कथा, माधो-भाट कथा, होली कथा, दीपमालिका कथा, घन कथा तथा वरुण कथा इन कथाओं को पढ़ने के उपरान्त निश्चित हो जाता है कि कवि ने इनका वर्णन केवल कथा में प्रवाह लाने के लिए किया है, इनमें यदि ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव हो तो आश्चर्य की कौन सी बात है। इन्हीं कथाओं के अन्तर्गत कथानक रुढियों एवं निजन्धरी कथाओं के विषय में भी यहीं उल्लेख कर देना आवश्यक है। पृथ्वीराज रासो में प्रायः दो प्रकार की कथानक रुढ़ियों का प्रयोग किया गया

है, एक तो वह जो प्रायः लोकाश्रित कथानक रुढ़ियाँ हैं तथा दूसरी वह जो कवि कल्पना प्रसूत रुढ़ियाँ हैं।

लिंग परिवर्तन

कहानियों में अथवा काव्यों में लिंग परिवर्तन वाली घटना का अनेक स्थानों पर उपयोग किया गया है। पृथ्वीराज रासो भी इसका अपवाद नहीं हैं। कन्नौज मे संयोगिता हरण सम्बधी युद्ध में पृथ्वीराज ने कवि चन्द से वीर आत्ताताई की उत्पत्ति कथा के विषय में पूछा इस पर कवि ने जिस कथा का वर्णन किया उसमें इसी अभिप्राय का उपयोग किया गया है।[1]

भारतीय साहित्य में लिंग परिवर्तन सम्बन्धी प्राचीनतम अभिप्राय हमें महाभारत में प्राप्त होता है। शिखण्डी-कथा तथा अत्ताताई की कथा में मूलतः कोई विशेष अन्तर नहीं है।

भारत के विभिन्न भागों में इस कहानी के विभिन्न रूपान्तर प्राप्त होते है। गुल बकावली, पंचतन्त्र, कथा सरितसागर आदि ग्रन्थों में भी इस प्रकार की कथा का अवलोकन किया जा सकता है।

संकेतिक भाषा

अपने मनोभावों को प्रदर्शित करने के लिए विभिन्न वस्तुओं की सहायता से संकेत आदि करने की परम्परा भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्राचीन है। इसका उपयोग भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी किया जाता है, अफ्रीका के कुछ भागों में भी संकेतिक भाषा का प्रयोग किया जाता है। ऐसी भाषा का उपयोग प्रायः प्रेम-संवाद भेजने के लिए प्रयुक्त किया जाता है क्योंकि प्रेम-पत्र भेजने में नाना प्रकार के खतरों की सम्भावना रहती है।

यही कारण है कि भारतीय साहित्य में विशेष रूप से कथा आदि में संकेतिक भाषा का प्रयोग खूब किया गया है। पृथ्वीराज रासो में भी ऐसे प्रसंग उपलब्ध हो जाते हैं। कवि चन्द वरदायी को पृथ्वीराज ने कठोर संदेश तथा भड़काने के चिह्न, चोली तथा लाल पगड़ी लेकर चालुक्य राज भीमदेव के पास भेजा ही था किन्तु चन्द ने अपनी बुद्धि से उसमें नमक-मिर्च लगा कर अपने साथ गले में जाली और नसेनी डाल ली तथा एक हाथ में कुदाली और दूसरे में अंकुश तथा त्रिशूल ले लिया—

चल्यो चन्द गुज्जरह, गरें जारी जंजारह ॥
नीसरनी कुद्दाल, दीप अकुस आधारह ॥

---

1. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १९७०-२००७, स० ६१।

फरन सूल संग्रहे, गयो चालुक दरवारह ॥
इह अचंन जन देषि, मिल्यो पेषन संसारह ॥ छं० १०२।[1]

किन्तु भीमदेव को कवि का यह आडंवरी वेश एवं रहस्य समझ में नहीं आया। अतः वह कवि से इस अटपटे वेश का अर्थ समझाने के लिए कहता है। तव चंद प्रत्येक वस्तु का अर्थ वतलाता हुआ कहता है–पृथ्वीराज चौहान का कथन है कि यदि भीमदेव प्राण रक्षा के लिए जल में छिपेगा तो उसे जाल से पकड़ कर खींच लाऊँगा, यदि वह आकाश में जावेगा तो नसेनी लगाकर पकड लाऊँगा, यदि पाताल में छिप जावेगा तो कुदाल से खोद निकालूंगा, यदि कहीं अंधेरे में छिपेगा तो दीपक लेकर खोज लूंगा, अंकुश से उसे अपने वश में करके त्रिशूल से मार डालूंगा—

एक जाल मग्रहो, जाय जल भीतर पड्यो।
इन नीसरनी ग्रहों, जाय आकासह चढ्यो ॥
इन कुद्दाल पनी, जाय पायाल पनठ्ठो।
इन दीपक सग्रहो, जाय अंधारे नट्ठो ॥
इन अकुस असि वसि करो इन त्रिसूल हनि हनि सिरों।
जग मग जोति जग उप्परं, तो डर प्रथम नरिदरों ॥ छं० १०३।[2]

इस प्रकार के अभिप्रायों का प्रयोग प्रायः प्रेम कथाओं में अधिक देखने को मिलता है। एक नायिका कालिख लगे हाथों से दूती को पीटती है तथा उसकी पीठ पर पड़ी पाँचों उंगलियों की छाप दिखा कर नायक को कृष्ण पंचमी की रात्रि में मिलने का संकेत करती है–

स्व दह्यो कृष्ण पंचम्यां सा संकेत मदाद ध्रुवम्।
पंचागुलिर्मषोहस्तः पृष्टेऽस्या यददीयत ॥ परिशिष्ट पर्व ॥ ४८६ ॥

पूर्व जन्म की स्मृति

'पृथ्वीराज रासो' के चन्द द्वारिका गमन नामक ४२वें समय में पूर्व जन्म की स्मृति की कथा का उल्लेख प्राप्त होता है। जिस समय मोरी राजा ने गढ़ के निकट गोमुख कुण्ड एवं आनन्द उपवन वनवाना प्रारम्भ किया, उस समय खुदाई करने पर एक गुफा में एक ऋषि दृष्टिगोचर हुए, जिनके सम्मुख एक सिंहनी उनके शिष्य को भक्षण करने जा रही थी। वहीं कवि ने इन ऋषि की जन्म कथा का वर्णन इस प्रकार किया है—

'यह ऋषि अयोध्या का कीर्ति धवल नामक राजा था तथा वह सिंहनी उसकी पूर्व जन्म

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०२, स० ४४।
२. वही, छं० १०३, स० ४४।

की रानी थी। राजा को एक गर्भवती हरिणी को मारने के कारण उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। रानी को इस सूचना से अपार आनन्द हुआ तथा आनन्दातिरेक के कारण उसे मार्ग तक दिखाई न दिया तथा वह गवाक्ष मार्ग से ही मिलने के लिये दौड़ी, किन्तु पृथ्वी पर गिरकर मर गई। रानी ने सिंहनी का जन्म ग्रहण किया तथा संयोग से उसी स्थान पर जा पहुंची जहां उसका पति कीर्तिधवल अपने पुत्र के साथ तपस्या कर रहा था। क्षुधा पीड़ित सिंहनी ने पुत्र पर आक्रमण किया किन्तु ज्योंही उसके मांस को खाना चाहा उसे पूर्व जन्म का स्मरण हो आया। वह उसी अवस्था में वहाँ खड़ी रही। विना भोजन-पानी के एक मास तक खड़ी आंसू बहाती रही, अन्त में उसने प्राण त्याग दिए'।[1]

इस प्रकार की कल्पना का उपयोग विभिन्न स्थानों पर किया गया है। प्रायः इस प्रकार की कल्पना, कथा विस्तार में अत्यन्त सहायक होती है तथा हिन्दू धर्म के अनुसार पूर्व जन्म के प्रसंग को बल भी मिलता है।

फलादि द्वारा सन्तानोत्पत्ति :

सन्तान हीनता का प्रसंग कथाओं में अकसर देखने को मिलता है। कहानी को विकास देने एवं चमत्कार उत्पन्न करने के लिए ग्रन्थकार अकसर इस का उपयोग करता है। प्रायः सन्तानहीन पुरुष, तप, किसी देवी-देवता आदि से वरदान तथा किसी ऋषि से फल प्राप्ति से सन्तान प्राप्त करते हैं। चन्द वरदायी ने भी रासो में इस अभिप्राय का उपयोग किया है—'अनंगपाल की कन्या को ढुंढा राक्षस द्वारा एक फल प्राप्त हुआ था जिसे तेरह भागों में विभाजित करके अपनी सहेलियों को बांटने पर तेरह सामन्तों का एक साथ जन्म हुआ था—

ढुंढा नाम दानव उत्तंग दियौ फल अंब विसालं।
वदि तीन नृपराज आय फिर गेह सुवालं॥
सत्त नाग छह अग्ग वटि दिय भ्रत समानं।
तिनह सूर सामंत किति रप्पन चहुआन॥
रजमेल चन्द फल अमिय प्रयु सवर साहि मोपन सुगहु।
इकदस समंत पचंह समें नए थान पचम सु पहु॥ छं० ३७।[2]

अप्राकृत जन्म :

दैवी शक्ति की सहायता एवं उनसे प्राप्त अलौकिक गुण वाले फलों से सन्तानोत्पत्ति के अतिरिक्त चमत्कारिक जन्म सम्बंधी भी अनेक कथाएं भारतीय कथा साहित्य में प्रचलित

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६०८-१५, स० ४२ तथा पृथ्वीराज रासो मे कथानक रुढ़ियाँ; पृ० ९१।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ३७, स० १।

है। कभी किसी स्त्री के मांस-खण्ड उत्पन्न होता है तो कभी किसी घड़े से सन्तान पैदा होती है। रासो में भी इसी प्रकार की एक कथा का उपयोग ग्रन्थकार ने किया है। पृथ्वीराज के पूर्वज माणिकराव की रानी के गर्भ से बालक के स्थान पर अण्डजाकार अस्थि-खण्ड ने जन्म लिया—

तक्षक पुर चाहुल ग्रह पुत्तिय। मानिक राव पारिनि गज गत्तिय॥
तिहि रानी पूरब क्रम गत्तिय। इंडज आकृति हड्ड प्रसूतिय॥ छं० १९६।[1]

राजा ने कुपित होकर उस अस्थि खंड को जंगल में फेंकने की आज्ञा दी, किन्तु रानी ने यह स्वीकार नहीं किया। इस पर राजा ने उसे महल से निकाल दिया। कालान्तर में उसी अस्थि खंड का एक राजा की पुत्री से विवाह हो गया—

पानिग्रहन कर लियौ कुअंर हड्डा कमधज्जनि।
दसहू दिसि उडि बत्त सुने अचरज पति गज्जनि॥ छं० १९९।[2]

कालान्तर में जब गजनी के शाह ने माणिकराव पर आक्रमण किया, तब उसी अस्थि-खण्ड में से साक्षात नरसिंह के समान सुन्दर राजकुमार निकला—

बज्यो सिन्धु औ राग सारे करारं। तबे हड्ड फट्यो प्रगट्यो कुमारं॥
प्रचण्डं भुजा दण्ड उत्तंग छत्ती। नरं नारसिंघ अवतारमत्ती॥ छं० २०४।[3]

राजा का दैवी चुनाव :

दैवी शक्तियों द्वारा राजा का चुनाव होने की प्रथा का भी उल्लेख भारतीय साहित्य में खुल कर किया गया है। गजनीपति शाह गोरी का चुनाव भी बिल्कुल दैवी तो नहीं किन्तु कुछ मिलता-जुलता अवश्य है—'असुरों के राज्य पर शाह जलालुद्दीन सिंहासनासीन हुआ जो सीमातीत रूप से कामुकता में पड़ा हुआ था। पाँच सौ दस उसके हरम थे परन्तु दुर्भाग्यवश वह एक भी सन्तान का मुख न देख सका। निराश हो शाह पीर निजाम की कृपा का आकांक्षी हो उनकी सेवा में निमग्न रहने लगा। अपने प्रति शाह जलालुद्दीन की अनन्य सलग्नता का अनुभव कर, प्रसन्न हो उन्होंने शाह को श्रेष्ठ प्रतापी पुत्र की प्राप्ति का आशीर्वाद दिया जो चतुर्दिक असुर साम्राज्य को फैला कर हिन्दुओं को भी विजित कर दिल्ली साम्राज्य पर सूर्य की भाँति तपने वाला होगा।

चिर अभिलाषित फल की प्राप्ति कर शाह घर लौट तो आया किन्तु उसे पुनः चिन्ता ने घेर लिया। कहीं यह प्रतापी राजकुमार मुझे ही काल को समर्पित कर, राज्य का अधिकारी न बने, तत्काल ही एक बेगम के गर्भ धारण करने की सूचना पा शाह ने माथा ठोक लिया

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १९६, स० ५७।
२. वही, छं० १९९, स० ५७।
३. वही, छं० २०४, स० ५७।

तथा क्रोधावेश मे बेगम को निर्वासित कर दिया । उक्त घटना को केवल पाँच वर्ष ही व्यतीत हुए थे कि शाह का देहान्त हो गया । वजीरगणों को चिन्ता हुई कि सिंहासन का अधिकारी कौन हो ? इसका समाधान शेख द्वारा हुआ, जिन्होंने गोर में रहने वाले एक सुन्दर तेजस्वी बालक को सिंहासन देने का आदेश दिया तथा समस्त मंत्रियों ने उसे ही राज्य का उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय किया—

वरष पंच अनि ऊपर बींत । हुअं साह सुरतान सुअंतं ।
सबै षान मिलि मंत्र विचार । कवन सीस अब छत्र सुधार ॥
सेष एक मधि गोर निवासी । तिहि अद्भुत रस दिष्षि प्रकासी ।
आष्षिय आई जहां मिलि षान । कुदरति कथा एक परमांन ॥ छं० ३२४ ।[1]

इसी प्रकार लोकाश्रित कथानक रुढ़ियों के अन्तर्गत मुनि का शाप, प्राकृत दृश्य द्वारा लक्ष्मी प्राप्ति का शकुन, सर्प आदि द्वारा गड़े धन की रक्षा, वरदानादि द्वारा निर्धन का धनी होना, भविष्य सूचक स्वप्न, स्वप्न में अलौकिक व्यक्तियों द्वारा भविष्य सूचना, प्रेम व्यापार मे दूती अथवा योगिनियों की सहायता, मन्त्र-तन्त्र का युद्ध, मृत व्यक्ति का पुनः जीवित होना, आकाशवाणी आदि बातें हैं, जिनका कवि चन्द वरदायी ने कथा विकास के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता पूर्वक उपयोग किया है ।

पृथ्वीराज रासो की कल्पित कथा-सूत्रों का भारतीय साहित्य में पहले से ही प्रयोग होता चला आया है । इसे ठीक से समझने के लिए हम यहाँ पर उनका विस्तृत विवेचन न करके संक्षेप में गिना भर देंगे । जैसे शुक सम्बंधी कथा सूत्र, नायिका, अप्सरा का अवतार, रूप-गुण श्रवण जन्य आकर्षण, नायक-नायिका का चित्र देखकर एक दूसरे पर आसक्त होना, स्वप्न में भावी प्रिय या प्रिया का दर्शन, प्रिय प्राप्ति के लिए शिव-पार्वती पूजन, देव द्वारा पूर्व निर्धारित विवाह सम्बंध, मंदिर में पूजा के लिए आई कन्या का अपहरण, प्राण देने की धमकी, बारह मासे के माध्यम से विरह निवेदन आदि । यह ऐसे कथा सूत्र है जिनका प्रयोग कवि ने कथा विकास की दृष्टि में रखते हुए किया है । यदि कोई इनसे सम्बंधित पात्रों के विषय में ऐतिहासिक तथ्य खोजना प्रारम्भ करे तो उसे निराशा के अतिरियत और क्या प्राप्त हो सकता है । उपर्युक्त कथा सूत्र तो कथा-विकास के निमित्त मात्र हैं उनसे इतिहास का कोई सम्बंध नहीं है । अन्य कारणों के साथ एक यह भी कारण है कि 'पृथ्वीराज रासो' अप्रमाणिक एवं अनैतिहासिक ग्रन्थ लगता है । वास्तव में रासो एक ग्रन्थ है, (जहाँ कल्पना को पर्याप्त स्थान है), इतिहास नहीं । कल्पना के अभाव में ग्रन्थ के सर्जन की कल्पना भी नहीं की जा सकती । मत को पुष्ट करने के लिए य एक दो प्रमाण देना आवश्यक है । उदाहरण के लिए बावन वीरों की कथा ली जा

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ३२४, स० २४ ।

है। 'अदेटक वीर वरदान समय ६' में लिखा है कि महाराज पृथ्वीराज एक वन में आखेट हेतु गए थे, चन्द भी उनके साथ था, मार्ग में अपने साथियों से भटक कर चन्द एक यती के सामने जा पहुंचा और यती को प्रसन्न करके, उसने उनके द्वारा दीक्षित हो बावन गणों को वशीभूत करने वाला मंत्र सिद्ध कर लिया—

प्रसन्न चन्द सम जतिय, दिन्न इक मंत्र इष्ठ जिय।
इह आराधत भट्ट, प्रगठ पंचास वीर जिय॥
करि साधन इह साध, व्याधि नासत फल धारिय।
गुरु उपदेसह पाइ, सकल आधीन अकारिय॥
धरि कान मंत्र लीनो कविय, परसि पाइ लग्गे चलिय।
करवे सु परिष्या मंत्र की, रचि आसन अग्गे वलिय॥ छं० २६।[1]

चन्द के मंत्र से प्रेरित वीरगण तत्काल वहीं प्रकट हो गये, उनके दर्शन से चन्द को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई। उसने उनकी पूजा की, वीरों ने पूछा कि हमें क्यों बुलाया है? चन्द ने उत्तर दिया कि महाराज पृथ्वीराज की सहायतार्थ मैंने आपका आह्वान किया है। गणों ने कहा अस्तु, संकट काल में हमारा स्मरण करना, तथा भैरव ने एक गण को आज्ञा दी, कि सब वीरों को चन्द की पहचनवा दो, फिर प्रत्येक का नाम गुण आदि सुनकर कवि ने प्रणाम करके उन्हें विदा किया।[2] कालान्तर में यही बावन वीर पृथ्वीराज चौहान की संकट में सहायता करते हुए दिखाई देते हैं। क्या इन वीरों को ऐतिहासिक पात्र माना जा सकता है? कदापि नहीं। इनमें ऐतिहासिक तत्व का खोजना समय नष्ट करने के अतिरिक्त और क्या है। निश्चय ही यह सब कवि कल्पना प्रसूत है। इसी प्रकार से यहाँ पर दो चार उदाहरण और देना अनुचित न होगा। संयोगिता अपहरण सम्बंधी संग्राम में महाराज जयचन्द की ओर से शंख धुनी, योगियों को समर भूमि में अग्रसर होता देखकर पृथ्वीराज ने चन्द से पूछा कि ऋषि, स्वरूप शंख ध्वनि करने वाले, अत्यन्त पराक्रमी माया से परे ये वैरागी जयचन्द की सेवा में क्यों रहते हैं—

रिषि सरुप संषह धुनिय, अति वल पिथ्य कहंद।
वैरागी माया रहित, किमि सेवै जयचन्द॥ छं० १७९१।[3]

इस पर चन्द ने उत्तर दिया कि—'इन सबको ऋषियों का अवतार जानो, जिन्हें नारद ने प्रबोध किया था, इनकी कथा विस्तार से सुनाता हूं।[4] पूर्व समय में तैलंग प्रमार नामक

---

१ पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २६, स० ६।
२. वही, छं० २७-९३ स० ६।
३. वही. छं० १७९१, स० ६१।
४. वही, छं० १७९२, स० ६१।

एक राजा था, अवस्था पाकर उसने वनवास ग्रहण किया और अपनी भूमि क्षत्रियों को बाँट दी।[1] यह बटवारा निम्न प्रकार से हुआ—

दिय दिल्ली तोवंर न, देई चावड सु पट्टन।
दय संभरि चौहान, दई कनवज कमधज्जन॥
परिहारन भुर देस, सिन्धु वारडा सु चांल।
दै सोरठ जद्दवन, दई दच्छिन जावांल॥
चरन कच्छ दीनी करग, भट्टा पूरब भावही।
वन गये नृपति वंटै धरा, गिरिजा पति माला गही॥ छं० १७९५।[2]

राजा के एक हजार सुभटों ने भी वनवास ले लिया और ऋषि होकर वन में तपस्या करते हुए अजपा जाप में अपना चित्त स्थिर किया।[3] हवन आदि कार्यों के लिए उन्होंने इन्द्र से कामधेनु मांग ली थी। परन्तु उस वन में दैत्यों का महान उपद्रव था। यहाँ तक कि एक दिन उन्होंने गाय को बछड़े समेत भक्षण कर डाला।[4] ऋषियों को उस स्थान पर दो सौ वर्ष बीत चुके थे जब कि उनकी गाय खाई गई, इससे वे अति क्षुब्ध हो उठे और उन्होंने अग्नि में प्रवेश करने का संकल्प किया।[5] उस समय वहाँ नारद मुनि आ उपस्थित हुए और उनको उपदेश किया कि ऋषियों, बीस वर्षों से तुम लोग अजपा जाप में लगे हो परन्तु तुम क्षत्रिय हो इस लिए खड्ग तीर्थ का साधन करो दीर्घ काल तक तपस्या करने के उपरान्त भी यदि कहीं इन्द्रिय विकार हो गया तो सारा कर्म नष्ट हुआ जानो। परन्तु जो क्षत्रिय धार तीर्थ का आदर करते हैं उनकी सुख पूर्वक तुरन्त मुक्ति हो जाती है। धार तीर्थ ही क्षत्रिय का प्रधान धर्म है, उसके लिए पृथ्वी पर अन्य सबको भ्रम मात्र समझो, इस समय पृथ्वी पर उग्र रूप से तपने वाला एक राजा जयचन्द है, वह मानो इन्द्र का अवतार है और पृथ्वी का भार उतारने आया है, उसका एक शत्रु केवल चौहान है अन्यथा सारे राजे उसके सेवक हैं। संभरेश दिल्ली का राजा है, सौ सामन्त उसकी सेवा में रहते हैं। वही तुम्हारे सम्मुख रण में खड़ा होगा, तुम सब लोग जयचन्द की सेवा में रहो। वह एक लाख गढ़ों का अधिपति है और अस्सी लाख घोड़े उसके पास हैं, इस उपदेश से उनको सुख और शान्ति की प्राप्ति हुई।[6] तदुपरान्त नारद राजा जयचन्द के पास गये और योगियों की कथा कह कर उन्हें अपने

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १७९३-९४, स० ६१।
२ वही, छं० १७९५, स० ६१।
३ वही, छं० १७९६, स० ६१।
४. वही, छं० १७९७-९८, स० ६१।
५. वही, छं० १७९९, स० ६१।
६. वही, छं० १८००-१०, स० ६१।

वहाँ स्थान देने के लिए कहा जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया।[1] ये योगी अपनी जटाओं में मोर पंख बांधते थे, शंख और चक्र इन्होंने धारण कर रखे थे, मोहादि विकारों से ये दूर थे।[2] इन एक हजार पराक्रमी शूरमाओं को जयचन्द ने अपने यहाँ पर ठहराया।[3] राजा इनका बड़ा सत्कार करता है और अपने बड़े भाइयों के समान समझता है तथा ये भी राजा की रक्षा करते हैं, आज इनसे युद्ध में योगदान देने के लिए कहा गया है—

अति वर नृप आदर करै, जेठा बंधव जोग।
तिनहि राज रप्पह रहे, तै छुटि अज जुध जोग ॥ छं० १८२९ ।[4]

अब कोई यदि शंख धुनि साधुओं की ऐतिहासिकता के विषय में समय खराब करे तो क्या किया जावे, अथवा इस प्रकार की असंगत बातें देखकर कोई 'रासो' को अनैतिहासिक घोषित कर दे उसको भी क्या कहा जा सकता है। यह सब तो पृथ्वीराज की उत्कृष्टता एवं पराक्रम तथा कथा को प्रभावी एवं ओजपूर्ण बनाने के लिए ही लिखा गया है। इसी प्रकार से रासो वर्णित 'होलिका कथा स० २२' तथा 'दीपमाल का कथा स० २३' के विषय में भी कहा जा सकता है।

वस्तुतः महाकवि चन्द वरदायी ने रासो में कथा सूत्रों एवं नाना प्रकार की अन्य काल्पनिक कथाओं का समावेश रोचकता लाने के लिए ही किया है। यही बात उन पात्रों के विषय में भी कही जा सकती हैं, जिन्हें कवि को काल्पनिक पात्रों के रुप में वहाँ उत्पन्न करना पड़ा है जहाँ कथा में रोचकता एव प्रभाव लाने की आवश्यकता समझी गई है। अतः ग्रन्थकार द्वारा प्रसूत पात्र कथा विकास में सहायक ही हुए है बाधक नहीं।

अत्ताताई—पृथ्वीराज रासो के 'कनवज्ज सम्यो ६१' के अन्तर्गत अत्ताताई की जन्म कथा का उल्लेख कवि चन्द वरदाई ने दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज की जिज्ञासा शान्त करते हुए किया है। जब पृथ्वीराज चौहान कान्यकुब्जेश्वर की कन्या संयोगिना को घोड़े पर बैठा कर दिल्ली की ओर अग्रसर हो रहे थे, उस समय वीर अत्ताताई विषम युद्ध करके दोनों दलों को चकित कर रहा था। अन्त में इसी संग्राम में वह पराक्रमी योद्धा वीरगति को प्राप्त हुआ। इसी अवसर पर पृथ्वीराज ने कवि चन्द से अनुपम योद्धा तथा रण के स्वामी अत्ताताई की उत्पत्ति कथा सुनाने के लिए आग्रह किया—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १८१३-२६, स० ६१।
२. वही, छं० १८११-१२, स० ६१।
३. वही, छं० १८२७-२८, स० ६१ तथा डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, चन्द वरदायी और उनका काव्य, पृ० ११६-१७।
४. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १८२९, स० ६१।

अत्ताताई अभंग मर। सव पहु प्राक्रम पेखि ।।
लगो टगटगी दुअ दलनि। निर्प कवि पुच्छि बिसेव ।। छं० १९७० ।
अतुलित बल अतुलित तनह। अतुलित जुद्ध सु विव ।
अतुलित रन संग्राम किय। कहि उतपति कवि चन्द ।। छं० १९७१ ।[1]

कवि चन्द ने महाराज की जिज्ञासा शान्त हेतु उत्तर दिया—'आशापुर राज्य मंडल के तोमरों का प्रधान चौरंगी चौहान था, उसके घर में अपार धन तथा पतिव्रता स्त्री थी, जिसके गर्भ से उत्पन्न पुत्री की ख्याति संसार में पुत्र रूप में हुई। उस कन्या का नाम अत्ताताई रखा गया, तथा पुत्र की भाँति सब संस्कार करके, द्विजों को अपार धन दान दिया गया, तथा (दिल्लीपति) अनगपाल तोमर के मंत्री के पुत्र रूप में वह इस पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुई—

चौरंगी चहुआन। राज मडल आसापुर।
तूअर घर परधान। सु वर जानै वृतासुर ।।
घर असंध घर धरिय। एक नारिय सुचि धाइय ।।
तिहि उर पुत्री जाइ। पुत्र करि कही वधाइय ।।
करि ससकार द्वुज दान दिय। अत्ताताइय कुल कुंअर।
नृपि अनगपाल दीवान महि। पुत्र नाम अनुसरइ सर ।। छं० १९७२ ।[2]

उस अत्यन्त रूपवान मत्री-कुमार को देखकर राजा उसका उठकर आदर करते थे, उसके कारण चौरंगी चौहान की कीर्ति चतुर्थ दिशाओं में व्याप्त हो गई, बारह वर्ष की आयु तक उसकी माता उसका रूप छिपाये रही तथा राज्य कार्य में चौरंगी चौहान के पुत्र रूप में उल्लेख होता रहा, मनुष्य की तो बात क्या, सुर गण भी उसके रूप पर मोहित थे, उसी समय उसकी माता ने हरिद्वार जाकर शिव आराधना करने का विचार किया—

अति तन रूप सरूप। नृप आदर कर उट्ठहि।
चौरंगी चहुआन। नाम कीरति कर पट्ठहि ।।
द्वादस बरस स पुज्ज। मात गोचर करि रख्यौ ।।
राज काज चहुआन। पुत्र कहि कहि करि भख्यौ ।।
हरद्वार जाइ बुल्यौ सु हर। सेव जननि सहर करिय ।।
नर कहै रवन रवनिय पुरुष। रूप देषि सुर उद्धरिय ।। छं० १९७३ ।[3]

कन्या की किशोरावस्था आते ही उसके स्त्रियोचित अंग प्रगट होकर दिखाई देने लगे तथा उसकी माता अर्ध रात्रि में कन्या को लेकर शिव स्तुति हेतु चल पड़ी—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १९७०-७१, स० ६१।
२ वही, छं०१९७२, स० ६१।
३. वही, छं० १९७३, स० ६१।

जब त्रिय अंन प्रगट्ट हुअ। तब किय अंग दुराइ॥
अद्ध रयन लै अनुसरिय। सिव सेवन सत भाइ॥ छं० १९७४।[1]

भगवान आशुतोष शंकर की आराधना करते हुए उस कन्या ने अपनी समस्त शंकाओं को त्याग दिया, निराहार व्रत करते हुए उसने शंकर की उग्र आराधना प्रारम्भ की—

ईस जप्प उर दिन धरति। तजि संका सुर वार॥
सो बाली लघन किये। पानी पन्न अधार॥ छं० १९८४।[2]

शिव की उग्र आराधना करते हुए, उस कन्या को निराहार छह मास व्यतीत हो गये। उसके मन को निष्कपट देखकर एक रात्रि में तृतीय प्रहर के स्वप्न में शिव प्रकट हुए तथा उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर वर मांगने के लिए कहा—

षट् मास गये बिन अन्न पान। दिष्यौ सु चित निह कपट मान॥ छं० १९८२।
जागि जग्गि निसा तज्जिय त्रिजाम। संपनत ईस दिष्यौ प्रमान॥ छं० १९८३।
एक दिवस सिव रीझि कैं। पूछन छेहन लीन।
सुनि सुनि बाल विलास तौ। जो मंगै सोइ दीन॥ १९८६।[3]

कन्या ने कहा—'मेरे पिता दिल्लीपति अनंगपाल के प्रधान मंत्री हैं, मुझे पुत्र-पुत्र कह कर अर्थात पुत्र रूप में प्रसिद्ध कर संकट में पड़ गये हैं। हे सर्वज्ञ त्रिलोकी नाथ आप ही मेरे पिता का दोष मिटाइये आपको छोड़ कर अन्य कोई भी इस कार्य में समर्थ नहीं हैं—

मुझ पित जुग्गिनिपुर धनिय। अनंगपाल परधान।
पुत्र पुत्र कहि अनुसरिय। जानि वितड्डुर मानि॥ छं० १९८७।
विदित सकल सुनि चपल। सतीअ लपट विन कपटे॥
नगत उघव अरविंद। सीस चदह दिपि झपटे॥
गीत राग रस सार। सुमर भासत तन सोभित॥
काम दहन जम दहन। तीन लोकह सोय लोकित॥
सुर अगन निद्धि सामत गवन। अरि भंजन सज्जन रवन॥
मो तात दोष वर भंजनह। तुअ विन नह भंजै कवन॥ छं० १९८८।[4]

अवढ़र दानी भगवान शिव से कन्या ने जो मांगा उन्होंने वही दिया अर्थात् उसके पिता चौरंगी चौहान के अपवाद को दूर करते हुए कहा—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १९७४, स० ६१।
२. वही, छं० १९८४, स० ६१।
३. वही, छं० १९८२-८३; तथा १९८६, स० ६१।
४. वही, छं० १९८७-८८, स० ६१।

पुत्र लिषिनि पुब्बं कहीं। देउ सु ताहि प्रमान ॥
जु कछु इछ बछै मनह। सो अप्पौ तुहि ध्यान ॥ छं० १९९० ।[1]

भगवान शिव ने उस कन्या को आगे स्वप्न में ही कहा कि तेरा नाम अत्ताताई रखता हूँ[2], हे पुत्र तेरा स्त्री रूप चला जायगा, तू अपार वीर एवं पराक्रमी होगा, युद्ध में तेरी समानता कोई न कर सकेगा।[3] इतना कह कर शिव अन्तरध्यान हो गये।[4]

चन्द ने पुनः कहा—हे दिल्लीपति चौहान ! दिल्ली प्रत्यावर्तित होने के एक मास छह दिन बाद उस कन्या के पुरुष के सब गुण उत्पन्न हो गये—

इयक मास षट दिवस वर। रहि नृप दिल्ली थान।
सु बर वीर गुन उप्पजिय। सुनि संभरि चहुआन ॥ छं० २००५ ।[4]

शिव-पार्वती का सिर पर वरद हस्थ होने के कारण परम पराक्रमी अत्ताताई अपने शरीर पर राख मले, श्रृंगी बाजा तथा त्रिशूल लिए रहता था, युद्ध में उसके साथ सदैव किलकारती हुई योगिनियाँ चलती थीं—

सिव सिवाह सिर हथ्थ। भयौ कर पर समथ्थ दै ॥
सु विधि राज आदरिय। सत्ति स्वामित्त अथ्थ लै ॥
वपु विभूति आसरै। सिंगि संग्राह धरै उर ॥
त्रिजट कथं कंठरिय। तिथ्थ तिरसूल धरै कर ॥
कलकंत बार किलकत क्रमि। जुग्गिनि सह सथ्थै फिरै ॥
चौरंगि नंद चहुआन चित्त। अत्ताताइ नामह सरै ॥ छं० २००८ ।[5]

कवि चन्द ने यह कथा वर्णन की तथा पृथ्वीराज ने इसे श्रवण किया। अत्ताताई का शौर्य एवं पराक्रम देख कर उसे सबने वीर कार्य का कृती माना—

इह वत्ती कविचन्द कहि। सुनिय राज प्रथिराज ॥
जुद्ध पराक्रम पेषि कैं। मन्यौ सब कृत काज ॥ छं० २०१२ ।[6]

वीर अत्ताताई की कथा, महाभारत की शिखंडी की कथा से बहुत कुछ साम्य रखती है। सम्भव है अत्ताताई की कथा लिखते समय कवि के मस्तिष्क में शिखंडी की कथा रही हो।[7]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १९९०, स० ६१।
२. वही, छं० १९९४-९८, स० ६१।
३. वही, छं० १९९९, स० ६१।
४. वही, छं० २००५, स० ६१।
५. वही, छं० २००८, स० ६१।
६. वही, छं० २०१२, स० ६१।
७. डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, भूमिका, पृ० १८१-८४।

बावन वीर :

'पृथ्वीराज रासो' के आखेटक वीर वरदान समय ६' के अन्तर्गत लिखा है कि एक बार मृगया हेतु जाते समय कवि चन्द वरदायी को एक ऋषि की कृपा से बावन वीरों को वश में करने का मंत्र प्राप्त हो गया। फलस्वरूप चन्द ने बावन वीरों का आवाहन किया जिससे वे सब प्रकट होने लगे। भैरव जी की आज्ञा से कवि चन्द को एक वीर ने अपने समस्त साथियों का परिचय देते हुए नामों को इस प्रकार गिनाया—

(१) आइयक, (२) वपुलाई, (३) बुड़िआई, (४) आनल्ल प्रहारिय, (५) नारीय, (६) सूलीप (७) समसानलोटन, (८) गढ़ उपड़नाइ, (९) सामुद्र तिरन, (१०) सामुद्र सोप, (११) इह लोह, (१२) संकलाचोट, (१३) विसपाय, (१४), रुड़माल, (१५) अग्गिया, (१६) विषपिया, (१७) जमघंठ, (१८) कालाइ, (१९) कुल्लाइ, (२०) अग्गिक्रान्त, (२१) विपकत, (२२) रगतिया, (२३) कोडलाइ, (२४) कालक, (२५) कालवेलाइ, (२६), काल घंटाइ (२७) इंद्र वीराइ, (२८) जम वीराइ. (२९) देवग्गि, (३०) उकार, (३१) झापटा, (३२) मानिक्क भद्र, (३३) कपड़िया, (३४) केदाइ, (३५) नरसिंह, (३६) गोरिया, (३७) घटघंट, (३८) कम्टेम्प, (३९) वग, (४०) माहुक्खगाव, (४१) सती साइ, (४२) महासंतोष, (४३) भ्रमराइ काइ, (४४) महाभ्रम राइ, (४५) सहसाप, (४६) सहस्रांग, (४७) पेत्रपाल, (४८) भूतपनइ, (४९) साकिनीमार, (५०) केदरी रीति, (५१) सालिवाहन तथा, (५२) परिचय देने वाला वीर जिसका रासोकार ने नाम नहीं दिया है।

उपर्युक्त ५२ नाम निश्चय ही कवि कल्पना प्रसूत हैं। इनकी ऐतिहासिकता की खोज करना बालू से तेल निकालने का प्रयत्न करना होगा। कवि ने इन्हीं बावन वीरों का समय-समय पर पृथ्वीराज चौहान की ओर से युद्ध करने का भी उल्लेख किया है।

अन्य काल्पनिक पात्र—

यहाँ पर मुख्यतः उन पात्रों का विवेचन किया गया है जिनका विवरण प्रबंध में अन्य स्थानों पर नहीं आ सका है। ऐसे पात्रों का रासोकार ने विशेषतः नाम नहीं दिया है किन्तु ये कथा में तारतम्य बनाए रखने में अवश्य सहायक हुए हैं। इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले पात्र सम्भावना पर अधिक आधारित हैं। किसी भी युग में साधुओं, फकीरों, काजी, पंडितों का होना असम्भव नहीं है। उन्हीं की सम्भावना करके रासोकार ने भी उनका कथानक के ताने-बाने को ठीक रखने के लिए खुल कर प्रयोग किया। ऐसे पात्रों में ऐतिहासिक तत्व खोजना नितान्त अज्ञानता होगी। अतः यहाँ पर कुछ ऐसे ही सम्भावित पात्रों की ओर संक्षेप में निर्देश मात्र करने की चेष्टा की गई है।

ऋषि-मुनि :

'पृथ्वीराज रासो' में अनेकानेक स्थानों पर ऋषि-मुनियों की कथाएँ दृष्टिगोचर होती

हैं। इस प्रकार की कथाएं 'कथान रुढ़ियां' ही मालूम होती हैं। सत्य का अंश इसमें कितना है यह पढ़ने के उपरान्त स्वयं ही स्पष्ट हो जावेगा, देखिए—

(१) ढुंढा दानव ने योगिनिपुर में यमुना तट पर हारीफ ऋषि को देखा जिन्होंने उसे तपस्या करने के लिए उपदेश दिया—

ढिग जुगिनिपुर सरित तट। अचवन उदक सु आय।
तह इक तापस तप तपत। वीली ब्रह्म लगाय॥ छं० ५६०॥
ताली पुल्लिय ब्रह्म। दिष्षि इक असुर अदम्भुत॥
दिघ्घ देह चष सीस। मुष्ष करुना जस जप्पत॥
तिनि रिषि पूछ्यि ताहि। कवन कारन इत अंगम॥
कवन थान तुम नाम। कवन दिसि करवि सु जंगम॥
मो नाम ढुंढ वीसल नृपति। साप देह लम्भिय दयत॥
छुट्टन सु तेह गगा दरस। जतन देह जन मंत कृत॥ छं० ५६१।
तव मुनि वर हसि यों कहिय। विन तप लहिय न राज।
अन धन सुत दारा मुदित। लहो सबै सुख साज॥ छं० ५६४।[1]

मुनि के उपदेश के फलस्वरूप ढुंढा ने तीन सौ अस्सी वर्ष तक तपस्या की—

तपत निसाचर तप्पं। वीते वरष तीन सै असीयं।
नय वाधा विण लंग। लग्गो राम धारना घ्यानं॥ छं० ५६७।[2]

(२) एक वन में एक ऋषि का मिलने तथा उनके रूप का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

तहां सु अवंतर रिष्षि इक। कृस तन अंग सरंग।
दव दद्धो जनु द्रुम्म कोइ। कै कोई मृत भुअंग॥ छं० १७।
जप माला मृग छाला। गोटा विभूत जोग पट्टायं।
कुविजा खप्पर हथ्थं। रिद्ध सिद्धाय वचनयं मध्यं॥ छं० १८।[3]

(३) एक वार चन्द पृथ्वीराज के साथ वन में आखेट खेलने गया किन्तु वन में उनसे अलग होकर भटक गया। भटक कर एक ऋषि के पास पहुंचा तथा उन्हें अपनी सेवा और वचन से प्रसन्न करके वावन वीरों को वश में कर लेने का मंत्र प्राप्त कर लिया। उनकी इस प्रकार की सिद्धि पर सामन्तों को विश्वास नहीं हुआ, फल स्वरूप चन्द ने उनका आवाहन

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५६०-५६१ तथा ५६४, स० १।
२. वही, छं० ५६७, स० १।
३. वही, छं० १७-१८, स० ६।

कर दरबार में ही प्रकट कर दिया। किन्तु उनके आगमन से आकाश से भयोत्पादक गर्जना होने लगी, पृथ्वी डगमगाने लगी, दिग्पाल भयभीत हो उठे, तपस्वियों का ध्यान भंग हो गया, कायर कांप उठे—

> किय जप जाप सु होम, आए वीर घोर आतुरयं।
> गज्जें गयन गहीर, भय भे भीत सोर आघातं ॥ छं० १५०।
> धमधकी धरा धम्म धम्मै धरक्की, कंठ पिठ्ठ कमठ्ठं पिठ्ठं करक्की।
> डिगं आडग्गं सो दिगपाल दस्सं, तरक्कं चकं मुनि जन तपस्सं ॥ छं० १५१।
> भरक्कं सु बाज सु बांज बिछुट्टं, तरक्कंक एक उलट्टं सुलट्टं।
> इसो आगम भो बावन्न वीर, कपं काइर धीर रव्यो सुधीर ॥ छं० १५२।[1]

(४) इसी प्रकार से मुनि द्वारा शाप का एक विवरण भी देखिए—'आखेटक श्राप प्रस्ताव' नामक ६३ वें समय में पृथ्वीराज चौहान के ऐसे ही शाप की कथा का उल्लेख मिलता है। राजा संयोगिता, इंच्छिनी आदि प्रिय रानियों के साथ पानीपत में शिकार खेलने गया। वहाँ अनेक दिन आमोद-प्रमोद तथा शिकार में व्यतीत हुए। एक दिन शिकार खेलते समय उन्हें कुछ अनुचरों ने सूचना दी कि जंगल में एक स्थान पर एक बहुत बड़ा सिंह है। वहाँ पहुंच कर राजा ने सिंह के भ्रम में गुफा के द्वार पर खूब धुंआ करवाया। राजा को क्या पता था, कि उस गुफा में सिंह नहीं वरन् बाघाम्बर ओढ़े हुए एक तपस्वी तप कर रहा है, सिंह की खाल के कारण ही अनुचरों को सिंह का भ्रम हुआ था। उस तीव्र धुंवें से अति व्याकुल हो कर एक मुनि क्रोध पूर्वक निकले तथा उन्होंने शाप दिया कि जिस व्यक्ति के धुआं कराने से मेरे नेत्रों को असह्य वेदना हुई है, उसके भी भविष्य में नेत्र निकाले जावेंगे :–

> कं अंजुलि कुस पकरि, कहै रिपराज सुनहु सव।
> जिहिं मो द्रिग दुष्पये, निरा अपराध आय अब ॥
> ता जुग लोचन जोनु, अयन जुग बीतत कढ्ढ्य।
> मन बयन्न नहि टरै, विप्र पिष्षि पिष्षि यों रढ्ढ्य ॥
> जितिक पीर हम भोगवं, भूमि लोक अवलोकि इहि।
> सत गुनी विरधता होइ चष, चल्यो चाइ मुनि ईस कहि ॥ छं० १६२।[2]

ऋषि द्वारा ऐसा भयंकर श्राप पाकर पृथ्वीराज थर-थर कांपने लगे साथ के सामन्त और शूरों के हृदय में त्रास बैठ गया। उनके मुंह कुम्हला गए। भय के मारे मुंह से वचन

---

१. पृथ्वीराज रासो, नगरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १५०-५२, स० ६।
२. वही, छं० १६२, स० ६३।

नहीं निकलता था। श्राप के कष्ट से दग्ध हो रहे थे तथा पृथ्वीराज घर अथवा जंगल की ओर एक पग भी न रख रहे थे अर्थात अडिग से खड़े के खड़े रह गये—

सुनिय वयन्न श्रवन्न, कंपि प्रथिराज थरथ्थर।
जिते सथ्थ सामत, सूर उर त्रास धरद्धर।
गये वदन कुमिलाय, सक्कि अति अधर अद्ध उघ।
बोलत बोल न बैन, सैन संताप साय उघ।
रिषि श्राप दाप कौं अंग में, को ठिल्लै पग एक लगि।
जगल न जाइ नन जाइ घर, भरि न सक्कै भूपडग॥ छं० १६३।[1]

संभवतः कवि ने इस घटना का वर्णन पृथ्वीराज के चरित्र का उत्कर्ष दिखाने के लिए ही किया है। गोरी द्वारा पृथ्वीराज के पराजित होने के ठीक पूर्व ही इस घटना का उल्लेख इसीलिए ही किया गया है कि पाठक यह पूर्व निश्चय करके आगे बढ़े कि पृथ्वीराज की पराजय अवश्यम्भावी है। मुनि के शाप के कारण ही पृथ्वीराज की पराजय हुई, उसे बन्दी बनाकर गजनी ले जाया गया तथा उसे वहाँ नेत्र विहीन किया गया। मोहम्मद गोरी की शक्ति के कारण यह सब नहीं हुआ। इस प्रकार पृथ्वीराज का चरित्र पाठक की दृष्टि में खंडित नहीं होता वह अन्त तक वीर तथा महान बना रहता है। अतः स्पष्ट है कि पृथ्वीराज के चरित्र को अन्त तक महान बनाए रखने के लिए ही कवि ने बीच-बीच में ऐसी कथाओं अथवा ऋषि-मुनियों की कल्पना की है।

(५) इसी प्रकार से विपक्षी पंगराज की सेना में शंख धुनि साधुओं का वर्णन करके परोक्ष रूप में कवि ने पृथ्वीराज की महानता एवं रण कुशलता का ही परिचय दिया है, देखिए—

संयोगिता-अपहरण सम्बन्धी युद्ध में पंगराज की ओर से शंखधुनी साधुओं को समरांगण में अग्रसर होते हुए देख कर पृथ्वीराज चौहान ने इन वैरागियों के विषय में जानने की जिज्ञासा की—

रिषि सरुप संपह धुनिह, अति बल पिथ्थ कहंद।
बैरागी माया रहित, किमि सेवै जयचन्द॥ छं० १७९१।[2]

कवि चन्द ने पृथ्वीराज की जिज्ञासा शान्त करते हुए उत्तर दिया कि इन सब योगियों को ऋषियों का अवतार समझिए इन्हें नारद मुनि ने प्रबोधा था, अब इनकी कथा विस्तार से सुनाता हूं।[3] प्राचीन काल में तैलंग प्रमार नाम का एक राजा राज्य करता था, पूर्ण

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १६३, स० ६१।
२. वही, छं० १७९१, स० ६१।
३. वही, छं० १७९२, स० ६१।

अवस्था प्राप्त कर उसने वनवास ग्रहण किया तथा अपनी समस्त भूमि क्षत्रियों में विभाजित कर दी।[1] यह विभाजन इस प्रकार हुआ—

दिय दिल्ली तोवरन, देई चावड सु पट्टन।
दय संमरि चौहान, दई कनवज्ज कमधज्जन॥
परिहारन मुरदेस, सिन्धु वारडा सु चालं।
दे सोरठ जद्दवन, दई दच्छिन जावाल॥
चरना कच्छ दीनी करग, भट्टां पूरव भावही।
वन गये नृपति वंटे धरा, गिरिजापति माला गही॥ छं० १७९५।[2]

राजा के साथ ही उनके एक हजार योद्धाओं ने भी सन्यास ले लिया तथा ऋषि होकर वन में तपस्या करते हुए अजपाजाप (योग मार्ग) में अपने चित्त को लगाया।[3] हवनादि शुभ कार्यों के लिए इन्होंने इन्द्र से कामधेनु गाय भी माँग ली किन्तु उस वन में राक्षसों का आतंक छाया हुआ था। यहाँ तक कि उन्होंने एक दिन बछड़े समेत गाय को भक्षण कर लिया।[4] ऋषियों को तपस्या करते हुए दो सौ वर्ष व्यतीत हो गए थे जब दैत्यों ने उनकी गाय का भक्षण किया, इससे वे क्षुब्ध हो उठे तथा उन्होंने अग्नि में प्रवेश करने का दृढ़ निश्चय किया।[5] उसी समय वहाँ नारद मुनि प्रकट हुए तथा ऋषियों को उपदेश देते हुए कहा कि, हे ऋषियों! बीस वर्षों से तुम लोग निरन्तर अजपाजाप कर रहे हो किन्तु तुम लोग क्षत्रिय हो, अतः तुम लोग धार-तीर्थ का अनुगमन करो, दीर्घ काल तक निरन्तर तपस्या करने के बाद यदि कहीं भूल से भी इन्द्रिय विकार हो गया तो सारा कर्म नष्ट हो जावेगा। किन्तु जो क्षत्रिय खड्ग तीर्थ का सम्मान करते हैं उनकी मुक्ति अनायास ही हो जाती है। धार-तीर्थ ही क्षत्रियों का प्रमुख धर्म है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी पर अन्य सबों की भ्रम यात्रा समझो, इस भूमि पर प्रचण्ड रूप से तपने वाला राजा जयचन्द है, वह इन्द्र के अवतार के समान है तथा पृथ्वी का भार हरण करने आया है, उसका एक मात्र शत्रु पृथ्वराज चौहान है, अन्यथा समस्त राजा उसकी सेवा में रहते है। चौहान दिल्लीपति है, सौ सामन्तों का स्वामी है, वही तुम्हारे सम्मुख युद्ध क्षेत्र में खड़ा होगा, अतः तुम सब लोग पंगराज जयचन्द की सेवा में रहो। वह एक लाख गढ़ों का स्वामी है, तथा उसके पास अस्सी लाख अश्व हैं, इस प्रकार नारद जी का सारगरभित उपदेश सुनकर उनको आनन्द एवं शांति प्राप्त

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं०१७९३, स० ६१।
२. वही, छं० १७९५, स० ६१।
३. वही, छं० १७९६, स० ६१।।
४. वही, छं० १७९७-९८, स० ६१।
५. वही, छं० १७९९, स० ६१।

हुई।[1] तदुपरान्त नारद जी पंगराज जयचन्द के समक्ष गए तथा योगियों का चरित्र वर्णन कर अपने यहाँ स्थान देने का आग्रह किया, जिसे राजा ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया।[2] ये समस्त योगी अपनी जटाओं में मोर पंख बाँधते थे, शंख तथा चक्र धारण किए हुए थे, मोहादि विकारों से परे थे। इन एक हजार पराक्रमी योद्धाओं को कन्नौजपति राजा जयचन्द ने अपने यहाँ ठहराया।[3] राजा इनका बहुत सम्मान करता है तथा इन्हें अपने बड़े भाइयों की भाँति मानता है। परिणाम स्वरूप यह भी राजा की रक्षा करते हैं तथा आज इसी कारण युद्ध भूमि में आ उपस्थित हुए हैं–

अति वर नृप आदर करै, जेठा बंधव जोग।
तिनहि राज रष्षह रहै, ते छुटि अज जुधजोग ॥ छं० १८२९।[4]

इसी प्रकार से अन्य कई साधु महात्माओं की कथाए रासो में भरी पड़ी हैं। इन सब कथाओं का उपयोग मूलतः रासो को सुरुचि एवं जनप्रिय बनाने के लिए ही किया गया है।

काजी, फ़कीर, औलिया आदि :

'पृथ्वीराज रासो' में अनेकानेक स्थानों पर काजियों एवं दरवेशों का उल्लेख हुआ है। मुसलमान सेना के योद्धाओं के साथ ही साथ काजी आदि भी रहा करते थे जिनका कार्य दिन-रात नमाज तथा पूजा में व्यस्थ रहना था। विशेषतः इन काजियों का काम केवल सेना पर आई हुई आपत्ति के निवारणार्थ खुदावन्द ताला की इबादत करना था। यह अधिकतर युद्ध में शूरमाओं की भाँति अस्त्र-शस्त्र ग्रहण नहीं करते थे–

तिन मद्धि पंच से धूर। रत रग नेन लषि मौक्कर।
पंच बीस पंच दिन करे निवाज। हक अहक बस्त नहोकाज ॥ छं० १२४।
प्रम काल पाक अस्वान अन्न। छल छेद भेद जिन नहीं रंग।
समरन सग जिन नही दून। अल्लाहलाह व्यापार मूक।
कौरीय कही जिन देह एक। पैराति परच पज्जीन टेक ॥ छं० १२५।[5]

'पृथ्वीराज रासो' में सूफी अथवा दरवेशों का चित्रण उपदेशक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। सूफी अथवा फकीरों के भेष में गुप्तचर समस्त देश में घूमा करते थे। ऐसा

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १८००-१०, स० ६१।
२. वही, छं० १८१३-२६, स० ६१।
३. वही, छं० १८२७-२८, स० ६१।
४. वही, छं० १८२९, स० ६१।
५. वही, छं० १२४-२५, स० १३।

उल्लेख 'रासो' में कई स्थानों पर किया गया है। उपर्युक्त घटनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में फकीरों अथवा सूफी मतावलंबियों को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखा जाता था, यही कारण है कि गुप्तचरी करने के लिए इनका बाना ही अधिक उपयुक्त समझा जाता था। ऐसा ही एक वर्णन देखिए—शाह की आज्ञा शिरोधार्य करके दूत ने सूफी वेष धारण किया तथा दिल्ली की ओर चल पड़ा—

चल्यो दूत दिल्ली दिसा। लिये साह फुरमांन ॥
भेष सु सोफिया तंत्र सजि। चित अचिंतिय मान ॥ छं० ९२।[1]

यह दूत दिल्ली में पाँच माह तक रह कर गुप्तचर का कार्य करता रहा तथा अवधि समाप्त होने पर गजनी लौट कर शाह को दिल्ली के समस्त गुप्त भेद एव रहस्यो से अवगत करा दिया—

पवरि सवं लीनो नृपति। चलिय दूत निज मग्ग ॥
आतुरपति गज्जन नमिय। सोफी कै यह जग्ग ॥ छं० ९७।[2]

इसी प्रकार से अन्य स्थानों पर भी रासोकार ने ऐसा ही चित्रण किया है। किसी का रहस्य जानने के लिए सूफी बाना धारण करके लोग अपने कार्य की सिद्धि करते थे। अतः स्पष्ट है कि उस युग में सूफी कुछ आदर एव सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे, उन पर जनता का विश्वास था, तथा वे सन्देह की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे।

सूफी वेष धारण करने वाले गुप्तचर केवल मुसलमान दरबार में ही हों ऐसी बात नहीं थी। यह हिन्दू शासकों के यहाँ भी रहा करते थे तथा सूफी बाना पहन कर गुप्तचर का कार्य सम्पादन करते थे। दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज को कन्नौजपति पंगराज जयचन्द द्वारा आयोजित कुमारी संयोगिता के स्वयंवर की सूचना देने वाले भी सूफी वेषधारी गुप्तचर ही थे—

इह सुकथा पहिली सुनि राजन। आय कही सोफी पुनि साजन ॥
लग्यो राग श्रोतन रजानं। बुझ्झ्यो बहुरि सुजगंम जानं ॥ छं० १०।[3]

हिन्दुओं में तो तंत्र-मंत्र का प्रचार था ही किंतु मुसलमान भी तंत्र-मंत्र से अनभिज्ञ न थे। इस बात पर रासो में कई स्थान पर प्रकाश पड़ता है। एक बार पृथ्वीराज तथा गोरी के मध्य युद्ध में पृथ्वीराज के गुरु एवं पुरोहित राम ने मुसलमान सेना पर अपने मंत्रों का प्रभाव कर दिया जिसके परिणाम स्वरुप गोरी की समस्त सेना वशीभूत होकर चित्र लिखित सी

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ९२, स० १९।
२. वही, छं० ९७, स० १९।
३. वही, छं० १०, स० ६४।

खड़ी रह गई। गोरी अपनी सेना की ऐसी विचित्र दशा देख कर अत्यन्त व्याकुल हुआ तथा अपनी सेना के काजी को बुला कर कहा—देखो शत्रु ने अपनी तंत्र-मन्त्र विद्या का प्रभाव दिखाया है। तुम किस विचार में हो, उसे उखाड़ते क्यों नहीं—

कहे साहि गोरी सुनो मान काजी। लिय मीर हज्जूर तंह मीर हाजी।
करी जोर विद्या सुजंत्रार दारं। करो क्यों न उषेल भी क्या विचारं॥ छं १०३।[1]

शाह की ऐसी आज्ञा पाकर काजी ने अपने दोनों हाथों को मुंह पर फेरा तथा मीरों का जाप करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय उपरान्त उसने हाथ हटा कर दोनों सेनाओं की ओर दृष्टिपात किया जिससे मुसलमान सेना का मोह दूर हो गया तथा हिन्दू सेना को नागपाश में बांध दिया—

तवं कज्जियं दस्त दुअ मुष्य फेरी। जपं जाप पीरा दुवों सेज हेरी॥
तव मेच्छ सेन सहं मोह भग्गौ। सबै हिन्दु सेना फनी बद्द लग्गौ॥ छं० १०४।[2]

गुरू राम ने जब अपनी सेना की ऐसी दशा देखी तो उन्होंने गरुड़ का आह्वान किया तथा नाग पाश को काट कर सेना को पुनः मुक्त करा दिया।[3] अतः स्पष्ट है कि काजी आदि सेना की मंगल कामना के साथ ही साथ ऐसी विपत्तियों का भी निवारण किया करते थे। मुसलमान काजी तंत्र-मंत्र की लड़ाई के अतिरिक्त शकुन विचार भी किया करते थे। 'वड़ी लड़ाई को प्रस्ताव समय ६६' के अन्तर्गत इसी प्रकार के एक काजी का उल्लेख हुआ है। जब गोरी, पृथ्वीराज से युद्ध हेतु ग़जनी से चलने लगा तब उसके काजी ने कहा कि मेरी बात पर विश्वास कीजिए, अब की बार चौहान अवश्य परास्त होगा तथा बन्दी बना लिया जावेगा—

तवं वुझयो तांम काजी मदन्नं। तन वृद्ध विद्या सुराज्जै सवत्रं।
सदा वदिगौ साइं लागै सुमन्नं। सदानं कुरांन सुमासै सवन्नं॥ छं० ८२२।

कहै ताम काजी समं साहि गोरी। धरी मुझ्झ वातं चरंचित्त छोरी।
दिनं कान्हि कूहु दिन उंच दीनं। गहौ चाहुआनं कला इंद षीनं॥ छं० ८२३।

परं मंन दूनी भरं भार मारं। रनं रौद्र वित्तं अभूतं सुसारं।
पलं रुद्र रस्सं अभूतं भयानं। विभछंछ समथ्थं उहथ्यं सयानं॥ छं० ८२४।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०३, स० १३।
२ वही, छं० १०४, स० १३।
३. गरं गारुड़ आह्वान राम उच्चारयौ। तव बंधन नाग तिनषंड डार्यौ। छं० १०५, स० १३।

चढ़े काल्हि चंपौ चिर हिन्दु सेन। न चुकै कुरानं सुमांन सेवनं।
गहो जौन हिन्दू पंल दुष्ट जेसं। करो पोदि षोली तनंहं प्रवेसं ॥ छं० ८२५।'

इसी प्रकार के विवरणों से 'रासो' भरा पड़ा है। इन काज़ी, औलिया तथा दरवेशों के नामों की ऐतिहासिकता खोजना भ्रम है। कवि ने इनका सृजन कथा विकास के लिए किया है, यही इनका महत्व भी है।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ८२२-२५, स० ६६।

६

स्त्री-पात्र

'पृथ्वीराज रासो' मूलतः वीर काव्य है। सम्भवतः इसी कारण कवि ने स्त्री पात्रों का 'रास' में बहुत कम विवेचन किया है। ग्रन्थकार का अभीष्ट पृथ्वीराज की वीरता का गान करना था। स्त्री पात्रों के नाम तो प्रसंगवश आ गए हैं। ऐसी स्थिति में स्त्री पात्रों की न्यूनता स्वाभविक ही है। कुछ स्त्री पात्र ऐसी भी हैं जिनका कवि ने नामोल्लेख नहीं किया। ऐसे पात्रों की ऐतिहासिकता खोजना असम्भव होने के कारण छोड़ दिया गया है।

इंच्छिनी :

इंच्छिनी तथा पृथ्वीराज की विवाह कथा बड़े ही रोचक ढंग से प्रारम्भ की गई है। शुक-शुकी वार्ता के अन्तर्गत शुकी कहती है कि मुझे नींद नहीं आ रही है, अतः इंच्छिनी तथा पृथ्वीराज के विवाह का विस्तार से वर्णन करो और शुक इंच्छिनी तथा पृथ्वीराज के विवाह का वर्णन विस्तार से सुनाना प्रारम्भ कर देता है—

कहै सुकी सुक संभलौ, नींद न आवै मोहि ॥
रय निरवांनिय चन्द करि, कथ इक पूछौ तोहि ॥ १ ॥
सुकी सरिस सुक उच्चार्‌यौ, धर्‌यौ नारि सिर चत।
समय संजोगिय संभरै, मन मैं मंडिय हित्त ॥ २ ॥[1]

सुकी की जिज्ञासा के साथ ही कथा प्रारम्भ हो जाती है—सलषजैत ने अपने पुरोहित 'भानु' के हाथ सुवर्ण-पत्र पर लग्न लिख कर भेजा, जिसके साथ श्री फल (नारियल) के अतिरिक्त बहुत से रत्न और जरी-वस्त्र भी थे, जिन्हें देखने मात्र से मन आनन्दित हो जाता था—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नगरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १-२, स० १४।

पठयो प्रोहित मान कर, कनक पत्र लिखि लग्न।
श्रीफल बहुत रतन्न जरि, पिखि होत मन मग्न ॥ ३ ॥[1]

लग्न लेकर आए हुए पुरोहित से पृथ्वीराज पूछने लगे कि हे द्विज ! कुमारी की इस समय कितनी आयु है और कैसी रूपवती तथा गुणवती है ? उसके विषय में विस्तार से वर्णन करो, जिससे मेरे मन में शान्ति हो—

पृथु पूछत बंभननि सुनि, कहो बाल किन वेस।
कितक रूप गुन अग्गरी, सुनन मोहि अदेस ॥ ४ ॥[2]

ब्राह्मण ने रानी इंच्छिनी का रूप तथा वयः सन्धि का विशद वर्णन किया जिसे सुनकर पृथ्वीराज अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा अपने प्रमुख सामन्तों को साथ लेकर विवाह हेतु चल पड़े—

सथ्य कंन्ह चहुआंन, सथ्थि निड्डुर रखि राजं।
सथ्थ सोम - सामंत, अल्लह पल्लहन प्रति साजं ॥
चलिय गरुअ गहिलोत, चलिय मोंहा प्रसिध वर।
दाहिम्मो कैमास, सथ्थ सूरो चांवड़ गुर ॥
मति-मद्र मंति साधन सकल, लोहांनी स्वांमित्त धुर।
चतुरंग सूर वय रूप गुन, लिए राज - राजन्न गुर ॥ ११ ॥[3]

ग्रन्थकार ने आगे चलकर विवाह संस्कार तथा रानी इच्छिनी का नख-शिख वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया है। अन्त में रानी इंच्छिनी का विवाह बड़ी धूमधाम से पृथ्वीराज के साथ सम्पन्न हो गया तथा विदा होकर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया—

चल्यौ ब्याहि संभरिधनी, मंगन भए निहाल।
पुहचावन घन सँग नए, नृप गुज्जरवै साल ॥ ७२ ॥[4]

पाँच कोस तक साथ में चलकर पृथ्वीराज चौहान से आबू राजवंशी सलष और जैत ने यह कहते हुए कि आपको हम क्या दे सकते हैं और ऐसे देने में हमारी क्या शोभा है। अस्तु, आपके काम के लिए हमारा सिर समर्पित है, विदा ली—

पंच कोस पर पिथ्थ पह, बिदा मंगि अबु ईस।
और देन तुम सोंम कह, काम तुम्हें हम सीस ॥ ७३ ॥[5]

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३, स० १४।
२. वही, छं० ४, स० १४।
३. वही, छं० ११, स० १४।
४. वही, छं० ७२, स० १४।
५. वही, छं० ७३, स० १४।

इस प्रकार के वचन कह कर सलख राज ने घर की ओर प्रस्थान किया तथा पृथ्वीराज दुल्हन को साथ लिए हुए दिल्ली अपने घर पहुंच गए।

कवि ने जिस रोचक ढंग से कथा का प्रारम्भ किया था वैसे ही उसका अन्त भी किया है—'इस प्रकार रानी इंच्छिनी की कथा कहते और सुनते-सुनते वह रात्रि व्यतीत हो गई। इस कथा को कवि चन्द ने कही तथा उसकी पत्नी ने सुनी। जो कोई यह सुहावनी कथा को सुनेगा उसे सुखप्रद होगी–

सुनत कथत इछि वत्तरी, गइ रत्तरी विहाइ।
दुज्ज कही दुजि स्यंभरिय, सुवख श्रवन्न सुहाइ॥ ८४॥'[1]

उपर्युक्त विवेचन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि रानी इंच्छिनी आबूपति सलपराज की पुत्री थी जिसका विवाह दिल्ली-अजमेर के आधिपति चौहान पृथ्वीराज के साथ हुआ था। रासो के अनुसार यह पृथ्वीराज चौहान की पटरानी थी।

ऐतिहासिकता :

अब प्रश्न यह उठता है कि 'रासो' के इस विवाह वर्णन में सत्यता का कितना अंश है– ओझा जी इस कथा को पूर्णरूप से काल्पनिक मानते हुए लिखते हैं कि–'रासो में लिखा है कि १२ वर्ष की अवस्था में, पृथ्वीराज ने आबू के परमार राजा सलप की पुत्री और जैत की बहिन इंच्छिनी से विवाह किया। यह कथा ऐतिहासिक नहीं है। आबू पर सलख या जयत नाम का परमार राजा कभी हुआ ही नहीं। आबू पर की वि० सं० १२८७ की वस्तुपाल के मंदिर की प्रशस्ति में आबू के परमारों की उस समय तक वंशावली दी है। उसमें वहाँ के परमार राजा यशोधवल का पुत्र धरावर्ष होना लिखा है। यशोधवल का वि० सं० १२०२ का शिलालेख राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में विद्यमान है। उसके पुत्र धारावर्ष के १४ शिलालेख और एक ताम्र पत्र मिला है, जिनमें से वि० सं० १२२० ज्येष्ठ सुदि १५, वि० सं० १२६५, १२७१ और १२७४ के चार मूल लेख राजपूताना म्युजियम में सुरक्षित हैं, जिनसे निश्चित है कि पृथ्वीराज की गद्दी नशीनी के पूर्व से लगा कर उसकी मृत्यु के बहुत पीछे तक आबू का राजा धरावर्ष था, न कि सलप या जैत।'[2]

श्री अमृतलाल शील ने राष्ट्रकूट धवल के सन् ९९६ ई० के शिलालेख के आधार पर बताया है कि चौहान पृथ्वीराज से दो सौ वर्ष पूर्व आबू अथवा चन्द्रावती का शासक धरणीवराह था, जिसने गुजरात के राजा मूलराज सोलंकी (चालुक्य) की आधीनता स्वीकार कर

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ८४, स० १४।
२. रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४५-४६, १९२८ ई०।

की थी तथा आबू के अचलेश्वर के मंदिर तथा वस्तुपाल के जैन मंदिर की सन् १२३० ई० (वि० सं० १२८७) की प्रशस्ति[1] में गुर्जेश्वर कुमारपाल द्वारा संपादलक्ष या शाकम्भरी नरेश अर्णोराज को परास्त करके उनके पक्ष में चले जाने वाले अपने आबू के सामन्त विक्रम परमार को गद्दी पर से उतार कर उसके भतीजे यशधवल को वहाँ का अधिपति बनाने का उल्लेख करके, आबू के अजारी गाँव के कुमारपाल की प्रशस्ति सूचक सन् ११४५ ई० (वि० सं० १२०२) के लेख, सिरोही राज्य के कायद्रा ग्राम के उपकण्ठ के काशी विश्वेश्वर के मंदिर के सन् ११६३ ई० (वि० सं० १२२०) के यशोधवल परमार के पुत्र धारावर्ष के शिलालेख[2] और 'ताज-उल-म-आसीर' उल्लिखित सन् ११९७ ई० (वि० सं० १२५४) में खुसरों अर्थात कुतुबुद्दीन-ऐबक द्वारा अन्हलवाड़ा पर आक्रमण-काल में गुजरात के राय कर्ण और धारावर्ष (परमार) सामन्तों के युद्ध करने का विवरण देकर सिद्ध किया है कि पृथ्वीराज के समय में आबू पर गुर्जरेश्वर द्वारा नियुक्त परमार जातीय सामन्तों का आधिपत्य था।"[3]

कविराव मोहनसिंह रानी इंच्छिनी को प्रमाणिक पात्र मानते हुए लिखते हैं कि—"रानी इंच्छिनी आबू राजवंशी सलप जैत्र की पुत्री थी। सलप जैत्र गुर्जर-देशीय चालुक्यों के विरुद्ध थे।"[4]

डॉ० दशरथ शर्मा 'कन्हड दे प्रबन्ध' के आधार पर रानी इंच्छिनी को धारावर्ष परमार के छोटे भाई पाह्लण दे की पुत्री पद्मावती भी अनुमान करते है।[5]

डॉ विपिनविहारी त्रिवेदी एक स्थान पर लिखते हैं कि—"जो भी हो प्रधान मंत्री कैमास का वध कराने वाली, संयोगिता के रूप के कारण सपत्नी द्वेष से राजमहल त्यागने का उपक्रम करने वाली रासो की सुन्दरी, आबू की परमार राजकुमारी और पृथ्वीराज की पटरानी इंच्छिनी चरित्र-चित्रण की दृष्टि से चन्द के काव्य की एक अद्भुत प्रतिमा है।[6]

इन्द्रावती :

महाराज पृथ्वीराज ने अपने सामन्तों को अपना खड्ग देकर राजकुमारी इन्दावती से

---

१. एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ८, पृ० २०८-१३।
२. राजपूताना म्यूजियम, अजमेर।
३. श्री अमृतलाल शील, हिस्टारिसिटी आव दि एपिक पृथ्वीराज रासो, माडर्न रिव्यू, तथा चन्दबरदाई का पृथ्वीराज रासो, सरस्वती, पृ० ५५८-६१, मई सन् १९२६ ई०।
४. कविराव मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, सम्पादकीय, पृ० १२।
५. डॉ० दशरथ शर्मा, सम्राट पृथ्वीराज चौहान की रानी पद्मावती, मरु भारती, भाग १, अंक १, सितम्बर १९५२।
६. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, भूमिका भाग, पृ० २१८, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, १९५३ ई०।

विवाह कर लाने के लिए भेजा। कवि चन्द ने सारंगीपुर के प्रमार राजा से विवाह करने की प्रार्थना की किन्तु उसने खड्ग से विवाह करना अस्वीकार कर दिया।[1]

पिता के हट पूर्ण वचन सुनकर सुन्दरी इन्द्रावती ने अपना मस्तक लज्जा से नीचा कर लिया तथा मन ही मन विचार करने लगी कि हे पृथ्वी ! तू फट कर मुझे अपने में आत्मसात कर ले अथवा अग्नि में जल कर मर जाना ही श्रेष्ठ है–

सुनि इन्द्रावति सुन्दरी, धरनि सरन सिर लाइ॥
कै धरनी फट्टै कुहर, कै पावक जरि जाइ।। छ० ४।[2]

कवि राजकुमारी के मन की बात को स्पष्ट करता हुआ लिखता है कि राजकुमारी सोचती हैं कि मैं तो इस जन्म में बादशाह गोरी को बांध लेने वाले राजा सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज चौहान को ही प्रेम करती हूँ। इसके बिना मेरे लिए समुद्र में डूबकर आत्महत्या करना ही उचित है–

इन भव नृप सोमेस सुअ, जुध बंधन सुरतान॥
कै जलद्धि बूडवि मरें, अवर न वंछौं प्रान। छ० ५।[3]

सखियों ने राजकुमारी का दृढ़ निश्चय जान कर उसे पृथ्वीराज से विरक्त करन का भरसक प्रयत्न किया किन्तु राजकुमारी ने एक न सुनी तथा उन्हें ही बुरा-भला कहती हुई कहने लगी–

तुम दासी दासी सु मति, मो मति नृप पुत्रीय।
बोलि विन चुक्कै न नर, जो बर मुक्के जीय॥ छं० ७।[4]

इधर राजा भीम पृथ्वीराज के खड्ग के साथ विवाह करने को तैयार न थे। पृथ्वीराज के सामन्तों ने विचारा कि यदि हम खड्ग से विवाह विना किए वापिस जावेंगे तो बड़ी जग हंसाई होगी दूसरे पृथ्वीराज को भी विश्वास न आवेगा।[5] अतः समस्त सामन्तों ने मंत्रणा करके वहाँ से पांच कोस की दूरी पर डेरा डाल दिया तथा पट्टन नरेश (भीम) की गौओं को घेर लिया, जिसे सुनकर भीम ने ससैन्य चढ़ाई कर दी—

पंच कोस मेलान करि, लिय नृप पट्टन धेन।
कूक कहर बज्जिय, विषय चढ़िय भीम नृप सेन॥ छ० २३।[6]

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १-३, स० ३१।
२. वही, छं० ४, स० ३१।
३. वही, छं० ५, स० ३१।
४. वही, छं० ७, स० ३१।
५. वही, छं० २०, स० ३१।
६. वही, छं० २३, स० ३१।

दोनों दलों में घोर संग्राम छिड़ गया, प्रातः से सांय काल तक रणभेरी बजती रही, अन्त में भीम की पराजय हुई तथा भयभीत होकर उसने राजकुमारी इन्द्रावती को पृथ्वीराज को समर्पित कर दिया—

भीम भयानक भै प्रह्यौ, सरन राम कविराज।
वर इन्द्रावती सुन्दरी, दें दीनो प्रथिराज ॥ छं० ३२।[1]

सामन्तों ने पृथ्वीराज को सूचना दी कि राजा भीम ने सुन्दरी इन्द्रावती का विवाह कर दिया है।[2] इतना ही नहीं राजा भीम ने यथा शक्ति दहेज भी दिया, देखिए-

सत्त हथ्थी हय सहस विय, साकति साजि अनूप।
हथलेवौ चहुआन कों, दियौ भीम वर भूप ॥ छं० ३८।
नग्ग जरित चौंडोल सो, सुर सत दासिय सथ्थ।
दें पहुचाइय सुन्दरी, कही वने वर गथ्थ ॥ छं ३९।।[3]

कहना न होगा रानी इन्द्रावती मनवांछित वर को पाकर अत्यन्त हर्षित हुई तथा दिल्ली के महलों में पृथ्वीराज के साथ सुख भोगने लगी।

ऐतिहासिकता :

श्री अमृतलाल शील इन्द्रावती को काल्पनिक पात्र मानते हुए लिखते हैं कि–मालवा के लक्ष्मी वर्मा (सन् ११४३ ई०), हरिश्चन्द्र (सन् ११७९ ई०) और उदय वर्मा (सन्-११९९ ई०) के दान पात्रों को देखने पर 'रासो' के (समय ३३) के भीमदेव यादव-राय और इन्द्रावती कल्पित पात्र प्रमाणित होते हैं।"[4]

कविराय मोहनसिंह इन्द्रावती के सम्बध में अपने उद्‌गार इस प्रकार प्रकट करते हैं– 'इन्द्रावती विवाह, से ज्ञात होता है कि पहले तो इन्द्रावती के पिता भीम ने खड्‌ग के साथ अपनी पुत्री से विवाह करने से इन्कार कर दिया किन्तु बाद में पृथ्वीराज के सामन्तों द्वारा पट्टनपुर की गायों को घेरकर युद्ध में पराजित कर देने पर उसने इन्द्रावती का विवाह खड्‌ग से कर दिया। (करहेरा युद्ध से स्पष्ट हो गया है कि यह राजकुमारी सारंगीपुर के राजा भीम की पुत्री थी)।[5]

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३२, स० ३१।
२. वही, छं० ३६, स० ३१।
३. वही, छं० ३८-३९, स० ३१।
४. श्री अमृतलाल शील, सरस्वती, भाग २७, संख्या ६, पृ० ६२७।
५. कविराव मोहनसिंह पृथ्वीराज रासो, द्वितीय भाग, सम्पादकीय, पृ० ६, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, सम्वत् २०१२।

सम्भव है इतिहास की दृष्टि से इन्द्रावती काल्पनिक पात्र हो क्योंकि इसका कहीं अधिक विवरण प्राप्त नहीं होता है।

कमला (पृथ्वीराज की माता) :

'पृथ्वीराज रासो' में लिखा है कि दिल्ली नरेश तोमर राजा अनंगपाल के दो पुत्रियाँ थी उनमें से एक कान्यकुब्जेश्वर विजयपाल को तथा दूसरी अजमेरपति राजा सोमेश्वर को इस कलियुग में मृत्यु का बीज बोने के लिए दी थीं, अर्थात् उनसे विवाह किया था—

अनंगपाल पुत्री उभय। इक दीनी विजयपाल।
इक दीनी सोमेस को। बीज ववन कलिकाल॥ छं० ६८१।[1]

ग्रन्थकार तोमर नरेश अनंगपाल की पुत्रियों की नामोल्लेख करता हुआ लिखता है—

एक नाम सुर सुन्दरी। अनिवर कमला नाम।
दरसन सुर नर दुल्लही। मनो सु कलिका काम॥ छं० ६८२।[2]

अर्थात् एक का नाम सुन्दरी तथा दूसरी का नाम कमला था। उनके दर्शन देवता तथा मानवों को भी दुर्लभ थे। वे मानों काम की सुन्दर कलिकाएं थी। दूसरी राजकुमारी 'कमला' ही ग्रन्थ के नायक की माता थी। यह कथन निम्नलिखित दोहे से और भी स्पष्ट हो जाता है—

सोमेसर तोंअर घरनि। अनंगपाल पुत्रीय॥
तिन सु पियुय गर्भ धरिय। दावन कुल छत्रीय॥ छं० ६८५।[3]

कालान्तर में पुत्र जन्म होनें पर अत्यन्त हर्ष मनाया गया तथा विविध प्रकार के दान दिए गए।[4] पृथ्वीराज नामक अपने दौहित्र को दिल्लीपति अनंगपाल ने योगिनिपुर (दिल्ली) दान कर दी तथा स्वयं तपस्या हेतु बद्रिकाश्रम चले गए—

जुग्गिनिपुर चहुआंन दिय। पुत्री पुत्र नरेस॥
अनंगपाल तोंअर तिनिय। किय तीरथ परवेस॥ छं० ९६।[5]

ऐतिहासिकता :

कमला की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए श्री अमृतलाल शील ने लिखा है कि

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६८१, स० १।
२. वही, छं० ६८२, स० १।
३. वही, छं० ६८५, स० १।
४. वही, छं० ६८७, स० १।
५. वही, छं० ९६, स० १८।

दिल्ली के अशोक स्तम्भ (आधुनिक फिरोजशाह की लाट) पर सोमेश्वर के बड़े भाई विग्रहराज चतुर्थ उपनाम वीसलदेव के लेख के आधार पर लिखा है कि इससे यह प्रमाणित होता है कि सन् ११६३ ई० में कुछ पहले वीसलदेव ने दिल्ली को जय किया था। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि सोमेश्वर के राज्य काल में दिल्ली में अजमेर का कोई करदाता राजा राज्य करता था अथवा अजमेर राज्य का कोई वेतन भोगी सामन्त वहाँ का दुर्ग रक्षक था। पृथ्वीराज अजमेर के युवराज थे। उनका अपने पिता के अधीन किसी करदाता राजा अथवा उनके नौकर दुर्ग रक्षक के घर गोद जाना केवल असम्भव ही नहीं, अश्रद्धेय भी प्रतीत होता है।"

म० म० ओझा रासो की घटना को अप्रामाणिक एवं अनैतिहासिक मानते हुए लिखते हैं—"दिल्ली के तवर राजा अनंगपाल ने अपनी छोटी पुत्री कुंवरि कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया। जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ था। अन्त में अनंगपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर वद्रिकाश्रम में तप करने को चला गया। यह सारी कथा कल्पित है, क्योंकि उस समय न तो अनंगपाल दिल्ली का राजा था और न उसकी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ हुआ था। दिल्ली का राज्य तो पहले ही सोमेश्वर के बड़े भाई विग्रहराज (चतुर्थ) ने ही अपने राज्य (अजमेर) के अधीन कर लिया था। बिजोलियाँ के उक्त लेख में विग्रहराज का दिल्ली और हाँसी को लेना लिखा है। तबकाते-नासिरी में शाहाबुद्दीन गोरी के साथ की पहली लड़ाई में दिल्ली के राजा गोविंदराज का पृथ्वीराज के साथ होना और उसी (गोविन्दराज) के भाले से सुल्तान का घायल होकर लौटना तथा दूसरी लड़ाई में, जिसमें पृथ्वीराज की हार हुई, उस (गोविन्द) का मारा जाना लिखा है। इससे निश्चित है कि पृथ्वीराज (तृतीय) के समय दिल्ली-अजमेर के उक्त सामन्त के अधिकार में थी।

पृथ्वीराज की माता का नाम भी कमला नहीं, किन्तु कर्पूरदेवी था और वह दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री नहीं, किन्तु त्रिपुरी (चेदि अर्थात जबलपुर के आस-पास के प्रदेश की राजधानी) के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा तेजल (अचलराज) की पुत्री थी।"

पृथ्वीराज चौहान की माता का नाम कर्पूरदेवी, ओझा जी जयानक का १२वीं शताब्दी

---

१. श्री अमृतलाल शील, चन्द वरदाई का पृथ्वीराज रासो, सरस्वती, भाग २७, संख्या ५, पृ० ५५६, जून १९२६।

२. रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, पृ० ४२, कोषोत्सव स्मारक संग्रह।

विरचित 'पृथ्वीराज विजय'[1] १३वीं शताब्दी का हम्मीर महाकाव्य[2] तथा १६वीं शताब्दी का 'सुर्जन चरित'[3] के आधार पर कहते हैं।

म० म० ओझा जी के मत को निराधार मानते हुए म० म० मथुराप्रसाद दीक्षित ने अपने लेख में लिखा है कि–'सोमेश्वर के विवाह सम्बंध में इतना कहना पर्याप्त है कि राजाओं के अनेक विवाह होते थे। दिल्ली को अजमेर नरेश के आधीन मान लेने पर भी दिल्ली नरेश अजमेर के यहाँ विवाह नहीं करेगा, यह नहीं सिद्ध होता है और जिस पृथ्वीराज काव्य के आधार पर वे वैसा आरोप करते हैं, वही संदिग्धास्पद है।"[4]

डॉ० दशरथ शर्मा ने बीकानेर फोर्ट लाइब्रेरी की रामसिंह के समय की लगभग सं० १६५७ वि० लिखित ४००४ छन्द परिमाण वाले रासो की हस्तलिखित प्रति की प्रमाणिकता सिद्ध करते हुए लिखा है–'सोमेश्वर की स्त्री को अनंगपाल की पुत्री अवश्य बतलाया गया

---

१. इति साहससाहचर्यचर्यस्समयज्ञः प्र (तिपादि) त प्र प्रभावाम्।
तनयां स सपादलक्षपुण्यैरुपयेमे त्रिपुरीपुर (न्द) रस्य ॥ (१६), सर्ग ७।
पृथ्वीं पवित्रतां नेतुं राजशब्दं कृतार्थताम्।
चतुर्वर्णधन नाम पृथ्वीराज इति व्यधात् ॥ (३०) सर्ग ८।
मुक्तेर्वति सुधवा वश गलत्पुरुषमौक्तिकं।
देव सोमेश्वरं द्रष्टुं राजश्रीरुदकण्ठत ॥ ५७।
आत्मजाभ्य मिव यशः प्रतापाभ्यामिवान्वितः।
सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपतिः ॥ (५८)।
कर्पूरदेव्यथादाय दानभोगविवात्मजौ ॥
विवेशाजय राजस्य संपन्मूर्तिमती पुरीम् ॥ (५९) सर्ग ८।
—जयानक, पृथ्वीराज विजय महाकाव्य।

२. इलाविलासी जयति स्म तस्मात्।
सोमेश्वरोऽनश्वरनीतिरीतिः ॥ ६७।
कर्पूरदेवी बभूव तस्य।
प्रिया (प्रिया) राधनसाव धाना ॥ ७२। —हम्मीर महाकाव्य, सर्ग २।

३. शकुन्तलाभां गुणरूपशीलैः
स कुन्तलानामधिपस्य पुत्रीम्।
कर्पूरधारां जनलोचनानां
कर्पूरदेवीमुदुवाह विद्वान ॥ ४ ॥ —सुर्जनचरित, सर्ग ९।

४. पं० मथुराप्रसाद दीक्षित, पृथ्वीराज रासो और चन्द वरदाई, सरस्वती पृ० ४५८ नवम्बर, सन् १९३४ ई०।

है। परन्तु सम्भव है कि ये पृथ्वीराज की विमाता हों। दिल्ली के वीसलदेव के आधीन होने पर भी तोंमर राजाओं का वहां रहना संभव है।"[1]

कविराव मोहनसिंह उपर्युक्त मतों का खंडन करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि अनंगपाल तोंमर दिल्ली का शासक था तथा उसकी पुत्री कमला ही, चौहान पृथ्वीराज की माता थी। वह लिखते हैं कि—'अनंगपाल के नाम दिल्ली के कई स्तम्भों पर उपलब्ध हैं, लेकिन उनमें सम्वत् नहीं है केवल कुतुबुद्दीन ऐबक की मसजिद के आहते में जो लोह स्तम्भ पड़ा हुआ है उसी पर उसके विषय में सम्वत् का उल्लेख इस प्रकार है. 'संवत दिल्ली' लिखने के पश्चात अंक लिखे है। इससे यह सिद्ध होता है कि दिल्ली के सम्वत् ११०९ में इसे (दिल्ली को नए सिरे से या जीर्णोद्धार के रूप में) बसाया उसमें बसाने के स्थान पर नाम नही आया. परन्तु जहां यह लेख लगा है वह स्थान ही अपने बसने की पुष्टि स्वयं कर देता है। यह दिल्ली वाला सम्वत् कौन सा था इस पर विचार किए जाने से निश्चित है कि वही दिल्ली वाला रासो में लिखा अनन्द सम्वत् ही है। जिसमें स्वर्गीय पड्या मोहनलाल जी के मतानुसार ९१ वष विक्रमी सम्वत् से जो कमी है वे जोड़ देने से वि० सं० १२०० में अनगपाल का दिल्ली पर होना सिद्ध होता है।

जिनपाल रचित 'खरतरगच्छ पट्टावली' का अनुसरण करते हुए श्रीयुत अगरचन्द नाहटा, डॉ० दशरथ शर्मा आदि विद्वान भी वि० सं० १२२३ के लगभग मदनपाल नामक राजा का नाम दिल्ली के शासक रूप मे होना लिखते हैं। मदनपाल अनंगपाल का पर्याय-वाची है। अस्तु इससे भी अनगपाल का समय चहुवान विग्रह (चतुर्थ) सोमेश्वर और पृथ्वीराज से आ मिलता है।

प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी अमर ने अपने मित्र रट्ठी को जो दो पद्य लिखे उनसे भी निश्चित है कि तंवर और राठोर वंश के मुख्य स्थान दिल्ली और कन्नोज का एक ही समय (२२ वर्ष के अन्तर्गत ही) में नाश हुआ।

अस्तु चहुवानों से पूर्व दिल्ली का शासक तंवर ही था और वह था अनंगपाल तवर ही।

जब कि उपरोक्त प्रमाणों से और लोक प्रसिद्धि से अनंगपाल तंवर का उस समय होना सिद्ध है तो उसकी पुत्री कमला से पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का विवाह होने में कोई शंका नहीं होनी चाहिए और बहु विवाह की प्रथा होने से कर्पूरदेवी भी सोमेश्वर की रानी रही हो और विमाता होने से उसको भी पृथ्वीराज की माता लिखा गया हो यह सम्भव है।

---

१. डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराज रासो की एक प्राचीन प्रति और उसकी प्रामाणिकता, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृ० २७५-८२, कार्तिक सं० १९९६ वि०।

पृथ्वीराज का जन्म कमला से ही हुआ, कर्पूरदेवी से नहीं, इस विषय में भी प्रमाण देने की आवश्यकता है।

पृथ्वीराज विषयक अन्य पुस्तकादि में लिखे गये उसके जीवन वृतान्त पर खूब सोचने से पृथ्वीराज का जन्म रासो में लिखे अनुसार वि० स० १२०५-६ में होना ही मानना पड़ता है। परन्तु विद्वानों ने सोमेश्वर का विवाह कर्पूरदेवी के साथ वि० सं० १२१८ के बाद होना माना है। अतः; पृथ्वीराज का कर्पूरदेवी के गर्भ से उत्पन्न होना सम्भव नहीं।"[1]

'बलभद्र विलास' में पृथ्वीराज के जन्म के विषय में लिखा है कि संवत ११३२ माघ शुक्ल त्रयोदशी शुक्रवार को दोपहर दिन के समय पुष्प नक्षत्र अभिजित मुहूर्त में सब लोगों के प्रसन्न काल में कमला के पुत्र उत्पन्न हुआ जिसको सब मनुष्य दुर्योधन का अवतार कहते हैं।"[2]

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि 'कमला' ही पृथ्वीराज की माता तथा अजमेर पति सोमेश्वर की पत्नी थी। अतः रासो की कुछ घटनाओं को सत्य मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

करनाटी :

पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि चौहान पृथ्वीराज ने करनाटक प्रदेश पर आक्रमण करके संधि रूप में एक अनुपम सुन्दरी करनाटी नामक वेश्या को प्राप्त किया।[3] इस प्रकार पृथ्वीराज नर्तकी सहित करनाटी वेश्या को अपने साथ ले आया—

> लै आयौ नाइक्क सथ, करनाटी प्रिथिराज।
> जत्र तत्र एकठ भए, सबै साज सम्माज ॥ ४ ॥[4]

महाराज पृथ्वीराज कारनाटी के रूप, गुण तथा लक्षणों पर रीझ गए तथा उसकी रक्षिता रूप में रानी इंच्छिनी प्रमारनी के अंतःपुर के बाहर द्वार पर रहने के लिए व्यवस्था कर दी तथा उसके भवन पर रक्षा हेतु दिन-रात बहुत सी दासियाँ रख दी गई—

---

१. कविराव मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो पर पुनर्विचार, राजस्थान भारती, भाग १, अंक २-३, पृ० ४१-४४, सन् १९४६ ई०।

२. अथ स माघ मासे तु त्रयोदश्यां सिते भृगो।
पुष्ये द्वित्रीन्दुचन्द्रेऽब्दे मध्यान्हेऽभिजितक्षणे ॥ १ ॥
मुदिते लोक सन्ताने तदा पुत्रमजीजनत।
ये वदन्ति नराः सर्वे धार्तराष्ट्रावतारकम् ॥ २ ॥ —बलभद्र विलास

३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३, स० २८।

४. वही, छं० ४, स० २८।

काम कला वुट्टे नृपति, सुग्रिह पवारी द्वार।
तिन अवास दासी सघन, अहनिस रहि रखवार॥ ११।[1]

'कैमास वध' समय में एक बार फिर हमें करनाटी वेश्या की सूचना प्राप्त होती है। महाराज पृथ्वीराज चौहान शिकार खेलने गए थे। घनघोर घटा छा रही थी। ऐसे समय में वेश्या करनाटी की आँखें मंत्री कैमास से चार हो गई। रात्री में वेश्या ने कैमास को अपने यहाँ बुलाया, कामान्ध कैमास ने भी विना विचारे करनाटी के महल में प्रवेश किया। प्रवेश करते हुए रानी इंच्छिनी ने उसे देख लिया तथा प्रतिहारिनी को भेज कर राजा को मृगया से सूचना देकर बुला लिया। महाराज पृथ्वीराज ने सौदामिनी के प्रकाश में कैमास पर बाण चलाया जिससे मंत्री कैमास मृत्यु को प्राप्त हुआ। कैमास को पृथ्वीराज ने पृथ्वी में गढ़वा दिया किन्तु भाग्यवश करनाटी वेश्या भाग गई तथा कन्नौजपति जयचन्द से समस्त घटना का वर्णन कर उसी के दरबार में रहने लगी—

खनि गड्यो नृप सम घनह, सो दासी सुर पात।
दिव्य धार ने जलधि तें, लीला कहिग सु प्रात॥ ४०।[2]

स्मरण रहे महाराज पृथ्वीराज को कैमास जैसा स्वामीभक्त मत्री इसी वेश्या के कारण अपने हाथों से मारना पड़ा, जिसका उन्हें जीवन भर पश्चाताप बना रहा। इस पाप के प्रायश्चित स्वरूप पृथ्वीराज चौहान ने कैमास के पुत्र को उसके पिता के सिंहासन पर बैठाया तबही उसे कुछ सन्तोष प्राप्त हुआ—

उर सल्लैं कैमास नृप, पुत्र परट्ठिय पट्ट।
चित चचल अच्चल करिय, दिय हय गय वर थट्ट॥ ६९।[3]

'कनवज्ज कथा' में एक बार फिर करनाटी वेश्या हमारे सामने आती है किन्तु इस बार दूसरे रूप में। वह एक स्वामिभक्त तथा नमक को ध्यान में रख कर पृथ्वीराज की जीवन रक्षा करती हुई दिखाई देती है—जयचन्द के दरबार में करनाटी वेश्या ने चन्द कवि के साथ छद्मवेशी पृथ्वीराज को पहचान कर लज्जा से घूंघट खींच लिया। अपना भेद खुलने के भय से कविचन्द ने सकेत में कहा कि तेरे ही कारण कैमास जैसा स्वामिभक्त मत्री मारा गया, अब क्या तू महाराराज पृथ्वीराज को भी मरवाना चाहती है। कवि के सकेत का अर्थ समझ कर वेश्या करनाटी ने तुरन्त ही अपना अवगुण्ठन हटा दिया, जिससे पृथ्वीराज पर आई हुई विपत्ति टल गई—

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ११, स० २८।
२. वही, छं० ४०, स० ५५।।
३. वही, छं० ६९, स० ५५।

फरि फलवलह स मंत्री मारयौ, नहि चहुआनं सर नं विचारयौ।
सेन सुवर कहि कवि समुझाई, अब तूं कलह करन इहां आई।। छं० ७१८।।

समझि दासि सिरवर तिन ढक्यौ, कर पल्लव तिन दृगवर अक्यौ।
कव रस सबै समा कमधज्जी, मंचकि भूप सिगिनी सज्जी।। छं० ७१९।।[1]

करनाटी वेश्या केवल पृथ्वीराज को ही पुरुष मान कर अपना मुँह लज्जा से ढकती थी, तथा यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध थी अतएव उसके अवगुण्ठन निकालते ही जयचन्द को पृथ्वीराज की उपस्थित का भ्रम हो गया तथा अवगुंठन हटते ही सब आश्चर्य एवं विस्मय से चकित रह गए तथा पृथ्वीराज पर आया हुआ संकट टल गया। करनाटी की इसके उपरान्त कहीं भी सूचना प्राप्त होती है।

ऐतिहासिकता :

पृथ्वीराज के महामंत्री कैमास के अस्तित्व में अब किसी को भी सन्देह नही रह गया है। कैमास-वध के सम्वध में भी पुरातन प्रवंध संग्रह के दो उदाहरण साक्षी है—

इक्कु बाणु पहुवीस जु पइं कई बासह मुक्क ओ।

अत: यह भी स्पष्ट है कि मंत्री कैमास का बध पृथ्वीराज के हाथों ही हुआ था। पुरातन प्रवध संग्रह से करनाटी वाली घटना स्पष्ट नहीं होती है फिर भी अनुमान को पर्याप्त स्थान मिल जाता है। इसमें आश्चर्य नहीं कि पृथ्वीराज ने कैमास की हत्या करनाटी वाली घटना से कुपित होकर ही की थी। मुहणोत नेणसी की ख्यात में एक खींची सरदार (जो पृथ्वीराज का सामन्त था) के लिए भी ऐसी ही कथा प्राप्त होती है। कथा इस प्रकार है :—

"राजा पृथ्वीराज चोहान की राणी सुहवदे जोइयाणी अपने पति से रूठ कर पिता के घर आन वैठी थी, उसके पिता ने खाटूं (गांव) की पहाड़ी पर पुत्री के लिए एक महल वनवा दिया। वह इतना ऊँचा था कि उसमें जलता हुआ दीपक अजमेर मे नजर आता था। जोइयाणी की आशनाई गुन्दलराव से हो गई। गुन्दल ने अपने गांव से उस महल तक एक सुरग खुदवाई जिसमें होकर वह जोइयाणी के महल में आया-जाया करता था एक बार पृथ्वीराज की दूसरी राणी अजयदेवी दहिमाणी ने उस दीपक को देखकर अनुमान वांधा कि वहां अवश्य कोई मर्द आता जाता होवेगा और उसने यह बात पति से कही तब अपने चौकी के घोड़े पर सवार होकर पृथ्वीराज अचानक सुहदेव के महल की ड्योढा पर जा पहुंचा और घोड़े से उतर पड़ा। द्वारपाल ने राणी के पास खवर पहुंचाई इतने में पृथ्वीराज भी महल में पहुंच गया। गुन्दलराव तो तत्काल सुरंग के मार्ग से चलता वना परन्तु उसके पांव का जोड़ा वहां रह गया। प्रभात को जब पृथ्वीराज ने वह जोड़ा देखा तो सुहवदे से पूछा कि यह किसका है और

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७१८-१९, स० ६१।

यहाँ कौन मर्द आता है । थोड़ी देर तो वह टाल-मटोल का उत्तर देती रही परन्तु जब देखा कि सच कहे बिना काम न चलेगा तो स्पष्ट कह दिया कि यहाँ गुन्दलराव खींची आता है । यह सुनकर पृथ्वीराज पीछा अजमेर लौटा और दूसरे दिन ही दाहिम चामुण्डराय को फौज देकर आदरम की तरफ गौनियों पर विदा किया' .[1]

संभव है गुन्दलराव खींची पृथ्वीराज का महामंत्री कैमास रहा हो । निश्चय ही करनाटी कथा में सत्य के कुछ न कुछ अंश अवश्य हैं चाहे इस विषय में इतिहास भले ही मौन हो ।

कुँअर पद्मसेन :

पृथ्वीराज रासो के मतानुसार समुद्रशिखर गढ़ के अधिपति यादववंशी विजयपाल की स्त्री का नाम कुँअर पद्मसेन था । इसके गर्भ से दस पुत्रों ने तथा एक पुत्री ने जन्म लिया जो चन्द्रमा की कलाओं के समान थी —

पद्मसेन कुंवर सुघर , ता घर नारी सुजांन ।
ता उर इक पुत्री प्रगट , मनहुं कला ससि भांन ।। छं० ४ ।[2]

कालान्तर में यही पुत्री पद्मावती नाम से रासो में प्रसिद्ध हुई । रानी पद्मसेन के विषय में कवि ने अधिक विवरण प्रस्तुत नहीं किया है । अतः हमें इतने से ही सन्तोष करना पड़ता है । "रासो" के अन्य तीन संस्करण (लघुतम, लघु एवं मध्यम) इनके विषय में मौन हैं । इतिहास में भी इनका विवरण प्राप्त नहीं होता है ।

चित्ररेखा :

चित्ररेखा की उत्पत्ति अर्थात गोरी के पास आने की कथा पूछने पर हुसैनखाँ के सेवक ने इस प्रकार कहा —

पुच्छि चंद वरदाइ नैं , चित्ररेख उतपति ।
खां-हुसेन खावास कहि , जिम,लिनी असपति ।। छं० १ ।[3]

एक बार शाह गोरी ने फरमान दिया कि अरब और सिन्ध तट के स्वामी हमसे झुककर नहीं रहते हैं अतः उन पर युद्धार्थ सेना सजाई जाय । किन्तु वास्तविकता यह थी कि गोरी शाहाबुद्दीन अरबखाँ की चित्ररेखा नामक वैश्या में अनुरक्त था उसी की प्राप्ति हेतु उसने आक्रमण किया था । गोरी के प्रेम की बात इससे स्पष्ट हो जाती है —

चितं मत्त गयंदं , खुंतारं नथ्यि उतरयं ।
त्यों चित्र रेखय चित्त , सुविहांन मंडियं नेहं ।। छं० ७ ।[4]

---

१. मुहणोत नैणसी की ख्यात, प्रथम भाग, पृ० १८५-६ ।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४, स० २० ।
३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छ० १, सं० ११ ।
४. वही, छं० ७, सं० १२ ।

जब आरबखा ने विपक्षी शहाबुद्दीन के चढ़ आने तथा चित्ररेखा के प्रति आकृष्ट होने की बात सुनी, तब उसने उत्तर स्वरूप बिना किसी प्रकार का युद्ध किए ही मुग्धा स्त्री संधि रूप में समर्पित कर दी जिससे विपक्षी गोरी का समस्त द्वेष एवं बल क्षणि हो गया जैसे मानो किसी ने तपते तवे पर जल छिड़क दिया हो—

सुनि आवाज आरव मुखसु . वर उत्तर तिय मुंद ।
बल भग्गो इन भति वर , (ज्यों) तत्ततवे पर बुंद ॥ छं० ८ ॥[1]

हुस्सैन का सेवक चित्ररेखा का रूप वर्णन करता हुआ कहता है—"वह बाला रूप की सरिता के तुल्य थी, उसके कटाक्ष की तट भावना, (इच्छा) ही तरंग हाव-भाव ही मीन और गुण ही ग्राह स्वरूप थे। वह सिद्धों के मन को भंजन करने वाली थी। उसके समान अन्य कोई स्त्री त्रैलोक्य में भी नहीं थी। ऐसी केलि रस से परिपूर्ण वैश्या शहाबुद्दीन को प्राप्त हुई—

रूप नद्दि कटाच्छ कूल तटयौ , मायं तरंगं वंर ।
हाव भाव ति मीन ग्रासित गुनं , सिद्धं मनं भंजनी ॥
सोयं जोग तरंग रुव ति बर, त्रैलोक्य ना ता समं ।
सोय साहि सहावदीन ग्रहियं , आनंग क्रीडा रसं ॥ छं० १० ॥[2]

और भी—वह अर्थात चित्ररेखा सुलक्षणों की अंग स्वरूपा, उसका शरीर कंचन की भाँति तथा मस्तक पर नग धारण करने वाली ऐसी गौरी (सुन्दर स्त्री) को लेकर गोरी शाह वापस लौट आया तथा उसका बिना युद्ध के ही क्रोध शांत हो गया—

अंग सुलच्छिन हेम तन , नगधरि सुन्दरि सीस ।
गौरी ग्रहि गोरी गयौ , विना जुद्ध बुझि रीस ॥ छं० ११ ॥[3]

चित्ररेखा (वैश्या) को सुलतान गोरी ने बड़े आदर और प्रेम से अपने महल में लाकर रख लिया। उसके प्रेम में वह इतना वशीभूत हो गया कि अपनी अन्य सारी बेगमों को छोड़कर अहर्निशि उसी के साथ महल में रहने लगा—

जिय जिय साह सु आदरिय , तिम तिम बढ्ढय प्रेम ।
क्रम क्रम फल गुन वद्धइय , वेली नमैं सु तेम ॥ छं ३१ ॥
वसि कीनों सुरतान , चग जिम भ्रमं डोरि कर ।
ज्यों भावी बंसि लाइ , वचन उद्योत बाल सुर ।

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ८, स० १३ ।
२. वही, छं० १०, स० १३ ।
३. वही, छं० ११, स० १३ ।

ज्यों वसि जोवन मन, प्रात वसि जेम कम्नगुर।
ज्यों वसि नाद कुरग, वास वसि जेम मधुक्कर।
महिला सु चुक्कि सव वस्सि नय, महिला महिल सु मत्ति वसि।
एकंग एक अंदर महल, रहै साहि सुरत्तान रसि॥ छं० ३२॥[1]

एक ओर तो सुलतान चित्ररेखा में इतना अधिक अनुरक्त था दूसरी ओर चित्ररेखा शाह के बान्धव हुस्सैनखां से प्रेम करती थी–दोनों की प्रेम लीला ज्ञात होने पर हुस्सैन को गोरी ने गज़नी से निकाल दिया किन्तु हुस्सैन साथ में चित्ररेखा को भी ले कर नागौर में पृथ्वीराज की शरण में चला गया—

पात्र एक साहब सँग, , हूर नूर गुन गान।
लै आयो हुस्सैन इत, सरन तक्कि चहुआंन॥ छं० १६॥[2]

कालान्तर में उसी द्वेष भाव के कारण गजनीपति गोरी ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया। घोर युद्ध हुआ। पृथ्वीराज की ओर से हुस्सैन शाह ने भी युद्ध में भाग लिया किन्तु दुर्भाग्यवश मृत्यु को प्राप्त हुआ। चित्ररेखा ने जब हुस्सैन की मृत्यु की सूचना प्राप्त की तो वह भी अपने धर्म का चिन्तन करती हुई हुस्सैन के साथ स्वयं भी कब्र में गड़ गई—

पर्‌यो हुसैन सु पात्र सुनि, चिंतिय चित्त इमांन।
सज्यो घोर हुस्सैन सथ, कर्‌यो प्रवेस अपांन॥ छं० ७१॥[3]

"हुस्सैन कथा" वाला हुस्सैन नासिरुद्दीन हुस्सैन था जो तवकाते नासिरी के लेखानुसार कामी था तथा रासो भी उसके अन्य गुणों के साथ-साथ कामी होने के अवगुण पर प्रकाश डालता है। चित्ररेखा, पहले बादशाह की और फिर उसकी प्रेमिका बनी थी जो बादशाह को अरब और सिंध के आक्रमण में उसे सन्धि स्वरूप प्राप्त हुई थी।"[4] अतः स्पष्ट है कि जब हुस्सैन एक ऐतिहासिक पात्र था तो चित्ररेखा भी अवश्य ही ऐतिहासिक रही होगी। हुस्सैन का कामी होना चित्ररेखा की प्रमाणिकता पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

जुन्हाई :

रासोकार के अनुसार सम्राट जयचन्द गाहड़वाल के स्वर्ण रचित विस्तीर्ण रनिवास में काम कला सदृश अनेक नव योवनाएं थीं, जो सब चित्रिनी तथा पद्मनी जाति की एक से एक

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ३१-३२, स० ७।
२ पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १६, स० ११।
३. वही, छं० ७१, स० ११।
४. कविराव मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो, प्रथम भाग, सम्पादकीय पृ० २, साहित्य संस्थान उदयपुर।

सुन्दर एवं मनोहर थी परन्तु राजा का जुन्हाई पर विशेष प्रेम था।[1] सम्राट जयचन्द गाहड़वाल की उस अप्सरा सदृश्य सुन्दर रानी जुन्हाई का वर्णन कवि चन्द ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

'संसार के अन्धकार समूह को विनष्ट करने वाले श्री भास्कर की प्रखर किरणों से एक सुन्दर बालिका ने जन्म लिया। एक बार जब वह कैलाश पर्वत के मेघस्पर्शी वृक्ष की डाल पर पड़े झूले में झूल रही थी, तब उस सुन्दर कन्या को देख कर भूपति जयचन्द उस पर मुग्ध हो गया। राजा ने अपने नेत्रों को नासिकाग्र पर दृढ़ कर तथा एक पैर पर खड़े होकर उसकी प्राप्ति हेतु उग्र तपस्या करना आरम्भ किया। कवि वशिष्ठ ने राजा की तपस्या से प्रसन्न हो कर भगवान भास्कर से प्रार्थना करके उस सुन्दर कन्या का राजा पंगराज से विवाह करा दिया। वही काम कला के सदृश्य सुन्दर रानी इस समय जुन्हाई के नाम से प्रसिद्ध है।'[2]

सूर किरनि तें प्रगटि, रुचिर कन्यका तपत्या।
तरवर तुंग कैलास, साष संग्रह करि सत्या॥
झुलती सपेषि, भयौ भुअपति सु आसिक।
एक पाइ तव मंडि, धारि द्रग अग्ग सु नासिक॥
वाचिष्ट रिष्षि सु प्रसन्न होइ, रवि प्रारथ्थि विवाह किय।
जै चन्द राय वरदाइ कहि, तिहि सम जुन्हाइ लहिय॥ छं० ७५१।[3]

उपर्युक्त जन्म कथा निश्चय ही काल्पनिक है। किन्तु रासोकार ने रानी जुन्हाई का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है जिससे प्रतीत होता है कि यही रानी पंगराज की पटरानी थी। रासों के अनुसार इसे सभी राजकीय एव राजपरिवार के सभी महत्वपूर्ण कार्यो में प्रमुख भाग लेता हुआ देखते हैं। सर्वप्रथम रानी जुन्हाई ने ही पंगराज को राजकुमारी संयोगिता के पृथ्वीराज चौहान के प्रति अनुराग की सूचना दी थी। उसी के परामर्शानुसार सम्राट जयचन्द ने राजसूय यज्ञ के साथ ही साथ संयोगिता स्वयंवर की आयोजना भी की थी। यज्ञ विध्वंस होने पर जब राजा उग्र हो पृथ्वीराज का विनाश करने को तत्पर था उसी समय इसने भार्योचित परामर्श प्रदान कर प्रथम शान्ति पूर्वक कन्या का विवाह करने की महत्वपूर्ण राय दी थी।

देवगिरी समय २६ के अन्तर्गत रासोकार ने इस का स्नेही रूप प्रस्तुत किया है। पंगराज के युद्ध हेतु प्रस्तुत होने पर प्रिय वियोग की कल्पना मात्र से वह ज्योत्सना स्वरूप रानी विरह वेदना से कातर हो उठी। पंगराज की यह सुकुमार रानी रात्रि में पति से वियुक्त होने

---

१. रासोसार, नागरी प्रचारणी सभा काशी, पृ० १८७।
२. नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित रासो के सम्पादकों के अनुसार यह कवित्त मो० प्रति में नहीं है अतः इसे वे क्षेपक मानते हैं।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७५१, स० ६१।

पर श्याम वर्ण भ्रमर नाद को देख कर भयाक्रान्त हो उठने वाली, भला पति प्रयाण के समय विरह वेदना से दग्ध होना स्वाभाविक ही था.........उसका मनोहारी मुख मलिन हो गया, कोमल सेजादि सुखद सामग्री दुःखद प्रतीत होने लगी तथा समस्त आमोद-प्रमोद से विरक्त हो वह सुकुमारि चित्र लिखित पुत्तलिका सदृश्य चेतना शून्य हो वैसी की वैसी रह गई। राहु द्वारा चन्द्रमा-ग्रसित हो जाने पर जो दशा कुमुदनी की होती है वही इस समय इस नवोढा की भी हो रही थी।[1]

जुन्हाई विरह ताप से केवल कुम्हलाने वाली सुकुमारी मात्र ही नहीं वरन् अपने पटरानी पद के महत्व को भी भली प्रकार समझती थी। राजा पंगराज तथा अन्य सामन्तों द्वारा कविचन्द का सत्कार हो जाने के उपरान्त भी उसने अपनी ओर से नाना भेंट भेजी थी, जो पंगराज के वैभव का परिचय देने के साथ-साथ रानी जुन्हाई की व्यवहार कुशलता का भी परिचायक था—

मुवन सिंगारिय सह सखिय, विवह वस्त लिय सव्व।
सो निज स्वामिनी अग्गि सुनि, क्रमिय सु अय्यह कव्व॥ छं० ३०५।[2]

स्पष्ट ही रानी जुन्हाई कवि कल्पना प्रसूत पात्र है। फिर भी कवि ने उसका चरित्र-चित्रण अत्यन्त सजीव रूप में प्रस्तुत किया है।

सुन्दरी :

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार दिल्लीपति अनंगपाल तोंवर की जेष्ठ कन्या का नाम सुन्दरी था, जिसका विवाह कन्नौजपति राजा विजयपाल से हुआ था—

अनंगपाल पुत्री उभय। इक दीनी विजपाल।
इक दीनी सोमेस को। वीज ववन कलिकाल॥ छं० ६८१।

एक नाम सुर सुन्दरी। अनिवर कमला नाम।
दरसन सुर नर दुल्लही। मनो सु कलिका काम॥ छं० ६८२।[3]

संभवतः यही सुन्दरी कन्नौजपति राजा जयचन्द की माता भी थी। ग्रन्थकार ने इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है किन्तु एक स्थान पर पृथ्वीराज के जन्म के वर्णन में संकेतमात्र दिया है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सोमेश्वर के पुत्र के जन्म का समाचार कन्नौज पहुँचने पर

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २५-३८, सं० २६।
२. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३०५, स० ५८।
३. पृथ्वीराज रासो, नगरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६८१-६८२, स० १।

जयचन्द की माता का (जिसका नामोल्लेख ग्रन्थकार ने नही किया है) वहिन के पुत्र होने के उपलक्ष में नाना उपहार भेजते हुए दिखाया है—

कनवज जयचन्द मात, मयौ समरि बहनी सुत।
तिन पवंत दुज पठिय, थार जर चीर थापेय थुत ॥[१]

प्रत्यक्ष वर्णन न होने पर भी परोक्ष रूप से स्पष्ट है कि ग्रन्थकार के मतानुसार राजा जयचन्द की माता का नाम सुन्दरो था।

इसके विपरीत इतिहासकार जयचन्द की माता का नाम चन्दलेखा मानते हैं। रम्भा-मंजरी नाटिका जिसका नायक स्वयं जयचन्द है, उसमें भी जयचन्द की माता का नाम चन्द्र-लेखा ही वर्णित है। चन्द्र लेखापातानु जन्मा जैत्राचन्द्रो आवि।[२]

ओझा जी एक स्थान पर सुन्दरी के अस्तित्व में सन्देह करते हुए लिखते हैं कि—'कमला के सोमेश्वर के साथ विवाह की कथा के समान सुन्दरी के विजयपाल के साथ विवाह की कथा भी कल्पित ही है।[३]

शिलालेख एवं दानपत्र इस विषय में सर्वथा मौन हैं। अतः अन्य प्रमाणों के अभाव में सुन्दरी को जयचन्द की माता तथा अनगपाल की पुत्री मामने में संदेह न होना चाहिए। रम्भा मजरी की ऐतिहासिकता में विद्वानो को संदेह है ही।[४] रासो की प्रामाणिकता एवं ऐतिहासिकता एक विवाद ग्रस्त विषय है। फिर भी अव रासो-विज्ञ राजा अनंगपाल की पुत्री कमला को अंतिम हिन्दू शासक पृथ्वीराज की माता स्वीकार करने लगे हैं।[५] अतः अनुश्रुति तथा पारिवारिक सम्बन्धों को दृष्टि में रखते हुए अनंगपाल की जेष्ट पुत्री सुरसुन्दरी को जयचन्द की माता तथा विजयपाल की पत्नी मानने में किसी प्रकार का व्यवधान शेष नही रह जाता।

उपर्युक्त विवेचन से यह सव स्पष्ट होते हुए भी इस विषय पर स्वतंत्र रूप से पर्याप्त अनुसन्धान की आवश्यकता है। यहाँ पर एक तो सामग्री अभाव तथा दूसरे प्रवंध के विस्तार भय से इसे ऐसी ही स्थिति में छोड़ कर विवश हो आगे वढ़ना पड़ रहा है।

दाहिमी :

दाहिमराज के तीन पुत्र थे, उनमें कैमास यमराजा के भ्राता के समान वलशाली था,

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ४५, स० १।
२. रम्भामंजरी, अंक १, पृ० ६, तथा भूमिका, पृ० ४।
३. रायवहादुर गोरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल, कोशोत्सव स्मारक सग्रह, पृ० ५८।
४. डॉ० दशरथ शर्मा, राजस्थान भारती, भाग १, अंक २-३ जुलाई-अक्टूबर सन् १९४६।
५. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, भाग १, पृ० २०६-२१०।

दूसरा वीर नारनदराव था जिसकी तलवार ने दुष्टों को खदेड़ दिया था, उन दोनों भाइयों का तेज सूर्य के समान था। दाहिर राजा की दो कन्याओं में से एक मेवातपति मुंगल नरेश से व्याही गई थी तथा द्वितीय जो अत्यन्त रूप एवं गुणवती थी उसका पाणिग्रहण पृथ्वीराज चौहान के साथ हुआ था। दोनों बरातें साथ ही साथ आई उनका सम्मान बराबर किया गया, किन्तु चौहान पृथ्वीराज का द्वार पर प्रथम कलश बंधवाया गया। उस समय सुन्दरियाँ मंगल गान गा रही थीं —

काल भ्रात कैमास, खलन चामँड़ खग खढ्ढिय।
सूर नूर सम-सत्य, सकति पूजा सुर सद्धिय॥
मेवाती मुगल सु तथ्य, पुत्रि इक्कह परनाइय।
विय पुत्री सिरताज, सुतौ पुथिराजह व्याहिय॥
दो जांन मान चहुआन दल, प्रथम कलस सँभरि धनिय।
उच्छाह बहुत मंगल करहि, गीत गांन अलि सुर बनिय॥ छं० १०।[1]

विवाह में दाहिम राजा ने नाना प्रकार से स्वागत करके यथाशक्ति दहेज में सुन्दरियों के सिर की ताज स्वरूपा ऐसी सुन्दर और श्रेष्ठ शृंगारी हुई आठ सहेलियाँ तथा अच्छी शरीर वाली अड़सठ दासियाँ, जो सब १५ वर्ष की आयु की थी उन्हें साथ में दी। शुद्ध ऐराकी जात के एक सौ घोड़े तथा दस सुन्दर ढाले तथा ऋतुओं में मद से छके रहने वाले दो हाथी एवं चाँदी के सुखपाल दिए। दाहिमी पति की सेवा करने वाली थी। दाहिम राजा के इस समान व्यवहार की प्रशंसा शत्रुओं तक ने की —

सखी अट्ठ सिरताज, अंग श्रंगारि सुरग वर।
सट्ठि तीन दासी सुचंग, वरस सत अट्ठ सरम्मर॥
एक सत्त सुन तुरँग, दोई पक्खें एराकिय।
दो हत्थी दस ढाल, रहे छह रिति मद छाकिय॥
सुख पाल रजत सोभा सु वनि, सत पुत्तलि सेवा करैं।
डाइचो दिद्ध दाहिम दुहन, भुज भुजंग कीरति करैं॥ छं० १२।[2]

कालान्तर में इसी दाहिमा रानी से पृथ्वीराज के पुत्र रयणसी ने जन्म लिया —

वर समुद्र - चहुआंन, रतन सो रतन उपज्जै।
दाहिम्मी उर प्रम्न, कित्ति आभूखन रज्जै॥
इह सु बंध बंधनह, जुगति बंधन वर राजिय।
इह समोल मोलंन, मोंल ग्रह फिरि साजिय॥

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० १०, स० १६।
२. वहीं, छं० १२, स० १६।

(इह) परखियौ कविन कित्ति चसम, (वह) चसम परक्खन परखयौ।
इह सोम राज राजंन महि, वह घर कंचन थरकयौ ॥ छं० १५।[1]

नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'रासा' के विवाह सम्यों ६५ में उल्लिखित है कि १२ वर्ष की आयु में चौहान पृथ्वीराज का विवाह वीर चामंडराय दाहिम की बहिन से हुआ था इस विवाह का इसके अतिरिक्त कहीं भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। किन्तु उदयपुर से प्रकाशित रासो में दाहिमी का विवाह का उल्लेख मिलता है उसी के आधार पर उपर्युक्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। "कैमास वध" समय में लिखा है कि रयन कुमार भानजे तथा चामण्डराय मामा में परस्पर अत्यन्त प्रेम था।

दिल्ली वै चहुवान . तपै अति तेज खग्ग वर।
चपि देस सह सीम, गज्जि अरि मल्लिय धन्नि घर ॥
रयन कुमर अति तेज, रोहि हय पिट्ठ विसम ॥
साथ राइ चामंड, कर न कलि कित्ति असंमं ॥
मव्वास वास गजै दुगम, अप्पनेह रक्खे अनत।
मातुलह नेह मानेज पर, भागनेय मातुल सु रत ॥ छं० ४।[2]

तथा उन दोनों के परस्पर प्रेम को देख कर चन्दपुण्डीर ने पृथ्वीराज के कान भरे थे—

सयन इक्क सं वसहि, इक्क आसन आश्रंमहि।
वारी नद्द विहार, मार जल राह सु रम्महि ॥
भागनेह मातुलह, जानि अति प्रीति सु उम्मर।
च्यत चंद पुण्डीर, कहि प्रति राज हित्त भर।
चामड रयन स्यघह सु पर, अप्पनेह बंध्यौ असम।
जानहु सु कृत्य कारन सु कलि, कलै ध्रम्म धरनिय विसम ॥ छं० ५ ॥[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि रानी दाहिमी वीर चामण्डराय की वहिन थी जिसका विवाह पृथ्वीराज के साथ हुआ था।

ऐतिहासिकता :

ओझा जी दाहिमी तथा पृथ्वीराज के विवाह को भी ऐतिहासिक नहीं मानते हैं—अपने मत में प्रमाण देते हुए लिखते हैं कि—"रासो में लिखा है कि १२ वर्ष की अवस्था में पृथ्वीराज

---

१. पृथ्वीराज रासो साहित्य संस्थान उदयपुर. छं० १५ स० १६।
२. वही, छं० ४, स० ५५; तथा पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १, स० ५७।
३. वही, छं० ५, सं० ५५, तथा पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, छं० २, सं० ५७।

ने दाहिमा चामंड की बहन से विवाह किया, जिससे रेणसी का जन्म हुआ। यह कथन निराधार कल्पित है, क्योंकि पृथ्वीराज का पुत्र रेणसी नहीं किन्तु गोविंदराज था, जो पृथ्वीराज के मारे जाने के समय बालक था। फारसी तवारीखों में उसका नाम 'गोला या गोंदा' पढ़ा जाता है, जो फारसी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण गोविन्दराज का बिगड़ा हुआ रूप ही है हम्मीर महाकाव्य में भी गोविन्दराज नाम मिलता है (सर्ग ४)। सुलतान शहाबुद्दीन ने अपनी अधीनता में उसे अजमेर की गद्दी पर बिठाया, परन्तु उसके सुलतान की अधीनता में रहने के कारण पृथ्वीराज के छोटे भाई हरिराज ने उसे अजमेर से निकाल दिया, जिससे वह रणथंभोर में जा रहा। हरिराज का नाम पृथ्वीराज रासो में नहीं दिया, परन्तु पृथ्वीराज विजय, प्रबंध कोश के अन्त की वंशावली और हम्मीर महाकाव्य में दिया है। और फारसी तवारीखों में हीराज या हेमराज मिलता हैं जो उसी के नाम का बिगड़ा हुआ रूप है।"[1]

कविराज मोहनसिंह दाहिमी तथा पृथ्वीराज के विवाह को प्रामाणिक मानते हुए लिखते है—"कैमास और चामण्डराय की बहिन से पृथ्वीराज का विवाह हुआ। कैमास पृथ्वीराज का महामंत्री था, यह सप्रमाण है। इसी का भाई चामण्डराय था जिसे रासो के अन्तिम युद्ध में खण्डेराय भी लिखा है।

सबै सुरंगी बांध हीं, अप्प अप्पने भाग।
ते बांधी सुलतान पर, खडे खडी पाग॥

अतएव मुसलमानी तवारीखों में जिस दिल्ली के हाकिम खांडेराव का उल्लेख हुआ है वह प्रसिद्ध वीर चामडराय ही था।"[2]

अतः स्पष्ट है कि दाहिमा वीर चामडराय तथा कैमास की बहिन थी जिसका विवाह दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान के साथ हुआ था।

दूती अथवा योगनी :

पृथ्वीराज रासो के 'आदि पर्व' में योगिनी द्वारा राजा वीसलदेव को नपुंसक किए जाने की कथा प्राप्त होती है। महाराज वीसलदेव चौहान की अनेकानेक रानियाँ थी, किन्तु वह रम्भा समान रूपवती गुण शीला पांवर पटरानी को अधिक स्नेह करते थे। उनका अधिकांश समय उसी के साथ व्यतीत होता था। अतः अन्य समस्त रानियों ने मिलकर राजा को ही नपुंसक बनवाने की योजना बनाई।

---

१. रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४८।

२. कविराव मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो, भाग १, साहित्य संस्थान उदयपुर, सम्पादकीय, पृ० १३।

पटरागिनि पांवर रूप रंभा गुन जुव्वन ।
प्रमाद प्रान समान नही विसस्त इक्क छिन् ॥
रतिभोग सुरति तिन सों सदा, कबहुंक आनन दिच्छ त्रिय ।
षिझि सौति सकल एकत्र मय पुरषातन तिन गन्ध किय ॥ छं० ३७० ॥[1]

राजा को नपुंसक बनाने के लिए रानियों को योगिनी की ही सहायता लेनी पड़ी। योगिनी का यह दावा है कि —

तुम कहौ करूं जीव तैं बद्ध । तुम कहौं करौ नारी विरुद्ध ॥
तुम कहौ करौ काम तैं भंग । ज्यौ नारी अंग त्यौ पुरुष अंग ॥ छं ३७६ ॥[2]

निश्चित ही इस कथा में सत्य का लेशमात्र भी नहीं है। कवि को कथा को रोचक बनाने के लिए ही ऐसी काल्पनिक कथाओं का सहारा लेना अभीष्ट रहा होगा। इस कथा से रासो कालीन स्थिति पर अवश्य कुछ प्रकाश पड़ता है। निश्चित ही उस युग में मनुष्यों का मंत्र-तंत्र, जादू-टोना आदि में विश्वास रहा होगा।

पद्मावती :

पूर्व दिशा में एक गढ़, जहां का राजा बड़ा पराक्रमी, था, तथा उसका नाम विजयसुर था। उसके घर में कुंवर पद्मसेन नाम की स्त्री थी, जिसके गर्भ से एक अत्यन्त सुन्दर पुत्री ने जन्म लिया जो चन्द्र और सूर्य की कलाओं के समान थी—

पद्मसेन कुंवर सुघर, ता घर नारि सुजांन।
ता उर इक पुत्री प्रगट, मनहूं कला ससि मांन ॥ छं० ४ ॥[3]

यही समुद्रशिखर गढ़ की राजकुमारी एक दिन उद्यान में खेलते समय एक शुक पकड़ लायी तथा उसे अपने महल में रत्न जटित पिंजड़े में रखा।[4] उस राजकुमारी का चित्त शुक में इतना रम गया कि उसने सब खेल छोड़ कर उसे राम-नाम पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया—

तिहीं महल रष्षत भइय । गइय खेल सब भुल्ल ॥
चित्त चहुट्यौं कीर सौं । राम पढ़ावत फुल्लि ॥ छं० १० ॥[5]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ३७०, सं० १।
२. वही, छं० ३७६, स० १।
३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ४, सं० १७।
४. वही, छं० ८, स० १७।
५. वही, छं० १०, स० १७।

वही शुक राजकुमारी पद्मावती के सौंदर्य, गुण आदि को देखकर अपने मन में विचार करने लगा कि यदि यह पृथ्वीराज को प्राप्त हो तो बहुत अच्छा था।[1] एक दिन पद्मावती द्वारा अपना देश पूछने पर शुक कहता है कि हिन्दुओं के गढ़ दिल्ली का निवासी हूँ, जहाँ के नायक सुभटों के सम्राट पृथ्वीराज मानों इन्द्र के अवतार हों —

उच्चरिय कीर सुनि बयनं । हिन्दवान दिल्ली गढ़ अयनं ।
इंद अवतार, चहुआन । पृथिराजह सूर सुम्भारं ॥ छं० १५ ॥[2]

वीर पृथ्वीराज का नाम आते ही चतुर शुक ने पृथ्वीराज के सौन्दर्य तथा पराक्रम का प्रशस्ति गान करना प्रारम्भ कर दिया जिससे राजकुमारी पद्मावती के हृदय पर वांछित प्रभाव पड़ा कवि लिखता है —

सुनत श्रवन प्रियराज जस । उमग बाल विधु अग ।
तन मन चित चहुआन पर । बस्यों सुरत्तह रंग ॥ छं० १७ ॥[3]

वयः प्राप्त होने पर राजकुमारी की माता-पिता को उसके विवाह की चिन्ता हुई। उन्होंने पुरोहित भेज कर कमायूंगढ़ के राजा कुमोदमनि से सम्बध निश्चित कर दिया। मुग्धा-मोहिता पद्मावती ने जब कमायूंगढ़ के राजा कुमोदमनि के साथ अपना विवाह होने तथा बारात आने की बात सुनी तो उसे अत्यन्त दुःख हुआ तथा शुक को एकान्त में बुलाकर दिल्लीपति चौहान को शीघ्र बुला लाने के लिए कहा —

पद्मावति विलपि वर बाल वेलि । कही कीर सौंवत तव होअ केलि । छं० ४१ ।
झट जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं । वरं चाहुवांन आनौ नरेशं ॥ छं० ४२ ॥[4]

इतना ही नहीं, 'ज्यों रुकमनि कन्हरवरी' द्वारा अपने पत्र में प्रेरणा देती हुई, शिव-पूजन के समय अपना हरण करने की बात भी स्पष्ट लिख भेजी —

ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय । ज्यों वरि संभरि कान्त ।
सिव मंडप पच्छिम दिसा । पूजि समय स प्रान्त ॥ छं० ४५ ॥[5]

कुशल शुक आठ प्रहर में ही पद्मावती की सूचना लेकर दिल्ली जा पहुँचा—

लै पत्री सुक यों चल्यो । उड्यो गगनि गहि बाज ।
जहं दिल्ली प्रथिराज नर । अट्ट जाम मे जाव ॥ छं० ४६ ॥[6]

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ११, स० १७।
२. वही, छं० १५, स० १७।
३. वही, छं० १७, स० १७।
४. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४१-४२, स० २१।
५. वही, छं० ४५, स० २१।
६. वही, छं० ४६, स० २१।

दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज पत्र पाकर तथा शुक को देख कर उस पर रीझते-मुसकराते हुए, प्रेम के अभयदान की आकाँक्षिणी के त्रास हेतु प्रस्थान की आयोजना में लग गए —

दिय क्ग्गर नृपराज कर। षुलि वंचिय प्रथिराज।
सुक देषत मन में हंसे। कियो चलन कौ साज॥ छं० ४७ ॥[1]

शुक ने दिल्ली से आकर विरहिणी राजकुमारी पद्मावती को पृथ्वीराज के आने की सूचना से हर्ष विह्वल कर दिया —

दिषंत पंथ दिल्ली दिसानं। सुष भयौ सुक जब मिल्यौ आंन॥ छं० ५२॥
संदेस सुनत आनन्द नैन। उमगीय बाल मनमथ्थ सेन॥ छं० ५३॥[2]

तथा प्रेम से परिपूर्ण राजकन्या प्रियतम पृथ्वीराज से मिलन कामना करती हुई अपने शृंगार में तनमय हो गई —

तन चिकट चीर डार्‌यौ उतारि। मज्जन भयक नव सत सिंगार॥ छं० ५४॥
भूषन मंगाय नप सिष अनूप। सजि सेन मनौं मनमथ्थ भूप॥ छं ५५॥[3]

अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, अपहरण तथा युद्ध के उपरान्त राजकुमारी पद्मावती ने अपने मनचाहे पति के साथ दिल्ली के राजभवन में विलास किया।

ऐतिहासिकता :

श्री अमृतलाल शील समुद्रशिखरगढ़ की पद्मावती को अप्रामाणिक एवं अनैतिहासिक सिद्ध करते हुए लिखते हैं कि—"लेखक ने राढ़ के पालवंशी प्रतापी राजाओं के नाम सुनें होंगे और वारेन्द्र भूमि के प्रतापी राजा विजयसेन का नाम सुना होगा, इन दोनों को मिला कर उसने विजयपाल का नाम गढ़ लिया होगा। इस विवाह की कहानी को यदि अधिक ध्यान देकर देखें तो प्रतीत होगा कि रासो के रसिक लेखक ने महाभारत में वर्णित भगवान श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की कथा का अनुकरण कर यह एक नई कथा गढ़ कर लिख दी है। पृथ्वीराज को भी कृष्ण से उपमित कर उनको भी एक अवतार बनाना चाहा। रासो के इस अंश से ऐतिहासिक सत्य संवाद निकालना और मरुभूमि की बालु की राशि से विशुद्ध पय उत्पन्न करना किसी गुप्त विद्या से ही संभव हो सकता है।"[4]

दूसरी ओर डॉ० दशरथ शर्मा "कान्हण दे प्रबंध" के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि पृथ्वीराज की रानी पाह्लण की पुत्री पद्मावती किसी राज्य प्रधान के

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४७, स० २१।
२. वही, छं० ५२-५३, स० २१।
३. वही, छं० ५४-५५, स० २१।
४. श्री अमृतलाल शील, सरस्वती, भाग २७, संख्या ५, पृ० ५६१-६२, सन् १९२६ ई०।

दमन का कारण बनी थी तथा उसके इस कार्य से चाहमान राज्य को अत्यधिक क्षति उठानी नहीं पड़ी थी। उनका विचार है कि—अपरोक्ष रूप से चाहमान साम्राज्य के सर्वनाश का सूत्रपात्र प्रधान मंत्री कैमास के वध द्वारा कराने वाली आबू के परमार राजा की पुत्री, रासो की महारानी इच्छिनी और पद्मावती संभवतः एक ही रही हों, उनका पृथक्करण उस समय हुआ होगा जब चारण और भाट चौहान इतिहास को अंशतः भूल चुके थे। इसी से उन्हें इच्छिनी को आबू के राजा सलख की पुत्री और जैत परमार की बहन बनाना पड़ा, यद्यपि पृथ्वीराज की गद्दी नशीनी से लगाकर उसकी मृत्यु के बहुत पीछे तक आबू का राजा (प्रहलादन या प्राह्लादन का बड़ा भाई) धारावर्ष था और शायद इसी से पूर्व दिशा में उन्हें समुद्रशिखर नाम के एक ऐसे दुर्ग की कल्पना करनी पड़ी जिसके विषय में इतिहास कुछ नहीं जानता ......सुए की कथा में प्रचलित लोकाख्यानों, बल्कि पुराणों, जायसी के पद्मावती से भले ही ली गई हो, परन्तु पद्मावती स्वयं कल्पित न थी.........साहित्य की दृष्टि से रासो का 'पद्मावती समय बहुत सुन्दर है, किन्तु अपने सत्य और असत्य के अविवेच्य संमिश्रण के कारण ऐतिहासिक के लिए यह प्रायः निरर्थक है"[1]

डॉ० दशरथ शर्मा जी के कथन से इतना तो स्पष्ट है कि वे पद्मावती के अस्तित्व में विश्वास करते हैं।

कविराव मोहनसिंह पद्मावती को पूर्ण रूपेण ऐतिहासिक मानते हुए लिखते हैं—"पद्मावती के विषय में मित्रवर डॉ० दशरथ शर्मा ने "कान्हड देव रासो" से प्रमाण दिए हैं। उसमें उसके पिता का नाम "पाहनवई" लिखा मिलता है, जिससे उन्होंने आबू वाले धारावर्ष के छोटे भाई प्रहल्लादन का अनुमान लगाया है। रासो में पद्मावती के पिता का नाम पद्मसेन लिखा है। पद्म का नाम पर्याय रूप पुरयन भी होता है, जो अपभ्रंश में पुलयन, पुल्लन, पालन आदि रूप में हो जाना संभव है। इन विकृत रूपों से पद्मावती के पिता पद्मसेन का होना प्रमाणित हो जाता है। इसी पद्मसेन की पुत्री पद्मावती के साथ पृथ्वीराज का विवाह हुआ और आल्हा ऊदल के लोक गीतों से तथा रासो के अन्त में दिए हुए पद्मावती ग्रन्थ एवं परिमाल रासो (महोबा खंड) से स्पष्ट होता है कि इसी विवाह के अवसर पर युद्ध हुआ उसमें पृथ्वीराज के घायल सामंत रणक्षेत्र में रह गए उन्हें महोबे के राजा परिमाल (परमर्दि) ने मरवा डाला, इसीलिए पृथ्वीराज ने महोबे राज्य का सर्वनाश किया जिसका प्रमाण मदनपुर के मन्दिर के स्तंभ वाले वि० सं० १२३९ के लेख में मिलता है।"[2]

उपर्युक्त विद्वानों के मतों को देखकर राजकुमारी पद्मावती के अस्तित्व में एकायक सन्देह नहीं किया जा सकता।

---

१. डॉ० दशरथ शर्मा, मरुभारती, वर्ष १, अंक १, पृ० २७-२८, सितम्बर १९५२ ई०।
२. कविराव मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो, प्रथम भाग, सम्पादकीय पृ० १३, साहित्य संस्थान उदयपुर।

पृथाबाई :

पृथ्वीराज रासो के अनुसार पृथाबाई अजमेरपति सोमेश्वर की पुत्री तथा पृथ्वीराज चौहान की बहन थी। 'पृथा विवाह समय' के अन्तर्गत कवि ने सूचना दी है कि इनका विवाह मेवाड़ाधिपति रावल समरसिंह से हुआ था।[1] रासो का अप्रकाशित मध्यम संस्करण भी उपर्युक्त कथन का समर्थन करता है।[2]

पुंडीरनी :

महाराज पृथ्वीराज चौहान को रानी इंच्छिनी से विवाह किए हुए अभी एक ही वर्ष हुआ था कि उन्होंने सुना कि चन्दपुण्डीर के घर एक अत्यन्त सुन्दरी कुमारी है, जो विस्तृत गुणों वाली है। उसकी प्रशंसा सुन कर पृथ्वीराज के मन में प्रेम उदय हो गया—

चन्द पुंडीर नरेस घर, सुंदरि अति सुकुमारि।
प्रेम प्रगट राजन भयौ, गुन सुनत विस्तारि॥ छं० ३।[3]

महाराज पृथ्वीराज पुण्डीरनी में अनुरक्त हो गए तथा चन्दपुण्डीर से अपनी पुत्री ब्याहने के लिए कहला भेजा। चन्दपुण्डीर ने महाराज पृथ्वीराज की आज्ञा मानकर, हीरे के तुल्य अनुपम रूपवती कुमारी का ब्याह कर दिया—

सुनि स्रोतान नरिंद हुअ, कहिय बत्त पुण्डीर।
रूप अनूपम राज वरि, दिय राजन हित हीर॥ छं० ४।[4]

इतना ही नहीं, लग्न दिवस आने पर वीर चन्द पुण्डीर ने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण पृथ्वीराज को कराया तथा दहेज स्वरूप उसने सात हाथी, इकहत्तर घोड़े और नग तथा मोतियों से जड़ा हुआ बहुत सा सामान दिया—

लगन सु दिन हयलेव करि, चन्द सत्त गज राज।
इक अग्गर सत्तरि सु हय, नग मोती बहु साज॥ छं० ५।[5]

ऐतिहासिकता :

कविराव मोहनसिंह चन्दपुण्डीर को ऐतिहासिक पात्र मानते हुए लिखते हैं कि 'रासो

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृथा विवाह समय।
२. रासो की हस्तलिखित प्रति, पृथा विवाह स० ५, रा० ए० सो० लंदन।
३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर छं० ३, स० १६।
४. वही, छं० ४, स० १६।
५. वही, छं० ५, स० १६।

के लेखानुसार चन्द पुण्डीर हरिराय का पुत्र था और 'हम्मीर काव्य' के लेखानुसार चन्द्रराज जो गोविन्दराज का पुत्र था। वही रासो वाला चन्दपुण्डीर प्रतीत होता है। उसके पिता का नाम हरिराय और गोविन्दराय पर्याय रूप में दोनों एक हैं। उपर्युक्त चन्दपुण्डीर की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह हुआ था।[1]

कविराव मोहनसिंह के कथन से स्पष्ट है कि चन्द पुण्डीर की कन्या का विवाह पृथ्वी-राज चौहान से हुआ था। उस युग की प्रवृत्ति देखते हुए सम्भव है ऐसी घटना हुई हो, किन्तु ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में निश्चित एवं निर्णायक मत देना सम्भव नहीं है।

लाले (खत्राणी वाला) :

लाले (खत्रीवाला) अत्यन्त रूपवती थी। 'भोलाराय समय १२' में वर्णित है कि गुर्जरेश्वर भोलाराय भीम देव चालुक्य के मंत्री अमरसिंह सेवरा ने मंत्र-तंत्र के बल पर तथा लाले नामक अत्यन्त रूपवती स्त्री के द्वारा महाराज पृथ्वीराज चौहान के प्रसिद्ध मंत्री कैमास के पास भेज कर, वशीकरण करके, पृथ्वीराज के नागौर नगर पर चालुक्यराज भीमदेव की आन अथवा दुहाई फिरवा दी थी।[2]

लाले (खत्राणी वाला) का विवरण 'रासो' के लघुतम, मध्यम एवं वृहत रूपान्तरों में समान रूप से मिलता है। किन्तु इतिहास लाले खत्राणी के विषय में सर्वथा मौन है।

संयोगिता :

रासोकार ने राजा जयचन्द के एक संयोगिता नामक कन्या का उल्लेख किया है। कवि ने इसके विवाह सम्बंध की घटना को अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। रासो के अति-रिक्त आल्हा-खण्ड, हम्मीर रासो, सुर्जन चरित्र, आदि काव्य ग्रन्थों में भी संयोगिता का वृतान्त मिलता है।

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार संयोगिता ने राजा जयचन्द की पट्टरानी जुन्हाई के गर्भ से जन्म लिया था। कवि ने संयोगिता की जन्म कथा बड़े विचित्र ढंग से प्रस्तुत की है। चण्डी ने, महाभारत तथा रामायण के महायुद्धों के उपरान्त भी तृषित रहने के फलस्वरुप इन्द्रदेव से पृथ्वी पर पुनः रुधिर धारा प्रवाहित करने का आग्रह किया जिससे चिरकाल की तृषा शान्ति हो सके। देवाधिदेव इन्द्र ने चण्डी को पृथ्वीराज चौहान तथा पंगराज के मध्य होने वाले संग्राम में क्षुधा पूर्ति का आश्वासन दिया तथा युद्ध को असम्भावी बनाने के लिए विविध जाल रचना, प्रारम्भ की। महाराज इन्द्र ने मति प्रधान गन्धर्व को बुलाकर आज्ञा दी कि मृत्यु लोक में जा कर पंगराज तथा सम्भरेश के मध्य शत्रुता का बीजारोपण

---

1. कविराव मोहनसिंह पृथ्वीराज रासो, प्रथम भाग, सम्पादकीय, पृ० १२-१३, साहित्य संस्थान उदयपुर।
2. पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा काशी, भोलाराय समय १२।

करे। देवेन्द्र की आज्ञा मानकर गन्धर्व ने कन्नौज की ओर प्रस्थान किया, कुछ काल तक नगर सौन्दर्य अवलोकन करने के उपरान्त, उसने मदनिका ब्राह्मणी के प्रागंण स्थित एक वृक्ष पर रात्रि व्यतीत की। लौटने पर उसने अपनी माया नामक पत्नी से कन्नौज का विस्तृत वर्णन किया जिससे प्रभावित होकर माया ने सयोगिता के पूर्व जन्म की कथा तथा कन्नौजपति पंगराज के यहाँ उत्पन्न होने की घटना जानने की जिज्ञासा की।[1]

रासोकार ने 'संयोगिता पूर्व जन्म प्रस्ताव' में संयोगिता को रम्भा नामक अप्सरा का अवतार बताया है। इन्द्र द्वारा पतिष मंजुघोषा अप्सरा को जरज के पुत्र सुमंत मुनि का तप भंग करने के अपराध में मृत्युलोक में जन्म ग्रहण कर जयचन्द तथा पृथ्वीराज में घोर संग्रमोपरान्त पुनः स्वर्ग जाने का शाप मिला।[2] इसके कुछ ही कालोपरान्त रम्भा को देवेन्द्र की सभा-मध्य शिव की उपस्थिति में भी इन्द्र की वन्दना करने के फलस्वरूप पुनः शिव के शाप का भागी बनना पड़ा।[3]

अतः स्वर्ग की अप्सरा अपने समस्त सौन्दर्य को धारण करके कन्नौज पति पंगराज के घर में उत्पन्न हुई। संयोगिता बाल चन्द्रमा के समान दिन प्रति दिन विकसित होती गई। कवि चन्द उसके नख-शिख का वर्णन करते नहीं हुए अघाता।[4] राजा पगराज द्वारा राजसूय यज्ञ के आयोजन तथा संयोगिता स्वयंवर के अवसर पर राजकुमारी की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी। इस यज्ञ की आयोजना आनन्द सम्वत् ११९४ में हुई थी। अतः संयोगिता का जन्म आनन्द सम्वत् ११३३ में माना जा सकता है।

मदनिका ब्राह्मणी द्वारा राजकुमारी संयोगिता को पृथ्वीराज के विषय में ज्ञात हुआ, जिसके गुण श्रवण कर वह उस पर मुग्ध हो गई तथा स्वयंवर के मध्य पृथ्वीराज चौहान की स्वर्ण प्रतिमा को तीन वार वरमाला पहना कर अपना पति घोषित किया। राजा जयचन्द ने उपरोक्त घटना से कुपित हो राजकुमारी को गंगातट स्थित प्रासाद में दण्ड स्वरूप निर्वासित कर दिया। पृथ्वीराज अपनी मूर्ति का वरण करने का समाचार पा तुरन्त ही कन्नौज की ओर चल पड़ा। राजा पृथ्वीराज कन्नौज नगर की शोभा देखता-भालता, नगर के दक्षिण प्रान्त में गंगा किनारे संयोगिता के महलों की ओर जा पहुंचा तथा गंगा जल की तरगों के आनन्द में खो गया। इसी बीच घोड़े के हार का एक मोती टूट कर गंगा में जा गिरा, उस पर सैकड़ों मछलियाँ टूट पड़ी। वह उस मोती को कभी ऊपर लाती कभी नीचे ले जाती। यह देख कर पृथ्वीराज ने अपार आनन्द का अनुभव किया तथा हार में से मोती तोड़-तोड़ कर मछलियों को चुगाना प्रारम्भ कर दिया।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १२२९-३४, स० ४५।

२. वही, पृ० १२५३-५४, स० ४५।

३. वही पृ० १२५९, स० ४५।

४. वही, छं० १०६-२४, स० ६२।

दासी द्वारा संयोगिता को जब यह ज्ञात हुआ कि पृथ्वीराज आ गया है तो उसके शरीर में रोमांच हो गया तथा उसके आनन्द का पारावार न रहा। दासी पृथ्वीराज को महलों में बुला ले गई। महलों में पैर रखते ही ब्याह की तैयारी होने लगी। विवाह में केवल सखियों के अतिरिक्त अन्य कोई न था। विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद पृथ्वीराज अपने डेरे में लौट आया। संयोगिता विरह का अनुभव करने लगी। राजा के हाथ में कंगन बंधा हुआ था, ललाट पर टीका लगा था, तथा गले में मोहन माला न थी। ऐसी दशा में पृथ्वीराज को देखकर चाचा कन्ह ने मुस्करा कर पूछा यह क्या बात है। किन्तु राजा ने लज्जावश नीचा सिर करके उत्तर दिया, क्या कहूं केवल उसी का प्रण नहीं था मेरी भी प्रतिज्ञा थी और यहाँ आकर भी प्रतिज्ञा पूर्ण न करता तो कोई क्या कहता। किन्तु मुझे तो आप लोग आँखें दिखा रहे हैं। इसलिए उसे (संयोगिता को) रोती हुई छोड़कर आ रहा है। यह सुनते ही काका कन्ह कड़क कर बोले, खूब किया, पर यह क्या किया, बहू को वहीं छोड़ आए। धिक्कार है, कोई अपनी स्त्री को भी इस प्रकार छोड़ता है। चिन्ता क्या थी, जब-तब हम सौ सामन्तों में से एक भी जीवित रहेगा, तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं हो सकता। इतना सुनते ही पृथ्वीराज संयोगिता को लेने पुनः चल दिया। संयोगिता का अपहरण करके महाराज पृथ्वीराज अपनी सेना से फिर आ मिला।"

पंगराज को कन्या अपहरण की सूचना मिलने पर, वह क्रोध से भर गया। चार दिन तक घोर संग्राम होता रहा, अन्त में वीर पृथ्वीराज संयोगिता को लेकर दिल्ली सकुशल पहुंच गया।

रासो की उपर्युक्त कथा को काल्पनिक एवं अप्रमाणिक सिद्ध करते हुए ओझा जी लिखते हैं–"जयचन्द बहुत दानी राजा था। उसके कई उपलब्ध दान पात्रों से पाया जाता है कि उसने प्रसंग-प्रसग पर अनेक-अनेक भूमि दान किए। यदि उसने राजसूय यज्ञ किया होता तो उस महत्वपूर्ण अवसर पर वह बहुत अधिक दान करता, परन्तु उसके सम्बंध का न तो अब-तक कोई दान पत्र ही मिला और न किसी शिलालेख या प्राचीन पुस्तक में उसका उल्लेख है। इसी तरह पृथ्वीराज और जयचन्द की परस्पर लड़ाई और संयोगिता स्वयंवर की कथा भी ऐतिहासिक नहीं है। ग्वालियर के तँवर राजा वीरम के दरबार के प्रसिद्ध कवि जयचन्द ने वि० स० १४६० के आस पास संस्कृत 'हम्मीर महाकाव्य' बनाया, जिसमें पृथ्वीराज का विस्तृत वर्णन किया है। और उसी की रची हुई 'रम्भामजरी' नाम की नाटिका में उसने जयचन्द को उसका नायक बनाया है, जिसकी प्रशसा में लगभग दो पृष्ठ उसके विशेषणों के दिए है। इन दोनों पुस्तकों में पृथ्वीराज और जयचन्द की पारस्परिक लड़ाई, राजसूय यज्ञ और संयोगिता के स्वयंवर का उल्लेख तक नहीं है। इससे स्पष्ट है कि वि० सं० १४६० तक ये कथाएं प्रसिद्धि में नहीं आई थी।"

१. रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ५८।

श्री ओझा जी के उपर्युक्त प्रमाणों को निराधार सिद्ध करते हुए डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखा है कि—'हम्मीर महाकाव्य निःसंशय इन घटनाओं के विषय में मौन है। शायद आप इस मौन साक्षी को पर्याप्त मानकर संयोगिता की अनैतिहासिकता के विरुद्ध निर्णय दें। किन्तु क्या 'हम्मीर महाकाव्य' पृथ्वीराज के नागार्जुन, भादानक जाति, चन्देल राजा परमर्दिन, चालुक्यराय भीमदेव द्वितीय एवं परमार राजा धारावर्षादि के साथ हुए युद्धों के विषय में भी उतना ही मौन नहीं है? ये सर्वथा ऐतिहासिक बातें हैं। यदि 'हम्मीर महाकाव्य' का मौन इन्हें असिद्ध न कर सके तो उसका मौन कुछ विशेष अर्थकर नहीं कहा जा सकता। संयोगिता के नाम का उसमें न आना, उसे अनैतिहासिक सिद्ध नहीं कर सकता और न जयचन्द और पृथ्वीराज का परस्पर संग्राम इस मौन के कारण अनैतिहासिक है। आप संवत् १२९० के लगभग लिखित 'जयचन्द प्रबंध' पढ़े। आपको ज्ञात होगा कि पृथ्वीराज के मरने पर जयचन्द ने वर्धापन आरम्भ किया था, घी के दिए जलवाये थे, शहर भर में आनन्द मनाया गया था, रही बिचारी 'रम्भा मंजरी' वह तो 'हम्मीर महाकाव्य' से भी कहीं अधिक अप्रमाणिक है। उसके 'कादम्बरी' की शैली पर लिखे विशेषणों के आधार पर जयचन्द की जीवनी का निर्माण करना धूलि पर मकान बनाने के समान है।"[1] इसी लेख में डॉ० दशरथ शर्मा 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य की नायिका तथा रासो की नायिका संयोगिता में सामंजस्य स्थापित करते हुए लिखते हैं—"पृथ्वीराज के इतिहास के लिए सबसे प्राचीन एवं सबसे अधिक प्रमाणिक ग्रन्थ 'पृथ्वीराज विजय' है।..........प्राप्त अंश से हमें ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज ने अनेक विवाह किए थे। सभी रानियाँ अत्यन्त सुन्दर थीं किन्तु एक दिन अपनी चित्रशाला में तिलोत्तमा का चित्र देख कर राजा प्रेमोन्मत्त हो गया। कारण यह था कि राजा राम का अवतार था और तिलोत्तमा ने सीता का अभिनय कर पूर्व जन्म में उसे बहुत प्रसन्न किया था। वन्दी पृथ्वीभट को अत्यन्त चिन्ता हुई। किन्तु उसे निश्चय था कि पृथ्वीराज का किसी तरह अहित न होगा, तिलोत्तमा किसी राजकुमारी का रूप ग्रहण कर अवश्य उसे वरण करेगी। वास्तव में वह अवतार ले भी चुकी थी। वह स्वर्ग में नृत्य करते-करते थक गयी थी।

अन्तिम प्राप्त सर्ग के अन्तिम चार श्लोक अत्यन्त त्रुटि पूर्ण हैं। ७४वें श्लोक की त्रुटित टीका में गंगा का नाम है। ७८वें श्लोक में नाक नदी तटस्थित पद वर्तमान है। क्या इससे अनुमान किया जाय कि तिलोत्तमा कहीं नाक नदी गंगा के किनारे राजकुमारी के रूप में अवतीर्ण हुई थी? ७७वें एवं ७६ वें श्लोक के अविशिष्टांश से यह ध्वनि निकलती है कि जिस प्रकार कमलनी चन्द्रमा को सामने आया देखकर भयभीत होती है एवं सूर्य को स्मरण

---

१. डॉ० दशरथ शर्मा, संयोगिता, राजस्थान भारती, भाग १, अंक २-३, पृ० २१-२२ जुलाई-अक्टूबर, सन् १९४९।

करती है उसी तरह नायिका किसी अनमियत पुरुष के विवाह प्रस्ताव से उद्विग्न होकर पृथ्वीराज का स्मरण कर रही है।

रासो में दी हुई संयोगिता की कथा एवं पृथ्वीराज विजय के इस त्रुटित प्रकरण में निम्नलिखित समानतायें दर्शनीय हैं—

(१) संयोगिता रम्भा का अवतार थी, पृथ्वीराज विजय की राजकुमारी तिलोत्तमा का।

(२) पृथ्वीराज इन दोनों में उन्हीं पर बिना देखे ही अनुरक्त हुआ था।

(३) इस अनुराग के पूर्व 'रासो' और 'पृथ्वीराज विजय' पृथ्वीराज के अन्य कई विवाहों का वर्णन करते हैं।

(४) दोनों काव्यों की नायिकाओं का सम्भवतः गंगा के तट पर स्थित किसी स्थान से सम्बंध था।

(५) दोनों ही का किसी अनमियत पुरुष से विवाह निश्चित हुआ था।

'पृथ्वीराज विजय' की सम्पूर्ण कथा 'रासो' की संयोगिता की कथा से कितना मेल खाती है, यह बतलाना अभी कठिन ही नहीं प्रायः असंभव है, किन्तु यह अवश्य निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संयोगिता सी किसी राजकुमारी से पृथ्वीराज के प्रणय एवं परिणय का वर्णन 'पृथ्वीराज विजय' में भी वर्तमान था'।[1]

पृथ्वीराज की ऐतिहासिक तथा बीकानेर की एक लाख अक्षर वाली प्रति को प्रामाणिक मानते हुए, डॉ० दशरथ शर्मा ने संयोगिता-अपहरण को अकबर काल तक प्रसिद्ध बताते हुए लिखा है—"संयोगिता हरण और जयचन्द से युद्ध की कथा कम से कम अकबर के समय में काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी अकबर के प्रसिद्ध मंत्री ने अकबर नामा एवं आई ने-अकबरी के लेखक अबुलफजल ने इस विषय का अत्यन्त रोचक वर्णन दिया है। हम राजस्थानी के पाठकों के लिए उसका अनुवाद उपस्थित करते हैं— "क्या प्रसिद्ध है कि हिन्दुस्तान का सम्राट राजा जयचन्द राठौड़ इस समय दिल्ली में राज्य कर रहा था और दूसरे राजा कुछ हद तक उसका प्रभुत्व स्वीकार करते थे। वह स्वयं भी इतना उदार हृदय था कि ईरान और तूरान के निवासी उसके यहाँ नौकरी करते थे। उसने अपने चक्रवर्तित्व के परिचायक यज्ञ करने का निश्चय किया और उसके लिए तैयारियाँ शुरू कर दी। इस यज्ञ का नियम था कि सेवादि का सब काम राजा लोग ही करें और राजा के यहाँ उस समय रसोई बनाना और आग जलाना भी उनके (तात्कालिक) कार्य का एक अंग था। उसने यह भी वचन दिया था कि एकत्रित राजाओं में सबसे बहादुर व्यक्ति को उसकी कन्या विवाह दी जायगी। राजा पिथौरा ने इस उत्सव में भाग लेने का निश्चय किया था, परन्तु उसका एक दरबारी अकस्मात कह उठा कि

1. डॉ० दशरथ शर्मा, संयोगिता, राजस्थानी भारती, अंक २-३, पृ०२४-२५, सन् १९४६।

चौहानों का स्वतंत्र राज्य रहते हुए राठौर राजा को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। इससे पृथ्वीराज का पैतृक गर्व जाग उठा और उसने यज्ञ में न जाने का निश्चय किया। राजा जयचन्द ने उस पर आक्रमण करने का विचार किया, परन्तु उसके मंत्रियों ने उत्सव की निकट तिथि और युद्ध के समय लगने का ध्यान दिलाते हुए उसे आक्रमण करने से रोक दिया। यज्ञ को संपूर्णांग बनाने के लिए, राजा पिथौरा की स्वर्ण मूर्ति बनायी गयी और उसे द्वार रक्षक के स्थान पर रखा गया। इस समाचार से क्रुद्ध होकर राजा पिथौरा ने वेश बदला, और ५०० चुने हुए सामन्त लेकर यज्ञ में पहुंचा। वह मूर्ति को उठा लाया, बहुत से आदमियों को मार डाला और शीघ्रता से वापस आ गया। इस साहस के कार्य को सुन कर जयचन्द की पुत्री जो दूसरे किसी की वागदत्ता थी—पृथ्वीराज से प्रेम करने लगी और उसने दूसरे आदमी से विवाह करना मंजूर न किया। इस व्यवहार से रुष्ट होकर उसके पिता ने उसे राजमहल से निकाल दिया और उसके लिए अलग महल बनवाया। इस समाचार से उन्मत होकर पिथौरा उससे विवाह करने का निश्चय कर वापस लौटा। यह इन्तजाम किया गया कि चन्द जो काबुल के वन्दियों की बराबरी करने वाला था जयचन्द की स्तुति करने के बहाने उसके दरबार में पहुंचे और राजा कुछ चुनिन्दा साथियों सहित उसका सेवक बन कर जाय। प्रेम ने इस निश्चय को कार्य में परिणत कर दिया और इस चातुर्य पूर्ण उपाय एवं अतिशयनी वीरता के सहारे उसने अपनी इच्छा पूर्ण की और शूरवीरता के अनेक आश्चर्य कारी कार्य कर अपने राज्य में पहुंचा, उसके सौ सामन्त अनेक रूप धारण कर उसके साथ गए थे। उन्होंने राजा को भगाने में मदद दी और उसका पीछा करने वालों को हराया। गोविन्दराय गहलोत ने सर्व प्रथम युद्ध किया और बहादुरी से लड़ता हुआ मारा गया। उसने सात हजार शत्रुओं का संहार किया। तदन्तर नरसिंहदेव, चन्द पुण्डीर, सरघोल सोलंकी और अनेक दो भाइयों पाल्हणदेव कछवाहा पहले दिन की लड़ाई में आश्चर्यकारी वीरता के कार्य कर युद्ध में काम आए और बाकी सब सामन्त भी खेत रहे। चन्द और उसके दो भाइयों सहित राजा दुलहिन को दिल्ली लाया और तमाम संसार उसके इस कार्य से आश्चर्य चकित हो गया"।[1]

उपर्युक्त कथा को पढ़ लेने के बाद अब इसे १५ वीं-१६ वीं शताब्दी का कहने का कौन साहस करेगा। यदि अब भी विश्वास न हुआ हो तो सुर्जन चरित्र जो आईने अकबरी से सम्भवत: कुछ प्राचीन है, उसका अवलोकन करना चाहिए। डॉ० दशरथ शर्मा 'सुर्जन चरित' की कथा संक्षेप में इस प्रकार वर्णन करते हैं—एक बार पृथ्वीराज नगर से बाहर विहार भूमि में वास कर रहा था प्रतिहारी ने आकर निवेदन किया कि कान्यकुब्ज से आई हुई एक स्त्री आप का दर्शन करना चाहती है। आज्ञा प्राप्त कर उसने उस स्त्री को अन्दर बुलाया। प्रश्न पूछने पर नवागन्तुक स्त्री ने निवेदन किया "नौ लाख असवारों के स्वामी कान्यकुब्जेश्वर के

१. डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, राजस्थानी, भाग ३, अंक ३, पृ० ७-९, जनवरी सन् १९४०, कलकत्ता।

कान्तिमति नामक एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या है, पिता के पास बैठी हुई कान्तिमति ने एक चारणी के मुख से आपका यश सुना। स्वप्न में भी एक बार उसे आपके दर्शन हुए। तब ही से खाना-पीना सब भूल कर आप ही की चिन्ता में मग्न है। पूछने पर कुछ उत्तर नहीं देती, कभी स्वयं ही आपका नाम रटा करती है। भाग्य भी उसके अत्यन्त प्रतिकूल हो रहा है। उसका पिता अभी एक अन्य राजा को अपना जमाई बनाना चाहता है। इससे अत्यन्त व्याकुल हो कर कान्तिमती ने एकान्त में अपनी सखी से कहा उन्हें प्राप्त करने की दुराशा क्या उतना ही मोह का कार्य नहीं है जितना कि रसातल के पिंजरे में बन्द किसी चकोरी का यह उम्मीद करना कि वह कभी आकाश में स्थित चन्द्रमा का स्पर्श कर सकेगी। यदि मैं उनके पास सन्देश भेजूं तो क्या वह हास्य का ही विषय न होगा कन्याएँ कहीं पाणिग्रहण के लिए प्रार्थना थोड़े ही किया करती है। अब तो मेरे लिए मरण ही शरण है। सखि ने कान्तिमती को आश्वासन दिया और मुझे सब बात निवेदन करने के लिए आपकी सेवा में भेजा है। पृथ्वीराज ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया मैंने कान्तिमती के गुणों का श्रोतपुरों द्वारा अनेक बार पान किया है। मैं शीघ्र ही उसकी इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा। मेरी यह इच्छा भी है कि मैं कान्यकुब्ज नगर देखूं। तुम जाकर मेरी प्रिया को मेरे वचनों से प्रसन्न करो। मैं शीघ्र ही आता हूँ उसने वन्दी को मुखिया बनाया, और जय के आशय, साहस आदि की परीक्षा करने और शहर के बाहर जाने के मार्गों को अच्छी तरह देखने के लिए अपना वेश छोड़ कर वन्दी का अनुशरण किया। उसके साथ १५० सामन्त थे। जयचन्द की सभा में वह दूसरे का पार्श्वचर बन कर रहना, परन्तु अपने शिविर में सब लोग उससे राजा का सा ही व्यवहार करते। पृथ्वीराज गंगा के तीर पर निर्भय विहार किया करता। एक चाँदनी रात के समय घोड़े को पानी पिलाने के लिए गंगा तट पर पहुँचा। फैन के गन्ध से कई मछलियाँ सतह पर आ गईं। राजा ने कौतुकवश अपने कंठ से कई मोती उनके बीच में फैंक दिए। मछलियों के झुण्ड के झुण्ड उन्हें खीलें समझ कर उठ आए। कान्यकुब्जेश्वर की कन्या ने उसे इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए देख कर अपनी सखियों से कहा कि इस प्रकार से मुक्ताओं से क्रीड़ा करने वाला मनुष्य कोई बड़ा राजा ही हो सकता है। पृथ्वीराज के समीप जो दासी भेजी गई थी उसने पृथ्वीराज को पहचाना और कहा कि वह पृथ्वीराज के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो किसी दासी को भेज कर इस बात की परीक्षा कर लो। अधीश्वरों का यह स्वभाव ही होता है कि अकेले होने पर भी वे अपने आप को सेवकों से घिरा हुआ समझते हैं इस हार के समाप्त होने पर दूसरे मोतियों के लेने की इच्छा से मन में यह समझता हुआ कि पीछे कोई खड़ा है, यह अपना हाथ पसारेगा। कौतूहलवश राजकुमारी ने उसकी सलाह के अनुसार कार्य किया जब पृथ्वीराज ने हार समाप्त होने पर पीछे की तरफ हाथ पसारा तो दासी ने उसके हाथ में मुक्ता जाल रख दिया। जब वे अग्रथित मोती भी समाप्त हो गये तब दासी ने अपने गले का हार उतार कर राजा के हाथ में रख दिया। स्त्रियों के उस कण्ठ भूषण को देख कर राजा विस्मित हुआ और पीछे मुड़कर उसने उस दासी को देखा और पूछा—'तू कौन है, राक्षसी के समान तू रात्रि

के समय कहाँ घूम रही है, और तूने किस लिए मुझे बहुमूल्य मोती दिए हैं। 'उसने उत्तर दिया' हे महाभाग ! मैं राजकुमारी की दासी हूँ। आपको यहाँ विहार करते हुए उसने तथा उसकी सखियों ने देखा था और स्वभावतः उनके मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ, कि आप कौन हैं ? उसकी पुरानी दासी ने बतलाया था कि यह पृथ्वीराज है परन्तु दूसरों ने इस बात को नहीं माना और इसलिए परीक्षार्थ मुझे भेजा गया है।" पृथ्वीराज ने कहा 'तुम्हारी इस गवेषणा से कोई लाभ नहीं। वह ऐसा संदेह ही क्यों करती है। मैं कल रात्रि के समय फिर आऊँगा। उस समय सब सन्देह दूर हो जायगा।" पृथ्वीराज का यह सन्देश सुनकर राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न हुई। दूसरे दिन जब आकाश में चाँदनी खिल चुकी थी, पृथ्वीराज द्वारपालों की नजर बचाकर राजकुमारी के महल में घुस गया। राजकुमारी और उसकी सखियों ने उसका स्वागत किया पृथ्वीराज ने वहाँ कुछ समय बिताकर फिर यह कहते हुए छुट्टी मांगी 'हे मृगनयनि ! कोई आदमी यह नहीं जानता कि मैं यहाँ आया हूँ यदि मैं ठीक समय पर शिविर में न पहुँचा तो मेरे सेवकों के हृदयों में अनेक शंकाएं उठेंगी परन्तु मैं तुम्हारा वियोग भी सहन नहीं कर सकता इसलिए सामन्तों से मिल कर मैं शीघ्र ही वापस आऊँगा और तुम्हारी इच्छापूर्ण करूँगा।" इतनी बात सुनते ही राजकुमारी की आँखों में आँसू भर आए और उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से सखियों की तरफ देखा। अपनी प्रिया को इस प्रकार विरह से तप्त देखकर पृथ्वीराज ने उसका हाथ पकड़ा और उसके साथ-साथ महल के दरवाजे पर पहुँचा। वहाँ उत्तम घोड़े खड़े थे। पृथ्वीराज ने एक तेज घोड़ा छीन लिया और राजकुमारी सहित उस पर सवार हो गया। द्वारपाल चकित होकर उसकी तरफ देखते ही रह गए और वह अपने शिविर में पहुँच गया। तब उसके मुख्य सामन्तों ने प्रसन्नता पूर्वक उसके पास जाकर कहा' आप वधू सहित राजधानी के लिए प्रस्थान करें। जब-तक आप चार योजन जायगे तब-तक मैं अकेला ही जयचन्द की सेना का सामना करूँगा।' इस प्रकार सब योजनों को सामंतों ने अपने बीच में बांट लिया। वे वास्तव में दानवों के अवतार थे और युद्ध में मृत्यु प्राप्त कर अपने असल स्वरूप में पहुँचना चाहते थे। पहले दानव ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ही कार्य किया। पृथ्वीराज के इन्द्रप्रस्थ पहुँचते-पहुँचते बहुत थोड़े सामन्त ही शेष रह गये। इसके बाद पृथ्वीराज ने जयचन्द से घोर संग्राम किया। जयचन्द युद्ध में हार गया और पृथ्वीराज को विजय लक्ष्मी और वधू दोनों ही प्राप्त हुई।"

बुन्देलखंड के प्रसिद्ध कवि जगनिक विरचित 'आल्हा' में भी संयोगिता अपहरण की कथा विस्तार से मिलती है। कवि ने संयोगिता अपहरण के समय होने वाले संग्राम का वर्णन इस प्रकार किया है — "दोनों ओर के वीर बड़े उत्साह से युद्ध में सम्मिलित हुए। नृसिंह फूंके गये, तलवारें म्यान से निकल कर चकाचौंध करने लगीं। दोनों सेनाओं के बीच

---

१. डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, राजस्थानी, भाग ३, अंक ३, पृ० ९-१३, सन् १९४० कलकत्ता।

घमासान युद्ध हुआ कि शत्रु तथा मित्र का विवेक जाता रहा। दिन भर मार-काट होती रही। योद्धाओं ने रक्त बहाने से हाथ तब-तक नहीं खींचा जब तक सिर पर तारागण न टिमटिमाने लगे। जयचन्द ने आज्ञा दी की राजकुमारी की पालकी रणभूमि में लाकर रख दी जावे तथा घोषणा की कि जिसे विजय श्री प्राप्त हो वही डोला उठा कर ले जाय। उसका उद्देश्य यह था कि पृथ्वीराज स्वयं मैदान में आ जाये और मैं उसे मार डालूं। चौहानों ने ललकार कर कहा 'पालकी यहीं रख दो तथा ठंडे-ठंडे गृह मार्ग ग्रहण करो। उधर राठौर भी चिल्लाये, जिन योद्धाओं में पालकी दिल्ली ले जाने का गर्व हो जरा सम्मुख तो आयें। प्रत्येक वीर ने दो तलवारें हाथों में सम्भाल ली तथा वीर मृत्यु को एक मनोरंजक खेल समझकर युद्ध में जुट गए। चौहानों का पल्ला भारी था तथा पालकी पांच कोस दिल्ली की ओर अग्रसर हो चुकी थी।

कन्नौजियों ने भी पिंड न छोड़ा। रात-दिन बराबर लड़ते-लड़ाते रहे। पालकी कभी दिल्ली की ओर अग्रसर होती तो कभी कन्नौज वाले अपनी ओर खींचते थे। किन्तु डोला दिल्ली की ओर क्रमशः अग्रसर होता गया। सोरों के घाट पर गंगा पार जाते समय एक बार फिर घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर के चुने हुए वीर आमने-सामने आकर अपनी-अपनी कुशलता का परिचय देने लगे। किन्तु बाजी चौहानों के हाथ ही रही तथा कन्नौज की सेना दिन प्रति दिन घटती ही गई। दिल्ली के फाटक के सामने फिर अन्तिम युद्ध हुआ। उसमें राठौर सेना के बचे खुचे सैनिक भी काम आ गए। आनन्द एवं उत्साह में चन्द बरदायी तथा पृथ्वीराज ने स्वयं डोला उठा लिया तथा अत्यन्त हर्षित हो नगर प्रवेश किया। कवि चन्द ने जयचन्द को सम्बोधित कर कहा 'यदि आपके सब सैनिक काम आ गए तो पृथ्वीराज की भी यही दशा है अतः अब युद्ध व्यर्थ है, शान्ति से घर की ओर प्रस्थान करिए।''

उपर्युक्त ग्रन्थों में संयोगिता की कथा होते हुए भी यदि इतिहासवेत्ता संयोगिता को काल्पनिक पात्र मानें तो इसे उनकी हठधर्मी के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। स्पष्ट है संयोगिता अपहरण की घटना अवश्य ही घटित हुई होगी तभी तो समस्त साहित्यिक ग्रन्थ एक स्वर से प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं।

इतने प्रमाणों के होते हुए भी इतिहासवेत्ता घोषणा करते हैं कि—'पृथ्वीराज और जयचन्द के विषय में बहुत सी निर्मूल कहानियाँ प्रचलित हैं जो चन्द बरदायी के पृथ्वीराज रासो पर आधारित हैं.........यह सिद्ध हो चुका है कि चन्द बरदायी सोलहवीं शती से पूर्व

---

१. पं० नारायणप्रसाद सीताराम, आल्हा खण्ड की भूमिका, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई, पृ० ३९-५६।

का नहीं है। जयचन्द की बेटी संयोगिता सर्वथा कल्पित पात्र है। पृथ्वीराज तथा जयचन्द के द्वेष की बात भी निरी कल्पना है।"[1]

वस्तुत: शिलालेख, दानपात्रों तथा अन्य साहित्यिक ग्रन्थों के अभाव में उपर्युक्त घटनाओं को काल्पनिक मानना न्यायसंगत नहीं है। डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, मत के समर्थन में लिखते हैं कि—'पृथ्वीराज की रानी और कान्यकुब्जेश्वर की राजकुमारी संयोगिता का उल्लेख नागार्जुन, भदानक जाति, महोबा नरेश परमर्दिदेव चंदेल, गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य (द्वितीय) और आबू के धारावर्ष के साथ चौहान नरेश के इतिहास प्रसिद्ध युद्धों का नाम तक न लेने वाले हम्मीर महाकाव्य और जयचन्द को सूर्यवंशी मल्लदेव का पुत्र, महोबा के मदन वर्मा को उसका आलान स्तम्भ आदि निराधार बातों का वर्णन करने वाली नाटिका 'रम्भा मंजरी' में यदि नहीं है तो इसमें निराशा की कोई बात नहीं।"[2]

डॉ० दशरथ शर्मा आईने-अकबरी तथा सुर्जन चरित्र की कथाओं को पढ़ कर रासो की संयोगिता कथा के विषय में अपना निर्णायक मत प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि—'इन दोनों अवतरणों को देखते हुए प्राय: सभी कह सकते हैं कि (१) रासो अकबर के समय वर्तमान था। (२) मुसलमान और बंगाली दोनों ही उसे ऐतिहासिक ग्रन्थ समझते थे। (३) अबुलफजल की दृष्टि में रासो का ऐतिहासिक महत्व फारसी तवारीखों से कम न था। (४) ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए यह भी स्पष्ट है कि पृथ्वीराज रासो उस समय भी प्राचीन ग्रन्थ समझा जाता था और इसे सोलहवीं या सत्रहवीं शताब्दी का ग्रन्थ मानना भूल है।"[3]

अत: उपर्युक्त विद्वानों के मत का समर्थन करते हुए हम भी यही कहेंगे कि अनुश्रुति की प्रबलता निश्चित रूप से इस सुन्दर कथा की ऐतिहासिकता का अकाट्य प्रमाण है जिसकी उपेक्षा करना असम्भव है।

संयोगिता के अतिरिक्त ग्रन्थकार पंगराज की दो पुत्रियों का और उल्लेख करता है, जिनमें से छोटी का नाम तारा था तथा दूसरी अज्ञात नामा का विवाह दक्षिण के राजा देवग्रह से हुआ था। यहाँ पर सामग्री अभाव के कारण इस विषय पर प्रकाश डालना अत्यन्त कठिन है।

---

१. जयचन्द विद्यालंकार तथा स्वर्गीय डॉ० काशीप्रसाद, इतिहास प्रवेश, भाग २, पृ० ३, पाद टिप्पणी।

२. डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, भूमिका भाग १, पृ० २२२।

३. डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार राजस्थानी, भाग ३, अंक ३, पृ० १२, सन् १९४० कलकत्ता।

संयोगिता की मृत्यु के सम्बन्ध में रासोकार ने लिखा है कि 'पृथ्वीराज तथा गोरी के युद्ध का दुःखद परिणाम तथा पृथ्वीराज के बन्दी होने की सूचना पाकर रानी संयोगिता के प्राण छूट गये। चौहान की स्त्रियों ने अपने शरीर अग्नि पर चढ़ा दिए। दुख के बन्धन में पड़ कर संयोगिता ने (पहले ही) योग द्वारा अपने पति से संयोग किया –

घर आये ढिल्लिय नयर, दसमि सुदिन अंगार।
बुद्धवार एकादशी, चली वरन स्यगदार ॥
चली वरन स्यगदार, सूर सामंत तोयवर।
सब परिगह प्रथिराज, भयौ मगल मंगल छर ॥
पट सुर तिय चहूआन, अग्नि आलिंग अंग वर।
स्यदु वधि संजोगि, जोग संजोग कहै घर ॥ छं० १६१८।

तत्कालीन सती प्रथा के प्रचार को ध्यान में रखते हुए रासोकार का संयोगिता का सती होना, वर्णन उचित एवं सत्य ही प्रतीत होता है।

सुरसुन्दरी :

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार सुरसुन्दरी कन्या दिल्लीपति अनंगपाल तोमर की पुत्री थी।[1]

ग्रन्थकार के मतानुसार एक बार राजा विजयपाल ने दिग्विजय की कामना से दिल्लीपति अनंगपाल तोंवर पर आक्रमण कर दिया।[2] राजा अनंगपाल तोंवर ने विजयपाल के आक्रमण की सूचना पाकर एक विशाल वाहिनी एकत्र कर कालिन्दी के उत्तर दिशा में मुकाबला किया। इसी बीच अजमेरपति राजा सोमेश्वरदेव अनंगपाल की सहायतार्थ दिल्ली की ओर अपनी विशाल सेना लेकर अग्रसर हुआ। सोमेश्वर चौहान तथा तोंवर की सम्मिलित सेना ने राजा विजयपाल की दिग्विजय की कामना पूर्ण न होने दी।

विजयोपलक्ष, एवं सोमेश्वर की सहायता के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन हेतु दिल्लीपति राजा अनंगपाल ने अपनी छोटी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर से तथा दूसरी कन्या का विवाह विजयपाल के साथ चिर मैत्री के फलस्वरूप कर दिया।[3] पृथ्वीराज रासो के प्रायः सभी संस्करणों में सुरसुन्दरी का राजा अनंगपाल की पुत्री एवं राजा विजयपाल की पत्नी होना लिखा है। किन्तु इतिहासवेता राजा विजयपाल की रानी का नाम चन्दलेखा मानते हैं तथा तोंवर वंशी राजा अनंगपाल से उसके किसी प्रकार के सम्बन्ध को भी स्वीकार नहीं करते।[4]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ६८१-६८२, स० १।
२. वही, छं० ६१७, स० १।
३. वही, छं० ६८१-६८२, स० १।
४. डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, हिस्ट्री आफ कन्नौज, पृ० २९६।

शशिवृत्ता :

नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' के 'शशिवृत्ता वर्णन नाम प्रस्ताव २५'[1] में शशिवृत्ता तथा पृथ्वीराज का विवाह विस्तार से वर्णित है। देवगिरि के राजा भान की पुत्री का नाम शशिवृत्ता था। एक बार देवगिरि का नट दिल्ली दरबार में आया,[2] तथा महाराज पृथ्वीराज चौहान द्वारा पूछने पर कि देवगिरि की राजकुमारी शशि-वृत्ता का विवाह किसके साथ निश्चित हुआ है[3], उसने बताया कि उज्जैन नगरी के कमधज्ज राजा के यहाँ उसकी-सगाई हुई है किन्तु राजकुमारी शशिवृता को यह संबन्ध स्वीकार नहीं है।[4] आगे उसी नट ने पृथ्वीराज चौहान से शशिवृत्ता का मेनका सदृश्य रूप वर्णन किया[5] जिसे सुनकर पृथ्वीराज का उस पर अनुराग जागृत हो गया तथा प्रेम विह्वल हो नट से उसकी प्राप्ति का उपाय पूछने लगा।[6] नट ने उन्हें पूर्ण आश्वासन देकर कहा कि राजेन्द्र, मैं कुछ न उठा रखूंगा तथा यह कहकर उनसे विदा ली।[7] राजा पृथ्वीराज ने शिव की आराधना की तथा उनसे अपना मनोरथ सिद्ध होने का वरदान पाया और वर्षा और शरद ऋतु शशिवृत्ता के विरह की काम पीड़ा में बिताई तथा देवगिरि जाने का अपने मन में निश्चय किया।[8]

दूसरी ओर कन्नौजपति जयचन्द के भ्रातृज वीरचन्द के साथ शशिवृत्ता की सगाई की सूचना पाकर एक गन्धर्व देवगिरि गया।[9] तथा वन में जहाँ राजकुमारी अपनी सहेलियों के साथ क्रीड़ा कर रही थी,[10] वह स्वर्ण हंस के रूप में एक स्थान पर बैठकर विश्राम करने लगा, राजकुमारी ने अत्यन्त आश्चर्य एवं विस्मय से उसकी ओर देखा तथा बल पूर्वक बंदी बनाकर उससे उसका वृतान्त पूछा। हंस ने उत्तर दिया कि मैं मति प्रधान नाम का गन्धर्व हूँ, सुरराज इन्द्र के कार्य हेतु आया हूँ, मुझमें तीनों लोकों में जाने की शक्ति है—

---

१. साहित्य संस्थान उदयपुर, से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में 'शशिवृत्ता समय' की संख्या २३ है।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १५-१७, स० २५।
३. वही, छं० १८, स० २५।
४. वही, छं० १९-२३, स० २५।
५. वही, छं० २४-२७, स० २५।
६. वही छं० २८, स० २५।
७. वही, छं० २९, स० २५।
८. वही, छं० ३२-४५, स० २५।
९. वही, छं० ६९, स० २५।
१०. वही, छं० ७०, स० २५।

हेम हंस तन धरिय। विपन मध्य विश्राम लिय।
दिष्षि तास शशिवृत्त। अतिहि अचरिज्ज मानि जिय॥
वल कर गहिय सु तत्व। हत्व लै करि तिहि पुच्छिय।
कवन देव तुम थान। कवन माया तन अच्छिय॥
उच्चर्‌यो हंस ससिवृत्त सम। मति प्रधान गन्धर्व हम।
सुरराज काज आए करन। तीन लोक हम वाल गम॥ छं० ७१।[1]

अपना परिचय देने के साथ ही उस गन्धर्व ने यह भी बताया कि वीरचन्द कमधज्ज की आयु केवल एक वर्ष की है, हे बाले, इसी से करुणा करके इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है—

तेम रहै वर वरष इक्क महि। हय गय अनत झुझिझ हैं समतहि॥
तिहि चार करि तुमहि पैं आयौ। करि करुना यह इन्द्र पठायौ। छं० ७४।[2]

गन्धर्व वचन सुनकर स्वाभाविक था कि राजकुमारी शशिवृत्ता का चित्त उधर से विरक्त हो जाता तथा गन्धर्व से उसने अपने अनुरूप वर पूछा—

तव उच्चरिय वाल सम तेहं। तुम माता सम पिता सनेहं॥
मुझ्झ सहाय अवरि को करिहौ। पानि ग्रहन तुम चित अनुहरिहौ॥ छं० ७५॥[3]

चतुर गन्धर्व ने अवसर पाते ही पराक्रमी अधिपति दिल्ली नरेश पृथ्वीराज का गुणगान प्रारम्भ कर दिया।[4] पृथ्वीराज का पराक्रम श्रवण कर उसे उनसे अनुराग हो गया तथा राजकुमारी ने कहा कि तुम उन्हें जाकर लिवा लाओ, मैं छः माह तक चौहान पृथ्वीराज की प्रतिक्षा करूँगी तथा इस अवधि तक न आने पर अपना शरीर त्याग दूंगी—

तहां तुम पिता कृपा करि जाउ। दिल्ली वै अनुराग उपाउ॥
मांस षटह हौं वृत्तह मंडौं। स्युना आवै तौं तन छंडौं॥ छं० ७९॥[5]

गन्धर्व, राजकुमारी शशिवृत्ता का ऐसा प्रण सुनकर दिल्ली दिशा की ओर चल पड़ा। वन में शिकार खेलते हुए वीर पृथ्वीराज ने आश्चर्य के साथ उस हेम-हंस को देखा तथा उसे पकड़ लिया, तब उसने राजा पृथ्वीराज को सारी कथा कह सुनाई—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७१, स० २५।
२. वही, छं० ७४, स० २५।
३. वही, छं० ७५, स० २५।
४. वही, छं० ७६-७८, स० २५।
५. वही, छं० ७९, स० २५।

वय किसोर प्रथिराज । रम्य हा रम्य प्रकारं ।
सेत पष्ष विय चंद । कला उद्दित तन मारं ॥
विपन मध्य चहुआन । हंस दिष्यौ अप अष्षिय ॥
चरण मग्ग दुति होत । हेम पछ्छी वियलष्षिय ॥
आचिज्ज देषि प्रथिराज वर । धाइ नृपति वर कर गहिय ॥
आपुब्ब दुज्जं गति दूत कथ । रहसि राज सौं सव कहिय ॥ छं० ८१ ।[1]

हंस रूपी गन्धर्व ने समय पाकर राजकुमारी शशिवृता की वयः संधि का शिशिर तथा वसंत का आरोप करके चित्रण किया —

ससिर अंत आवन वसंत । बालह सैसव गम ॥
अलिन पंथ कोकिल सुकंठ । सजि गुंड मिलत भ्रम ॥
मुर मारुत मुरि चले । मुरे मुरि वैस प्रमानं ॥
तुछ कौं परसिस फुट्टि । आनि किस्सोर रंगानं ॥
लीनी न भ्रमि नक स्यांम नन । मधुप मधुर धुनि धुनि करिय ॥
जानी न वयन आवन वंसत । अग्याता जोवन अरिय ॥ छं० ९५ ॥
पत्त पुरातन झरिग । पत्त अंकुरिय उट्ठ तुछ ॥
ज्यौं सैसव उत्तरिय । चढ़िय सैसव किसोर कुछ ॥
शीतल मंद सुगंध । आई रिति राज अचानं ॥
रोम राइ अकुच नितव । तुच्छ सरसानं ॥
वढ्ढै न सीत कटि छीन ह्वै । लज्ज मांनि टकनि फिरै ॥
ढकै न पत्त ढकै कहै । बन बसत मंत जु करै ॥ छं० ९६ ॥[2]

गन्धर्व द्वारा किया हुआ उपर्युक्त शशिवृता का सौन्दर्य वर्णन सुनकर पृथ्वीराज चौहान व्यह्वल हो गए तथा सम्पूर्ण रात्रि उसी के चिन्तन में व्यतीत की । प्रातः काल होने पर उन्होंने हंस से उसके विषय में और बातें जानने की जिज्ञासा की ।[3] गन्धर्व ने कथा को गति देते हुए तथा पृथ्वीराज की जिज्ञासा शान्त करते हुए कहा—देवगिरि के राजा द्वारा अपनी सगाई जयचन्द के भ्रातज वीरचन्द से सुनकर वह शोकातुर हो गई ।[4] शशिवृता चित्ररेखा अप्सरा का अवतार है तथा वर रूप में आपको प्राप्त करने के लिए नित्य प्रति गौरी-पूजन

१. पृथ्वीराज रासो, नगरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ८१, स० २५ ।
२. वही, छं० ९५-९६, स० २५ ।
३. वही, छं० ९७-९८, स० २५ ।
४. वही, छं० १०७-८, स० २५ ।

दिया करनी है'। इतना कहने के उपरान्त ही हंस राजकन्या का नख-शिख वर्णन कर गया—

दीनो स्पीन उरजा, सम शशि वदना, पद्म पत्रायताक्षी ॥
व्यवोष्ठी तुंग नासा, गज गति गमना, दक्षना वृत्त नाभी ॥
संस्निग्धा चारु केशी, मृदु प्रथु जघना, क्षाम मध्या सु वेसी ॥
हेमांगी कंति हेला, वर रुचि दसना, काम वाना कटाक्षी ॥ छं० ११४ ॥'

पृथ्वीराज ने गन्धर्व से पूछा कि हे हंस ! मुझे अब यह बताओ कि अप्सरा ने शशिवृता के रूप में जन्म कैसे ग्रहण किया। इतना सुनते ही उसने श्राप और शिव वरदान की बात विस्तार पूर्वक कह सुनाई।' तथा बताया कि शिव की वाणी के अनुसार शशिवृत्ता आपको अवश्य प्राप्त होगी—

कुछ दिन अंतर क्रमिय। आगम भरतार यांमि उद्ध लोक ॥
फिर अच्छरि अवतार। पामं तुम्मह ईस वर बांनी ॥ छं० १६२ ॥'

इतना ही नहीं हंस शशिवृत्ता को एक स्थान पर चित्ररेखा अप्सरा, दूसरे स्थान पर रम्भा तथा अब यहाँ पर कहता है कि उसका मेनका का अवतार आपके लिए ही हुआ है—

और सुवर संकेत सुनि। हंस कहै नर राज ॥
मेंन केस अवतार इह। तुम कारन कहि साज ॥ छं० १६४ ॥'

हंस द्वारा शशिवृत्ता का रूप वर्णन तथा उसकी प्रतिज्ञा सुनकर तुरन्त ही दिल्लीश्वर पृथ्वीराज ने दस सहस्र अश्वारोही सैनिकों को सजा कर देवगिरि की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा दी—

सुनत श्रवन चढ्यो नृप राजं। कहि कहि दूत दूजन सिरताजं ॥ छं० १६९।
मय अनुराग रान दिल्ली वै। दस सहस्त्र सज्जी नृप हैवै ॥ छं० १७०।'

हंस ने देवगिरि के राजा का परिचय देकर अन्त में पृथ्वीराज से कहा कि राजकुमारी शशिवृत्ता ने रुक्मिणी की भाँति हरण करने का सन्देश देकर मुझे आपके पास भेजा है—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०९, स० २५।
२. वहीं, छं० ११४, स० २५।
३. वही, छं० १५५-६१, स० ६१।
४. वही, छं० १६२, स० २५।
५. वही, छं० १६४, स० २५।
६. वही, छं० १६९-७०, स० २५।

हुअ प्रसंन सिघ सिवा । वोलि हूं पठय तुम्ह प्रति ॥
इह बरनी तुम जोग । चंद जोसना वांन वृत ॥
ज्यों रुकमिनि हरि देव । प्रीति अति वढ़ै प्रेम सर ॥
इह गुन हंस सरूप । नाम दुजराज मनिय धर ॥ छं० १८६ ॥[1]

दिल्लीपति पृथ्वीराज ने फिर जिज्ञासा की, कि यदि राजकुमारी शशिवृत्ता की ऐसी मनोदशा थी तो फिर उसके पिता ने पुरोहित भेज कर विवाह क्यों रचाया ।[2] हंस ने जिज्ञासा शान्त करते हुए उत्तर दिया कि यादव राज को कन्नौजपति जयचन्द से ही सम्बन्ध प्रिय लगा तथा उन्होंने उनके पास पुरोहित के हाथ श्रीफल तथा वस्त्राभूषण सहित लग्न भेज दी ।[3] राजा जयचन्द ने पुरोहित से यह जानकर कि विवाह मूहूर्त निकट ही है अपनी सेना सजाकर अगणित द्रव्य साथ लेकर, उत्साह पूर्वक देवगिरि की ओर प्रस्थान कर दिया है ।[4] राजा जयचन्द की दस लाख सेना विवाहोत्सव के लिए स्थान-स्थान पर पड़ाव डालती हुई आगे बढ़ रही है ।[5] हे दिल्लीपति चौहान ! कलयुग में अपनी कीर्ति अजर-अमर करने के लिए आप भी चढ़ चलिए, देवगिरि की मुग्धा शशिवृत्ता आपके ही योग्य है । राजकुमारी ने आपसे वरण करने की प्रतिज्ञा कर रखी है, हे राजन ! अब केवल एक माह का समय है अतः विवाह हेतु शीघ्र ही प्रस्थान की तैयारी कीजिए—

कह हंस राज राजन सु वत्त । चढ़ि चलौ कलू रष्षन सु कत्य ॥
तुम योग नारि बरनी कुमारि । हूं पठय ईस तुअ वृत्त नारि ॥ छं० १९५ ।
उन लियौ वृत्त तुम दृढ्ढ नेम । तन करि विरम्म राजन सु एम ॥
इक मास अवधि दुज कहै वत्त । व्याहन सु काज मन करौ रत्त ॥ छं० १९६ ।[6]

हंस की इतनी बातें सुनने के उपरान्त राजा पृथ्वीराज ने शशिवृत्ता से मिलन हेतु संकेत स्थल पूछा । हंस ने बताया कि माघ शुक्ल त्रयोदशी को हरसिद्धि के स्थान में मिलन होगा—

कहं यह दुज संकेत । हो राज्यंद धीर ढिल्लेस ॥
तेरसि उज्जल माघे । व्याहन बरनीय थान हर सिद्धि ॥ छं० २०० ।[7]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १८६, स० २५ ।
२. वही, छं० १८७, स० २५ ।
३. वही, १८८-८९, स० २५ ।
४. वही, छं० १९०-९२, स० २५ ।
५. वही, छं० १९३-९४, स० २५ ।
६. वही, छं० १९५-९६, स० २५ ।
७. वही, छं० २००, स० २५ ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि वीर पृथ्वीराज ने यथा समय पहुँच कर 'ज्यों रुक्मिनि हरिदेव' की भाँति राजकुमारी का अपहरण किया तथा साथ ही जयचन्द के भाई वीरचन्द तथा यादव राज से घोर संग्राम करके राजकुमारी शशिवृत्ता को दिल्ली लाने में समर्थ हुआ।

ऐतिहासिकता :

श्री अमृतलाल शील देवगिरी की राजकुमारी शशिवृत्ता के विवाह को ऐतिहासिक न मान कर इस प्रकार लिखते हैं कि 'पृथ्वीराज की यौवनावस्था में नर्मदा से कांची तक विस्तृत कल्याण राज्य की ईंटें खिसक रही थीं उस समय देवगिरि में वहाँ का एक वेतन भोगी दुर्गपति रहता था। सन् ११८९ ई० के उपरान्त इस दुर्गपति ने कल्याणराज को दुर्बल देखकर स्वाधीन होने की चेष्टा की। ईसा की तेरहवीं सदी में देवगिरि के यादवों ने पूर्ण गौरव से राज्य किया।···—रासो में संवत नहीं लिखा है, तथापि शशिवृता का विवाह सन् ११८९ ई० से पहले ही हुआ होगा।"[1]

ओझा जी ने भी श्री अमृतलाल शील की भाँति ही विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—'रासो में देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री शशिवृत्ता और रणथम्भौर के यादव राजा भानराय की पुत्री हंसावती के विवाह करना लिखा है। ये दोनों बातें भी कल्पित हैं, क्योंकि देवगिरि में भान नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ।"[2]

एक ओर तो ओझा जी तथा शील जी शशिवृत्ता के अस्तित्व में सन्देह करते है दूसरी ओर कविराव मोहनसिंह उसे पूर्ण ऐतिहासिक सिद्ध करने के लिए निम्न तर्क उपस्थित करते हैं — शशिवृत्ता समय में पृथ्वीराज का विवाह शशिवृत्ता के साथ होने का उल्लेख हुआ है। यह राजकुमारी दक्षिण देशीय देवगिरि की न होकर मध्य प्रान्त (मालवा) स्थित देवास के यादव राजा के भाई पुंज की पुत्री थी। पृथ्वीराज को सर्वप्रथम उसका वृतान्त एक मालव निवासी नर्तक से ही ज्ञात हुआ। देवास के राजा को 'यादव भान' लिखा है, जिसका अर्थ 'यादवों का सूर्य' भी हो सकता है। उसे 'तान' (तवनपाल) नाम से भी सम्बोधित किया है। इसी की पुत्री हंसावती जो आगे चलकर पृथ्वीराज से ब्याही गई। शशिवृत्ता को वरण करने में पृथ्वीराज को कन्नौजपति जयचन्द के भाइयों में वीरचन्द से युद्ध करना पड़ा। दोनों सूर्यवंशी वीरों में युद्ध होने के पश्चात् पृथ्वीराज शशिवृत्ता को दिल्ली ले जाने में सफल हुआ।"[3]

---

१. श्री अमृतलाल शील, सरस्वती, भाग २७, संख्या ६, पृ० ६७६।

२. रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४९।

३. कविराव मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो, द्वितीय भाग, सम्पादकीय, पृ० ४, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यालय, उदयपुर।

इतिहास का विवाद कुछ भी हो किन्तु इतना निर्विवाद सत्य है कि 'पृथ्वीराज रासो' का शशिवृत्ता समय साहित्यिक दृष्टि से अद्वितीय है।

हंसावती[1] :

नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' के 'हंसावती विवाह नाम प्रस्ताव ३६' में रणथम्भोर के राजा भान की सुन्दर कन्या पर कामासक्त होकर चन्देरी के अधिपति शिशुपाल वंशी पंचाइन ने राजकुमारी से विवाह करने की अथवा राज्यहरण करके का प्रस्ताव कर, राजा भान को डराया[2]। कामी पंचाइन की इस ललकार से राजा भान का क्षत्रित्व जाग उठा तथा उन्होंने राजा पंचाइन को कोरा जवाब दे दिया।[3] परिणाम स्वरूप राजा पंचाइन ने शाहबुद्दीन गोरी की सहायता लेकर रणथम्भोर को घेर लिया।[4] राजा भान ने विपत्ति को सामने आया देख कर दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान से सहायता की याचना की।[5] वीर पृथ्वीराज ने 'भान वीर पुक्कार, धाई आई दिल्ली वै' समाचार कन्ह द्वारा चित्तौड़ के रावल समरसिंह के पास भेज दिया।[6] फिर मृदंग की भांति शत्रु को पूर्व और पश्चिम दोनों ओर से दवाए हुए, उस भयंकर युद्ध में पराक्रमी वीर पृथ्वीराज चौहान की विजय हुई।[7] विजय की रात्रि में वीर पृथ्वीराज ने एक हंस गामिनी और मानिनी सुन्दरी को पुण्प लिए देखा—यह सुन्दरी और कोई नहीं अपितु राजकुमारी हंसावती ही थी—

हंस सुगति माननी। चन्द जामिनी प्रति घट्टी ॥
इक तरंग सुन्दरि सुचग। हथ नयन प्रगट्टी ॥
हस कला अवतरी। कुमुद वर फुल्लि समथ्थं ॥
एक चित्त सोइ वाल। मीत संकर अस रथ्थै ॥
तेहि वाल संग में पूछ्य लिय। वरन वीर संगति जुवह।
जाग्रत देवि वोलि न कछू। नवह देव नन मानवह ॥ छं० ८६ ॥[8]

नोट—रासो के अप्रकाशित मध्यम संस्करण की शशिवृत्ता कथा उपर्युक्त प्रसंग से सर्वथा मिलती-जुलती है। तात्विक दृष्टि से दोनों में बहुत समानता है।

१. साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो में 'हसावती समय' की क्रम संख्या ४१ है।

२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २-५, स० ३६।

३. वही, छं० ६-७, स० ३६।

४. वही, छं० ८-१२, स० ३६।

५. वही, छं० १९-२०, स० ३६।

६. वही, छं० २१-२२, स० ३६।

७. वही, छं० ४०-८५, स० ३६।

८. वही, छं० ८६, स० ३६।

दूसरे ही दिन राजा भान का पुरोहित लग्न लेकर आ गया।[1] सम्भव है, राजा भान ने पृथ्वीराज की वीरता से प्रभावित होकर अपनी पुत्री हंसावती का विवाह पृथ्वीराज के साथ कर दिया हो। अतः स्पष्ट है कि राजकुमारी हंसावती पृथ्वीराज जैसे पराक्रमी पति को पाकर आनन्द से दिल्ली के राज-महलों में निवास करने लगी।

ऐतिहासिकता :

श्री अमृतलाल शील राजकुमारी हंसावती को काल्पनिक पात्र मानते हुए लिखते हैं कि— "वि०सं० १५०० रचित हम्मीर महाकाव्य (सर्ग ४) के आधार पर पृथ्वीराज का पुत्र गोविंदराज ही रणथम्भोर का प्रथम शासक था। मदनपुर का शिलालेख पृथ्वीराज को चंदेरी और महोबा का स्वामी सिद्ध करता है। अस्तु रासो के समय ३६ के पात्र कल्पित हैं।"[2]

ओझा जी भी हंसावती को कल्पित पात्र मानते हुए लिखते हैं—"रासो में देवगिरि के राजा भान की पुत्री शशिवृता और रणथम्भोर के यादव राजा भानराय की पुत्री हंसावती से विवाह करना लिखा है। यह दोनों बातें भी कल्पित है।.........रणथम्भोर पर कभी यादवों का राज्य ही नहीं रहा। उस पर पहले से ही चौहानों का अधिकार था। पृथ्वीराज के मारे जाने के बाद उसके भाई हरिराज ने अपने भतीजे गोविन्दराज को अजमेर से निकाला तब वह रणथम्भोर में रहा और हम्मीर तक उसके वंशजों ने वहीं राज्य किया।"[3]

कविराव मोहनसिंह हंसावती के विषय में लिखते हैं कि—'हंसावती समय' में हंसावती के पिता भानुराय देवास से (शरण रूप में) रणथम्भोर आकर रहने लगे। इसका कारण यह था कि कन्नौजपति शशिवृता वाली घटना के कारण रुष्ट था ही, शहाबुद्दीन भी उसके संकेत से देवास पर अपनी क्रूर दृष्टि लगाए था। इधर राजकुमारी हंसावती के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर शिशुपाल वंशी पंचाइन भी उससे विवाह करने को उत्सुक था। भानुराय यादव के रणथम्भोर पर सकुटुम्ब रहने पर पंचाइन ने रणथम्भोर पर चढ़ाई की। भानुराय की बरुही (देवास के साथ में आए आश्रितों की टोली) युद्धार्थ रणथम्भोर से उतर पड़ी। उस समय रणथम्भोर का वास्तविक राजा पृथ्वीराज यश-लता तुल्य और शरण में आया हुआ राजा भानु फल स्वरूप दिखाई दिया। एक ओर यादव राजा भानु युद्धार्थ उतर पड़ा, दूसरी ओर पृथ्वीराज द्वारा भेजे गये कन्ह ने रावल समर से निवेदन किया कि बलवान होते हुए भी यादव राजा भानु की पृथ्वी छुट गई है। तब वीर एवं शरणागत रक्षक रावल जी और

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ९९, स० ३६।
२. श्री अमृतलाल शील, सरस्वती, भाग २७, संख्या ६, पृ० ६७७-७८।
३. रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४९।

पृथ्वीराज ने मिलकर पंचाइन को परास्त किया। फिर उस मध्य देशीय मालव राजा भानु की सुन्दरी राजकुमारी हंसावती का प्रेम पृथ्वीराज की ओर उमड़ पड़ा। पृथ्वीराज ने उस राजकुमारी से विवाह किया और एक मास तक राजा भानु को रणथम्भौर पर रखा। युद्ध के बाद चित्तौड़ेश्वर चित्तौड़ को और पृथ्वीराज हसावती सहित दिल्ली आ गए, तब राजा भानु भी देवास लौट गया। हंसावती विवाह के समय पृथ्वीराज की आयु २२ वर्ष और चित्तौड़ेश्वर रावल समर-विक्रम की ५७ वर्ष की थी।"[1]

---

१. कविराव मोहनसिंह, पृथ्वीराज रासो, तृतीय भाग, सम्पादकीय, पृ ५, साहित्य संस्थान उदयपुर सम्वत् २०१२।

७

राज्य कवि एवं पुरोहित वर्ग

धर्म प्रधान राज्यों में धर्म गुरु अथवा पुरोहित ही राज्य का स्वामी होता था जिसके उदाहरण मुसलमानी शासन में खलीफा एवं आधुनिक वैटिकन राज्य में पोप है प्राचीन भारतीय साहित्य में भी राज्य तथा सम्प्रदाय के मध्य संघर्ष की बात सुनाई पड़ती है। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि यदि राज्य योग्य ब्राह्मण पुरोहित की सहायता नहीं लेता तो देवगण उसके पक्ष को स्वीकार नहीं करते।[1] ऋग्वेद में लिखा है कि जो राजा अपने पुरोहित का सम्मान करता है, वह सदा शत्रुओं पर विजय तथा प्रजा की प्रतिष्ठा का अधिकारी होता है। ब्राह्मण युग के अन्त तक पुरोहित वर्ग, शासक एवं शसित प्रजा को पर्याप्त प्रभावित करते रहे। किन्तु कालान्तर में यह सम्बन्ध स्थायी न रह सका। धर्म गुरुओं की प्रभुता के प्रति विरोधी भाव के उदय होते ही संघर्ष का जन्म हुआ परन्तु भारत में इस प्रकार का उदाहरण देखने में नहीं आता, जैसा कि मध्य योरप के इतिहास में दिखाई पड़ता है।

कालान्तर में क्षत्रिय एवं ब्राह्मण वर्ग में समझौता हो गया। सरकार एवं सम्प्रदाय समझ गए कि पारस्परिक सहयोग ही दोनों के हितों की रक्षा में समर्थ है। दोनों ने एक दूसरे के दैवयोग को स्वीकार कर लिया। पुरोहित वर्ग का समाज में सम्मान था तथा यज्ञादि द्वारा वह दैवी सहायता में सहायक होता था। इस के लिए समाज सदा उसका उपकार मानता था किन्तु वैदिक काल में भी राजा उसके हाथ की कठपुतली कदापि नहीं था। ब्राह्मण को वास्तव में कुछ विशेषाधिकार अवश्य प्राप्त थे यथा—'वह कर तथा शारीरिक दण्ड से मुक्त थे'।

पुरोहित का वैदिक काल के मंत्रियों में प्रमुख स्थान था तथा अनेक शदियों तक उनका स्थान मन्त्रि परिषद् में सुरक्षित रहा। वह राजा का गुरु भी होता था। उसका कार्य शत्रु के

---

१. न यं अपुरोहितस्य देवा बलिमद्यन यंति। ऐतरेय ब्राह्मण ७५, २४।

२. स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थौ अभि वीर्येण
तस्मिन्विशः स्वयमेवानमन्त यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्वमेति॥ —ऋग्वेद ४, ५, ७९।

विनाश हेतु नाना प्रकार के अनुष्ठानों का आयोजन करना तथा राष्ट्र की कल्याण कामना करना था। वैदिक कर्मो की प्रधानता के साथ-साथ पुरोहित वर्ग का प्रभाव भी अत्यधिक हो गया होगा। क्रमशः औपनिषदिक, बौद्ध तथा जैन दर्शन के विकास के फलस्वरूप कर्म-काण्ड के प्रचार के ह्रास के साथ ही साथ पुरोहित वर्ग का प्रभाव भी कम होता गया। इतना सब होते हुए भी वह राज्य का एक महत्वपूर्ण अधिकारी, फिर भी बना रहा। राजा पर उसका नैतिक प्रभाव अत्याधिक था। आदर्श पुरोहित का भ्रू भंग ही राजा को सतपथ पर लाने के लिए पर्याप्त समझा जाता था।[1]

१२ वीं शती तक यह पद राजसभा में विभिन्न अनुष्ठानिक महत्व तक सीमित रह गया था। धार्मिक क्षेत्र में पुरोहित का स्वामित्व था। राजकीय यज्ञ, दान, विवाह आदि महत्वपूर्ण कार्य इसकी उपस्थिति बिना सम्पन्न नहीं हो सकते थे। इस अध्याय के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों के कवि एवं पुरोहितों के विषय में सक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

कमल भट्ट :

कवि चन्द ने कन्नौजपति राजा जयचन्द की बैठक का सुन्दर वर्णन करते हुए कमल भट्ट का उल्लेख भी किया है जो राजा जयचन्द के सिंहासन के समक्ष हमेशा रहा करता था–

शिवराज होत हरि गुन मिलंत। उर सुनत सत्त पत्तह षिलंत॥
श्री कंठ सु गुर कवि कमल भट्ट। जुग जोर समुष कमधज्ज पट्ट॥ छं ५४६॥[2]

कमल भट्ट का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों में विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता। अतः विवश हो कर इतने से ही सन्तोष करना पड़ता है।

कविचन्द :

'पृथ्वीराज रासो' में स्वयं कवि चन्द वरदायी ने अपने जन्म के विषय में लिखा है। कवि ने अनेक सामन्तों का जन्म स्थान बताते हुए अपना जन्म स्थान लाहौर बताया है–

हुअ निड्डर कनवज्ज जैत सलषं अब्बूगढ़।
मंडोवर परिहार करषि कंगुर हाहुलि दिढ।
बलिभद्र सु नागौर चन्द उप्पजि लाहौरह।
दिल्लीय अत्तताइ वियाघर सामत सोरह।

---

१. यत्कोप भीत्या राजापि धर्म नीति रतो भवेत्। शुक्र २-९९।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५४६, स० ६१।

राम दे राय जालोर घर, गोइंद गढ्ढ धामनि ग्रसं ।
दाहिम्म बयाने उप्पनौ, प्रिथिराज परिग्रह बसं ॥ छं० ५८४ ॥[1]

पृथ्वीराज रासो के अनुसार कवि चन्द ढुंढा राक्षस की जिह्वा से उत्पन्न हुआ था।[2] साथ ही ग्रन्थकार अपने आपको महाराज पृथ्वीराज का समवयस्क प्रमाणित करता है।[3] अतः चन्द का जन्म संवत भी वही होगा जो महाराज पृथ्वीराज का था। पृथ्वीराज के जन्म संवत् के विषय में कवि ने लिखा है—

एकादस सै पंच दह, विक्रम साल अनन्द ।
तिहि रिपु जयपुर, हरन कौं भय प्रिथिराज नरिंद ॥ छं० ६९४ ॥[4]

उपर्युक्त छन्द के अनुसार महाराज पृथ्वीराज का जन्म अनन्द विक्रम शाक १११५ सिद्ध होता है अर्थात नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो के सम्पादकों के मतानुसार १११५+९१=१२०६ वि० स० हुआ, अर्थात् यही सवत् कवि चन्द की जन्म तिथि सिद्ध हुई। किन्तु यह तिथि पूर्णरूप से प्रमाणिक नहीं है। सामग्री के अभाव के कारण निश्चय मत देना नितान्त असम्भव है।

कवि चन्द वरदायी ने अपने पिता का नाम 'मल्ह' दिया है। कवि चन्द ने पृथ्वीराज से युद्ध हेतु आज्ञा मांगी किन्तु उन्होंने युद्ध की आज्ञा यह कह कर न दी कि यह कार्य तो क्षत्रियों का है। तुम तो कीर्ति गान करो। कवि बिना पूछे ही युद्ध भूमि में कूद पड़ा। ऐसी स्थिति में 'मल्ल' के पुत्र को कौन रोक सकता था—

तीर तुवक सिर पर बहत, गहत नरिंद गुमान ।
बरदाई तहां लरन को, हुकुम मांगि चहुआन ।
हम झूझत रजपूत रिन, जंपत संभरि राव ।
अमर किति सामंत करन, बरदाई घर जाय ॥ छं० १८७२ ॥
किति करन गुन उद्धरन, जल्हन पच्छ सु लज्ज ।
मोहि नृपति आयस करी, ईस सीस र्ग्गी अज्ज ॥ छं० १८७३ ॥
बिन आयस प्रथिराज कै, धाय तंपयौ बाज ।
को रप्पै सुत मल्ह कौ, सूर नूर मुष लाज ॥ छं० १८७४ ॥[5]

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५८४, स० १।
२. वही, छं० ५८२, स० १; छं० ५८३, स० १; छं० ५५७, स० ६७।
३. वही, छं० ९२, ७६०, स० १; छं० १७०२, स० ६६।
४. वही, छं० ६९४, स० १।
५. वही, १८७२-७४, स० १।

अतः स्पष्ट है कि "पृथ्वीराज रासो" के अनुसार कवि चन्द के पिता का नाम मल्ह था। कवि की माता के विषय में रासो सर्वथा मौन है। अतः उसके विषय में निराधार कल्पना करना अनुचित ही होगा।

"पृथ्वीराज रासो" में कवि चन्द वरदायी के १० पुत्र सूर, सुन्दर, सुजान, जल्ह, वल्ह वलिभद्र, केहरि, वीर चन्द, अवधूत तथा गुनराज का उल्लेख किया गया है। इनमें से जल्ह ही सर्व गुण सम्पन्न तथा कवि था—

दहति पुत्र कवि चन्द, सूर सुन्दर सुज्जानं।
जल्ह वल्ह वलिभद्र, कविय केहरि वध्यान॥
वीरचन्द अवधूत, दसम नंदन गुनराजं।
अप्प अप्प क्रम जोग, बुद्धि भिन भिन करि काजं॥
जल्हन जिहाज गुन साज कवि, चन्द छद सायर तिरन॥
अप्पौ सहित्त रासौ सरस, चल्यौ अप्प राजन सरन॥ छं० ८३॥[1]

कवि चन्द अपना रासो ग्रन्थ अपने पुत्र जल्हन को देकर ही गजनी नृप कार्य हेतु गया था।[2] स्पष्ट है उसके बाद की रचना कवि जल्ह द्वारा प्रणीत है। अन्तिम समय के छन्दों से उसकी प्रतिभा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

महामहोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्री ने सन् १९०९ से १९५३ तक राजपूताने में प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों की खोज की थी। उनका विवरण बंगाल ऐशियाटिक सोसाइटी से छपा था। म०म० हरप्रसाद शास्त्री कवि जल्ह के विषय में लिखते है—"चन्द का पुत्र झल्ह एक गुणज्ञ कवि था। कहते हैं कि उसने अपने पिता रचित रासो में बहुत कुछ जोड़ा है। कहा जाता है कि अपनी माँ का नाम चलाने के लिए चन्द और उसकी स्त्री विषयक वार्तालाप इसी के जोड़े हुए हैं जो छपे रासो में दिए हैं। झल्ह के वंशजों का अकबर के समय तक जोड़ करते रहना कहा जाता है। अकबर को रासो सुनने की इच्छा थी।"[3]

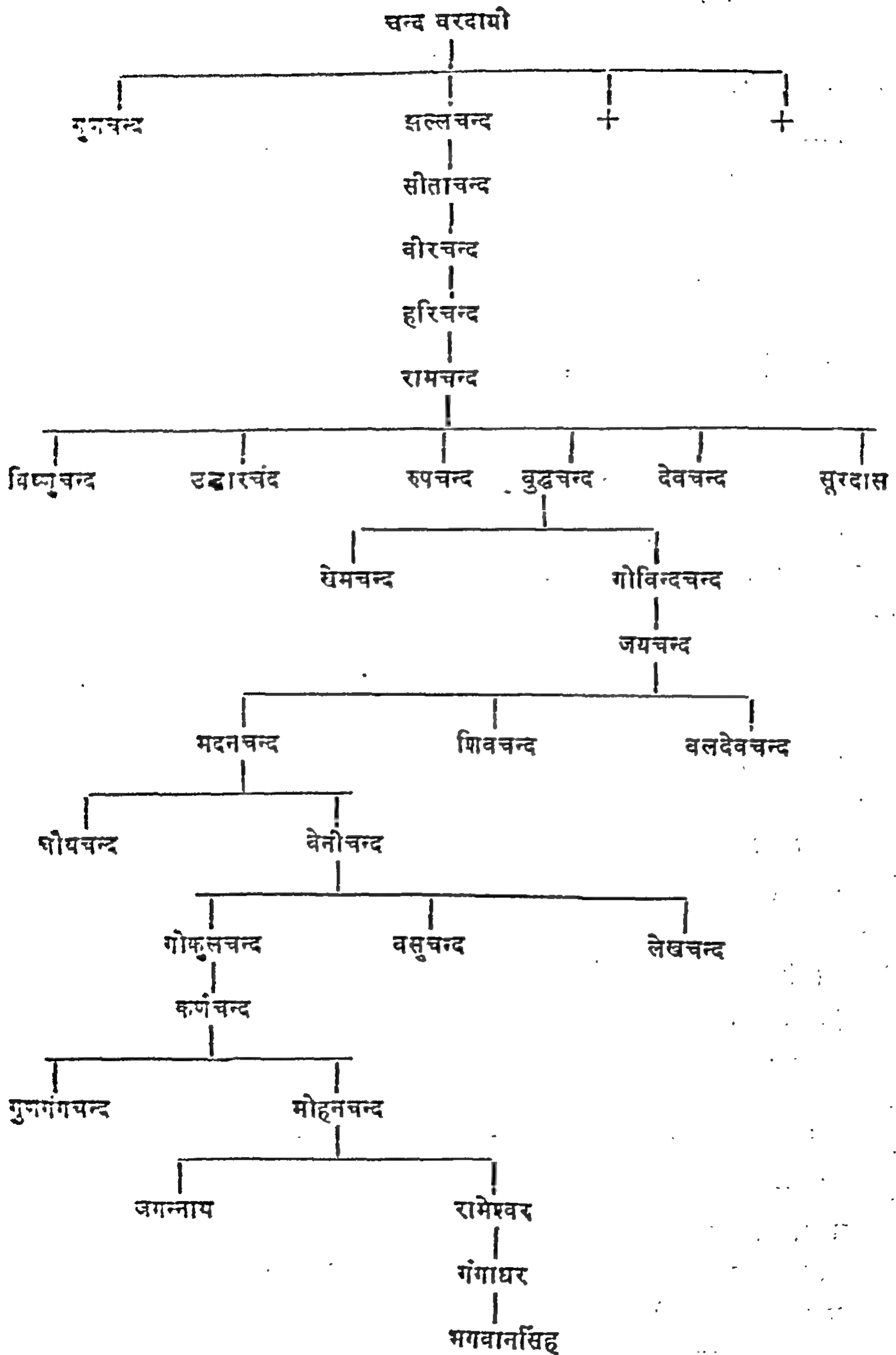
शास्त्री जी की भेंट चन्द के वंश प्रतिनिधि नानूराम से हुई थी जिससे उन्हें एक वंश वृक्ष प्राप्त हुआ था। वंश वृक्ष भी शास्त्री जी की रिपोर्ट में उल्लिखित हैं, वंश वृक्ष की प्रतिलिपि इस प्रकार है—

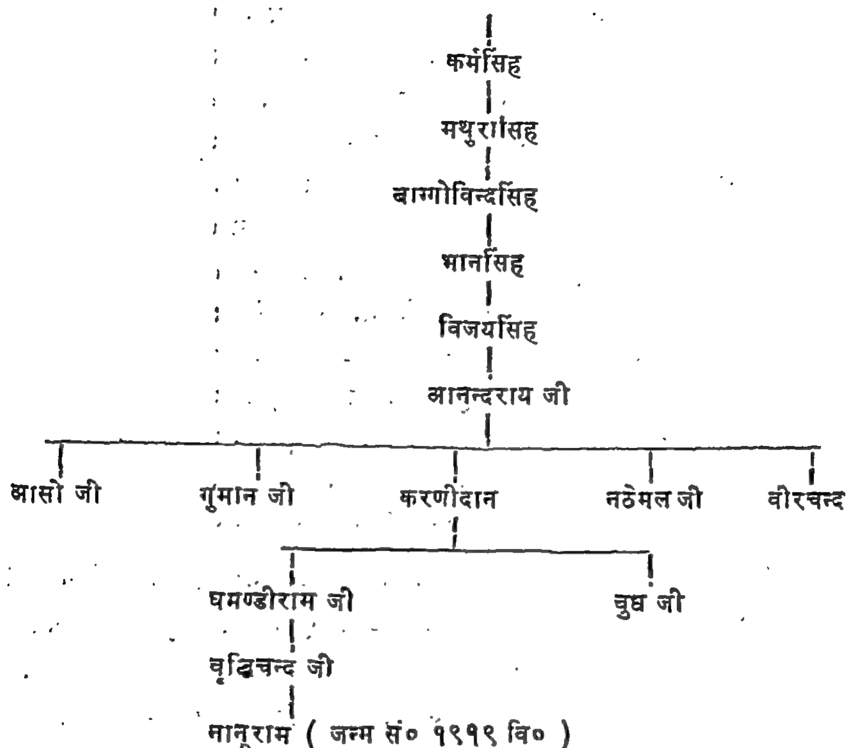
---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० छं० ८३, स० ६३।

२. वही, ८४-८५, स० ६७।

३. महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री, प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आन दि ऑपरेशन इनसर्च आव मैनुस्क्रिप्ट्स आव वार्डिक क्रानिकल्स, पृ० ३०, रॉयल ऐशियाटिक सोसाइटी ऑव, बंगाल, (१९१३), तथा रामशंकर त्रिपाठी; महाकवि चन्द के वंशधर; ; सरस्वती, पृ० ५१६, नवम्बर, १९२९।


चन्द वरदायी
गुनचन्द
जल्लचन्द
+
+
सीताचन्द
वीरचन्द
हरिचन्द
रामचन्द
विष्णुचन्द
उद्धारचंद
रूपचन्द
बुद्धचन्द
देवचन्द
सूरदास
खेमचन्द
गोविन्दचन्द
जयचन्द
मदनचन्द
शिवचन्द
बलदेवचन्द
घोयचन्द
वेनीचन्द
गोकुलचन्द
वसुचन्द
लेखचन्द
कर्णचन्द
गुनगंगचन्द
मोहनचन्द
जगन्नाथ
रामेश्वर
गंगाधर
भगवानसिंह



डॉ० उदयनारायण तिवारी ने 'वीर काव्य' में लिखा है—'नानूराम का कहना है कि चन्द के चार लड़के थे, जिनमें से एक मुसलमान हो गया, दूसरे का कुछ पता नहीं, तीसरे के वंशज अंभीर में जा बसे और चौथे जल्ह का वंश नागौर में चला गया।'[1]

ब्रज भाषा के श्रेष्ठ कवि सूरदास भी अपने को चन्द का वंशज मानते हैं। सूरदास की 'साहित्य लहरी' की टीका में एक पद ऐसा प्राप्त होता है, जिसमें सूरदास की वंशावली दी हुई है। वह पद इस प्रकार है—

प्रथम ही प्रभु यज्ञ तें भो प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप।
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय।
पारि पायँन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।

---

१. डॉ० उदयनारायण तिवारी, वीर काव्य, पृ० १०, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सं० २००५ वि०।

तासु बस प्रसस में भो चन्द चारु नवीन।
नृप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेस।
दूसरे गुनचन्द ता सुत सीलचन्द सरूप।
वीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप।
रयनौर हमीर नूपति संगत खेलत जाय।
तासु बस अनूप भो हरिचन्द अति विख्याय।
आगरे रहि गोपचल में रह्यो ता सुत वीर।
पुत्र जन्मे सात ताके महा भट गम्भीर।
कृष्णचन्द उदारचन्द जु रुपचन्द सुभार।
बुद्धिचन्द प्रकाश चौथे चन्द भे सुखदाइ।
देवचन्द प्रबोध संसृतचन्द ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरजचन्द मन्द निकाम।

उपर्युक्त दोनों वंशावलियों की तुलना करने पर मुख्य भेद यह प्रकट होता है कि नानूराम ने जिनको जल्हचन्द की वंश परम्परा में रखा है, सूरदास उन्हें गुणचन्द की परम्परा में बताते हैं। शेष नाम प्रायः एक से हैं।

उपर्युक्त पद की आलोचना करते हुए डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा लिखते हैं कि—'साहित्य लहरी' का रचनाकार कोई सूरजचन्द नामक भाट जान पड़ता है, जो कदाचित चन्द वरदायी और सूरदास—हिन्दी के दो महान कवियों से अपने व्यक्तित्व को सम्बोधित और मिश्रित करने के लोभ में साहित्यिक प्रवंचना का अपराध कर बैठा.........उसका समय भाषा भूषणकार जसवंतसिंह के पहले नहीं माना जा सकता।"[1]

म०म० हरप्रसाद शास्त्री अपनी खोज रिपोर्ट में उल्लेख करते हैं कि 'कवि के चार पुत्रों में से एक मुसलमान हो गया और दूसरे अमझरा में जा बसे, तीसरे के विषय में हमें कुछ ज्ञात नहीं। काव्य कीर्ति में चन्द का योग्य उत्तराधिकारी चौथा पुत्र जल्ह चन्द था। नानूराम जी मुझे विश्वास दिलाते हैं कि लोग मुसलमान हो जाने वाले चौथे को छोड़ कर चन्द के केवल तीन पुत्रों की ही बात करते हैं।

नानूराम का कहना है कि जल्ह के पौत्र वीरचन्द ने रणथम्भोर के दृढ़ दुर्ग निर्माता तथा एक स्वतंत्र छोटे राज्य के संस्थापक और अलाउद्दीन खिलजी से युद्ध में वीरगति पाने वाले हम्मीरराय की कीर्ति में हम्मीररासो की रचना की थी।

यद्यपि चारण डिंगल गीतों को अपनी निज की सम्पत्ति समझते हैं और डिंगल की

---

१. डॉ० ब्रजेश्वर शर्मा सूरदास, पृ० ९६-९७, सन् १९४६।

अधिकांश रचनाएं उन्हीं की हैं परन्तु नानूराम का कहना है कि वीरचन्द के पुत्र हरिचंद ही डिंगल गीत के प्रथम आविष्कारक थे, उन्होंने भाषा के २४ गीत लिखे थे तथा एक कोष भी बनाया था।''[1]

पृथ्वीराज रासो में चन्द के दस पुत्र होना लिखा है जबकि उपर्युक्त वंशावलियां केवल चार पुत्र होने का उल्लेख करती हैं। ऐसी स्थिति में निर्णायक मत देना असम्भव है, भविष्य में पुष्ट प्रमाण प्राप्त होने पर ही इस विषय में कुछ लिखना सम्भव है।

कवि चन्द की जाति भट्ट थी। जाति के समर्थन में रासो के अनेक छन्दों को प्रस्तुत किया जा सकता है। कवि चन्द एक ऋषि को अपना परिचय देते हुए अपने को भट्ट कहता है—

भट्ट जाति कवियन नृपति, नाथ नाम मो चन्द।
आलस में गंगा वही, अव्व गये सब दन्द ॥ छं० २५ ॥[2]

एक स्थान पर एक अन्य ऋषि को परिचय देता हुआ कवि अपने आपको भट्ट लिखता है—

तवहि भट्ट भांषत, स्वामी मो नाम चन्द कवि।
वह नरिंद प्रथिराज, लज्ज भरि रह्यौ देव दवि ॥ छं १६८ ॥[3]

इसके अतिरिक्त अनेक छन्दों में कवि के भट्ट होने का प्रमाण उपलब्ध है।[4] अतः स्पष्ट है, कि कवि चन्द भट्ट जाति का था।

कवि चन्द षड्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छन्द शास्त्र, ज्योतिष, पुराण, नाटक आदि विषयों का पूर्ण पंडित था। कवि चन्द ने स्वयं लिखा है कि इस ग्रन्थ में छः भाषाओं का प्रयोग किया गया है—

उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसं।
षट भाषा पुराणं च, कुराणं कथितं मया ॥ छं० ८३ ॥[5]

पंगराज के दसौंधी ने कविचन्द का परिचय देते समय उसे ६ भाषाओं का ज्ञाता बताया है—

---

१. पं० हरप्रसाद शास्त्री, प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इनसर्च मैनुस्क्रिप्ट्स आव वार्डिक क्रानिकल्स, पृ० ३०, रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, (१९१३)।

२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २५, स० १।

३. वही, छं० १६८, स० ६३।

४. वही, छं० ९५, स० ५; छं० १४४, स० ६; छं० २७८, स० १२; छं० ११५, स० १३; छं० ४४६, स० २४; छं० २४, स० ४०; छं० ७२, स० ४२; छं० १६७, स० ४७; छं० ७८, स० ६०; छं० ९१, स० ६६; छं ६९०, स० ६६ इत्यादि।

५. वही, छं० ८३, स० १।

भाषा षट नव रस पढ़त , वर पुच्छै कविराज ।
संप्रति पंग नरिंद कै , वर दरबार विराज ।। छं० ५५५ ।।

भाषा परिछा भाष छह , बस रस दुम्मर नाग ।
चित्त कवित्त जु छंद लों , पग सम पिंगल नाग ।। छं० ५५६ ।।[1]

गजनीपति शाह गोरी के द्वारपाल द्वारा चन्द का परिचय पूछे जाने पर भी चन्द ने स्वयं को ६ भाषाओं का ज्ञाता बताया है—

षट भाष रस्स नव नट्ट नाव ।
जानो विवेक विच्चार बाद ।। छं० १७९ ।।[2]

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि चन्द ६ भाषाओं का ज्ञाता था । अच्छा हो यदि कवि के शब्दों में ही ६ भाषाओं का परिचय भी प्राप्त कर लिया जावे । कवि के मतानुसार तत्कालीन ६ भाषाए संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाचिक, मागधी, तथा शौरसेनी थी तथा इन सब भाषाओं के ज्ञाता पृथ्वीराज चौहान भी थे—

संस्कृत[1] प्राकृतं चैव , अपभ्रंशा पिशाचिका ।
मागधी शूरसेनी च , षट् भाषाश्चैव जायते ।। छं० ७४६ ।।[3]

कवि चन्द को ज्योतिष का भी पूर्ण ज्ञान था । कवि ने इसका परिचय ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर दिया है, जिसमें से यहाँ पर केवल एक स्थान का ही निर्देश कर रहे हैं—महाराज पृथ्वीराज ने शाह गोरी पर आक्रमण करने की आज्ञा दी, उस समय ग्रहों की स्थिति इस प्रकार थी—

वर मंगल पंचमी दीनो सु दीनों प्रिथिराजं ।
राहु केतु जप दीन दुष्ट टारे सुभ काजं ।।
अष्ट चक्र जोगिनी भोग भरनी सुधिरारी ।
गुरु पचमि राव पंचम अष्ट मगल नृप भारी ।।
फंइन्द्र बुद्ध नारस्य भल कर त्रिशूल चक्रावलिय ।
सुभ घरिय राज वर लीन बर चढ्यो उदै कूरह बलिय ।। छं० ५५ ।।[4]

डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी जी ने उपर्युक्त छन्द को ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कुण्डली

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५५५-५६, स० ६१ ।
२. वही, छं० १७९, स० ६७ ।
३. वही, छं० ७४६, स० १ ।
४. वही, छं० ५५, स० २७ ।

बनाकर चन्द का ज्योतिष ज्ञान देखने की चेष्टा की है, जिसमें कवि चन्द पूर्णरूप से उत्तीर्ण भी हुआ है।[1]

चन्द के जीवन के सम्बन्ध में जितनी सामग्री प्राप्त होती है, प्रायः सभी संदिग्ध है। इसी प्रकार से चन्द वरदायी की मृत्यु की घटना को भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। रासो में चन्द वरदायी की मृत्यु के विषय में लिखा है कि वलभद्र नामक देव के मुख से पृथ्वीराज की मृत्यु की सूचना पाकर कवि ने महाराज पृथ्वीराज के उद्धार हेतु गजनी की ओर प्रस्थान किया। गजनी पहुँच कर कवि चन्द ने गजनीपति को वीर पृथ्वीराज के शब्द वेधी वाण का चमत्कार देखने के लिए तैयार कर लिया। शाह ने चन्द को आश्वासन दिया कि मैं स्वय फरमान दूँगा, तुम अपने राजा का कौशल दिखलाओ। यह सुनकर कवि चन्द पृथ्वीराज को लेकर रग-भूमि में आ उपस्थित हुआ।[2] पृथ्वीराज को उसी की कमान दी गई। तदुपरान्त कवि ने गजनीपति से आज्ञा देने की प्रार्थना की। आज्ञा होते ही वीर पृथ्वीराज ने अपने शब्द वेधी वाण से गजनीपति की हत्या कर दी–

भयौ एक फुरमान, बान जोगिनपुर संध्यौ।
सोई सवद अरु बान, अग्र अविचल करि बंध्यौ।
भयौ वियौ फुरमान, तानि रष्यौ श्रवनंतरि।
तियौ भयौ अन भयौ, पर्‌यो पतिसाहि धरंतरि।
लै दसन रसन तालू सघन, सीस फट्टि वह दिसि गवन।
सुरतान पर्‌यौ षां पुक्करै, भयौ चन्द राजन मरन ॥ छं० ५४९ ॥[3]

शाह के मरते ही चन्द ने अपना मरण निश्चित जानकर अपनी जटाओं से छिपी हुई छुरी निकाल कर अपना सिर अलग कर दिया तथा वही छुरी पृथ्वीराज की ओर वढ़ा दी जिससे उन्होंने भी आत्महत्या कर ली–

कहै षान तत्तार, भट्ट करि टूक रज्ज सम।
मैं द्रिग देषत कहि भट्ट, दुष्ट देखियै काल भ्रम।
धरौ साहि अव गौरि, विनै साहाव परन लगि।
चन्द राज वर घेरि, लोह छुट्टै न अंग लगि ॥
छुरिका कविंद जट मझ्झ थी। कट्टि भट्ट कटि सीस अप।
ता पछै चन्द वरदाय नै, दइय राज वर हथ्थ नृप ॥ छं० ५५४ ॥

---

१. डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, पृ०५१-५६।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ४५५, स० ६७।
३. वही, छं० ५४९, स० ६७।

मूत यंत मन वृत्तयो, मवछित पढ़ि कविचन्द।
गयौ श्रग्ग जीयंत करि, तजिय सुवर ग्रह दंद ॥ छं० ५५५ ॥
मरन चन्द वरदाइ, राज पुनि सुनिग साहि हनि।
पुहुपंजलि असमान, सीस छोड़ी सु देवतनि ॥
मेच्छ अवद्धित धरनि, धरनि सय तीय सोह सिग।
तिनहि तिनह संजोति, जोति जोतिह संपातिग ॥
रासो असम नव रस सरस, चन्द छन्द किय अमिय सम।
श्रृंगार वीर करुना विभछ, भय अद्भुत हसंत सम ॥ छं० ५५६ ॥[1]

इस प्रकार भट्ट कविकुल चूड़ामणि चन्द वरदाई ने स्वामिधर्म हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। धन्य है कवि चन्द तथा धन्य है यह भूमि जिस पर ऐसे स्वामिभक्त ने जन्म ग्रहण किया।

गुरु राम :

दिल्ली तथा अजमेर के अन्तिम हिन्दू शासक राजा पृथ्वीराज चौहान के गुरु एवं पुरोहित का नाम 'राम' था। यह प्रायः रासो में गुरु राम के ही नाम से प्रसिद्ध है। राज्य दरबार में महाराज पृथ्वीराज के पृष्ठ भाग में ब्रह्मा सदृश योग्य गुरु राम पुरोहित का आसन रहता था—

गुरु राम पिट्ठ विराजय। जनु वेद ब्रह्म सु साजय।
नृप अग्ग चद सु भूपनं। रज रीति हद्द सु रप्पनं ॥ छं० १८ ॥[2]

महाराज पृथ्वीराज को बाल्यावस्था में गुरु राम के द्वारा ही शिक्षा प्राप्त हुई थी—

कोइक दिन गुरु राम पै, पढ़ी सुविद्या अप्प।
चवदे विद्या चतुर वर, लई सीख पट लिप्प ॥ छं० ६० ॥[3]

पुरोहित गुरु राम को हम पुरोहिती भी करते हुए पाते हैं। 'प्रिथा विवाह वर्णन समय २१' में पुरोहित गुरु राम ने चित्तौड़ पहुँच कर वसंत पंचमी को रावल समरसिंह को तिलक किया था।[4] इतना ही नहीं गुरु राम पृथ्वीराज के साथ युद्धों में भी भाग लेते हुए देखे जाते हैं। प्रायः ब्राह्मण वर्ग युद्ध से दूर ही रहा करता था किन्तु समय-समय पर वह अपने मंत्र बल का चमत्कार दिखाते हुए अवश्य पाए जाते हैं। एक बार मुहम्मद गोरी तथा दिल्लीपति चौहान पृथ्वीराज के मध्य युद्ध होने पर गुरु राम ने मुसलमान सेना पर अपने मंत्रों का प्रभाव कर दिया, जिसके कारण मुसलमान सेना मंत्र बल से वशीभूत होकर चित्रलिखित सी रह गई।

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५५४-५६, स० ६७।
२. वही, छं० १८, स० ५९।
३. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं ६०, स० १८।
४. वही, छं० २१, स० २१।

गोरी अपनी सेना की ऐसी विचित्र दशा देख कर अत्यन्त व्याकुल एवं दुःखित हुआ तथा अपने सेना के काजी को बुलाकर कहा कि देखो शत्रु ने अपनी विद्या-बल का प्रभाव दिखाया है, तुम किस विचार में हो, तुम भी अपना मंत्र प्रभाव दिखा कर, उनकी विद्या को उखाड़ फेंकों—

कहै साहि गोरी सुनो मान काजी। लिय मीर हज्जूर तंहं मीर हाजी ।।
करी जोर विद्या सुजतार दारं। करो क्यों न ऊषेल भी क्या विचार ।। छ० १०३ ।।[1]

गजनीपति शहाबुद्दीन गोरी का आदेश पाकर काजी ने अपने दोनों हाथों को मुंह पर फेरा तथा पीरों का जाप प्रारम्भ किया। जाप समाप्त होने पर हाथ हटा कर दोनों सेनाओं की ओर दृष्टिपात किया जिससे गुरु राम की विद्या का विनाश हो गया तथा मुसलमान सेना का मोह दूर हो गया। इतना ही नहीं काजी के जाप के द्वारा समस्त हिन्दू सेना नागपाश में भी बँध गई—

तवं कज्जियं दस्त दुअ भुष्य फेरी। जपै जाप पीरा दुवों सेज हेरी ।।
तवं मेच्छ सेन संह मोह भग्गो। सबं हिन्दु सेना फनी वद्द लग्गो ।। छं० १०४ ।।[2]

गुरु राम ने पृथ्वीराज चौहान की सेना को इस विषम परिस्थिति में देख कर तुरन्त ही गरुड़ का आवाह्न किया, जिसने आकर तुरन्त ही नागपाश को काट दिया तथा सेना को बन्धन मुक्त कर दिया—

गुरुं गरुण आह्वान राम चच्चारयो। तव बधन नाग तिन षंड डार्‌यो।। छं० १०५ ।।[3]

गुरु राम प्रायः पृथ्वीराज चौहान के साथ ही रहा करते थे। समय-समय पर उचित मंत्रणा द्वारा पृथ्वीराज का कार्य आसान किया करते थे। अन्तिम युद्ध में वीर पृथ्वीराज चौहान ने अपने कर्ण कुण्डलों को गुरुराम पुरोहित को देते हुए कहा—'आपका राजा युद्ध का सामना करना चाहता है। अतः मेरे इन कुण्डलों को, जिनका मूल्य सवा करोड़ है स्वीकार कर, दिल्ली की ओर प्रस्थान कर, चौहान राज्य की रक्षा कीजिए। गोरी के द्वारा मेरा नाश हो जाने के साथ ही उसके विनाश की भी सम्भावना है। अतः अब आप शीघ्र ही दिल्ली की ओर प्रस्थान कीजिएः—

या रक्खौ गुरराज, राज विग्रह मुख चाह्यौ।
पं चहूतं कुडंलिय, लहै द्रव्य कोरि सवायौ।
जा जोगिनिपुर देव, राज राखहु चहुआनिय।
मों काया बल भग्ग, संग हूँ हें सुरतानिय।

---

1. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०३, स० १ ३।
2. वही, छं० १०४, स० १३।
3. वही, छं० १०५, स० १३।

दुज हस्त मंडि छंडो तुरय, मो हरु जुद्ध विरुद्ध दिन।
छिन भग देह विज्जुल छटा, दुख्ख न करहिं मंहत जन॥ छं० ३४२।[1]

गुरु राम ने चौहान पृथ्वीराज से कुण्डलों को दान में ग्रहण कर राजा को स्वस्ति वचन के साथ वेद मंत्र सुनाया तथा जालपा देवी का मंत्र जप कर राजा के शरीर को अक्षय कर दिया–

पानि मंडि लिय दान, सुरित भनि वेद मत्र दिय।
मंत्र जाप जालपा, राज अगह अभग किय।
सार धार निध्र घात, नेद छेद न राजन वप।
सिलहदार सारग, सध्य किय इन्द्र देव जप।
पच्चंग पाट गाजिय सकति, घररि घट गोरिय सु घर।
सुनि हक्क धक्क हैगय मुरिय, सहस पच उत्तरिय भर॥ छं० ३४३।[2]

गुरु राम ज्यों ही कुण्डल लेकर अग्रसर हुए कि गजनी के सेनापति वहवलखाँ ने देख लिया तथा उनका पीछा किया। वहवलखाँ ने अपनी तीव्र खनखनाती हुई तलवार से गुरु राम पर प्रहार किया जिससे उनका सिर कट गया तथा उनके कटे हुए सिर को भगवान शिव ने तत्काल उठा लिया–

गुर दिग कुंडलि देखि, पेखि वहवल्ल खान धपि।
द्रोपह सुत जिमि तेग, वेग झारी झनंग झपि॥
राम सीस लिय ईस, कमल बिन खंजरु कढ्यो।
हय्य छेदि उर खान, पीठि पच्छै दल वढ्यो॥
वामंग हय्य अचरिज सुनहु, अरि कटि तें असिवर लियो।
भानेज साहि साहाबदी, हय समेत चव खंड कियो॥ छं० ३४५।[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि गुरु राम जहाँ एक ओर मंत्र-तंत्र में निपुण थे वहीं दूसरी ओर शस्त्र चलाने में भी अत्यन्त कुशल थे। गोरी तथा चौहान के मध्य होने वाले युद्ध में गुरु राम पुरोहित युद्ध कौशल दिखाते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।

ऐतिहासिकता :

जिस प्रकार से दिल्ली-अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३४२, स० ६१ तथा पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १४२३, स० ६६।
२. वही, छं० ३४३ स० ६१; तथा वही, छं० १४२४, स० ६६।
३. वही, छं० ३४५, स० ६१; तथा वही, छं० १४२७, स० ६६।

उसी प्रकार से गुरु राम को भी ऐतिहासिक मानने में सन्देह न करना चाहिए। महामाहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अत्यन्त परिश्रम करके गुरु राम के घराने का पता लगा लिया है। इन्हीं के पूर्वज सम्भवतः गुरु राम, पृथ्वीराज चौहान के पुरोहित थे। हम उन्हीं के शब्दों को यहाँ पर ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसने विद्वानों को गुरु राम के अस्तित्व में किसी प्रकार का सन्देह न रह जावे–"पुरोहित राम के पूर्वज अजमेर के सम्राट पृथ्वीराज चौहान के पुरोहित थे। वे पृथ्वीराज के मारे जाने और उसके सम्राज्य पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने के पीछे उसके वंशज हम्मीर तथा रणथम्भौर के चाहानों के पुरोहित रहे।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि पुरोहित राम के पूर्वज पृथ्वीराज चौहान के पुरोहित थे। सम्भतः पुरोहित राम के पूर्वज और कोई नहीं उन्हीं के नामधारी पुरोहित 'गुरु राम' ही रहे होंगें।

जगदेव भाट :

गुर्जरेश्वर भोलाराय भीमदेव चालुक्य के भाट का नाम जगदेव था। कवि चन्द द्वारा युद्ध हेतु भड़काए जाने पर भोलाराय ने जगदेव भाट को कवि चन्द के पास निम्नलिखित संदेश लेकर भेजा था—

सुनों भट्ट जगदेव, कहै भोरा भीमदे।
तुमहुं चन्द पै जाहु, पवंरि पायान दियंदे॥
जो कुछ तुम बुल्लए, ज्वाब मंगन हौं आयौ।
ज्यौं सुत्तो सुष उरग, मींडि वर पुंछ जगायौ॥
आयौ नरिंद गुज्जर सवर, करिय सेन चतुरंग भर।
मो दिठ्ठ दिठ्ठ पुच्छिय सयन, वयन वाद मानो न उर॥ छं० १०८।[2]

भट्ट जगदेव ने चन्द से कहा कि तुम दीपक, जाल, कुदान से आडवरी वेष धारण करके गुर्जरेश्वर को छेड़ने गए थे, यदि कैमास, चामण्डराय अथवा संभरिपति पृथ्वीराज चौहान स्वयं गए होते तो मालूम पड़ जाता, तुमको तो उसने भट्ट, ब्राह्मण तथा दूत समझ कर छोड़ दिया—

कहु मिसरे छेड़यौ, राउ गुज्जरी नरसर।
दीवी जाल कुदाल, कहमि वह सह आडवर।

---

१. महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर का इतिहास, द्वितीय जिल्द, पृ० १०२५, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, वि० स० १९८८।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०८, स० ४४।

कह मिसरं कमास, जास पुच्छत विचप्पन।
चामंड रा कहां गयो, वहुत राया घर दप्पन॥
कह मिसरं कन्ह विप्पनो, जग्गेदव संचो चविय।
चंनन हय या दिद्ध घर, कह मिसरे संभरि धनिय॥ छं० १०९।[1]

जगदेव के वचन सुनकर कवि चन्द ने भी ऐसा ही उत्तर दिया, कि अपने राजा से कहना कि अभी तक तुमने अनेक राजाओं को परास्त किया है किन्तु सम्भरिपति चौहान पृथ्वीराज को नहीं, इस बार विना बिच्छू का मंत्र जाने हुए सर्प के विल में हाथ डाला है, अर्थात इस बार उसकी विजय होना असम्भव है–

वार वार वोलयो, सरस वत्तड़िया गुज्जर।
अब विगत्ति लभ्भि है, मिरच चव्वे ज्यों गज्जर॥
तू अनि राव मजाय, जिके रन अगम जित्ता।
इन समरि वं राव, कोडि सें सहस विघत्ता॥
मेदयो नहीं गुर अप्परो, कविय वचन संम्हो सरं।
कर नहीं मंत्र वोछिय तनो, घत्ते हय सप्पा हरं॥ छं० ११०।[2]

चंद के उपर्युक्त वचन सुन कर जगदेव भट्ट पुनः गुर्जरेश्वर भोलाराय भीमदेव चालुक्य (द्वितीय) के पास लौट गया तथा सूचना दी कि हाथी, घोड़े तथा योद्धाओं की चतुरंगिणी सेना सजा कर पृथ्वीराज चौहान युद्ध हेतु अग्रसर हो रहा है–

सुनि सु वेन जगदेव फिरि। कहि भोरा भीमंग।
आयो नृप चहुआन सजि, हय गय भर चतुरग॥ छं० १११॥[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जगदेव भट्ट भीमदेव का दरबारी भाट था। समय-समय पर यह दूतत्व कार्य भी किया करता था। पर्याप्त उल्लेख न मिलने के कारण यहाँ पर इतने से ही सन्तोष करना पड़ता है। जगदेव को ऐतिहासिक सिद्ध करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

दुर्गा केदार :

गजनीपति शाह गोरी के दरबारी कवि का नाम दुर्गा केदार था। एक बार दुर्गा केदार के मन में कवि चन्द से शास्त्रार्थ करने की अभिलाषा जागृति हुई। अतः उसने गजनीपति गोरी से

---

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०९, स० ४४।
२. वही, छं० ११०, स० ४४।
३. वही, छं० १११, स० ४४।

दिल्ली जाने की इच्छा प्रकट की। सुलतान ने भट्ट को यह कह कर आज्ञा दे दी कि मुझसे क्या पूछते हो, जहाँ जाना हो वहाँ जा सकते हो—

घरी एक बिसमति भयौ, मुख दिक्खे सुरतान।
मोहि भट्ट पुंछहु कहा, जाहु जहाँ तुम जान ॥ छं० २३ ॥[1]

भट्ट दुर्गा केदार ढाई माह निरन्तर चल कर पृथ्वीराज के पास पानीपति पहुँचा—

पक्ख पंच पयह गवन, आतुर खरि उत्तान।
सुनिय राज संभरि धनी, पानी पंथ पयान ॥ छं० २८ ॥[2]

कवि ने पृथ्वीराज के समक्ष पहुँच कर, उसके गुणों पर मोहित हो राजा पृथ्वीराज को आशीर्वाद दिया तथा अपनी नीति एवं काव्य प्रतिभा से उसका चित्त जीत लिया—

दिय असीस प्रथिराज को, बहुत भाव गुन चाव।
साम दाम दंड भेदि करि, तब तिन वेध्यौ राव ॥ छं० ३५ ॥[3]

अन्ततोगत्वा कवि ने अपने आने का अभिप्राय प्रकट करते हुए कहा कि—सुना है आप का कवि चन्द अथाह बुद्धि वाला है। हे राजा, अतः मैं उससे शास्त्रार्थ करने की कामना से ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ :

कहै भट्ट नृप राज सुनि, मुहि मति बुद्धि अगाध।
सुनिय चन्द वरदाय है, आयौ वद्दन वाद ॥ छं० ३७ ॥[4]

उदार हृदय चौहान पृथ्वीराज ने शास्त्रार्थ की आज्ञा दे दी। दोनों कवि शिष्टाचार के उपरान्त अपनी-अपनी कला प्रदर्शन हेतु सम्मुख आ डटे। सर्व प्रथम दोनों ने अपनी-अपनी काव्य प्रतिभा का चमत्कार दिखाया।[5] जब दोनों में से किसी की हार न हुई तो पुनः तंत्र-मंत्र का चमत्कार प्रस्तुत किया गया। भट्ट केदार ने एक घट से ज्वालाएं प्रकट की तथा वेदोच्चार करवाया, चन्द ने भी प्रत्युत्तर में अपने घट से १४ विद्याएं प्रकट कर दी। पुनः केदार भट्ट ने एक अश्व से चौहान पृथ्वीराज को आशीर्वाद दिलवाया, चन्द ने भी उसी अश्व के मस्तक पर कुछ पुष्प फेंके जिसके फलस्वरूप अश्व ने एक आशीर्वादात्मक गाथा का उच्चारण किया। भट्ट केदार ने अपने मंत्रबल से पत्थर को पिघला कर उसमें अंगूठी डाल दी, और कवि चन्द ने शिला को पुनः द्रव्य रूप में परिणित कर अगूंठी को निकाल लिया,

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० २३, स० ५६।
२. वही, छं० २८, स० ५६।
३. वही, छं० ३५, स० ५६।
४, वही, छं० ३७, स० ५६।
५. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ७५-८४, स० ५८।

भट्ट केदार ने नाना प्रकार के कला प्रदर्शन किए किन्तु कवि चन्द ने सबके प्रत्युत्तर दिए। अन्त में दोनों कवियों के तंत्र-मंत्र समान कोटि के सिद्ध हुए—[1]

पढ्त मंत्र वरदाय, चल्यो पापन सुरंग फल।
घट वहूं रिति कलिय, दिद्ध असीस हम सुबल॥
तब सुदरि कटि नंपि, और आरम्भ सु किन्नो।
तंत्र मत्र बहु जुगति, मंगि फिर बोल सु दिन्नो॥
ठठुरयो सु दुर्गा केदार वर, देव विप्ट नंजे सुनन।
जित्यो न कोय हार्यो न को, सुनिय कथ्यप्रथिराज उन॥ छं० १४८॥
वाद विवादन वीर कवि, सत्ति सुभाव सुधीर।
दुग्ग मत्ति तो संचरी, जो चन्द वयठ्ठो नीर॥ छं० १४९॥[2]

ग्रन्थकार के मतानुसार दुर्गा केदार जाति का भट्ट ब्राह्मण तथा गजनीपति शाह सुल्तान गोरी का दरबारी कवि था।[3] कवि चन्द तथा भट्ट के शास्त्रार्थ के व्याज से उसकी योग्यता पर भी पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु यहाँ पर यह कहना कठिन ही नहीं प्राय: असम्भव है कि वास्तव में दुर्गा केदार नामक कोई भट्ट गोरी के दरबार में था अथवा नहीं। उस युग की परम्परा को ध्यान में रख कर अनुमान ही लगाया जा सकता है कि दुर्गा केदार गजनीपति का दरबारी कवि हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

ऐतिहासिकता :

हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास में लिखा है कि "कवि और वंदीजन, ११५० ई० में उपस्थित थे। शिवसिंह सरोज का कथन है कि भट्ट, अलाउद्दीन गोरी के यहाँ थे। अत: यह ११५० ई० के लगभग उपस्थित थे और यदि इनकी कोई भी रचना सुलभ हो जाय तो वह उपलब्ध भाषा साहित्य का सम्भवतः प्राचीनतम नमूना होगा। इनकी कोई भी कविता हमारी नजर से नहीं गुजरी, और यदि टॉड संग्रह में वे सुलभ नहीं हैं तो मुझे आशंका है कि वे खो गई हैं। संभवत: इनका उल्लेख टॉड में हुआ है, पर मुझे टॉड में इनका नाम नहीं मिला। अनुवादक महोदय श्री किशोरीलाल गुप्त ने उपर्युक्त कथन पर टिप्पणी लिखी है वह भी कवित्त उद्धृत है, जिसका तृतीय चरण यह है—

---

१. पृथ्वीराज रासो, नगरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ८५-१४१, स० ५८।

२. वही, छं० १४८-४९, स० ५८।

३. निसा एक निज गेह। भट साहाव दुग्ग वर।
धरिय देवि उर ध्यान। इष्ट चिन्तन सु अप्प कर॥ छं० १४, स० ५६॥
—पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर।

चंद चउहान के केदार गोहि साहि जू के,
गंग अकबर के बखाने गुन गान है।

इसके अनुसार केदार किसी गोरी शाह के यहाँ थे। इस गोरी का नाम अलाउद्दीन नहीं था, सम्भवत: शहाबुद्दीन था। शुक्ल जी इस कवित्त को भट्ट भंणत मानते हैं। शुक्ल जी के अनुसार यह केदार (केदार नहीं जैसा कि ग्रियर्सन ने लिखा है) कन्नौज के राजा जयचन्द के यहाँ स० १२२४ और १२४३ के बीच थे। इन्होंने जयचन्दप्रकाश नामक महाकाव्य लिखा था, जो आज उपलब्ध नहीं, पर इसका उल्लेख बीकानेर के राजा के पुस्तक भंडार में सुरक्षित सिंधायच दयालदास कृत राठौडां री की ख्याति में हुआ है।[1]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी अपने हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास में केदार भट्ट नामक कवि के विषय में लिखा है किन्तु वह गोरी का दरबारी कवि नहीं मानते हैं। उन्होंने लिखा है "पृथ्वीराज रासो के बाद दो ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, जिनके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। पहला ग्रन्थ है 'जयचन्दप्रकाश' जिसका कर्ता भट्ट केदार कहा जाता है। इसने कन्नौज के अधिपति जयचन्द की वीर गाथा का गान किया है। इस ग्रन्थ का परिणाम भी अज्ञात है क्योंकि वह अभी तक अप्राप्य है, उसका केवल निर्देश मात्र 'राठौड़ा री ख्यात' नामक संग्रह ग्रन्थ में मिला है, जिसका लेखक सिंधायच दयालदास नामक कोई चारण था। अतः यह केदार कृत 'जयचन्दप्रकाश' हिन्दी साहित्य के इतिहास में केवल स्मरण कर लेने की वस्तु है। भट्ट केदार का समय संवत् १२२५ माना गया।"[2]

अन्य प्रमाणों के अभाव में भट्ट केदार के विषय में निश्चित मत देना असंभव है। पृथ्वीराज रासो के लघुतम एव लघु संस्करण इसके विषय में मौन है।

भानु :

पृथ्वीराज रासो के अनुसार 'भानु' आबूपति सलपराज का कुल पुरोहित था जो पृथ्वीराज चौहान के पास कन्या इंच्छिनी का लग्न लेकर दिल्ली आया था। इसी पुरोहित ने कुमारी इंच्छिनी का सौन्दर्य वर्णन पृथ्वीराज के समक्ष प्रस्तुत किया था–

पठ्यौ प्रोहित भान कर, कनक पत्र लिखि लग्न।
श्रीफल बहुल रतन्न जरि, पिक्खि होत मन मग्न॥ छं० ३॥

---

१. डॉ० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन, हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० ६०-६१, ओमप्रकाश नेरी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय पो० बो० नं० ७०, वराणसी, प्रथम संस्करण नवम्बर, १९५७।

२. डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७२, राम नारायण लाल इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, १९५४।

पृथु पूछत चंननि मुनि, कहौ वाल किन वेस।
चितक रूप गुन अग्गरी, सुनत मोहि अंदेस ॥ छं० ४ ॥[1]

रा० ए० सो० लंदन की अप्रकाशित रासो के मध्यम संस्करण की प्रति में पुरोहित भानु का उल्लेख प्राप्त होता है। रासो के अन्य संस्करण इनके विषय में मौन है। इतिहास इनके विषय में कोई उल्लेख प्रस्तुत नहीं करता।

माधो भाट :

गजनीपति शहाबुद्दीन गोरी के राजकवि का नाम माधो भाट था। ग्रन्थकार के मतानुसार वह समस्त विद्याओं में निपुण था।[2] नाना प्रकार के मंत्रों का ज्ञाता, तर्क-वितर्क के जानने वाला तथा चौसठ विद्याओं में निपुण था। वह छन्द तथा काव्य रचना का मरमज्ञ था।[3] एक बार गजनीपति गोरी ने माधो को दिल्ली की समस्त सूचना प्राप्त करने के लिए भेजा था। माधो, गोरी की आज्ञा मान कर दिल्ली आया तथा दिल्ली का सौन्दर्य एवं अपार वैभव देख कर मोहित हो गया।[4] माधो भाट ने अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं वाक् चातुर्य से दिल्ली पहुँच कर पृथ्वीराज चौहान के समस्त सामन्त-गणों को मुग्ध कर लिया–

दिषि भट माधो नरिंद। राजधानी चहुआनी ॥
दूत भेद अनुसरै। दूत लग्यो परिमानी ॥
हिन्दु भाष षट रस। मेछ पारसी उच्चारै ॥
जहां अछिर कोइ कहै। वांन तै ही विधि मारै ॥
नाया कवित नाटिक सकल। गीत छन्द गुन उच्चरै ॥
जानत तर्क वितर्क सब। राग विरागह अनुसरै ॥ छं० १२ ॥
हिन्दू हिन्दू अवचने। रचने मेछायं मेछ्यौ वयनं ॥
ज जं जेम समुझे। तं त समुझाय माधव भट्ट ॥ छं० १३ ॥[5]

अन्त में माधो भाट जिस उद्देश्य से आया था, उसी में लग गया। अतः पृथ्वीराज चौहान के सभासद ध्रमाइन कायस्थ से माधो भाट ने दिल्ली पति पृथ्वीराज के समस्त गुप्त भेद जान लिए–

ध्रमाइन कायथ सुरग। मिल्यौ वर भट्ट प्रमानं ॥
जु कछु भेद चहुआन। दियौ निहचै सुरतानं ॥ छं० १४ ॥[6]

---

१. पृथ्वीराज रासो, साहित्य संस्थान उदयपुर, छं० ३-४, स० १४।
२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २, स० १९।
३. वही, छं० ३-८, स० १९।
४. वही, छं० ५-८, स० १९।
५. वही, छं० १२-१३, स० १९।
६. वही, छं० १४, स० १९।

दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान ने गजनीपति गोरी के दूत माधो भट्ट को एक माह तक दिल्ली में बड़े सम्मान के साथ रखा तथा विदाई के समय इतना अधिक दान दिया जितना माधो भट्ट को इससे पूर्व कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ था—

लै सुदान गज्जनपुर लायौ । दूतो दान जनमत न पायौ ।।
महादान विद्या परकारं । दियौ राज चौहान विचारं ।। छं० २० ।।[1]

अपार धन-राशि दान स्वरूप पाकर माधो भाट गजनी की ओर चल दिया तथा धमाइन कायस्थ के द्वारा प्राप्त समाचार को गोरी से कह सुनाया । किन्तु गोरी को भट्ट की वाणी का विश्वास न हुआ । उसने माधो को 'भाट' कह कर उसकी उपेक्षा की तथा एक अन्य दूत दिल्ली भेद लेने के लिए भेज दिया—

साह बवी सुरतान तब । माधौ कह्यौ न मानं ।।
भट्ट जाति जींह गुनौ । दूत सुपठ्य प्रमानं ।। छं० ७३ ।।[2]

दूत के दिल्ली आगमन पर पुनः धमाइन कायस्थ ने दिल्ली के सब मंत्रियों के विषय में बता कर अन्य भेद भी कागज पर लिख दिए—

विवरि षवरि ध्रमांन । कही चहुआन सेन वर ।।
पष्प सत्त राजान । सुवास कीन पिथ्थ पुर ।।
पष्प पंच कैमास । राव चावड पष्प चव ।।
वसि वित्तें दिन अट्ठ । पष्प लोहान रसे सव ।।
चहुआनं कन्ह पष एक हुअ । बसिय वास दिन पंच हुअ ।।
सामत अवर आगम इछं । सवन वास चहुआंन रय ।। छं० ९५ ।।

लषि करि इह बंधो विवरि । राज ध्रम्म चहुआंन ।
दिय कग्गर तसु दूत कर । घर कागर ध्रम्मान ।। छं० ९६ ।[3]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, ने पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा बताए हुए मधुकर भट्ट को ही माधो भाट होने की सम्भावना व्यक्त करते हुए लिखा हैं कि—१९वें समय में माधो भाट को शहाबुद्दीन का राजकवि बताया गया है । यह व्यक्ति शहाबुद्दीन का विश्वासपात्र था और वह पृथ्वीराज के दरबार की गुप्त खबरें संग्रह कर रहा था । वह कई भाषाएं बोल सकता था । हिन्दुओं से तो हिन्दुओं की भाषा बोलता था और मुसलमानों से मुसलमानों की । जो जैसे समझ सकता था उसे माधो भाट उसी प्रकार समझा देता था—

१. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २०, स० १९ ।
२. वही, छं० ७३, स० १९ ।
३. वही, छं० ९५-९६, स० १९ ।

हिन्दू हिन्दुस वचने, रचने मेच्छंय मेच्छयं वचनं।
जं जं जेम समुज्झं, तं तं समुझाय माधवं भट्ट ॥

धर्मायन (धर्मादन) कायस्थ ने इस कवि को दरबार के भेद बता दिए थे। इन बातों से जान पड़ता है कि परम्परया यह बात विदित थी कि शहाबुद्दीन के दरबार में हिन्दू भाट सम्मान पाते थे। सम्भवतः प० रामचन्द्र शुक्ल जिसे मधुकर भट्ट कहते है, वे माधो ही हों। यह बात सम्भव जान पड़ती है।"

यहां पर शंका उठना स्वाभाविक है कि क्या गजनी में उस समय हिन्दू जनता थी ? डॉ० द्विवेदी माधो भाट का समर्थन करते हुए ही हिन्दू जनता होने के पक्ष में इस प्रकार लिखते हैं कि—"क्योंकि महमूद ने बहुत थोड़े पहले ही गजनी के ब्राह्मण राजाओं से राज्य छीना था और वहां तक भी बहुत से हिन्दू थे और कुछ पुराने वंदीजन भी उसके आश्रय में रह गये हों तो आश्चर्य करने की बात नहीं है। जो हो, इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि सुदूर गजनी में भी कुछ भाषा कवि वर्तमान थे, परन्तु उनकी कविता कैसी होती थी, भाषा कैसी थी, यह जानने का कोई उपाय नहीं है।"[१]

रासोकार ने माधो भाट का विशेष विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। न ही आज तक कोई इस नाम के कवि की रचना ही प्राप्त हो सकी जिसके आधार पर कुछ लिखा जा सके। अतः ऐसी विषम स्थिति में इनके विषय में कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। रासो के आधार पर इतना निर्विवाद रूप से लिखा जा सकता है कि यह एक योग्य भाषाविद्, सफल दूत तथा गुप्तचर का कार्य करने में समर्थ था।

श्रीकंठ :

'पृथ्वीराज रासो' में कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द के कवि का नाम श्रीकंठ बताया गया है—

शिव राग होत हरि गुन मिलत। उस सुनत सत्त सत्तह पिलत ॥
श्री कंठ सुगुर कवि कमल भट्ट। जुग जोर समुष कमधज्ज पट्ट ॥ छं० ५४६।[३]

राजसभा में इनका स्थान अत्यन्त सम्मान पूर्ण था। राजकवि श्री कंठ ही राजा जयचन्द के पुरोहित का कार्य भी सम्पादित करता था। संयोगिता अपहरण के उपरान्त जयचन्द के, पृथ्वीराज चौहान को जामात्र मानने के लिए बाध्य होने पर, श्रीकंठ ने ही दिल्ली जाकर पृथ्वीराज तथा संयोगिता का विवाह विधिवत सम्पन्न कराया था। महाराज पृथ्वीराज चौहान ने इस कवि एवं पुरोहित श्रीकंठ को अपने यहां अत्यन्त सम्मान के साथ ठहराया था।

---

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदि काल, पृ० ३२-३३, द्वितीय संस्करण, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना-३।
२. वही, पृ० ३२-३३।
३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० ५४६, स० ६१।

ऐतिहासिक ग्रन्थों को देखने पर श्रीकंठ नामक किसी कवि का जयचन्द के दरबार में उल्लेख नहीं मिलता है। वैसे संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत पंगराज जयचन्द का नाम विशेष उल्लेखनीय रहने का एक मात्र कारण यही है कि उसने नाना साहित्यिक व्यक्तियों को राज्य आश्रय दिया था। नैषधीय चरित्र का रचयिता श्रीहर्ष जो हीर एवं मांगल्लदेवी का पुत्र था, जयचन्द का राज्यश्रित कवि था। श्रीहर्ष एवं पंगराज की राज सभा के सम्बन्ध विषयक प्रमाण जैन कवि राजशेखर के प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रबंध कोष से प्राप्त हुए जहाँ उन्होंने लिखा है कि–"श्रीहर्ष कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द्रस्य सभा सन महाकविरासीत········।"[1] स्वयं श्रीहर्ष ने भी पंगराज द्वारा सम्मानित होने की बात का उल्लेख किया है। "ताम्बूलद्वंय आसन च लभते यः कान्य-कुब्जेश्वरात।"[2] तात्कालीन भारतीय सम्राटों में श्रेष्ठ विद्वानों का सम्मान ताम्बूल देकर ही किया जाता था।

अतः यह निर्विवाद सत्य है कि राजा जयचन्द के राज्याश्रय में नानाकवि रहा करते थे। सामग्री अभाव के कारण श्रीकंठ के विषय में प्रामाणिक रूप से लिखना अत्यन्त कठिन है। असंभव नहीं यदि श्रीकंठ नाम का कोई कवि भी उनके राजाश्रय में रहा हो।

हाजीखाँ काजी :

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार हाजीखाँ काजी, गजनीपति शाह शहाबुद्दीन गोरी का काजी था। 'सलष युद्ध समय १३' के अन्तर्गत पृथ्वीराज चौहान तथा गोरी के मध्य युद्ध होने पर तथा मुस्लिम सेना का आतंक बढ़ता हुआ देख कर पृथ्वीराज चौहान के पुरोहित गुरु राम ने अपने मंत्र बल के द्वारा गोरी की सेना में मोह निद्रा व्याप्त कर दी थी। इस पर गोरी के काजी हाजीखाँ ने यवन सेना का मोह-निद्रा अपने मन्त्रबल द्वारा समाप्त कर दी जिससे दोनों दल पुनः प्रचार-प्रचार कर लड़ने लगे।[3] काजी ने युद्ध की भोपड़ता एवं यवनों को परास्त होते देखकर अपने हाथ की तसबीह तोड़ दी थी।[4] इतिहास में काजी जी को खोजना अत्यन्त कठिन है।

---

१. डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑव कन्नौज, पृ० ३३१।

२. श्री शिवदत्त, नैषधीय चरित, अध्याय २२, बम्बई, सन् १९१९।

३. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० १०१-८, सं० १३।

४. वही, छं० ११०, स० १३।

५. 'रासो' के विवरण से स्पष्ट विदित होता है कि युद्ध में काजी आदि भी जाया करते थे तथा वह अपने साथ तसबीह आदि भी रखते थे।

८

उपसंहार

विद्वानों ने एक मत हो कर स्वीकार किया है कि "इस देश मे इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिखा गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक बनाने की प्रवृत्ति रही है। ....कर्म फल की अनिवार्यता में दुर्भाग्य और सौभाग्य की अद्भुत शक्ति में और मनुष्य के अपूर्व शक्ति भाण्डार होने के दृढ़ विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को सदा काल्पनिक रग में रगा है। यही कारण है कि जब ऐतिहासिक व्यक्तियों का भी चरित्र लिखा जाने लगा तब भी इतिहास का कार्य नहीं हुआ। अन्त तक ये रचनाएं काव्य ही बन सकीं, इतिहास नहीं।"[1]

कवियों के हाथ में पड़ कर इतिहास को सदैव कल्पना के हाथों परास्त होना पड़ा। भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य लिखा। काव्य निर्माण की ओर उनकी प्रवृत्ति विशेष रही, विवरण सग्रह की ओर कम, कल्पना विलास का अधिक सम्मान हुआ किन्तु तथ्य निरुपण का कम। ऐतिहासिक तथ्य तो उनके काव्यों में कल्पना का उत्कर्ष प्रदान करने के साधन बन गए। कल्पना एवं सभावना को उत्तरोत्तर प्रश्रय प्राप्त होने के फलस्वरूप ही इन ग्रन्थों में शुद्ध इतिहास नहीं मिलता, किन्तु फिर भी ऐतिहासिक शोध की सामग्री थोड़े बहुत अशों में प्राप्त हो ही जाती है। फिर भारतीय परम्परा सदैव से दुःखपरक विरोधी परिस्थितियों की उपेक्षा कर नायक को उसका उपयुक्त गौरव प्रदान करने की रही है। भारतीय कवि इतिहास प्रसिद्ध पात्र को भी निजन्धरी कथानकों की ऊँचाई तक ले जाना चाहता है।

"पृथ्वीराज रासो" ऐतिहासिक व्यक्ति के नाम के साथ संबद्ध एवं उल्लिखित परिपाटी का अपवाद नहीं है। वास्तव में कवि ने अपने काव्य नायक के उत्कर्ष हेतु ही अन्य पात्रों का

---

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदि काल, पृ० ७७।

सृजन किया है। इतिहास प्रसिद्ध समसामयिक चरित्रों को लेकर उन्हें अपनी आवश्यकता एवं मनोवृति के अनुकूल ही रूप दिया है। कवि रुचि से वाच्य पृथ्वीराज चौहान भी "पृथ्वीराज रासो" का एक ऐसा ही पात्र है। अजमेरपति सोमेश्वरदेव के अपूर्व तप एवं पुण्य के परिणाम स्वरूप चरित्र नायक पृथ्वीराज का जन्म हुआ।[1] जिस दिन उनका जन्म हुआ, पृथ्वी का भार भी उसी दिन हल्का हो गया।[2] उनके जन्म से क्षत्रियों के छत्तीसों वंश प्रसन्न हो उठे।[3] गुरु राम से चौदह विद्याओं, चौरासी कलाओं अस्त्र-शस्त्र का संचालन एवं गौ तथा ब्राह्मण की पूजा आदि की शिक्षा ग्रहण कर पृथ्वीराज ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची मागधी, शौरसेनी इन छः भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया।[4]

पुरुषार्थी योद्धाओं को सम्मानित करने वाले तथा परिस्थिति विशेप में सोलह गज ऊँचे गवाक्ष से कूद पड़ने वाले लोहाना को "आजानबाहु" उपाधि देने वाले थे। शरणागत सात चालुक्य भाइयों को दरबार में मूंछ ऐंठने के साधारण से अपराध पर, कन्ह द्वारा मारने पर सम नीति को दृष्टि में रख कर आँखों पर सोने की पट्टी बंधवा दी, कन्या दान का वचन देकर अपमान करने वाले मडोवरपति नाहरराय परिहार को परास्त कर, उसकी कन्या का पाणिग्रहण करके प्रतिष्ठा एवं सम्मान की रक्षा की। शरणागत वत्सल्य पृथ्वीराज ने गजनी-पति शाह शहाबुद्दीन गोरी के भाई मीरहुसैन को आश्रय दिया जिसके परिणाम स्वरूप गोरी से आजन्म शत्रुता का सूत्र-पात हुआ। गुर्जरेश्वर भोलाराय भीमदेव चालुक्य के दुर्व्याहार से दुःखी सलष प्रमार की सहायता कर उसकी पुत्री इंच्छिनी से विवाह स्वीकार किया। समुद्र शिखरगढ़ की राजकुमारी पद्मावती की याचना पर उसका हरण किया, अपनी एक मात्र बहिन पृथा का विवाह रावल समरसिंह से किया, देवगिरि की यादव कुमारी शशिवृत्ता का हरण किया तथा यादवराज पर जयचन्द के क्रुद्ध होने पर उसकी रक्षा की, उज्जैनपति भीमदेव के अपनी कन्या इन्द्रावती का प्रहिले विवाह प्रस्ताव कर फिर पलटने पर युद्ध करके राजकुमारी का वरण किया, रणथम्भोर के राजा भान की सहायता कर शिशुपाल वंशी पंचाइन को परास्त किया, सोमेश्वर के निधन पर राज्यसिंहान प्राप्त किया, तथा पितृघाती भीमदेव चालुक्य को मार कर ही दम लिया, राजसूय यज्ञ में द्वारपाल का कार्य अस्वीकार करने पर पंगराज द्वारा स्वर्ण मूर्ति के रूप में उक्त स्थान पर खड़े किये जाने के अपमान के परिणाम स्वरूप उसके भाई बालुकाराय को युद्ध में मार कर यज्ञ विध्वंस किया, अन्तःपुर में रहने वाली अपनी प्रेयसी करनाटी वेश्या के साथ अशिष्ट व्यवहार करने के अपराध में अपने प्रिय मंत्री कैंमास का वध किया, पंगराज की राजकुमारी संयोगिता द्वारा तीन बार अपनी स्वर्ण प्रतिमा

---

१. सोमेश्वर महावाहो । तस्यापूर्वं तपो गुर्णोः ॥
तेन पुण्यं जगज्जेता । गर्भान्ते पृथुराडयम् ॥ छं० ६९६; स० १।

२. ज दिन जनम प्रथिराज भो। त दिन भार घर उत्तरिय॥ छं० ६८८, स० १।

३. विगसंत बदन छत्तीस वंस। जदुनाथ जन्म जनु जदुन वंस॥ छं० ७१५, स० १।

४. संस्कृतं प्राकृतं चैव । अपभ्रंशः पिशाचिका ॥
मागधी शूरसेनी च। षट् भाषाश्चैव ज्ञायते ॥ छं० ७४६, स० १।

की वर माला पहिनाने की सूचना प्राप्त कर, छद्मवेश में अपने प्रिय मित्र एवं कवि चन्द वर-दाई को साथ लेकर, कन्नौज पहुँच कर उसका हरण किया तथा पगराज की असख्य सेना से विकट युद्ध कर अपने श्रेष्ठ चौसठ सामन्तों की आहुति देकर संयोगिता को पत्नी रूप में प्राप्त किया। इक्कीस बार गोरी से मोर्चा लेने तथा चौदह बार बन्दी बना कर पुनः मुक्त कर देने वाले पृथ्वीराज ने अपनी दयावीरता का परिचय दिया तथा अन्तिम युद्ध में गोरी द्वारा बन्दी तथा अंधा किए जाने पर भी कवि चन्द की सहायता से अपना वैर का बदला लेने में कृतकार्य हुआ तथा गजनी दरबार में कवि की छुरी से आत्मघात करके इह लोक लीला समाप्त की। म्लेच्छों का भार भूमि से हटाने वाले इस परम पराक्रमी राजा पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु पर देवताओं ने पुष्पांजलि डाली थी।[1] इतना ही नहीं वीणा-पाणि सरस्वती भी इस पराक्रमी योद्धा के सत् कार्यों से प्रभावित होकर कह उठी थीं—"पृथ्वीराज के गुणों का श्रवण करने से सबको आनन्द उपलब्ध होता है, पृथ्वीराज के गुण सुन कर गीदड़ के समान पुरुष भी रण प्रांगण में युद्ध करता है, पृथ्वीराज का गुणानुवाद सुन कर कृपण जन कपट रहित हो जाते हैं, पृथ्वीराज के गुण जान कर गूंगा व्यक्ति भी सिर हिलाने लगता है, नव रसों से परिपूर्ण पृथ्वीराज का सरस 'रासो' मूर्ख को पंडित एवं असहाय को साहसी बनाने में समर्थ है—"

प्रथिराज गुन सुनत। होय आनन्द सकल मन॥
प्रथिराज गुन सुनत। करय संग्राम स्यार रन॥
प्रथीराज गुन सुनत। कृपन कपटय तें खुल्लय॥
प्रथीराज गुन सुनत। हरषि गूंगो सिर डुल्लय॥
रासो रसाल नवरस सरस। आजानो जानप लहै॥
निसटो गरिष्ट साहस करै। सुनो सत्ति सरसति कहै॥ छं० २४०॥[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि 'पृथ्वीराज रासो' वास्तव में पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) के साहसिक कार्यों का अभिलेख मात्र है। कवि ने पृथ्वीराज के चरित्र-चित्रण में ही अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है। यही कारण है कि 'रासो' में अन्य पात्रों का विवरण प्रसंग वश ही कवि ने किया है। कवि रुचि से बाध्य कन्नौजपति जयचन्द गाहड़वाल, गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य, शाह शहाबुद्दीन गोरी आदि समस्त पात्र 'पृथ्वीराज रासो' के ऐसे ही पात्र हैं। ये प्रायः सभी दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी हैं। सामयिक, परवर्ती साहित्य एवं इतिहास ग्रन्थों में उनका जो विवरण मिलता है, उससे कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा कर रासोकार ने प्रस्तुत किया है। इससे वह काव्य नायक पृथ्वीराज चौहान के चरित्र को उत्कर्ष प्रदान कर सका और यही उसे अभीष्ट भी था। फिर ग्रन्थकार ने वीर

---

१. मरन चन्द बरदाइ। राज पुनि सुनिग साहि हनि॥
पुहपंजलि असमान। सीस छोड़ी सु देवतनि॥
मेछ अवद्धिर धरनि। धरनि सब तीय सोह सिग॥ छं० ५५६, स० ६७।

२. पृथ्वीराज रासो, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छं० २४०, स० ६८।

युग की वीर आत्माभिमान से ओतप्रोत वीर भावना को कहीं विस्मृत नहीं किया। नायक को उसका गौरव प्रदान करने के लिए उसने शाह शहाबुद्दीन गोरी, पृथ्वीराज चौहान तथा कवि चन्द वरदायी के एक ही समय अवसान दिखाने के लिए चौहान सम्राट के शब्दवेदी बाण का लाघव प्रदर्शन की घटना की अवतारणा करके इतिहास को भी नायक के गौरव गान की वेदी पर बलिदान कर दिया। इसी प्रकार प्रायः सभी पात्रों का भी जीवन कल्पना से अनुरंजित है। पंगराज जयचन्द की मृत्यु की घटना भी ऐसी ही है। जहाँ इतिहासकारों द्वारा जिस कान्यकुब्जेश्वर के विच्छिन्न मस्तक का म्लेच्छ विदेशियों द्वारा भाले की नोक पर घुमाया जाना वर्णित है, वहाँ रासोकार 'उदधि बुड्ठि के घर लियौ' कह कर एक ओर म्लेच्छों के अपवित्र हाथों में जाने से बचा लिया तथा दूसरी ओर भारतीय विश्वास को भी प्रतिष्ठित किया। ऐसे असंगत प्रसंग देख कर ही कवि इतिहासज्ञ के कर्म से कवि कर्म को अधिक महत्व देता हुआ स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है।

परिस्थितियों के सम्मुख विवश फिर भी उनसे निरन्तर जूझ कर अपने अमूल्य प्राणों की आहुति देने वाले, वीरयुग के प्रतिनिधि शासक एवं सामन्तों को अपभ्रंश कवि हेमचन्द के शब्दों में गौरव देना औचित्य की सीमोल्लघन न मान कर निश्पक्ष कर्म की सीमा में ही आता है और इन्हीं पंक्तियों के साथ मैं इस प्रबंध क्रम को विश्राम देता हूँ—

तउ गुण संपइ तुज्झ मदि तुध्र अणुत्तर खंति ॥
जइ उप्पत्ति अन्न जण महि-मंडलि सिक्खन्ति ॥ छं० ३७२।१ ॥[1]

---

१. काश! तुम्हारी गुण सम्पत्ति, तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारी सर्वोत्तम क्षमा को महिमंडल से जन्म लेकर अन्य व्यक्ति भी सीख लेते।
आचार्य हेमचन्द्र, अपभ्रंश व्याकरण; ३७२।१॥

परिशिष्ट

१

(अ) अथान्यदा सपादलक्षीयराज्ञः कश्चित् सन्धिविग्रहिकः श्रीकुमारपालनृपतेः सभायामुपेतो राज्ञा 'भवत्स्वामिनः कुशलम्' इति पृष्टः । स मिथ्याभिमानी पण्डितमानी च 'विश्वं लातीति विश्वलः तस्य च को विजयसन्देहः ?' राज्ञा प्रेरितेन श्रीमता कपर्दिना मन्त्रिणा—श्वल श्वल्ल आशु गतौ इति धातोः विरिव श्वलतीति विश्वल । अनन्तर प्रधानेन तन्नामदूषणं विज्ञप्तः स राजा विग्रहराज इति पण्डितमुखान्नाम बभार । परस्मिन् वर्षे स एव प्रधानः श्रीकुमारपालनृपतेः पुरो विग्रहराज इति नाम विज्ञपयन् मन्त्रिणा कपर्दिना-विग्रौ विगतनासिका एवंविधौ हराजौ रुद्रनारायणौ कृतौ येन इति । तदनन्तरं स नृपः कपर्दिना नामखण्डनभीरुः कविबान्धव इति नाम बभार ।

(ब) स च (परमर्द्दिनामा नृपश्च) सपादलक्षीयक्षितिपतिना श्रीपृथ्वीराजेन सञ्जातविग्रहः समराजिरमधिरूढः स्वसैन्ये पराजिते सति कान्दिशीकः कामपि दिशं गृहीत्वा पलायनपरः स्वां राजधानीमाजगाम । अथ तस्य परमर्द्दिपार्थिवस्यापमानितपूर्वः कोऽपि तत्पूर्वसेवको निर्विषयीकृतः पृथ्वीराजराजसभामुपेतः प्रणामान्ते 'किं दैवतं परमर्द्दिपुरे निक्षेपात् सुकृतिभिरिज्यते ?' इति स्वामिनादिष्टस्तत्कालोचितं काव्यमिदमपाठीत्—

मन्दश्चन्द्रकिरीटपूजनरसस्तृष्णा न कृष्णार्चने
स्तम्भः शम्भुनितम्बिनीप्रणतिषु व्यग्रो विधातृग्रहः ।
नाथो नः परमर्द्दनेन वदनन्यस्येन सरक्षितः
पृथ्वीराजनराधिपादिति तृणं तत्पत्तने पूज्यते ॥

इति स्तुतिपरितोषितः स राजा तं यथेप्सितेन पारितोषिकेणानुजग्राह । स च त्रिःसप्तकृत्वः त्रासितम्लेच्छाधिपो द्वाविंशतितमवेलायां स एव म्लेच्छाधिपतिः पृथ्वीराजराजधानीमुपेत्य निजदुर्धरस्कन्धावारेण समवात्सीत् । त्रासितमक्षिकेव भूयो भूयो रिपुरुपैतीति निजनपतेररतिं मनोगतामवगम्य प्रभोः निःसीमप्रसादपात्रं द्वितीयमिव गात्रं तुङ्गनामा क्षात्रं तेजो वहन् सुभटकोटिकोटीरः स्वप्रतिबिम्बरूपेण पुत्रेण समं म्लेच्छपतेरनीकं प्रविश्य तस्थौ ।

निशीथसमये तस्य रिपोर्नगरात् परितः खादिराङ्गारधगधगायमानां परिखां निरीक्ष्याङ्गजं प्रत्याह-'अस्यां मम प्रविष्टस्य पृष्ठे पदं ददानो म्लेच्छपतिं निगृहाणे' ति पितुरादेशान्ते 'आदेशेनानेनालमनम् किन्तु निजजीवितकाङ्क्षया पितुर्विपत्तिदर्शनम्, तदहमस्यां विशामि भवन्त एव समस्तं नयन्तु।' इत्युक्त्वा तेन तथाकृते स्वामिकार्यं पर्याप्तप्रायं मन्यमानस्त-न्नगरीं लीलया निगृह्य यथागतमाजगाम। विभातभूयिष्ठायां निशि विपन्नं स्व स्वामिनं निरीक्ष्य परं दैन्यं दधत् म्लेच्छसैन्यं पलायांचक्रे। स तुङ्गभटस्तुङ्गप्रकृतितया नृपतेः कदाचिन्न आवदामास। कस्मिन्नप्यवसरे राजमान्यतया नितान्तपरिचितां तुङ्गपुत्रवधूमवधूतमङ्गलवलया-मालोक्य सम्भ्रमात् नृपतिना पृच्छ्यमानोऽपि पयोधिरिव गम्भीरतया मौनमर्यादया किमप्य-विज्ञापयन् निजपदप्रदानपूर्वकं पृष्टो निजगुणकथापनकं दुष्करमिति तथापि प्रभोरभ्यर्थनया निर्बध्यमानमस्तीत्यभिधाय तद्वृत्तान्तं प्रत्युपकारभीरुर्यथावस्थितं निवेदयामास।

"इयमुच्चधियामलौकिकी महती कापि कठोरचित्तता।
उपकृत्य भवन्ति निःस्पृहाः परितः प्रत्युपकारशङ्कया।"

(ग) अथ कदाचित्तस्य म्लेच्छपतेः सूनुर्नृपतिः पितुर्वैरं स्मरन् सपादलक्षक्षितिपति-विग्रहकाम्यया सर्वसामग्र्या समुपेतः। पृथ्वीनाथस्य नासीरवीरधनुर्धरशरैः प्रावृषेण्यधाराधर-धारासारैरिव तस्मिन् ससैन्येऽपि त्रासिते पृथ्वीराजस्तदा तदानुपदिकीभावं भजन् महानसाधि-कृतपञ्चकुलेन व्यज्ञपि-'करभीणां सप्तशत्यापि महानसपरिस्पन्दः सुखेन नोह्यते, ततः कियतीभिः करभीभिः प्रभुः प्रसीदतु-इति विज्ञप्तो नृपतिः म्लेच्छपतिमुच्छेद्य तदीयोष्ट्रकमाच्छिद्य भवदभ्यर्थिताः करभीः प्रसादीकरिष्यामीति तत्संबोध्य पुनः प्रयाणं कुर्वन् सोमेश्वरनाम्ना प्रधानेन भूयो भूयो निषिध्यमानः तत्पक्षपातभ्रान्त्या निगृहीतकर्णः। तदत्यन्त-पराभवात् तस्मिन् प्रभौ सामर्षो म्लेच्छपतिं प्राप्य तदभिभवप्रादुःकरणतस्तान् विश्वस्तान् पृथ्वीराजस्कन्धावारसन्निधौ समानीय, पृथ्वीराजराज्ञ एकादश्युपवासकृतपारणादनु सुप्तस्य तन्नासीरवीरैः सह समरसंरम्भे सञ्जायमाने निर्भरनिद्रानिद्रायमाण एव तुरुष्कैर्नृपतिर्निबध्य स्वसौधे नीतः। पुनरप्येकादश्युपवासपारणके नृपतेर्देवतार्चनावसरे म्लेच्छराज्ञा प्रहितं पत्र-पात्रीकृत मांसपकं गुप्तदरान्तर्नियुज्य तथैव देवताराधनवैयग्र्ये सति शुनाऽपह्रियमाणे तस्मिन् पिशिते 'किं न रक्षसि?' यामिकैरित्यभिहितः, करभीणां सप्तशत्या दुर्वहं यत् पुरा मम महानसं तत् साम्प्रतं दुर्दैवयोगादीदृशीं दुर्दशाप्राप्तमिति कौतुकाकुलितमानसो विलोकय-न्नस्मीति तेनोक्ते-'किं काचिदद्यापि त्वय्युत्साहशक्तिरवशिष्यते ?" इति तैर्विज्ञप्ते 'यदि स्वस्थानं गन्तुं लभेत तदा दर्शयामि वपुःपौरुषमिति'यामिकैर्विज्ञप्तो म्लेच्छभूपतिस्तात्साहसं दिदृक्षुः स्वीयां राजधानीमानीय पृथ्वीराजं तत्र राजसौधे यावदभिपेक्ष्यति तावत्तत्र चित्र-शालायां शूकरनिवहैर्हन्यमानान् म्लेच्छानालोक्यामुना मर्माभिघातेनात्यन्तपीडितस्तुरुष्कपार्थिवः पृथ्वीराजं कुठारशिरश्छेदपूर्वं संजहार।

[प्रबन्ध चिन्तामणि से]

२

चाहमान वंश कीर्तनम्—

व्याहृत्य वाक्यमिति पुष्करकारणेन ।
तूष्णीमभूयत च पुष्करकारणेन ।
आसर्गसम्मतपिशाचजनार्दनस्य
भास्वत्यपश्यत दृशा च जनार्दनस्य ।।

तत्कालं रविमण्डलात्पुनरिव त्वष्टुर्गताद् गोचरं
दैत्यारेर्विषयीकृताद् रविमयेनेवेक्षणेनोदगात् ।
गाढाकृष्टनभोवरोहसमयन्यञ्चन्मुखाश्रावली—
वल्गाहित्रुटितापतत्फणमणिज्योतिस्सपत्नं महः ।
आकालाग्नेः शिवान्त प्रथममजनि यत् तद् विपर्यासिवृत्या
सम्प्रत्याग्नेयलिङ्ग किमिदमवतरत्यन्ययेयत् क्व तेजः ।
इत्यन्तःकान्तिजातं कमलजकमलाकान्तमेलापवेला—
साक्षित्वेन स्थितानां किमपि दिविषदां विस्मयं तद्वितेने ।

(प्रथम सर्ग)

इति प्रतापायतनेन तेजसा
नभश्चराणां निचयेन चर्चितः ।
जगत्त्रयीपुण्यसमृद्धिसंगमः
पतङ्गमध्यात् पुरुषो विनिर्ययौ ।। १४ ।।
करेण चापस्य हरेर्मनीषया
बलेन मानस्य नयस्य मन्त्रिभिः ।
धृतस्य नामाग्रिमवर्णनिर्मितां
स चाहमानोऽयमिति प्रथां ययौ ।। ४५ ।।
ककुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च यद् दधत्
पुराऽभवत् त्रिप्रवरं रघोः कुलम् ।

कलावपि प्राप्य स चाहमानतां
प्रगदनूर्यंप्रवर बनूव तत् । ७२ ॥
दृष्ट वपूर्वपुरुषोदयनूप्रदेश—
सेनारजोऽनिमर्वासम्रसहस्रनेत्राः ।
अथान्तयज्ञगततर्पितहव्यवाह्—
शुद्धान्तगीतभुजसाहसमप्रदायाः ॥ ७४ ॥
व्रह्मारविन्दमकरन्दकणान्तरङ्ग—
तीरङ्गधूलिविरसीकृतदिव्यभृङ्गाः ।
श्रीचाहमानकुलमुज्जवलयांबनूवु—
र्दोमण्डलामरणनूवलयाः प्रवीराः । ७९ ॥

वंशे तेष मशेषप्रथमनृपभुजाकीर्तिसम्पद्वलाका—
प्रेमारम्भानुकूलच्छविसदसिपटामोदविश्रान्तिशीलः
कैलासोत्सङ्गमङ्गीतकसनिकशिवादिष्टगंधर्वरामा—
गीतव्योद्दामकर्मा समजनि वसुधावासनो वासुदेवः ॥ ८३ ॥

(द्वितीय सर्ग)

सवितुः कुले कति न भूपतयो भुजशालिनः समभवन्नपरे ।
स पुनर्यया व्यवजहार तया न भगीरथो न सगरो न रघुः ॥ ५ ॥
यदि वा शुचेरजनि यस्य कुले स विधेर्गतिः परिभवेष्वभवत् ।
भगवान् स्मरन् पकृति न ततस्तदलङ्कृताः परिबभूव दिशः ॥ २९ ॥

(तृतीय सर्ग)

जज्ञे तदन्वयोदन्वत्सुधांशुर्वसुधापतिः ।
सामन्तराजः सामन्तराजिकैरविणीरविः ॥ ७ ॥
सुषुवे जयराज तं राजन्तं स जयश्रिया ।
यं विध्याजो विवस्वन्तं वस्वन्तं पाप राजकम् ॥ ८ ॥
इति स्तुत कविवरैर्मुख्यं सर्वमहस्विनाम् ।
प्राप विग्रहराज स ग्रहराजमिवात्मजम् ॥ ११ ॥
तनयश्चन्द्रराजोऽस्य चन्द्रराज इवाऽभवत् ।
सग्रहं यः सुवृत्तानां सुवृत्तानामिव व्यधात् ॥ १५ ॥
तस्य गोपेन्द्रराजोऽभूदनुजो यो मनीषिणाम् ।
गोपेन्द्रराजस्मृतिकृद् गोमण्डलवृते ·····॥ १७ ॥
ततो दुर्लभराजेन चन्द्रराजस्य सूनुना ।
विनोदकेन गमिता वृद्धि कीर्तिलता भुवि ॥ १८ ॥
प्रजापतिपदब्रह्मा षाड्गुण्यपुरुषोत्तमः ।
सुतो गोविन्दराजोऽस्य शक्तित्रयमहेश्वरः ॥ २१ ॥

नयन्ममथमुल्लासमात्मभूतः शिवस्य च ।
द्वितीयश्चन्द्रराजोऽभूत् ततोऽरिध्वान्तचन्द्रमाः ॥ २२ ॥

सर्वराजार्कजीमूतः सर्वदिग्वल्लरीमधुः ।
गोवाकस्तत्सुतः सर्वद्वीपमण्डलयामिकः ॥ २३ ॥

नन्दनश्चन्दनस्तस्य यस्य नामन्युदीरिते ।
जनः सफल इत्युक्तिशेषाद् वृक्षभ्रमं जहौ ॥ ३३ ॥

सूनुर्वाक्पतिराजोऽस्य प्रसाद इव मूर्तिमान् ।
हिताय सर्वलोकानामुदपद्यत शाम्भवः ॥ ४० ॥

धर्मस्येव नवः सर्गः स्थितिः······इव श्रियः ।
सिंहराजः सुतस्तस्य संहार इव मान्मथः ॥ ४४ ॥

सिंहराजं तामलोक्य सिंहराजमिवाऽपरम् ।
धर्मस्य त्रिपदीच्छेदो ननाम कलिकुञ्जरः ॥ ४६ ॥

सुनुर्विग्रहराजोऽस्य सापराधानपि द्विषः ।
दुर्बला इत्यनुध्यायन्नक्षत्रिय इवाऽभवत् ॥ ४७ ॥

त्यक्तं तपस्विना स्वच्छ यशोंशुकमितीव यः ।
गुर्जरं मूलराजाख्यं कन्यादुर्गमवीविशत् ॥ ५१ ॥

तस्य दुर्लभराजोऽभूदनुजो माधवानुगः ।
नारीणां सततं येन हृदये मदनायितम् ॥ ५४ ॥

यशांसि शीतलीकर्तुमिच्छयेव दिगङ्गनाः ।
यस्य गोविन्दराजाख्यः स तस्मादुदपद्यत ॥ ५६ ॥

तस्माद् वाक्पतिराजेन संभूतमवनीभुजा ॥
कलिः कृती कृतो येन भूमिश्च त्रिदिवीकृता ॥ ५८ ॥

अम्बाप्रसादमाघाटपतिं यः सेनयान्वितम् ॥
व्यसृजद् यशसः पश्चात् पार्श्वं दक्षिणदिग्पतेः ॥ ५९ ॥

वीर्यरामः सुतस्तस्य वीर्येण स्यात स्मरोपमः ॥
यदि प्रसन्नया दृष्ट्यान दृश्येत पिनाकिना ॥ ६५ ॥

अद्वितीयो रणाल् लब्धः शुद्धिमान् रक्षणोचितः ।
परित्यक्तो महायोधैः सहायत्वे स्थितैरपि ॥ ६६ ॥

अगम्यो यो नरेन्द्राणां सुधादीधितिसुन्दरः ।
जघ्ने यशश्चयो यश्च भोजेनाऽवन्तिभूभुजा ॥ ६७ ॥

तस्य चामुण्डराजेन कनिष्ठेन विनिर्ममे ।
विष्णोर्नरपुरे धाम विष्णुलोके तयात्मनः ॥ ६८ ॥
अभूद् दुर्लभराजोऽस्माद् पदीयैः प्रतियोगिभिः ।
चराचराणां लुठितं पादान्ते भूभृतां भयात् ॥ ६९ ॥
मातङ्गसमरे यस्मिन् वीरसिंहेऽस्तमागते ।
अपरागोऽनुतापश्च विधिना प्रापि कर्कशः ॥ ७० ॥
तस्य विग्रहराजेन भोगीन्द्रेणानुजन्मना ।
शेषेण च महीभारं त्याजिताः पृथिवीभृतः ॥ ७१ ॥
चकार दुर्बलानां यः क्षमामागस्विनामपि ।
जह्रे निरपराधानामपि यश्च बलीयसाम् ॥ ७५ ॥
मालवेनोदयादित्येनास्मादेवाऽप्यतोन्नतिः ।
मन्दाकिनी ह्रदादेव लेभे पूरणमब्धिना ॥ ७६ ॥
सारङ्गाख्य तुरङ्गं स ददौ यस्मै मनोजवम् ।
नह्युच्चैःश्रवसं क्षीरसिन्धोरन्यः प्रयच्छति ॥ ७७ ॥
जिगाय गुर्जरं कर्णं तमश्वं प्राप्य मालवः ।
लब्धानूरुः सूर्यरथं करोति व्योमलंघनम् ॥ ७८ ॥
पृथ्वीराजः सुतस्तस्मात् ततोऽभूदतिसारभृत् ।
कुमारब्रह्मचारी हि कुमारो मदनान्तकात् ॥ ७९ ॥
तस्माद् अजयराजोऽभूद यदान्यो यद्वदान्यतः ।
सर्वरत्नप्रदात् सिन्धोः कल्पवृक्षस्य जन्म तत् ॥ ८३ ॥
श्लाघ्यः सल्हण इत्यस्य जप्यते नाम पार्थिवैः ।
बीजाक्षरत्रयच्छायां धत्ते शक्तित्रयस्य यत् ॥ ८४ ॥
सोऽयेन मालवपतिः सुल्हणो येन दीप्तिमान् ।
शमितोऽम्बुधरग्रस्तदवाग्निश्रियमानशे ॥ ८५ ॥
सोमलेखा प्रियाप्यस्य प्रत्यहं रूप्यकैर्नवैः ।
कृतैरपि न संस्पर्शं कलङ्केन समासदत् ॥ ९० ॥
माग्यैः सम समुत्पन्नं प्रजाभिः सह लालितम् ।
वर्धितं सुकृतैः साकमर्णोराजमसूत सा ॥ ९१ ॥

एवंविधामजयमेरुगिरेः प्रतिष्ठां
कृत्वा स कौतुक इवाजयराजदेवः ।

दोर्वीर्यसहृतनयं तनयं विधाय
सिंहासने त्रिदिवमीक्षितुमुच्चचाल ।। १८९ ।।

अर्णोराजोऽथ सादाशिवमनिशमनु याय रूपं प्रसन्नाद् ।
अस्मादत्रैव जन्मन्यतुलबलमिव प्राप्तपञ्चाननत्वम् ।
सर्वोर्वीपुण्डरीकप्रकटविघटनोन्मत्तम तङ्गराज–
त्रासायासावताव्यवसितमकरोत् पुष्करक्षेत्रमेकम् ।। १९० ।।

(पञ्चम सर्ग)

अवीचिमागो मरुभूमिनामा खण्डो द्युलोकस्य च गूर्जराख्यः ।
परीक्षणायेव दिशि प्रतीच्यामेकीकृतौ पाशघरेण यौ द्वौ ।।
तयोर्द्वयोरप्युदिते नरेन्द्रं तं वव्रतुस्तुल्यगुणे महिष्यौ ।
रसातलस्वर्गभवे इव द्वे त्रिलोचन चन्द्रकलात्रिसर्गे ।।
पूर्वा तयोर्नाम कृतार्थयन्ती तं प्राप्य कान्तं सुधवाभिधाना ।
सुतानवापत् प्रकृतेः समानान् गुणानिवान्योन्यविभेदिनस्त्रीन् ।।
एको दशग्रीव इवाचकाङ्क्ष पितुर्विरुद्धं व्यवहृत्य नाशम् ।
अन्येन बाल्येऽपि च कुम्भकर्णन्यायेन नामाप्यत……… ।।
आसीत् तृतीयस्तु मधुद्विषोंऽशः सत्वोन्नतो विग्रहराजनामा ।
महावला… … … … … … … … ।।

(गूर्जरेन्द्रो जयसिंहस्तस्मै यां दत्तावान् सा काञ्चनदेवी रात्रौ च दिने च सोंम सोमेश्वरसंज्ञमजनयत् । जोनराजटीका ।)

उत्पत्स्यते क्वचन कार्यशेषं निर्मातुकामस्तनयोऽस्य रामः ।
सांवत्सरैरित्युदितानुभावं मातामहस्तं स्वपुरं निनाय ।।

(षष्ठ सर्ग)

अथ गूर्जरराजमूर्जितानां मुकुटालङ्करण कुमारपालः ।
अधिगम्य सुतासुतं तदीयं परिरक्षन्नभवद् यथार्थनामा ।।
प्रथमः सुधवासुतस्तदानीं परिचर्या जनकस्य तामकार्षीत् ।
प्रतिपाद्य जलाञ्जलिं घृणायै विदधे यां भृगुनन्दनो जनन्याः ।।
न परं विदधे वृथागुणित्वं जनकं स्नेहमयं विनाश्य यावत् ।
स्वयमेव विनश्य गर्हणीयं व्यतनोद् दीप इवानुरागगन्धम् ।।

इति साहससाहचर्यनर्य:
समपर्ग: प्रथमोदतप्रभावाम् ।
तनयां स सपादलक्षपुण्यं—
रुपयेमे त्रिपुरीपुरन्दरस्य ।।

ज्येष्ठत्व चरितार्थतामथ नयद्ग्रामान्तरापेक्षया ।
ज्येष्ठस्य प्रथयन् परंतपतया ग्रीष्मस्य भीष्मां स्थितिम् ।।
द्वादश्यास्तिथिमुख्यतामुपदिशन् भानोः प्रतापोन्नति ।
तन्वन गोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ।।

(सप्तम सर्ग)

[पृथ्वीराजविजय महाकाव्य से]

३

विप्रश्रीवत्सगोत्रेऽभूदहिच्छत्रपुरे पुरा ।
सामन्तोऽनन्तसामन्तपूर्णतल्लो नृपस्ततः ॥ १२ ॥
तस्माच्छ्रीजयराजविग्रहनृपौ श्रीचन्द्रगोपेन्द्रकौ ।
तस्माद् दुर्लभगूवकौ शशिनृपो गूवाकसच्चन्दनौ ।
श्रीमद्वप्पयराजविन्ध्यनृपतिः श्रीसिंहराड्विग्रहौ ।
श्रीमद्दुर्लभगदुवाक्पतिनृपाः श्रीवीर्यरामोऽनुजः ॥ १३ ॥
श्रीचण्डावनिपेति राणकधरः श्रीसिहलो दूसल—
स्तद्भ्राताऽथ ततोऽपि वीसलनृपः श्रीराजदेवीप्रियः ।
पृथ्वीराजनृपोऽथ तत्तनुभवो रासल्यदेवीविभु—
स्तत्पुत्रोऽजयदेव इत्यवनिपः सोमल्लदेवीपतिः ॥ १४ ॥
हत्वापाधिर्गामिचलाभिधयशोरानाविवीरत्रयं
क्षिप्रं क्रूरकृतान्तवक्त्रकुहरे श्मार्गदुर्गान्वितम् ।
श्रीमत्सोल्लणदण्डनायकवरः संग्रामरङ्गाङ्गणे ।
जीवन्नेव नियन्त्रितः करभके येनेष्टनि सात् ॥ १५ ॥
अर्णोराजोऽस्य सूनुर्धृतहृदयहरिः सत्ववाशिष्टसोमो
गांभीर्यौदार्यवर्यः समभवदपरालब्धमध्यो नदीतः ।
तच्चित्रं जन्तुजाद्यस्थितिरनृतमहापंकहेतुर्न मध्यो ।
न श्रीमुक्तो न दोषाकररचितरतिर्न द्विजिह्वाधिसेव्यः ॥ १६ ॥

दत्राज्यं कुमारयारणं प्रतिकृतं राजांकुशेन स्वय

येनात्रैव न चित्रमेतदपुनर्मन्यामहे त प्रति ।

तच्चित्रं प्रतिभासते सुकृतिना निर्वाणनारायण—

न्यस्तताराचरणेन भगकरणं श्रीदेवराज प्रति ॥ १७ ॥

पुयत्नपविलासकर्ता विग्रहराजो जनिस्ततो चित्रम् ।

ततनयस्तच्चित्रं यत्र जडक्षीण सफलङ्कः ॥ १८ ॥

आदानस्व कलमादानपतेर्यत्परस्य आदानः ।

यस्म दधत्करवालः विकरालः करतलाकलितः ॥ १९ ॥

कृतान्तपयसज्जोऽभूत सज्जनः सज्जनो भुवः ।

यैकुन्त कुन्तपालोऽगाद यतो वैकुन्तपालकः ॥ २० ॥

जायालिपुरं ज्वालापुरं कृता पल्लिका पल्ली ।

यातूलतूलतुल्यं रोपात् तद्बलं न शौर्येण ॥ २१ ॥

प्रतोल्यां च वलम्यां च येन विश्रामितं यशः ।

ढिल्लिकाग्रहणश्रान्तमांशिकालामलम्भितः ॥ २२ ॥

तज्ज्येष्ठभ्रातृपुत्रोऽभूत् पृथ्वीराजः प्रभूपमः ।

तस्मार्दाजतदीनागो हेमपर्वतदानतः ॥ २३ ॥

अतिधर्मरते ...... पि पार्श्वनाथस्वयंभुवे ।

दत्तं मोराझरी ग्रामं भुक्तिमुक्तिश्च हेतुना ॥ २४ ॥

स्वर्णादिदाननिवहैर्दशभिर्महद्भि—

स्तोलानरैर्नगरदानचयैश्च विप्राः ।

येनाचिताश्चतुरभूपतिवस्तुपाल—

माक्रम्य चारमनसिद्धिकरी गृहीतः ॥ २५ ॥

सोमेश्वराल् लब्धराज्यस्ततः सोमेश्वरो नृपः ।

सोमेश्वरनतो यस्माज् जनसोमेश्वरोऽभवत् ॥ २६ ॥

प्रतापलंकेश्वर इत्यभिख्यां यः प्राप्तवान् प्रौढप्रभुप्रतापः ।

यस्याभिमुख्ये वरवैरिमुख्याः केचिन्मृताः केचिदभिद्रुताश्च ॥ २७ ॥

येन श्रीपार्श्वनाथाय रेवातीरे स्वयंभुवे ।

शासने रेवणागामो दत्तः स्वर्गाय कांक्षिणा ॥ २८ ॥

षड्विंशे द्वादशगते मासे कृष्णे च फाल्गुने।
तृतीयायां तिथौ, वारे गुरौ, तारे च हस्तके।
वृद्धिनामनि योगे च करणे तैत्तिले तया।
गुहिल पुत्र सदाम्वरमहंघणसिहाभ्यां दत्त·········
·····नैगमान्वय कायस्थ छीतिगसूनु केशवेन लिखितम्।
नानिग गोविन्द सूनु पाल्हण पुत्र देल्हणेनोत्कीर्णम्॥

—विजोलिया का शिलालेख

[जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बङ्गाल,
जिल्द ४, भाग १, पृष्ठ ४९।]

४

स पुष्करं पुष्करपत्रनेत्रः स्वनेत्रयोराभरणीचकार ।
निर्वाणरत्नस्य खनिं जगत्याः श्रेयः समापन्नमिव द्रवत्वम् ॥ २८ ॥

त तत्र विश्रान्तदृशं धरित्रीपुरन्दरं वीक्ष्य पुरः पुरोधाः ।
प्रस्ताववित् प्रस्तुतवस्तुतत्त्वविवेचिनीं वाचमिमां बभाषे ॥ ३१ ॥

द्विधा विभक्तात्मतनोरमुष्य धृतावतारस्य जगद्धिताय ।
नामापि कामं समुदीर्यमाणं नारायणस्येव पुनाति विश्वम् ॥ ३२ ॥

स्वयं विधाता स विधिर्विधीनां संकल्पमात्रोपचितैः पदार्थैः ।
श्वेतामिहाधाय जुहाव कुर्वंस्त्रयीगिरो निस्त्रीगुणाः कृतार्थाः ॥ ५० ॥

स्वयं स ईशः सकलस्य कर्ता सम समस्तैरपि दैवतैस्तैः ।
मखैरखण्डैः कतमं नु देवं सप्रीणयामास न तं विदामः ॥ ५१ ॥

तस्मिन् मखे ब्रह्मविदामृषीणां यः सामघोषस्त्रिदिवं जगाम ।
तिरोदधे दैवतदुन्दुभीनामनारतं तेन गभीरनादः ॥ ५५ ॥

इत्थं वितन्वन् विधिवद् वितानमुत्प्रेक्ष्य विघ्नस्य पुरोऽवतारम् ।
विधिर्विधित्सुः प्रतिकारमस्य दिदेश दृष्टिं दिवसाधिनाथे ॥ ५७ ॥

बिम्बादथाम्भोजवनस्य बन्धोः स्वधामसन्दोहनिगूढदेहः ।
अथावतरद् धातरयेण कश्चित पुमान् पुरस्तात् परमेष्ठिनोऽस्य ॥ ५८ ॥

पाणावसिं सज्यमसि सशक्ति महेषुधी मार्गणपूगपूर्णां ।
बिभ्रच्चतुर्बाहुरपाततवीर्यो वध विधास्यन् मखबाधकानाम् ॥ ५९ ॥

ध्रुवं चतुर्बाहुरिति प्रसिद्धः स चाहुआणः किल लौकिकोत्तया ।
यशस्य कर्ता नयतो बभूव संरक्षितोऽधिक्षिति विश्वधात्री ॥ ६० ॥

सप्तम सर्ग

चौहानवंशभवभूमिपुरन्दराणा-
माद्यो यथा तनुभृतां पुरुषः पुराणः ।
ख्यातः क्षिताव जनि दीक्षितवासुदेव-
नामा स्वधर्मसुमनीकृतवासुदेवः । १ ॥

एतस्य दानसलिलव्ययितप्रवाहा
चर्मण्वती ध्रुवमधास्यत पङ्कभावम् ।
नापूरयिष्यत यदि प्रसभोपरुद्ध-
विद्वेषिवामनयनानयनाम्बुपूरैः ॥ १८ ॥

वृन्दारकाधिपदृशामपि लोभनीयां
वृन्दानि यः सुमनसां सुमना दधानाम् ।
वृन्दाटवीमभिमतामिव नन्दसूनु-
र्वृन्दावतीं पुरमनाकुलमध्युवास ॥ १९ ॥

तस्मादजायत सुतो नरदेवनाम्ना
धाम्ना परानधरयन् नरदेवमुख्यान् ।
रूपेण य निरुपमेण निरूप्यमाणं
नार्यो नराकृतिममन्वत देवमेव ॥ २० ॥

तेनाऽजनिष्ट यशसार्दितपूर्णचन्द्रः
श्रीचन्द्र इत्यभिहितस्तनयो नयज्ञः ।
यस्याऽऽसमुद्रमपनिद्रभुजप्रतापै-
रेकातपत्रमवनीवलयं बभूव ॥ २१ ॥

तस्मिन्नलङ्कृतवति त्रिदिवं वयोन्ते
पुत्रः स्वपैत्रिकपदं प्रतिपद्यते स्म ।
यः पालयन्नपि जयं निजपौरुषेण
प्राप्तः क्षितावजयपाल इति प्रसिद्धिम् ॥ २२ ॥

उच्चैस्तया ध्रुवमलङ्घ्यतया परेषां
तेनाजयेन निरमायि परोऽपि मेरुः ।
तस्मादभूदजयमेरुरिति प्रसिद्धं
दुर्गं तदद्भुतफलं किल योगसिद्धेः ॥ २३ ॥

तेनापि सूनुरनुरूपगुणोज्ज्वलेन
राजन् जयेन जनितो जयराजनामा ।
दोर्दण्डचण्डिमचमत्कृतिधारदृप्यत्-
कोदण्डताण्डवितखण्डितवैरिवर्गः ॥ २४ ॥

सामन्तसिंह इति तस्य सुतः प्रतीतः
सिंहासनं निजकुलोचितमारुरुक्षुः ।
सामन्तवीरतदनीकस्तरसा रिपूणां
व्यद्रावयद् द्विपगणानिव दुर्द्धर्षसिंहः ॥ २५ ॥

तस्यात्मजो गुरुयशाः किल गूर्जकारव्यः
स्फूर्जत्प्रतापभरनिर्जितवैरिवीजः ।
यस्मिन् वितन्वति निरन्तररत्नवर्षं
रत्नाकरा यवृतिरेर्ज्यिन एव सर्वे ॥ २६ ॥

तन्नन्दनो नरपतिर्भुवि चन्दनोऽभूद्
यश्चन्दनद्रव इवाखिलनन्दनोऽपि ।
स्मनो हृदि प्रियविमुक्तरिपुप्रियाणां
सुमानमानयदनारतमुग्रतापम् ॥ २७ ॥

प्रोद्गाहितावनिभृदुद्धतपक्षवज्रं
वज्रायुधप्रतिममायतविक्रमेण ।
राजन्यवीरनिकुरम्बकिरीटवज्रं
वज्राभिधं स तनयं जनयांचकार ॥ २९ ॥

वज्रादजायत वशीकृतविश्वराज्यः
प्राज्यैर्गुणैर्जगति विश्वपतिः प्रतीतः ।
यो विश्वनाथवनिताचरणावलम्बी
विश्वम्भराखिलधुरां विभराम्बभूव ॥ ३० ॥

(प्रथम सर्ग)

एवमुज्ज्वलितकीर्तिमण्डलो मण्डलाग्रसचिवः शुचिव्रतः ।
वीरविश्वपतिरोजसाऽञ्जसा विश्वमेव वशमानिनाय सः ॥ ४२ ॥

सूनुरस्य हरिराजसञ्ज्ञया विश्रुतो हरिपदैकजीवनः ।
रहसा हरिगणं विलङ्घयन् राजति स्म हरिवत् प्रभावतः ॥ ४३ ॥

(चतुर्थ सर्ग)

तस्मादजायतास्मादस्य सिंहराजः सिंहोर्जितो यस्य मृधे द्विपन्तः ।
विनेशुराशु स्फुटसिंहनादैर्नु सिंहनादैरिव दानवेन्द्राः ॥ २ ॥

निजानुरूपां गुणरूपशीलैरवन्तिनाथस्य ततस्तनूजाम् ।
मनोरमां नाम मनोभिरामामुदूढवानूढकुलप्रतिष्ठः ॥ १२ ॥

स्नेहेम पुत्रप्रतिमं ममापि जवीयसः पुत्रमतो युवानम् ।
राज्येऽभिषेक्ष्यामि समक्षमेव भीमं रिपूणामिह भीमदेवम् ॥ ३० ॥

(पञ्चम सर्ग)

तस्य विग्रहदेवोऽभूत् तनयश्चारुविग्रहः ।
विग्रहे वैरिवृन्दानां वहुशो दत्तनिग्रहः ॥ १ ॥

स्वबलेन विनिर्जित्य गुर्जरान् भृशदुर्जयान् ।
राज्यं तेषां गुणप्राज्यमथ जग्राह विग्रहः ॥ ३ ॥

अजायत जयी तस्मात् तनुजो मनुजाधिपात् ।
कीर्तिनिन्दितकुन्देन्दुर्गुन्दुवदेव इति श्रुतः ॥ १५ ॥

सुत वल्लभनामानं लभते स्म स भूपतिः ।
अगणेया गुणा यस्य स्वर्गिणामपि वल्लभाः ॥ १६ ॥

तपस्वी तुरगारूढं गरुत्मानिव पन्नगम् ।
जीवग्राहं स जग्राह सग्रामे भोजभूपतिम् ॥ २२ ॥

ततस्तस्मिन् यशःशेषे शेषोपमयशोभरे ।
अभवत् पृथिवीनाथो रामनाथस्तदात्मजः ॥ ३३ ॥

सुतोऽभूत् तस्य चामुण्डश्चण्डदोर्दण्डमण्डनः ॥
खण्डितारिचमूमुण्डश्चामुण्डागणतोषकृत ॥ ३५ ॥

सुतं दुर्लभराजाख्यं कृत्वा राजानमार्यधीः ।
चामुण्डश्चण्डचूडस्य लोकं लोकोत्तरं ययौ ॥ ४३ ॥

सुतो व्रसलदेवोऽथ जातो दुर्लभराजतः ।
कुशलो वीरचर्यायां चिरं वसुमतीमशात् ॥ ४४ ॥

तस्माद् विशालयशसो वीसलाख्यः सुतोऽजनि ।
विषयान् वशयामास विश्वोद्गीतगुणेव यः ॥ ४५ ॥

आकर्णकृष्टचापेन संगरे कर्णविक्रमम् ।
कर्णं संयम्य ककुभां कर्णपूरीकृतं यशः ॥ ४७ ॥

निबध्यावन्ध्यनिर्वन्धः स मृधे कर्णभूपतिम् ।
आवदेऽवन्तिनगरी जयश्रियमिवापराम् ॥ ४८ ॥

तस्मात् पृथुगुणात् पुत्रो जातो पृथुसमप्रभः ।
पूरयन् यशसा पृथ्वीं पृथ्वीराज इति स्मृतः ॥ ८२ ॥

अनन्तरमनुजस्तस्य प्रपन्नो दनुजद्विषम्।
विग्रहराजो गुणदाहुल्यं वल्हणो वल्लभः सताम् ॥ ८३ ॥

तात गतवति नाक वल्हणे बाहुलेय—
प्रतिनिधिमधिरूढस्तत्पदं तस्य पुत्रः।
अनवददनलदेवः शत्रुवंशाटवीना—
मनल इव समिद्धः सोमवद् बान्धवानाम् ॥ ८६ ॥

(षष्ठ सर्ग)

अजनि तस्य सुतः सुकृतालयः क्षितितले जगदेव इति श्रुतः।
विपुलसत्यगुणो जगतोऽप्यलं वितरणाय वनीपकवत्सलः ॥ २६ ॥

विनदकीर्तिमतीव विशालयन् विसलतामिव तामरसाकरः।
स किल बीसलदेवमजीजनद् वसुसमानगुण वसुधाधिपः ॥ २८ ॥

गुणचितैः सतत जनरञ्जनव्यसनिनः खलु बीसलदेवतः।
जयपपाल इति प्रथितः सुतो रिपुसमाजजयी समजायत ॥ २९ ॥

(अष्टम सर्ग)

नृपोऽर्वाग्नि चिरमवञ्चितयाचकोऽयं
यातः यन् वनान्तपदवीमय यौवनान्ते।
आरूढ्यद्विजयिनीं क्षितिपाललक्ष्मीं
पुत्रे गुणोदयगरीयसि गङ्गदेवे ॥ ७३ ॥

(नवम सर्ग)

अथो गुर्देवादिव गङ्गदेवात् सोमेश्वरो नाम समः स्मरेण।
राज्यं गुणप्राज्यमनुक्रमतः क्रमागतं यः सुमुखः शशास ॥ १ ॥

अहं सङ्कुलानां गुणरूपशीलैः स कुन्तलानामधिपस्य पुत्रीम्।
कर्पूरधारां जनलोचनानां कर्पूरदेवीमुदुवाह विद्वान ॥ ४ ॥

असूयतासौ सुतनुस्तनूजौ नयप्रभावाविव विक्रमर्द्धिः।
नृपस्तयोः पूर्वजमाह पृथ्वीराजं स माणिक्यमयानुजातम् ॥ ७ ॥

यमस्य दारा नवलक्षसंख्याः संख्येष्यसंख्येयगुणं भजन्ते।
कन्या ततोऽजायत कान्यकुब्जक्षितीश्वरात् कान्तिमतीति नाम्ना ॥ १३ ॥

सैन्येन सार्धेन महःसमृद्धैः सामन्तमुख्यैः सुमुखैः समेतः।
पनोऽरिनां दुर्गपरिच्छदं च पुर्यौ परित्यज्य नृपः प्रतस्थे ॥ ५५ ॥

सामन्तमुख्यः समुपेत्य कश्चिन्मुदाऽयं भूपालमुवाजहार ।
ससाधनः सोऽयं तावदिन्द्रप्रस्थोन्मुखस्त्वं सुमनाः सवारः ॥ १३३ ॥

ते हि प्रवीरा मनुजाकृतिं तां हठाद् वहन्तो दनुजावताराः ।
आयोधनाग्रे निधनं भजन्ते स्वमूर्तिलाभाय निजेच्छयैव ॥ ११७ ॥

एवं प्रवृत्ते पथि सपराये नृपो हरिप्रस्थमुपैति यावत् ।
क्रमेण तावत् पृथुविक्रमास्ते स्तोकावशेषाः सुभटा बभूवुः ॥ १२५ ॥

कालेऽथ कालाग्निसमप्रतापो विजित्य सर्वाः स दिशः क्रमेण ।

सहावदीनाह्वयम हवेषु महाबल म्लेच्छपतिं बबन्ध ॥ १२९ ॥

जिह्मस्वभावं खलु राजनीतेर्दयाद्रभावाद्यवीर्य धीरः ।
त्रिःसप्तकृत्वोऽपि निबध्य शत्रुं कारातिथीकृत्य विमुञ्चति स्म ॥ १३० ॥

तथोपकर्तारममुं कृतघ्नः कृत्वा सदम्भ यवनः प्रबन्धम् ।
नियम्य देशं निजमानिनाय किमप्यकार्यं बत दुर्जनानाम् ॥ १३१ ॥

तं यन्त्रित मन्त्रितमन्दनीतिर्व्यपेतशस्त्र विपरीतचेताः ।
प्रणोदितः प्राणहरेण धात्रा वियोजयामास विलोचनाभ्याम् ॥ १३२ ॥

अथ भ्रमन् भूवलयं विवृण्वन् भोगावलीं भाग्यविलासभाजाम् ।
चन्दाभिधः पूर्वमनेन वित्तं मित्रीकृत तत्र जगाम वन्दी ॥ १३५ ॥

इत्थं स निर्णीय समं नृपेण जगाम गोष्ठीं यवनाधिपस्य ।
दिनैः कियद्भिर्निजविद्ययाऽसावरञ्जयत् तं सह मन्त्रिमुख्यैः ॥ १५३ ॥

अथैकदा चित्रकथाप्रसङ्गे साहावदीससवि स प्रगल्भः ।
कुतूहलाद् भर्तरि सावधाने स्फीतां मुदा वाचमुवाजहार ॥ १५४ ॥

योऽसौ महाराज मृधे निरुध्य विनीतनेत्रो भवता निबद्धः ।
अयःकटाहान् विशिखेन विध्येदेकेन सोऽतीक्ष्णमुखेन सप्त ॥ १५५ ॥

सुखोपविष्टेषु यथानिवेशं प्रवीरवर्गेषु कुतूहलेन ।
आह्वाययामास सहावदीनः सहावनीशेन स वन्दिन तम् ॥ १५९ ॥

अनादरारोपितशिञ्जिनीके सयोजिते तत्र शरेण चापे ।
वन्दी बभाषे बहलीकृतेन स्वरेण शृण्वत्यधिपे धरण्याः ॥ १६३ ॥

उच्चैर्महाराज यदा विदेश वारत्रय श्रोष्यति युष्मदीयम् ।
शरेण कुण्ठेन धनुर्धरोऽयं लक्ष्य तदा भेत्स्यति वः समक्षम् । १६४ ॥

तथेति तस्य प्रहरेति वक्तुं व्यात्ताननस्य क्षततालुमूलः ।
प्राणैः सहान्धङ्कुरणस्य शत्रोर्जवान्नियन्तुर्निर्ययाव वाणः । १६५ ॥

निर्यातयन् वैरमतीव तीव्रं यशो वितन्वन् विशदं जगत्याम् ।
फलेन हीनोऽपि महाफलोऽभूत् पृथ्वीपतेस्तस्य तदा पृषत्कः ॥ १६६ ॥

भयविस्मयशोकसङ्कुलान्तः-
करणैर्वीरगणैरलक्ष्यमाणः ।
अधिरोप्य घनायुजं स वन्दी
क्षितिपालं कुरुजाङ्गलं निनाय ॥ १६७ ॥

पुण्यक्षेत्रे तत्र स क्षत्रियाणां
दत्तानन्दे शौर्यशौटीर्यभाजाम् ।
पृथ्वीलोकं पूरयित्वा यशोभिः
पृथ्वीराजः प्रापतं प्राप लोकम् ॥ १६८ ॥

(दशम सर्ग)

[सुर्जन चरित से]

५

यज्ञाय पुण्यं क्वचनं प्रदेशं द्रष्टुं विधातुर्भ्रमतः किलादौ ।
प्रपेतिवत् पुष्करमाशु पाणिपद्मात पराभूतमिवास्य भासा ॥ १४ ॥
ततः शुभं स्थानमिदं विभाव्य प्रारब्धयज्ञो यमपास्तदैन्यः ।
विशंक्य भीतिं दनुजव्रजेभ्यः स्मेरस्य सस्मार सहस्ररश्मेः ॥ १५ ॥
अवातरन् मण्डलतोऽथ भासां पत्युः पुमानुद्यतमण्डलाग्रः ।
तं चाभिषिच्याऽथवदसीयरक्षाविधौ व्यधादेष मखं सुखेन ॥ १६ ॥
पपात यत पुष्करमत्र पाणेः ख्यातं ततः पुष्करतीर्थमेतत् ।
यच्चायमागादथ चाहमानः पुमानतोऽख्यायि स चाहमानः ॥ १७ ॥

(प्रथम सर्ग)

[हम्मीर महाकाव्य से]

६

हर्षनाथ के मंदिर का शिलालेख

(वि० सं० १०३०)

आद्यः श्रीगूवकाख्याप्रथितनरपतिश्चाहमानान्वयोऽभूत्
श्रीमन्नागावलोकप्रवरनृपसभालब्धवीरप्रतिष्ठः ।
यस्य श्रीहर्षदेवे वरकनकमयी भौतली कीर्तिमूर्ति-
र्लोकेऽद्यापि स्थिरैषा प्रपतति परमैः········· ॥ १३ ॥
पुत्रः श्रीचन्द्रराजोऽभवदमलयशास्तस्य तीव्रप्रतापः
सूनुस्तस्याऽथ भूपः प्रथम इव पुनर्गूवकाख्यः प्रतापी ।
तस्माच्छ्रीचन्दनोऽभूत् क्षितिपतिभयदस्तोमरेशं सदर्पं
हत्वा रुद्रेण भूपं समरभुवि बलाद्येन लब्धा जयश्रीः ॥ १४ ॥
ततः परमतेजस्वी सदा समरजित्वरः ।
श्रीमान् वाक्पतिराजाख्यो महाराजोऽभवत् सुतः ॥ १५ ॥
येनादैन्यं स्वसैन्यं कथमपि दधता वाजिवल्या मुमुक्षु
प्रागेव त्रासितेभः सरसिक रिरटड् डिंडिमौघैः······ ।
वन्दक्षामर्तु राज्ञां समदमभिवहन्नागतोनन्तपार्श्वं
क्ष्मापालस्तंत्रपालो दिशि दिशि गमितो ह्रीनिषण्णः प्रसन्नः ॥ १६ ॥

लोकैर्यो हि महीतले ननु हरिश्चन्द्रोपमो गीयते
त्यागैश्वर्यजयेषु कीर्तिरमला धर्मश्च यस्योज्ज्वलः ।
येनादायि हराय मन्दिरकृते भक्त्या प्रभूतं वसु
श्रीमद्वाक्पतिराजसूनुरसमः श्रीसिंहराजोऽभवत् ॥ १७ ॥

हैममारोपितं येन शिवस्य भवनोपरि ।
पूर्णचन्द्रोपमं स्वीयं मूर्तं यश·····पिंडकम् ॥ १८ ॥

(जित्वा) तोमरनायकं सलवणं सैन्याधिपत्योद्धतं
युद्धे येन नरेश्वराः प्रतिदिशं निर्णाशिता जिष्णुना ।
कारावेश्यनि भूरयश्च विधृतास्तावद्धि यावद् गृहे
तन्मुक्तयर्थमुपागतो रघुकुले भूचक्रवर्ती स्वयम् ॥ १९ ॥

श्रीमान् विग्रहराजोऽभूत् तत्सुतो वासवोपमः ।
वङ्कलक्ष्मीर्जयश्रीश्च येनैते विधुरोद्धृते ॥ २० ॥

श्रीसिंहराजरहिता किल चिन्तयन्ती
भीतेव सम्प्रति विभुर्ननु को ममेति ।
येनात्मबाहुयुगले चिरसन्निवासं
संधीरितेति वदता निजराजलक्ष्मीः ॥ २१ ॥

येन दुष्टदमनेन सर्वतः साधिताऽखिलमही स्वबाहुभिः ।
लीलयेव वशवर्तिनी कृता किंकरीव निजपादयोस्तले ॥ २२ ॥

यस्य चारुचरितं सतां सदा शृण्वतां जगति कीर्तितं जनैः ।
हृष्टिजातघनरोमकं·····जायते तनुरलं मुहुर्मुहुः ॥ २३ ॥

मुक्ताहारैः सुतारैः प्रतरलतुरगैश्चारुवस्त्रैश्च शस्त्रैः
कर्पूरैः पूगपूरैर्मलयतरुवरैर्हेमभारैरपारैः ।
उद्यद्दानैः समानैश्चलकुलगिरिभिर्दन्तिवारैः सदारै—
र्निर्व्याजैः प्रातिर···मिरिति भृतैः प्राभृतैर्यः सिषेवे ॥ २४ ॥

छत्रधारी वरग्रामो द्वितीयः शंकराणकः ।
तेनेमौ हर्षनाथाय भक्त्या दत्तौ सशासनौ ॥ २५ ॥

श्रीमद्दुर्लभराजेन योऽनुजेन विभूषितः ।

लक्ष्मणेनेव काकुत्स्थो विष्णुनेव हलायुधः ॥ २६ ॥
महाराजावली चासौ शम्भुभक्तिगुणोदया ।
श्रीहर्षः कुलदेवोऽस्यास्तस्माद् दिव्यः कुलक्रमः ॥ २७ ॥
अनन्तगोचरे श्रीमान् पण्डित औत्तरेश्वरः ।
पंचार्यलाकुलाम्नाये विश्वरूपोऽभवद् गुरुः ॥ २८ ॥

[एपिग्राफिका इण्डिका, भाग द्वितीय, पृ० १२१]

७

दोहा

इंद्रपथ्य यौं पंडुकुल भुगतीं वरष अनेक।
फिरि आई चौहान कैं विलसी धरैं विवेक ॥ ११ ॥

छन्द पद्धरी

चहुवान कर्यौ वहु वरष राज। प्रथिराज जुद्ध कीनैं दराज ॥
लिय सात वार गोरी सुवंध। पुनि भयौ भूप तिय नेह अंध ॥
बारह सै सम्वत् अन्त आई। लीनी सहाव दिल्ली दवाई ॥
रन पकरि प्रथीराजै सहाव। गजनई दुग्ग लै गो सिताव ॥
तहँ गयौ भट्ट वरदाइ चन्द। नृप सहित साहि कीनौ निकंद ॥
तव तैं सुवढ्यौ तुरकान घोर। रोजानिवाज भुव भाई गोर ॥
+ + । + + + ॥ १२ ॥

—छठा जंग

[कवि सूदन, सुजान चरित, पृ० १५५, नागरी प्रचारणी सभा काशी, सं० १९८०, द्वितीय संस्करण]

८

गाहड़वाल-वंश

१. यशोविग्रह
|
२. महीचन्द
|
३. चन्द्रदेव

४. मदनपाल — विग्रहपाल (बदायूं की शाखा का मूल पुरुष)

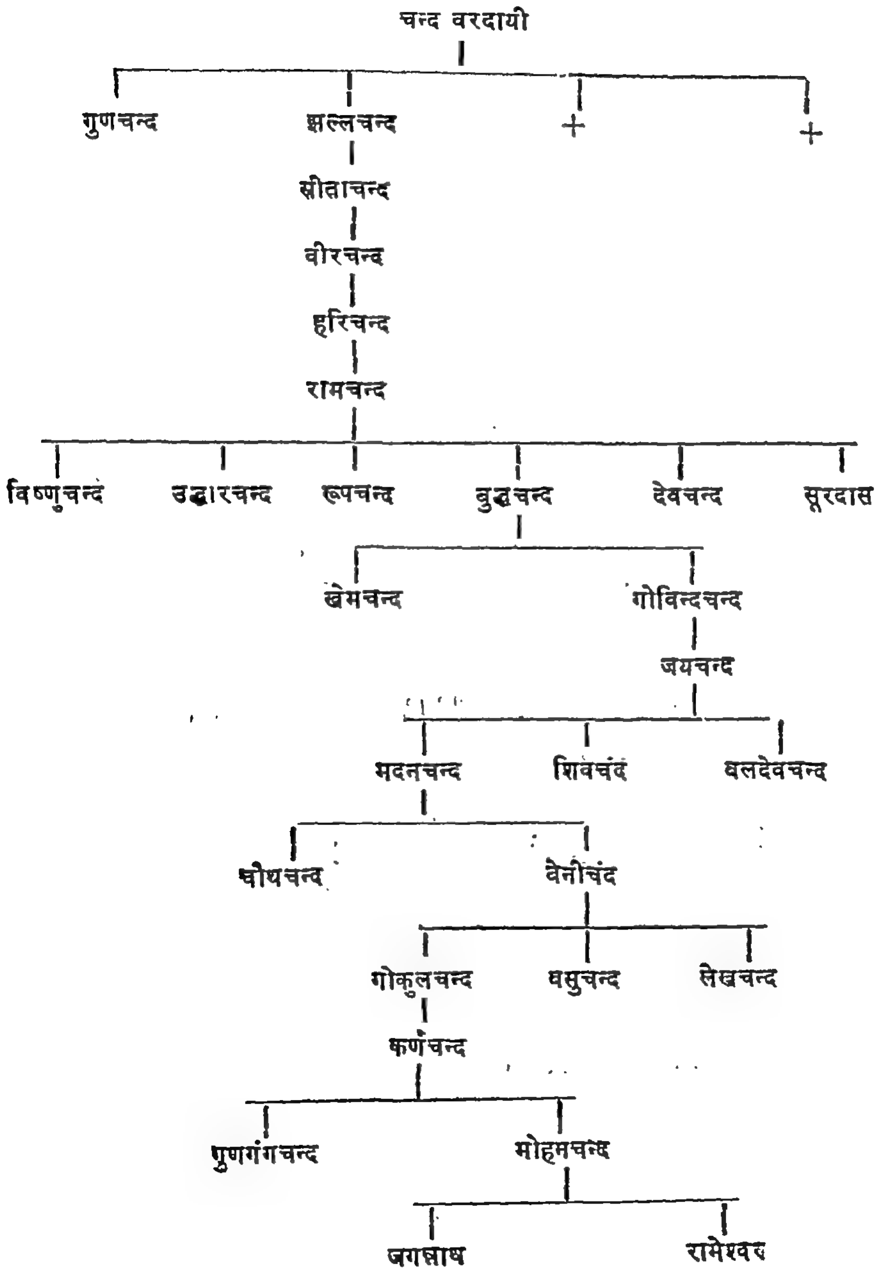
५. गोविन्दचन्द (मदनपाल का पुत्र)

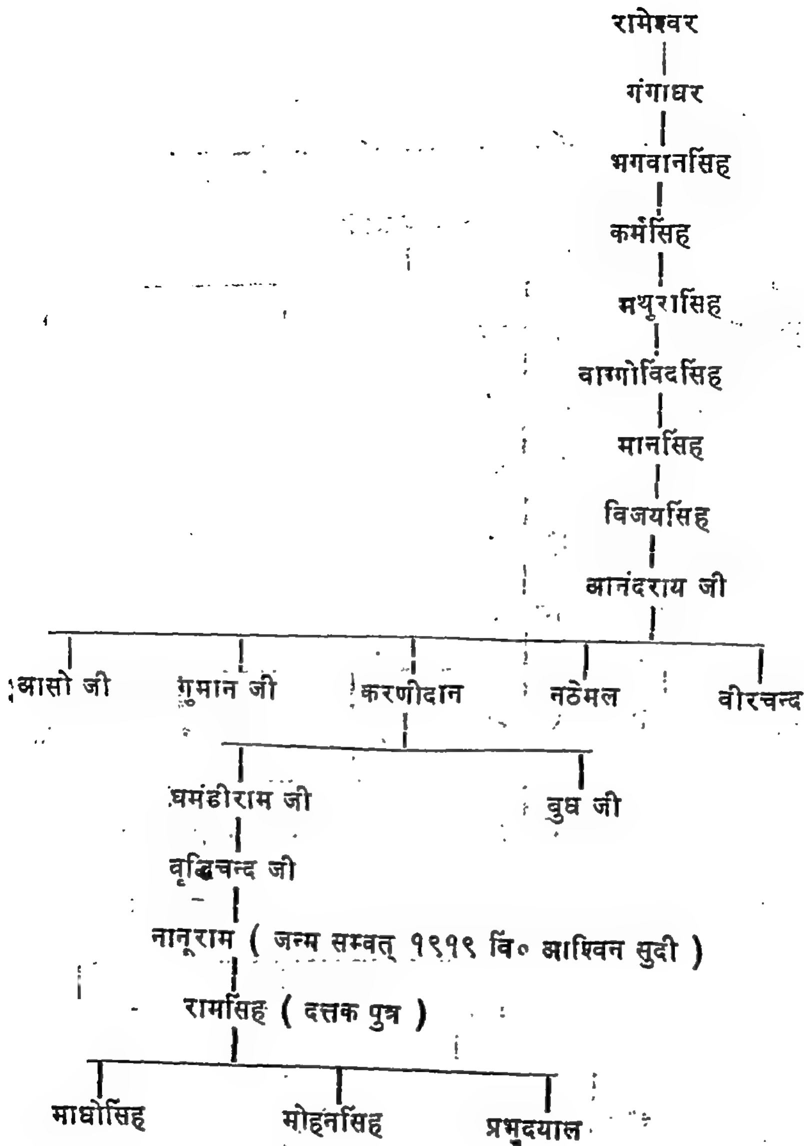
६. विजयचन्द — राजपाल — आस्फोतचन्द (वत्सराज) (गोविन्दचन्द के पुत्र)

७. जयचन्द — माणिक्यचन्द (विजयचन्द के पुत्र)

८. हरिश्चन्द — जजपाल (?) — मेघचन्द (?) — उदयपाल (?) — संयोगिता (?) (जयचन्द की संतान)

महाकवि चन्द वरदायी का वंश वृक्ष





(सरस्वती, नवम्बर १९२९, पृ० ५१६)

१०

दिल्ली के तंवरों की वंशावली (१)

["श्री अगरचंद नाहटा ने तवरों की तीन वंशावलियां मेरे पास भेजी हैं। उनमें से एक जहांगीर कालीन है, दूसरी औरंगजेब कालीन और तीसरी लगभग सं० १८४५ की। दूसरी वंशावली पहली की नकल है, इसकी निजी स्वतंत्र सत्ता सर्वथा नगण्य है। तंवरों के राज्य के सैकड़ों वर्ष बाद लिखी हुई इन वंशावलियों में कुछ अशुद्धियों का होना स्वाभाविक है। तथापि इनके तुलनात्मक अध्ययन के लिए हम उनके अन्तर्गत आए हुए राजाओं के नाम यहां उद्धृत करते हैं।" —डॉ० दशरथ शर्मा]

जहांगीर कालीन और औरंगजेब कालीन वंशावली—

१. रडंपाल (मर्णपाल)
२. खडग
३. हरिपाल
४. सुनपाल
५. तिहुणपाल
६. अनंगपाल प्रथम (इसने सं० ९०९ में दिल्ली बसाई)
७. शिवराज
८. पोपट
९. महीराज
१०. माहेदास
११. सधार
१२ विग्रहराय
१३. गोपाल
१४. तिहुणपाल
१५. हरपाल
१६. जैतमल
१७. अनंगपाल तृतीय

सम्वत् १८४५ की वंशावली

१. वीसलदेव
२. गंगदेव
३. पृथ्वीराज
४. सहदेव
५. नरपाल
६. उदेरवि
७ जैदेव
८. वछराज
९. पीवक
१०. विजैपाल
११. तेजपाल
१२. गोपाल
१३. सुलक्षण
१४. जसपाल
१५. किरपाल
१६. अनंगपाल
१७. तेजपाल
१८. गोहणपाल
१९. उकसपाल
२०. पृथ्वीराज

नोट—डॉ० दशरथ ओझा उक्त दोनो वंशावलियों को अप्रामाणिक मानते हैं।

[दिल्ली का तोमर (तंवर) राज्य, परिशिष्ट, पृ० २३, राजस्थानी भारती, भाग ३, अंक ३-४, जुलाई १९५३,]

दिल्ली के तंवरों की वंशावली (२)

["श्री नाहटा जी की वंशावलियों से कुछ प्राचीन आइने अकबरी की वंशावलियाँ हैं। दिल्ली के बीस राजाओं ने ४२७ वर्ष १ महिने और २८ दिन राज्य किया।"—डॉ० दशरथ शर्मा]

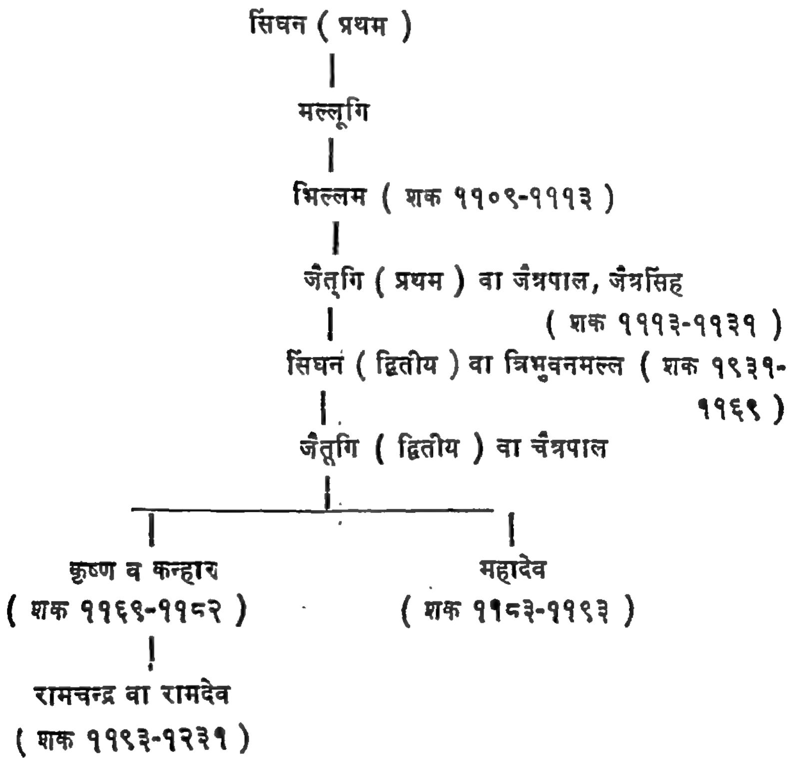
			साल	महिना	दिन
१.	अनंगपाल	तंवर	१८	०	०
२.	बासदेव	,,	१९	१	१८
३.	गगू	,,	२१	३	२८
४.	पिरथीमल	,,	१९	६	१९
५.	जैदेव	,,	२०	७	२८
६.	निरपाल	,,	१४	४	९
७.	अदह	,,	२६	७	११
८.	विछराज	,,	२१	२	१३
९.	विल	,,	२२	३	१६
१०.	रघुपाल	,,	२१	६	५
११.	नेकपाल	,,	२०	४	४
१२.	गोपाल	,,	१८	३	१५
१३.	सुखलन	,,	२५	२	२
१४.	जैपाल	,,	१६	४	१३
१५.	कंवरपाल	,,	२९	९	११
१६.	अनेकपाल	,,	२९	६	१८
१७.	विजैपाल	,,	२४	१	६
१८.	महीपाल	,,	२५	२	१३
१९.	अनेकपाल	,,	२१	२	१५
२०.	पिरथीराज	,,	२२	३	१६

नोट—डॉ० दशरथ शर्मा उक्त वंशावली को भी काल्पनिक मानते हैं और उनका राज्य काल भी।

[दिल्ली का तोमर (तंवर) राज्य, परिशिष्ट, पृ० २४, राजस्थानी भारती, भाग ३, अंक ३-४, जुलाई १९५३।]

११

[देवगिरि के यादवों की वंशावली]

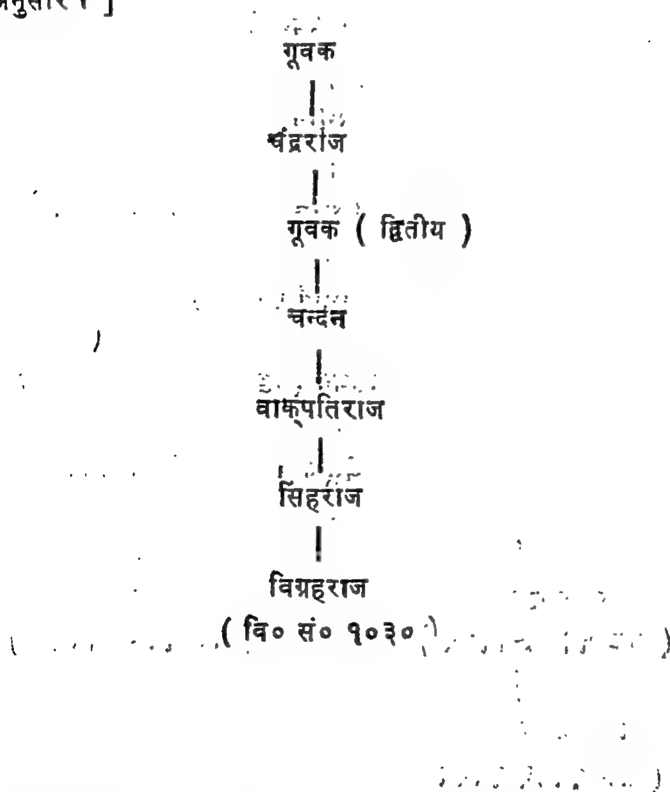


[हिन्दी शब्द सागर, पृ० १६१९]

१२

चौहानों की वंशावली (१)

[महाराज विग्रहराज चौहान के समकालीन वि० सं० १०३० की हर्षनाथ के मंदिर की प्रशस्ति के अनुसार ।]



[हर्षनाथ के मंदिर के शिलालेख के लिए देखिए, परिशिष्ट सं० ६]

चौहानों की वंशावली (२)

[महाराज सोमेश्वर चौहान के समकालीन वि० सं० १२२६ के बिजोलिया के शिला-लेख के अनुसार]

सामन्त
|
जयराज
|
विग्रह
|
चन्द्र
|
गोपेन्द्र
|
दुर्लभ
|
गूवक
|
शशिनृप
|
गूवक (द्वितीय)
|
चन्दन
|
वाप्पयराज
|
सिंहराज
|
विग्रह
|
दुर्लभ
|
गुंदु
|

वाक्पति
।
वीर्यराम
।
चामुंड
।
सिंहट
।
दुसल
।
वीसल
।
पृथ्वीराज
।
अजयदेव
।
अर्णोराज
।
विग्रहराज
।
पृथ्वीराज (द्वितीय)
।
सोमेश्वर (वि० सं० १२२६)

[बिजोलिया के शिलालेख के मूल पाठ के लिए देखिए, परिशिष्ट सं० ३]

चौहानों की वंशावली (३)

[महाकवि जयानक कृत पृथ्वीराजविजय-महाकाव्य के अनुसार]

चाहमान
|
वासुदेव
|
सामंतराज
|
जयराज
|
विग्रहराज
|
चन्द्रराज
|
गोपेन्द्रराज
|
दुर्लभराज
|
गोविंदराज
|
चंद्रराज (द्वितीय)
|
गूवक
|
चंदनराज
|
वाक्पति
|
सिंहराज
|
विग्रहराज (द्वितीय)
|

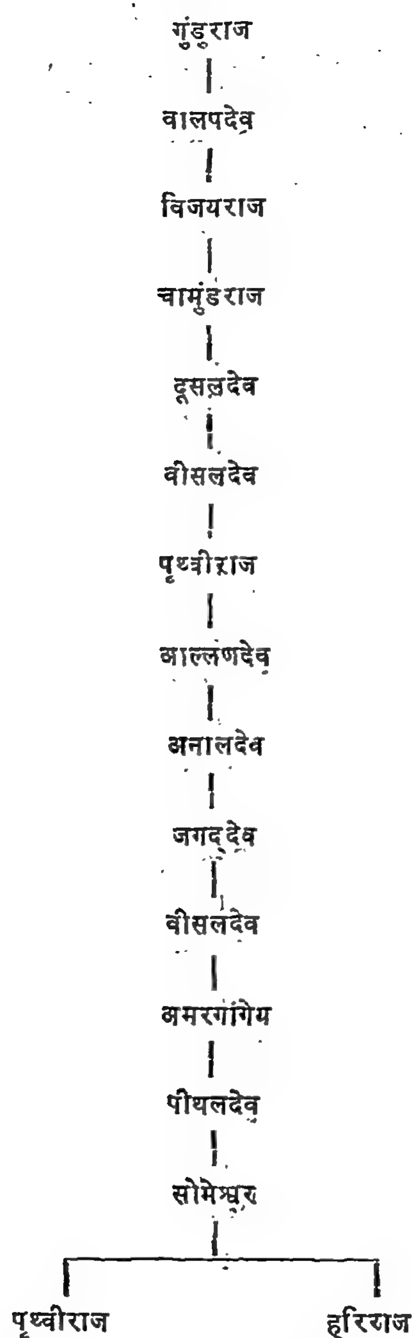
दुर्लभराज
।
गोविंदराज
।
वाक्पतिराज (द्वितीय)
।
वीर्यराय
।
चामुंड
।
दुर्लभ
।
विग्रहराज (तृतीय)
।
पृथ्वीराज
।
अजयराज
।
अर्णोराज
।
विग्रह (चतुर्थ)
।
अपरगांगेय
।
पृथ्वीभट
।
सोमेश्वर
।
पृथ्वीराज — हरिराज

[पृथ्वीराजविजय महाकाव्य के मूलपाठ के लिए देखिए परिशिष्ट सं० २]

चौहानों की वंशावली (४)

[विक्रमी सम्वत् १५ वीं शताब्दी के आसपास विरचित प्रबन्ध-कोश के अन्त में दी हुई चौहानों की वंशावली के अनुसार।]

वासुदेव
|
सामन्त
|
नरदेव
|
अजयराज
|
विग्रहराज
|
विजयराज
|
चन्द्रराज
|
गोविन्दराज
|
दुर्लभराज
|
वत्सराज
|
सिंहराज
|
दुर्योधन
|
विजयराज
|
चप्पेयीवर
|
दुर्लभराज
|

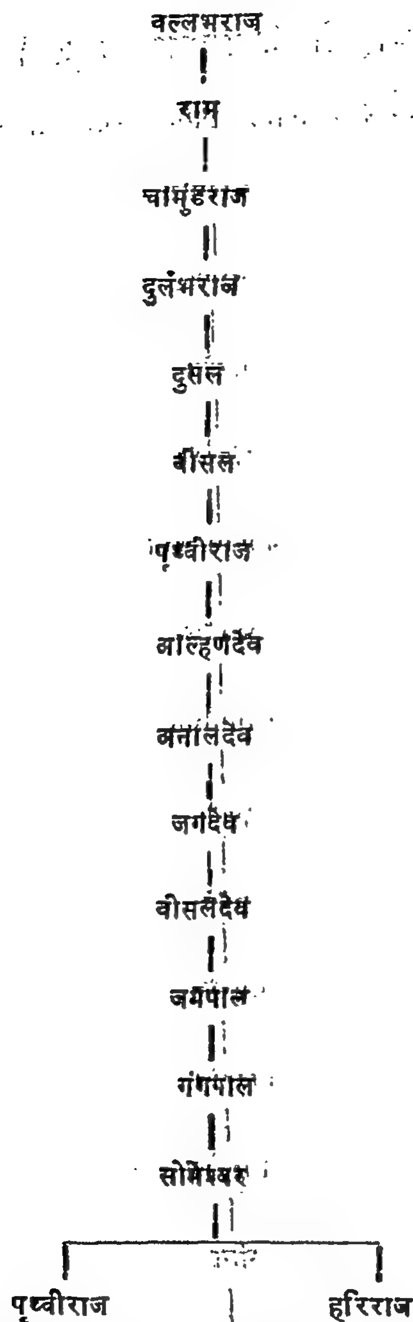


नोट—[प्रबन्ध कोश के मूल पाठ के लिए देखिए, परिशिष्ट सं० १]

चौहानों की वंशावली (५)

[वि० सं० १४६० के आस-पास विरचित हम्मीर महाकाव्य के अनुसार]

चाहमान
|
वासुदेव
|
नरदेव
|
चंद्रराज
|
जयपाल चक्री
|
जयराज
|
सामंतसिंह
|
गूवक
|
नंदन
|
वप्रराज
|
हरिराज
|
सिंहराज
|
भीम
|
विग्रहराज
|
गंगदेव
|

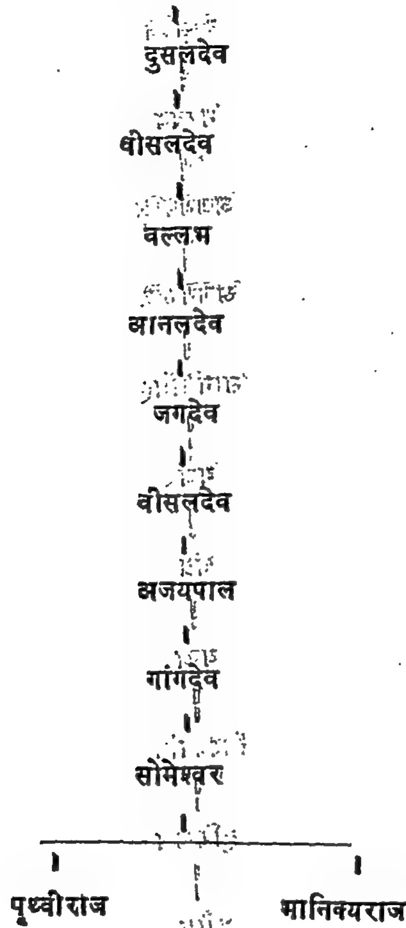


[हम्मीर महाकाव्य के मूल पाठ के लिए देखिए, परिशिष्ट सं० ९]

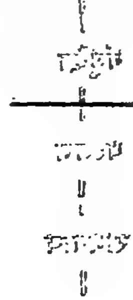
चौहानों की वंशावली (६)

[वि० सं० १६३५ के आस-पास विरचित सुर्जन चरित काव्य के अनुसार]

वासुदेव
|
नरदेव
|
अजयपाल
|
अजयराज
|
सामंतसिंह
|
गुर्जर
|
चंद्र
|
वज्र
|
विश्वपति
|
हरिराज
|
भीम
|
विग्रहदेव
|
गंडुदेव
|
वल्लभ
|
रामनाथ
|



[सुर्जन चरित के मूल पाठ के लिए देखिए, परिशिष्ट सं०–४]



चौहानों की वंशावली (८)

[पंडित सदाशिव दीक्षित ने चौहानों की वंशावली शिलालेख एवं विभिन्न संस्कृत के ग्रन्थों के आधर पर इस प्रकार प्रस्तुत की है।]

चाहमान
।
वासुदेव
।
सामंत
।
महादेव
।
जयराज
।
विग्रहराज
।
चंद्र
।
गोपेन्द्र
।
दुर्लभ
।
गूवक
।
चन्द्रराज
।
गूवक
।
चन्दन
।
वाक्पतिराज
।

हरिराज (अप्रमाणिक)

|

सिंहराज

|

विग्रहराज

|

वप्पेयीवर (अप्रमाणिक)

|

दुर्लभ

|

गुंडु

|

वाक्पति

|

वीर्यराम

|

चामुण्ड

|

सिंहट

|

दूसल

|

वीसल

|

पृथ्वीराज

|

अजयदेव

|

अर्णोराज

|

जयसिंह

|

विग्रहराज (चतुर्थ)

|

जयपाल
|
पृथ्वीराज
|
सोमेश्वर
|
पृथ्वीराज

१३

[भीमदेव चालुक्य का वंश वृक्ष, श्री के० एम० मुंशी के अनुसार]

चालुक्य वंश (१)

१.	मूलराज	सन्	९४२	—	९९६
२.	चामुण्डराय	,,	९९६	—	१०१०
३.	वल्लभराज	,,	१०१०	—	१०१०
४.	दुर्लभराज	,,	१०१०	—	१०२२
५.	भीमदेव (प्रथम)	,,	१०२२	—	१०६४
६	कर्णदेव (प्रथम)	,,	१०६४	—	१०९६
७.	जयसिंह (सिद्धराज)	,,	१०९६	—	११४४
८.	कुमारपाल	,,	११४४	—	११७३
९.	अजयपाल	,,	११७३	—	११७६
१०.	मूलराज (द्वितीय)	,,	११७६	—	११७८
११.	भीमदेव (द्वितीय)	,,	११७८	—	... ...

(The Glory that was Gurjaradesa pt. III Bharatiya Vidya Bhavan Bombay. 1 st. Edition 1944.)

[भीमदेव चालुक्य का वंश डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार]

चालुक्य वंश—(२)

१.	मूलराज (पत्नी माधवी)	विक्रम	सम्वत्	९९८	—	१०५३
२.	चामुण्डराज	,,	,,	१०५३	—	१०६६
३.	वल्लभराज (छह मास राज किया)	,,	,,	१०६६	—	......
४.	दुर्लभराज	,,	,,	१०६६	—	१०८०
५.	भीमदेव प्रथम (पत्नी उदयमती)	,,	,,	१०८०	—	११२२
६.	कर्ण सोलंकी (पत्नी मयवलन देवी)	,,	,,	११२२	—	११५०
७.	जयसिंह, सिद्धराज	,,	,,	११५०	—	१२००
८.	कुमारपाल (पत्नी भूपाल देवी)	,,	,,	१२००	—	१२२९
९.	अजयपाल (पत्नी नायकी देवी)	,,	,,	१२२९	—	१२३२
१०.	मूलराज द्वितीय	,,	,,	१२३२	—	१२३५
११	भीमदेव द्वितीय (पत्नी सुभलादेवी) (भोलाराय)	,,	,,	१२३५	—	१२९८
१२.	त्रिभुवनपाल देव	,,	,,	१२९८	—	१३०२

(फार्वस विरचित 'रास माला' के हिन्दी अनुवाद की भूमिका, पृ० ७, मंगल प्रकाशन जयपुर, सन् १९५८ ।)

११

मुइज्जुद्दीन मुहम्मद गोरी का वंश वृक्ष

- इज्जुद्दीन हसन
  - कुतुबुद्दीन हसन (१)
    - अलाउद्दीन अतसूज
  - सैफुद्दीन सूरी (२)
  - अलाउद्दीन हुसैन (जहाँ सोज)
    - सैफुद्दीन मुहम्मद (३)
  - बहाउद्दीन साम
    - गियासुद्दीन (४)
    - मुइज्जुद्दीन मुहम्मद गोरी (५)
  - शिहाबुद्दीन
  - शुजाउद्दीन
    - अलाउद्दीन मुहम्मद
  - फखरुद्दीन
    - शमसुद्दीन
      - बहाउद्दीन साम
        - अलाउद्दीन
        - जलालुद्दीन


भारत में इसका उत्तराधिकारी ऐबक गुलाम हुआ।

[डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दिल्ल पृ १०३ ।]

सहायक ग्रन्थ-सूची

अर्थशास्त्र — कौटिल्य।

अथर्ववेद

अपभ्रंश काव्यत्रयी — जिनदत्त सूरि, सं० लालचन्द भगवानदास गांधी।

असली पृथ्वीराज रासो — म० म० प० मथुराप्रसाद दीक्षित।

आइने-अकबरी — अबुलफ़ज़ल।

आबूरास — —

आल्हा की कथा — द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी।

आल्हखण्ड — जगनिक, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई।

आल्हखण्ड — जगनिक, सरस्वती पुस्तकालय।

इतिहास प्रवेश — जयचन्द विद्यालंकार, सं० काशीप्रसाद जायसवाल।

उदयपुर राज्य का इतिहास — म० म० प० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।

उपदेश रसायन रास — जिनदत्त सूरि।

ऊंदर रासो — —

ऋग्वेद — —

ऐतिहासिक बातें — कविराज बांकीदास।

कछूली रास — प्रज्ञा तिलक।

करहिआ री रायसो — —

कान्हड़दे प्रबंध — —

कायमरासा — कवि जान।

काव्यानुशासनम् — आचार्य हेमचन्द्र सूरि।

कुमारपाल रास — ऋषभदास।

कोशोत्सव स्मारक संग्रह — सं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।

खटमलरासै — —
खरतरगच्छ पट्टावली — —
खुमान रासो — दलपति विजय।
गयसुकुमाल रास — देल्हण।
गिरिनार रास — —
गौतम रास — विनय प्रभ।
गोधा रास — ज्ञानदास।
चन्द्रवरदायी और उनका काव्य— डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी।
चन्दनबाला रास — कवि आसगु।
चर्चरी — जिनदत्त सूरि।
छत्रसाल रासो — डूंगर सी।
जम्बूकुमार रास — धर्म सूरि।
जीवदया रास — कवि आसगु।
जोधपुर राज्य का इतिहास — म०म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।
तबकाते नासिरी — हसन निजामी।
दशार्णभिद्र रास — —
द्रव्यगुणपर्ययरासा — यशोविजय।
दिल्ली सल्तनत — डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव।
पद्मावत — मलिक मुहम्मद जायसी, स० पं० रामचन्द्र शुक्ल।
पद्मावत — जायसी, स० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।
परमाल रासो — अज्ञात, सं० बाबू श्यामसुन्दरदास।
पुरातन प्रबंध संग्रह — सं० मुनिराज जिनविजय।
पृथ्वीराज चरित्र — बाबू रामनारायण दूगड़।
पृथ्वीराज रासो जि० १ ७ — चन्द वरदायी, नागरी प्रचारणी सभा काशी।
पृथ्वीराज रासो जि० १-४ — साहित्य संस्थान उदयपुर (राजस्थान)।
पृथ्वीराज रासो (अप्रकाशित)— रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन।
पृथ्वीराज रासो (लघुतम रूपान्तर)—धारणोज।
पृथ्वीराज रासो (एक समीक्षा)— डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी।
पृथ्वीराज रासो की कथानक रूढ़ियाँ—व्रजविलास श्रीवास्तव।
पृथ्वीराज रासो की भाषा डॉ० नामवर सिंह।
प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह — चिम्मनलाल दलाल।
प्रबंध कोष — —
प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ — —
बलभद्र विलास — —

बिहार एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन–जयचन्द्र विद्यालंकार।
बुद्धिरास – शलिभद्र सूरि।
बुद्धि रासो – जल्ह।
भरतेश्वर बाहुवलिरास – शालिभद्र सूरि।
भविष्य पुराण – —
भविष्यत कहा – धणवाल (धनपाल जैन)।
भारत का वृहत इतिहास – श्रीनेत्र पाण्डेय।
भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास –सत्यकेतु विद्यालंकार।
महाभारत – व्यास।
मारवाड़ का इतिहास – जगदीशसिंह गहलोत।
मांकड़ रासो – कवि कान्ह।
मिश्र बंधु विनोद – मिश्र बंधु।
मजु रास – अज्ञात।
मुक्तावलि रास – जीवंधर।
मानव धर्म शास्त्र – —
मुहणोत नेन सी की ख्यात – नागरी प्रचारणी सभा काशी।
यजुर्वेद – —
रतन रासो – कुंभकर्ण सांदू।
राउ जैत सी री रासो – अज्ञात।
राजतरंगिनी – कल्हण।
राजपूताने का प्रारम्भिक इतिहास–सी० वी० वैद्य।
राजपूताने का इतिहास – म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।
राजस्थान की जातियां – बजरंगलाल लोहिया।
राजस्थानी भाषा और साहित्य– पं० मोतीलाल मेनारिया।
राणा रासो – दयालदास सिढ़ायच।
रामायण – बाल्मीकि।
राम रासो – माधवदास दधवाड़िया।
रास माला (दो भाग) – फार्वस, अ० गोपालनारायण बहुरा।
रास और रासान्वीय काव्य – डॉ० दशरथ शर्मा एवं डॉ० दशरथ ओझा।
रासो समीक्षा – पं० सदाशिव दीक्षित।
रासो सार – श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारणी सभा काशी।
रासो साहित्य विमर्श – डॉ० माताप्रसाद गुप्त।
राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ–
रेवंतगिरि रास – विजयसेन सूरि।

रेवातट — डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी ।
ललित विग्रहराज नाटक — —
वंशभास्कर — सूर्यमल्ल मिश्रण ।
वस्तुपाल तेजपाल रास — —
विचार और विवेचन — डॉ विपिनविहारी त्रिवेदी ।
विजयपाल रासो — नल्लसिंह भट्ट ।
विष्णु पुराण — —
वीर काव्य — डॉ० उदयनारायण तिवारी ।
वीर सतसई — सूर्य्यमल्ल मिश्रण ।
वीर सतसई — श्री वियोगी हरि ।
वीसलदेव रासो — नरपति नाल्ह, सं० सत्यजीवन वर्मा ।
वेलिक्रिसन रुक्मिणी री — पृथ्वीराज राठौर ।
संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो — डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ० नामवर सिंह ।
संदेश रासक — अद्दहमाण, सं० मुनिराज जिनविजय ।
सगतसिंह रासो — गिरधर चारण ।
समरसिंह रास — —
साहित्य जिज्ञासा — प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल ।
सुजान चरित — सूदन ।
सोलंकियों का प्राचीन इतिहास—म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ।
हम्मीर रासो — जोधराज ।
हम्मीर हठ — चन्द्रशेखर वाजपेयी ।
हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डॉ० नामवर सिंह ।
हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास —डॉ० शम्भूनाथ सिंह ।
हिन्दी वीर काव्य — डॉ० टीकमसिंह तोमर ।
हिन्दी साहित्य — डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा ।
हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—डॉ० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन, अ० किशोरीलाल गुप्त ।
हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
हेमशब्दानुशासनम् — आचार्य हेमचन्द्र सूरि ।
क्षात्र कुल वंशावली-(काव्य) — राजा रणजोर सिंह ।

कोश—

संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर।

नालन्दा हिन्दी शब्द कोश।

पत्रिकाएं—

आलोचना।
मरु भारती।
माधुरी।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका।
राजस्थान भारती।
राजस्थानी।
विशाल भारत।
शोध पत्रिका (उदयपुर)।
सरस्वती।
साहित्य सन्देश।
हिन्दुस्तानी।
हिन्दी अनुशीलन।

संस्कृत—

अर्थशास्त्र	— कौटिल्य।
अथर्ववेद	—
ऋग्वेद	—
कादम्बरी	— वाणभट्ट।
तैतिरिय ब्राह्मण	— —
नवसाह सांक चरित	— पद्मगुप्त (परिमल)।
प्रबन्ध कोष	— —
प्रबन्ध चिन्तामणि	— —
पुरातन प्रबंध संग्रह	— सं० मुनि जिन विजय।
पृथ्वीराज महाकाव्यम्	— जयानक।
भविष्य पुराण	— —
मनुस्मृति	— —
महाभारत	— व्यास।
मालविकाग्निमित्र नाटक	— कालिदास।

रम्भा मंजरी (नाटिका) — नयचन्द सूरि ।
रामायण — वाल्मीकि ।
ललित विग्रहराज नाटक — —
विष्णु पुराण — —
साहित्य दर्पण — आचार्य विश्वनाथ ।
सुर्जन चरित महाकाव्य — चन्द्रशेखर ।
सौन्दरानन्द काव्य — अश्वघोष ।
हम्मीर महाकाव्य — नयचन्द सूरि ।
हर्ष चरित — बाण भट्ट ।

अंग्रेजी—

आइने-अकबरी — अबुल फजल, रा० ए० सो० बंगाल ।
आन युवान च्वान ट्रेवल्स — ले० वाटर्स ।
ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑव इंडिया— वी० ए० स्मिथ ।
एनल्स एण्ड ऐंटीक्वटीज ऑव राजस्थान— कर्नल टॉड ।
एन्शियन्ट एण्ड मीडीवल नेपाल — रेजमी ।
ए डिस्क्रिप्सन ऑव इंडियन एण्ड ओरियंटल आर्मर—लार्ड ईगर्टन ।
ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर—एस० एन० दास गुप्ता तथा एस० के० डे ।
कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया —बर्ट्स ।
कास्ट एण्ड ट्राइब — रसल ।
ग्लोरी दैट वाज गुर्जरदेश — के० एम० मुंशी ।
तबकाते-नासरी — स० रेवर्टी ।
दि ले आव आल्हा — डब्ल्यू वाटर फील्ड ।
दि आर्मी आव दि इण्डियन मुगल्स—विलियम इरविन ।
दि फाउंडेशन ऑव मुस्लिम रूल इन इण्डिया—ए० बी० एम० हबीबुल्ला ।
न्यू लाइट आन दि चाहमान हिस्ट्री—यू० सी० भट्टाचार्या ।
ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आव नार्दन वेस्ट पंजाब एण्ड अवध— ।
डायनेस्टिक हिस्ट्री आव नार्दन इण्डिया—डॉ० हेमचन्द्र राय ।

मिडीवल हिन्दू इण्डिया—डॉ० ईश्वरीप्रसाद।
मैमरीज ऑव एशियाटिक सोसाइटी, बगाल—रा० ए० सो० बंगाल।
मैम्वायर्स ऑव बाबर — लीडेन और एर्स लाइन।
राजपूत्स — एच० एस० बिग्ले।
राजतरंगिणी — कल्हन, सं० स्टेन कोनो।
राजस्थान — कर्नल टॉड।
रास माला — फार्वस।
हिन्दू ट्राइब्स एंड कास्टम्स — श्रिंग।
हिस्ट्री ऑव इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स—इलियट एण्ड डाउसन।
हिस्ट्री ऑव कन्नौज — डॉ० रामशंकर त्रिपाठी।
हिस्ट्री ऑव मेडीवल हिन्दू इंडिया — सी० वी० वैद्य।

विश्वकोश

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका

गजेटियर

डिस्ट्रिक गजेटियर यू० पी० मिर्जापुर।
गजेटियर ऑव बाम्बे प्रेसीडेन्सी।
कैप्टन लुअर्ड सैन्ट्रल इन्डिया गजेटियर सीरीज।
इम्पीरियल गैजेटियर ऑव इन्डिया—स्मिथ।
इम्पीरियल गैजेटियर ऑव इन्डिया – जार्ज ग्रियर्सन।

जर्नल्स एण्ड पीरिओडिकल्स

आर्केलाजिकल सर्वे ऑव इन्डिया।
इन्डियन एण्टीक्वेरी।
एशियाटिक जर्नल।
एपिग्राफिया इण्डिका।
जर्नल ऑव दि अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी।

जर्नल आव दि पंजाव हिस्टारिकल सोसाइटी।

जर्नल ऑव दि वाम्बे ब्रांच ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी।

जर्नल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आव वंगाल।

प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑव आर्क्योलाजिकल सर्वे आव इण्डिया।

प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इनसर्च ऑव मैनुस्क्रिप्टस ऑव वार्डिक क्रानिकल्स—म० म० हरप्रसाद शास्त्री।
